॥ श्रीमद्भागवतदशमसुबोधिनी ॥

॥ नलकूबरमणिग्रीवकृतस्तुति ॥

(निरोधलीलान्तर्गत तामसप्रकरणके अवान्तर प्रमाणप्रकरणमें वैराग्यगुणलीलापरक दसवां अध्याय)

गोस्वामी श्याम मनोहर

प्रकाशक : गोस्वामी श्याम मनोहर

सहयोग प्रकाशन : १.श्रीमती इन्दुमति शर्मा, बरोडा.
२.श्रीगिरिराज भूषण शर्मा, बरोडा.
३.श्रीगोपालदास शाह, मुंबई.

प्रथमसंस्करण : श्रीगोपीनाथजी प्राकट्योत्सव वि.सं.२०७६,
सन् सप्टेम्बर् २०२०

प्रति : १०००

निःशुल्कवितरणार्थ

मुद्रक : पूर्वी प्रेस,
१, लोहनगर, गोंडल रोड,
राजकोट. ३६०००२.

श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट, मांडवी-कच्छ

ग्रन्थप्रकाशन :

साम्प्रदायिक परीक्षाकी पाठ्यपुस्तकें:

प्रवेशिका, ले. : गो.शरद् (गुजराती)	१०	प्रवेशिका, ले. : गो.शरद् (हिन्दी)	निःशुल्क
प्रवेशिका, ले. : गो.शरद् (अंग्रेजी)	निःशुल्क	पुष्टिप्रवेश १-२ ले. : गो.शरद् (गुज)	२०
पुष्टिप्रवेश-१-२, ले. : गो.शरद् (हिन्दी)	१०	पुष्टिपथ, ले. : गो.शरद् (गुजराती)	३०
पुष्टिपथ, ले. : गो.शरद् (हिन्दी)	२०	प्रमेयरत्नसंग्रह, ले. : गो.शरद् (गुजराती)	५०

Manual of the Devotional Path of Pushti, गो.शरद् ६५

साम्प्रदायिक विचारगोष्ठी

वार्तापरिचर्चा	अप्राप्य	साधनाप्रणाली संगोष्ठी	अप्राप्य
अधिकारपरिचर्चा	दुर्लभ	पुष्टिभक्तिमें कथासाधना संगोष्ठी	अप्राप्य
शरणागति विचारगोष्ठी	५०	सेवा-समर्पण विचारगोष्ठी	५०
पुष्टिभक्ति तथा प्रपत्तिमें प्रतिबन्ध	१००	जघन्याधिकार विचारगोष्ठी	८०
पुष्टिफलमीमांसा	१००		

पुष्टिअस्मिता संवर्धन शिविर, राष्ट्रीय संमेलन, भरूच २५

पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभा (विस्तृत-संक्षिप्तविवरण) १००

तत्त्वदर्शन विषयक राष्ट्रीय सेमिनार

शब्दखण्डीया विद्वत्परिचर्चा	२००	अन्यख्यातिवादीया विद्वत्सङ्गोष्ठी	१५०
कार्यकारणभावविद्वत्सङ्गोष्ठी	२००	प्रत्यक्षप्रमाण विद्वत्सङ्गोष्ठी	१५०
अन्धकारवादीया विद्वत्सङ्गोष्ठी	२००		

वाल्लभवेदान्त निबन्धसंग्रह, लेखक : गो. श्रीश्याम मनोहरजी निःशुल्क

नित्यस्तोत्रपाठ:

पुष्टिपाठावली (हिन्दी)	२०	पुष्टिपाठावली (गुजराती)	२०

पुष्टिपाठावली (गुजराती) पोकेट साईझ १०

पुरुषोत्तमसहस्रनाम-त्रिविधलीलानामावली(गुर्जरभाषानुवाद) २०

सन्दर्भग्रन्थ:

पुष्टिविधानम् पादानुक्रमणिका १०

Summary of Shuddhadvaita Vangmaya, लेखक: गो.शरद १५

अमृत वचनावली (गुजराती) निःशुल्क अमृत वचनावली (हिन्दी) निःशुल्क

अध्ययनोपयोगी ग्रन्थ:

पुष्टिविधानम्-२(व्याकरणम्) श्रीवल्लभाचार्य-श्रीगोपीनाथजी-श्रीगुसांईजी विरचित
२६ ग्रन्थोंका पदच्छेद-अन्वय- शब्दपरिचय-वृत्तिपरिचय १००

पुष्टिविधानम्-३ (व्रजभाषा) श्रीवल्लभाचार्य-श्रीगोपीनाथजी-श्रीगुसांईजी विरचित
२६ ग्रन्थोंका शब्दार्थ-श्लोकार्थ-विवेचन-पादानुक्रमणिका १५०

तत्त्वार्थदीपनिबन्धान्तर्गत शास्त्रार्थप्रकरणम्, (व्रजभाषाटीका) साधारण/राजसंस्करण ५०/७०

तत्त्वार्थदीपनिबन्धान्तर्गत सर्वनिर्णयप्रकरणम् (व्रजभाषाटीका) साधारण/राजसंस्करण ८०/१००

श्रीभागवतमहापुराण(गुर्जरभाषानुवाद) अनु : गो.वा.श्रीकल्याणजी कानजी शास्त्री ५००
श्रीमद्भगवद्गीता, गुर्जरभाषानुवाद, अनुवादक: गो.वा.श्रीनानुलाल गांधी
श्लोकार्थ-विवेचन-पादानुक्रमणिका. गीतातात्पर्य-न्यासादेशविवरण सहित ५०
विवेकत्रयम्, प्रपञ्च-जीव-मूलरूप (संस्कृत) १०
गृहसेवा और व्रजलीला(व्रजभाषा)व्याख्यात: गो.श्रीश्याम मनोहरजी निःशुल्क
गृहसेवा अने व्रजलीला(गुजराती)व्याख्यात: गो.श्रीश्याम मनोहरजी अप्राप्य
सेवा[हिन्दी] (ऋतु-उत्सव-मनोरथ) व्याख्याता: गो.श्रीश्याम मनोहरजी निःशुल्क
सेवा[गुज.] (ऋतु-उत्सव-मनोरथ) व्याख्याता: गो.श्रीश्याम मनोहरजी निःशुल्क
पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद, व्याख्यात: गो.श्रीश्याम मनोहरजी(गुजराती) अप्राप्य
श्रीकृष्णचरित्र (दशमस्कन्ध गुर्जरभाषा-भावानुवाद) अनु : गो.वा.श्रीनानुलाल गांधी अप्राप्य
रसदृष्टिनी तरफेणमां(गुजराती), लेखक : गो.श्रीश्याम मनोहरजी निःशुल्क
सिद्धान्तनुं आचमन, प्रश्नोत्तर (गुज.) उत्तरदाता: गो.श्रीश्याम मनोहरजी निःशुल्क
ब्रह्मवाद (हिन्दी) लेखक: गो.श्रीश्याम मनोहरजी निःशुल्क
सेवाकौमुदी[(हिन्दी)],विषय: नवधाभक्ति, लेखक: श्रीलालूभट्टजी. व्याख्याता:गो.श्रीश्या.म. अप्राप्य
भक्तिवर्धिनी(गुज.), व्याख्याता: गो.श्रीश्याम मनोहरजी निःशुल्क
षोडशग्रन्थगत उपदेशो अने तेमनी २८ वार्ताओ, लेखक: श्रीभूपेन्द्र भाटीया अप्राप्य
षोडशग्रन्थगत उपदेशो अने तेमनी ६४ वार्ताओ, लेखक: श्रीभूपेन्द्र भाटीया अप्राप्य
कृष्णाश्रय, श्रीकल्याणरायजी विरचित संस्कृत टीकानो गुजराती अनुवाद अप्राप्य
जिन श्रीवल्लभरूप न जान्यो (गुजराती) गो.श्रीश्याम मनोहरजी लिखित श्रीवल्लभ
महाप्रभुस्तोत्राणि ग्रन्थकी विस्तृत हिन्दी भूमिकाका गुर्जरभाषानुवाद तथा सौंदर्यपद्य, सर्वोत्तमस्तोत्र, वल्लभाष्टक, स्फुरत्कृष्णप्रेमामृत, श्रीहरिरायचरण रचित श्रीवल्लभस्तोत्र, पंचश्लोकी, शिक्षाश्लोकी आदि ग्रन्थोंकी टीकाओंका गुजराती अनुवाद. ७०
पुरुषोत्तमग्रन्थावली-५(द्रव्यशुद्धि-व्रतोत्सवनिर्णय-अपराधनिरूपण)(संस्कृत-गुज.-हिन्दी) १००
पुरुषोत्तमग्रन्थावली-६(उपनिषद्-गीताविवृति) संस्कृत २००
श्रीभागवत तृतीयस्कन्ध सुबोधिनी प्रथम खंड (अध्याय १-१९) संस्कृत २००

इतिहास

श्रीगोपीनाथप्रभुचरण, जीवनचरित्र-ग्रन्थ-हस्ताक्षर (गुज.-हिन्दी) २५
आधुनिक न्यायप्रणाली अने पुष्टिमार्गीय साधनाप्रणालीनो आपसी टकराव[गुज.],
लेखक: गो.श्रीश्याम मनोहरजी निःशुल्क
आधुनिक न्यायप्रणाली और पुष्टिमार्गीय साधनाप्रणालीका आपसी टकराव[हिन्दी.],
लेखक: गो.श्रीश्याम मनोहरजी निःशुल्क

श्रीभागवतसुबोधिनीका गो.वा.श्रीनानुलाल गांधी कृत गुर्जरभाषानुवाद

प्रथमस्कन्ध	१००	द्वितीयस्कन्ध	१००
तृतीयस्कन्ध (१-२)	४००	दशमस्कन्ध(जन्मप्रकरण)	१५०

चित्र

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य	निःशुल्क	श्रीगोपीनाथप्रभुचरण	निःशुल्क

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य-श्रीगोपीनाथप्रभुचरण-श्रीविट्ठलनाथप्रभुचरण निःशुल्क

गोशाला : मांडवी-कच्छ में प्राकृतिक वातावरणमें गोपाल गोशाला.

जीर्णोद्धार : तृतीय लालजी श्रीबालकृष्णजीके बैठकजी, गाम : विंजाण-कच्छ

।। श्रीवल्लभाचार्य विद्यापीठ ।।

। संस्कृत, शास्त्र और सम्प्रदाय के अध्ययनके लिए समर्पित पुष्टिमार्गीय केन्द्र ।

अध्ययनोपयोगी ग्रन्थालय, अध्ययनकक्ष, निवास, भोजन, अध्यापक आदि अत्यावश्यक सुविधाओंसे सुसज्ज.

पता : २६, श्रीवल्लभाचार्य नगर, रेफरल् होस्पिटल्के पीछे, हालोल, जि.पंचमहाल, गुजरात-३८९३५०. फोन : 02676-225171

व्होट्स्एप द्वारा श्रीवल्लभाचार्य विद्यापीठ तथा पुष्टिमार्ग सम्बन्धी महात्वपूर्ण जानकारीयां प्राप्त करनेकेलिए सम्पर्क करें : विद्यापीठ : 02676-225171

http://www.vallabhacharyavidyapeeth.org/
http://www.pushtimarg.net/

टेलि कोन्फरन्स्-पुष्टिस्वाध्याय : सप्ताहके प्रायः सभी दिन आबाल-वृद्ध सभी पुष्टिमार्गीओं केलिये सम्प्रदायके मूल ग्रन्थोंका अध्यापन विद्वान् आचार्यवंशजों द्वारा टेलिफोनिक कोन्फरन्स् के माध्यमसे होता है. **सम्पर्क:** विद्यापीठ : 02676-225171, नीरजभाई(यु.एस्.ए.):+7325424165. gosharad@rediffmail.com

Subscribe us on You Tube **'Pushtiswadhyay'**

Like our page on Facebook : Sri Vallabhacharya Vidyapeeth

Pushti-Vidya **'पुष्टिविद्या' मोबाईल् एप्लिकेशन् :** आधुनिक संसाधनों का उपयोग करने वाले पुष्टिमार्गी तथा पुष्टिमार्गमें रुचि रखनेवाले जिज्ञासु जनोंको पुष्टिमार्गका यथार्थ परिचय करानेके उद्देश्य से प्रस्तावित की गई है। इसमें पुष्टिमार्गीय टीप्पणी (कैलेंडर), उत्सवोंका परिचय, सिद्धान्तसूक्तियाँ, कीर्तन, प्रवचन, ग्रंथों का अध्यापन, सिद्धांत सम्मत प्रणालीसे आयोजित होते कार्योकी जानकारी, टेलीफोनिक कॉन्फरेन्ससे होते नित्य पुष्टिस्वाध्याय की जानकारी, उनकी रेकॉर्डिंगक तथा उनकी लिंक आदि विषय इस एप्लिकेशनमें क्रमिक रूपसे उपलब्ध कराये जायेंगे।

गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजीद्वारा सम्पादित-पुनर्मुद्रित

शुद्धाद्वैत पुष्टिभक्ति सम्प्रदायके मूल संस्कृत ग्रन्थ

१. सव्याख्यषोडशग्रन्थ संयुक्तप्रकाशन, दुर्लभ

खंड १. श्रीयमुनाष्टकम् से सिद्धान्तरहस्यम्

खंड २. नवरत्नम् से भक्तिवर्धिनी

खंड ३. जलभेदः से सेवाफलम्

ष. प्रकाश-रश्मि सहित ब्रह्मसूत्राणुभाष्यम्

खंड १. प्रथमाध्याय नाथद्वारा टेम्पलबोर्ड, अतिदुर्लभ

खंड २. प्रथमाध्याय नाथद्वारा टेम्पलबोर्ड, अतिदुर्लभ

खंड ३. द्वितीयाध्याय

खंड ४. तृतीयाध्याय

खंड ५. चतुर्थाध्याय

३. श्रीमद्भागवतसुबोधिनी

खंड १. प्रथम (प्रथम खंड. अध्याय १-८)

तृतीयस्कन्ध (दो खंड) श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट(मांडवी) द्वारा प्रकाशित.

खंड ४. जन्मप्रकरण

खंड ५. तामसप्रमाणप्रकरण

खंड ६. तामसप्रमेय-साधनप्रकरण

खंड ७. तामसफलप्रकरण

खंड ८. राजसप्रमाण-प्रमेयप्रकरण

खंड ९. राजससाधन-फलप्रकरण

खंड १०. सात्त्विकप्रमेयसाधनफलप्रकरण

खंड ११. गुणप्रकरण तथा यावत्प्राप्य एकादशस्कन्ध

४. तत्त्वार्थदीपनिबन्ध

खंड १. शास्त्रार्थ-सर्वनिर्णयप्रकरण

खंड २. भागवतार्थप्रकरण स्कन्ध १-५

खंड ३. भागवतार्थप्रकरण स्कन्ध ६-१ष

५. सव्याख्यषड्ग्रन्थाः संयुक्तप्रकाशन, दुलर्भ

६. वेदान्ताधिकरणमाला-भावप्रकाशिका

७. विविधविवरणोपेत पत्रावलम्बनम्

८. प्रस्थानरत्नाकर

९. विद्वन्मण्डनम्

१०. श्रीबालकृष्णग्रन्थावली

११. श्रीवल्लभमहाप्रभुस्तोत्राणि

१२. श्रीपुरुषोत्तमप्रतिष्ठाप्रकार (हिन्दी-गुजराती)

१३. वल्लभाख्यान (सप्तटीकोपेत) (हिन्दी)

१४. पुष्टिविधानम् [गुजरातीपाठाली, व्रज तथा संस्कृत संस्करण]

१५. वादावली

ब्रह्मवाद, वादकथा, विग्रहवाद, प्रपंचवाद, प्रपंचसंसारभेदवाद, ब्रह्मजीवतदैक्यस्वरूपनिरूपणम्, विरुद्धधर्माश्रयत्वविवेचनम्, आत्मवादः, प्रश्नोत्तरसाहस्रीपर्यालोचनम्, प्रश्नोत्तरसाहस्रीचर्चित-प्रकृत्यधिकरण-समालोचनम्, केवलाद्वैतवादाभिमताविद्यास्वरूपविमर्शः, अक्षरपुरुषोत्तम-द्वैतनिरासवादः

१६. अवतारवादावली

खंड २. भेदाभेदवाद,सृष्टिभेदवाद,आविर्भावतिरोभाववाद,ख्यातिवाद,प्रतिबिम्बवाद, अन्धकारवाद.

खंड ३. ब्राह्मणत्वादिदेवतावादः, जीवव्यापकत्वखण्डनवाद, जीवप्रतिबिम्बत्व-खण्डनवादः, भागवतस्वरूपविषयकशंकानिरासवादः,उपदेशादिविषयकशंकानिरासवादः,भगवत्प्रतिकृति-पूजनवादः, ऊर्ध्वपुण्ड्रधारणवादः, तुलसीमालाधारणवादः, शंखचक्रधारणवादः, भक्तिरसत्ववादः, भक्त्युत्कर्षवादः, नामफलादिप्रकारवादः, जयश्रीकृष्णोच्चारणवादः, स्ववृत्तिवाद ः, वस्त्रादिसेवावादः, मूर्तिपूजनवादः, भागवतपाठादेः शंकानिरासवादः.

१७. सत्सिद्धान्तमार्तण्डः. भारतमार्तण्ड-पञ्चनदी श्रीगोवर्धन(गट्टुलाल)शर्मा विरचित.

१८. वेदान्तचिन्तामणी. भारतमार्तण्ड-पञ्चनदी श्रीगोवर्धन(गट्टुलाल)शर्मा विरचित.

१९. प्राभञ्जन-मारुतशक्ति. भारतमार्तण्ड-पञ्चनदी श्रीगोवर्धन(गट्टुलाल)शर्मा विरचित.

२०. श्रीमत्प्रभुचरणकृतग्रन्थाः.

२१. श्रीमत्प्रभुचरणकृताः स्तोत्रवज्ञप्तयः.

२२. श्रीमद्भगवद्गीताध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेप. लेखक : गो.श्या.म.

२३. लघुग्रन्थसंग्रह १-२. लेखक : गो.श्या.म.

४क्र.१, ष तथा ४/१, ४/ष को छोड कर सभी ग्रन्थ श्रीवल्लविद्यापीठ-श्रीविट्ठलेश्वर-प्रभुचरण आ.हो.ट्रस्ट (कोल्हापुर) द्वारा प्रकाशित.

२४. वाल्लभवेदान्त निबन्धसंग्रह (हिन्दी)
२५. पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद (गुजराती)
२६. विवेक (हिन्दी-गुजराती)
२७. विशोधनिका (चार खंड) (गुज-हिन्दी)
२८. पुरुषोत्तमयोग (गुजराती-हिन्दी)
२९. नवरत्नम् (गुजराती)
३०. नवरत्नोपदेशका मानस विश्लेषण (हिन्दी-गुजराती)
३१. श्रीयमुनाष्टकम् (हिन्दी-गुजराती)
३२. सिद्धान्तनुं आचमन (गुजराती)
३३. सिद्धान्तसूक्ति (गुजराती)
३४. भगवद्गीतासु भक्तियोग (हिन्दी-गुजराती)
३५. पुरुषार्थव्यवस्था (हिन्दी-गुजराती-अंग्रेजी)
३६. चतुःश्लोकी(हिन्दी)
३७. रसदृष्टिनी तरफेणमां(हिन्दी-गुजराती)
३८. गृहसेवा और व्रजलीला(गुजराती-हिन्दी)
३९. सेवा : ऋतु-उत्सव-मनोरथ (हिन्दी-गुजराती)
४०. ब्रह्मवाद (वादावली सम्पादकीय)
४१. सेवाकौमुदी/नवधाभक्ति (हिन्दी)
४२. चिरकुट चर्चा समीक्षा (हिन्दी-गुज)
४३. पुष्टिमार्गीय पीठाधीश स्वरूप और कर्तव्य
४४. अणुभाष्य(साधनफलाध्याय) भूमिका (गुज.)
४५. श्रीवल्लभाचार्यके दर्शनका यथार्थ स्वरूप

४६. शरणागतिविचारगोष्ठी एक पूरक प्रश्नोत्तरी (गुजराती)
४७. धर्म-अर्थ-काम-मोक्षकी पुष्टिमार्गीय विवेचना(हिन्दी-गुजराती)
४८. भगवत्सेवानो सिद्धान्तशुद्ध प्रकार: एक प्रश्नोत्तरी (गुजराती)
४९. साकारब्रह्मवाद (तत्त्वचिन्तन भक्ति और संस्कृति विमर्श) (हिन्दी)
५०. तत्त्वार्थदीपनिबन्धान्तर्गत शास्त्रार्थप्रकरणोपक्रम(गुज.)
५१. तत्त्वार्थदीपनिबन्धान्तर्गत संक्षिप्त शास्त्रार्थ-सर्वनिर्णयप्रकरण तथा विवेकधैर्याश्रय, नवरत्न, सिद्धान्तमुक्तावली एवं भक्तिवर्धिनी का गुजराती अनुवाद-विवेचन(गुज.)
५२. वार्तान्की सैद्धान्तिक संगति (वार्ता : गदाधरदास-महावनकी क्षत्राणी-दिनकरदास शेठ-दिनकरदास मुकुंददास)
५३. श्रीदामोदरदासजी-श्रीकृष्णदास मेघनजी : वार्ताविवेचना. (हिन्दी-गुजराती)
५४. श्रीवल्लभाख्यान : श्रीमद्‌भागवतको प्रारूप और श्रीवल्लभाख्यान
५५. सूक्तित्रय : सिद्धान्त, उत्सव, भक्ति.
५६. वचनामृतत्रय (श्रीमन्महाप्रभुश्रीवल्लभवचनामृत, श्रीमद्‌प्रभुचरण-गोस्वामि-विट्‌ठलनाथ-वचनामृत, श्रीवल्लभ(श्रीगोकुलनाथ)वचनामृत)
५७. पुष्टिभक्तिका व्यापारीकरण (कुशंका, खिलवाड-समाधान)
५८. ब्राह्मिक याथार्थ्य और ब्रह्मवाद की नानावादानुरोधिता (लघुग्रन्थसंग्रह-२)
५९. पुष्टिमार्गकी आचार्यत्रयी
६०. अमृतका आचमन
६१. कृष्णएव तात्पर्यम्
६२. अहंकारमीमांसा १,२ (हिन्दी-गुजराती)
६३. मूलाचार्यवाणी (सुबोधिनी तथा अणुभाष्य)
६४. षोडशग्रन्थ परिचय
६५. भक्तिवर्धिनी (सूक्तिसंकलन)
६६. आधुनिक न्यायप्रणाली एवं पुष्टिमार्गीय साधनाप्रणलीका आपसी टकराव (हिन्दी-गुजराती)
६७. सिद्धान्तवचनावली
६८. अणुभाष्य (संक्षिप्त अनुक्रमणिका)
६९. पुष्टिमार्गीय स्वयंशिक्षक
७०. जिन श्रीवल्लभरूप न जान्यो
७१. आत्मकथा : श्रीकृष्णस्वरूपानन्द सरस्वतीनी.
७२. जयन्त कागना अनेक जन्मोनी कथा (लघु नाटक)
७३. श्रीमद् भागवत पूजन (गुजराती)
७४. शिक्षाश्लोका (गुजराती)
७५. भक्तिवर्धिनी (पीपरीया) (गुजराती)
७६. गोपीगीत सुबोधिनी (सविवरण)
७७. नलकूबेरमणिग्रीवकृतस्तुति (सविवरण)

सम्पर्क: गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी, व्रजकमल, ६३ स्वस्तिक सोसायटी,
४था रास्ता, जुहु स्कीम, विलेपार्ले(पश्चिम) मुम्बई-**५६**

विडियो/ओडियो प्रवचन और उपरोक्त प्राप्य ग्रंथो के लिये संपर्क करे : पुष्टि अस्मिता संवर्धन केन्द्र,
२१४, अमरदिप कोम्पलेक्ष, २-रजपुतपरा, राजकोट-१. मो. ९४२७४ ९५१५९

सम्पादकीय

मुंबई युनिवर्सिटीके दर्शन-विभागमें 'वल्लभ-वेदान्त' नामक त्रिवर्षीय अभ्यासक्रमके अन्तर्गत द्वितीय वर्षमें 'नलकूबर-मणिग्रीवस्तुति' योजित की गयी है. यह स्तुति भागवतके दशमस्कन्धके निरोधलीलान्तर्गत तामसप्रकरणके अवान्तर प्रमाणप्रकरणमें वैराग्यगुणलीलापरक दसवे अध्यायमें मूलतया गुम्फित है.

इस स्तुतिकी विशेषता यह है कि इसमें पुष्टिमार्गके तात्त्विक दैविक साधनात्मक आदि सभी पहलु भलीभांति उभरे हैं. तदुपरान्त भक्त और भगवान् के बीच एकदम सीधा और निजी संवाद है जो स्वामि-सेवकके पहलुको उजागर करता है. यह हेतु है वल्लभ-वेदान्तके अभ्यास-क्रममें इसे समायोजित करनेका.

इस नलकूबर-मणिग्रीवस्तुति पर वर्ष २०१२ एवं २०१५ में मेरे द्वारा दिये गये मौखिक व्याख्यानको परिश्रमपूर्वक लिपिबद्ध श्रीअतुल्य शर्माजीने किया है. इसका मुद्रणोपयोगी सम्पादन कोराना वायरसके महा-उपद्रवमें अपने गृहपंजरमें निरुद्ध हो जानेका सदुपयोग करते हुवे ऐकान्तिक मनोयोग द्वारा श्रीपरेश और श्रीमती मनीषा शाहने किया है. तालिका एवं उद्धृत वचनावली श्रीजगदीश शेठने कम्प्युटरमें सोत्साह संकलित समायोजित की है. मेरे सभी प्रकाशनोंकी तरह यहां भी श्रीमती ख्याति भुलाने ग्रन्थानुरूप सुन्दर आवरकचित्र बनाया है.

श्रीप्रवीणभाई ढढाणिया एवं श्रीपीयूषभाई गोंधीया ने मुद्रणोपयोगी अभिनन्दनीय उत्तरदायित्व वहन किया है.

इन सभी सहयोगी जनोंके प्रति अपनी अतिशय हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूं.

तदुपरान्त प्रकाशनार्थ आर्थिक सहयोग प्रदान करनेवालें श्रीमती इन्दुमति शर्मा, श्रीगिरिराज शर्मा और गोपालदास शाह के प्रति भी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूं.

अन्तिम पर आदिम महत्त्वकी कथा इस प्रकाशनमें पूर्व भी मेरे कुछ ग्रन्थोंको अपने पुरोवाक्से मण्डित करनेवाले, पौर्वात्य-पाश्चात्य दर्शनशास्त्रके विविध आयामोंका तलस्पर्शी वैदुष्य निर्वहन करनेवाले प्रिय सम्माननीय सागर-विश्वविद्यालयमें प्रधानाध्यापकके पदसे जुड़े कार्यभारमें रही अत्यधिक व्यस्तताके बावजूद श्रीअम्बिकादत्त शर्माजीने आमुख मेरे स्नेहपूर्ण दुराग्रहके वशीभूत हो कर लिखा है. तदर्थ उनका भी आभारी हूं.

यह सभी विद्यार्थिओंको ब्रह्मवादके तत्त्वानुसन्धानमें उपकारक हो पायेगा ऐसी शुभाशाके साथ.

गोस्वामी श्याम मनोहर

आमुख

पूज्य बाबाजी गोस्वामी श्याम मनोहरकी प्रेरणा और भगीरथ प्रयास से मुम्बई-विश्वविद्यालयमें 'वाल्लभ-वेदान्त पीठ' की स्थापना हुई. भारतीय विश्वविद्यालयोंमें जहाँ-जहाँ भारतकी शास्त्रीय ज्ञान परम्पराओंके लिए कम ही अवकाश है, वहाँ शुद्धाद्वैत और पुष्टिमार्ग के अध्ययन-अध्यापनके लिए नागरिक योगदानोंसे ऐसे किसी पीठ की स्थापना अपने-आपमें एक अत्यन्त ही सराहनीय पहल है. यह भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं कि वाल्लभवेदान्त पीठके माध्यमसे शुद्धाद्वैतवादी पुष्टिमार्गीय भक्तिवेदान्तमें रुचि रखनेवाले विद्यार्थियों, जिज्ञासुओं को पढानेका दायित्व भी पूज्य बाबाजीने अपने ऊपर लिया. शुद्धाद्वैत मतका दार्शनिक साहित्य और पुष्टिमार्ग का भक्ति साहित्य विपुल है और यह सब कुछ पूज्य बाबाजीको हस्तामलकवत् उपलब्ध है. अतः उनकी यह गहरी सूझ ही कही जायेगी कि उन्होंने 'नलकूबर-मणिग्रीवकृत स्तुति' का चयन किया ताकी श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध सुबोधिनीके इस छोटेसे प्रकरणको आधार बना कर विद्यार्थियोंको एवं जिज्ञासुओंको शुद्धाद्वैतवादकी तात्त्विकदृष्टि और पुष्टिमार्गीय भक्ति-साधना से सुपरिचित कराया जा सके. स्तुतिमें एक ओर सहज स्फूर्त भक्तिकी पराकाष्ठा है तो दूसरी ओर इसका पर्यवसान शुद्धाद्वैतकी तात्त्विक दृष्टिकी अतल गहराईयोंमें भी होता है. इसमें एक ऐसी परिस्थितिका निदर्शन सम्भव हुआ है जहाँ मानव-दशा ही 'भक्ति-प्रस्थान' बन जाती है. ज्ञान तथा वैराग्य दोनों ही उस भक्तिके राजपथपर पहुँचनेके दो सहायक मार्ग बन जातें है.

वास्तवमें यह ग्रन्थ किसी ग्रन्थ लिखनेके उद्देश्यसे नहीं लिखा गया है बल्कि पूज्य बाबाजी द्वारा पढ़ानेके दौरान किये गये व्याख्यानोंका संग्रह है. इसमें नलकूबर-मणिग्रीवकृत मूलस्तुति, महाप्रभु वल्लभाचार्यकी सुबोधिनी टीका और उसपर पूज्य बाबाजीका आधुनिक पदावलीमें

पौर्वात्य एवं पाश्चात्य विचारोंसे संवाद करता हुआ आलंकारिक व्याख्यान सम्मिलित है. पूज्य बाबाजीके आलंकारिक व्याख्यानकी अनुपम विशेषता यह है कि उन्होंने शुद्धाद्वैतकी तत्त्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा और भक्ति-साधना को समझानेके लिए वैसे उदाहरणों दृष्टान्तों और रूपकों का सहारा लिया है जो हमारे आधुनिक जीवनशैली और वैज्ञानिक दृष्टि के लोकजीवनसे सीधा-सीधा सम्बन्ध रखते हैं. आधुनिक मनमें भारत आध्यत्मिक और शास्त्रीय ज्ञान परम्पराको संक्रान्त करनेके लिये इस प्रकारकी 'पैडागोजी' को अपनाना बहुत आवश्यक हो गया है. पूज्य बाबाजीने इस पैडागोजीका अनुप्रयोग बहुत सफलतापूर्वक किया है. अन्यथा आधुनिकताकी वैज्ञानिक तर्कणासे घिरे मनको इतनी आसानीसे शुद्धाद्वैतवाद और पुष्टिभक्तिमार्ग के स्वारस्यको समझा पाना सम्भव नहीं होता.

नलकूबर-मणिग्रीवस्तुति आकारमें बहुत लघुकाय है और उसपर महाप्रभु वल्लभाचार्यकी सुबोधिनी टीका भी मूल रूपसे ग्यारह श्लोकोंमें निबद्ध की गई है. परन्तु पूज्य बाबाजीने इन दोनोंको आधार बना कर शुद्धाद्वैतवादकी सम्पूर्ण विचारधारा और उसकी सामाजिक-सांस्कृतिक प्रासंगिकता को आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिके बीच खड़ा कर उद्घाटित किया है. मानो आधुनिक विज्ञानकी सार्वभौमिक भौतिकवादी एकता शुद्धाद्वैतवादकी सार्वमौखिक एकात्मतामें अन्तर्भूत हो गई हो. इस स्तुतिका स्वारस्य ज्ञानमूलक भक्तितया वैराग्य और वैराग्यमूलक भक्तितया ज्ञानका निराकरण करते हुए भक्तिमूलक ज्ञान तथा वैराग्य की उपस्थापना है. भक्तिका उत्सर्जन तथा उन्मेष माहात्म्यबोधसे होता है. पुनः यह माहात्म्यबोध जिस महान सत्ता (ब्रह्म) के प्रति होता है, उसका आधिदैविक स्वरूप (अवतार) भक्तिका आलम्बन बनता है. इस आलम्बनसे स्फुरित भक्तिही उस महान सत्ताके आध्यात्मिक और आधिभौतिक स्वरूपोंका अवगाहन करती है. नलकूबर-मणिग्रीवकृत स्तुतिमें वस्तुतः यही फलित हुआ है. नारदके शापसे नलकूबर और मणिग्रीव नामक

दो यक्ष वृक्षयोनिमें स्थावर हो गये. यद्यपि नारदजीने उन्हे यह आश्वासन भी दिया था कि कृष्णावतारमें उनका उद्धार होगा. साथ हि साथ अपने पूर्वजन्मकी स्मृतियोंके सहकारपूर्वक उन्हे अपने उद्धारकी आत्मचेतना भी होगी. अब उलूखलसे बन्धा बालक जब उसे घसीटते हुए दोनों वृक्षोंको जड़से उखाड़ देता है तो नलकूबर और मणिग्रीव वृक्षयोनिसे उद्धार पा जाते हैं. उनके सामने जड़से उखड़े हुए दो विशालकाय वृक्ष हैं और उनको उखाड़नेवाला उलूखलसे बन्धा हुआ एक विवश बालक है. एक साधारण जनके लिये यह अविश्वसनीय और चकित करनेवाली घटना हो सकती है. लेकिन नलकूबर और मणिग्रीव को अपने उद्धारकी आत्मचेतना है, अतः उन्हें अनादि-अनन्त विरुद्धधर्माश्रियी ब्रह्म तत्त्व के आधिदैविक स्वरूप (पुरुषोत्तम कृष्ण) का साक्षात्कार उलूखलसे बन्धे बालकके रूपमें होता है. अब यहां नलकूबर और मणिग्रीव के प्रत्यक्षका विषय उलूखलसे बन्धा एक बालक है लेकिन माहात्म्यबोध उसका पुरुषोत्तम कृष्णके रूपमें है. यदि ऐसा माहात्म्यबोध स्फुरित न हो तो उसके आध्यात्मिक स्वरूप और आधिभौतिक स्वरूप के अवगाहनमें प्रवृत्ति ही नहीं होगी. अतः माहात्म्यबोधके चलते सर्वप्रथम भक्तिका स्फुरण होता है और स्फुरित भक्तिके बलपर उस तत्त्वके आध्यत्मिक और आधिभौतिक स्वरूपोंका अवगाहन सम्भव हो पाता है. इस अवगाहनकी आध्यात्मिक दिशा ज्ञानोन्मुखी और आधिभौतिक दिशा अन्ततः वैराग्य में फलित होती है. नलकूबर-मणिग्रीवकृत स्तुतिका स्वारस्य यही भक्तिमूलक ज्ञान और वैराग्य है. इस स्तुतिपर महाप्रभु वल्लभाचार्यकी सुबोधिनी टीकाका यही निर्णित पक्ष है. वैराग्यजन्य ज्ञान और भक्ति; तथा, ज्ञानजन्य भक्ति और वैराग्य, इस निर्णयके दो पूर्वपक्ष हैं और भक्तिजन्य ज्ञान और वैराग्य उसका उत्तरपक्ष है. पूज्य बाबाजीने भक्ति-ज्ञान-वैराग्य त्रिकके त्रैविध्यका बहुत सुन्दर निरूपण स्वरचित श्लोकोमें किया है. ये श्लोक इस ग्रन्थमें नहीं आ पाये है. अतः इस आमुखका उपसंहार इन्ही श्लोकोके साथ करना समीचीन होगा.

भक्तिज्ञानवैराग्यत्रिकत्रैविध्यनिरूपणम्

स्वात्मनः स्वात्मनाऽविद्याविद्यापुष्ट्यादिशक्तिभिः ॥
रममाणं परं ब्रह्म श्रीकृष्णाख्यं नुमो मुदा॥१॥

(वैराग्यजन्ये ज्ञानभक्ती)

अविद्यया रिरंसुश्चेत् स्वलीलादोषदृष्टितः ॥
विषयासक्त्या विरक्त्या वा जीवं सम्मोहयेत् सदा॥२॥
इत्थंभूते ज्ञानभक्ती भवेतां स्वान्यगोचरे॥

(ज्ञानजन्ये भक्तिवैराग्ये)

विद्ययातु रिरंसायां सर्वब्रह्मात्मतामतेः ॥३॥
भक्तिं ज्ञानोपायरूपां कृत्वात्मैक्यस्वरूपगाम् ॥
नामरूपाश्रयं ब्रह्म लीलाद्वैतविवर्जितम् ॥४॥
ज्ञानमूलकवैराग्यं दत्वा मुक्तिं ददात्यसौ॥

(भक्तिजन्ये ज्ञानवैराग्ये)

पुष्टिशक्त्या रिरंसुश्चेत् तदा लीलास्वरूपयोः ॥५॥
माहात्म्यज्ञानसुदृढां रतिं स जनयेत् पराम् ॥
भक्तिसञ्जातयोस्तत्र ज्ञानवैराग्ययोस्सदा ॥६॥
ब्रह्मतल्लीलयोः ज्ञानरती स्यातां दृढे परे॥
श्रीभागवतमाहात्म्ये वर्णितं चैतदेव हि॥७॥
गीतासूत्रभाष्यरूपाद् भगवन्नामकात् पुनः ॥
श्रीमद्भागवताद् भक्तिः परा तस्मिन् प्रजायते ॥८॥

(उपसंहार)

सैषा भक्तिः पुष्टिभक्तिः साक्षाच्छ्रीपुरुषोत्तमे॥

ज्येष्ठात्मजोऽक्षरज्ञानं वैराग्यमनुजो मतः॥९॥
तदात्मके नामरूपे स्यातां नो भक्तये यदि॥
तादृशोः भक्तवैराग्यं न भक्तौ दोषभाङ् मतम्॥१०॥
श्रीभागवतमाहात्म्ये एतदेवानुकीर्तितम्॥
भक्तेस्तरुण्याः द्वौ पुत्रौ स्वस्थौ भागवतान्मतौ॥११॥
एवमुक्तत्रिकस्यात्र त्रैविध्यं वर्णितं मया॥
वाल्लभेन पथादिष्टरीत्या बोधाय स्वस्य हि॥१२॥

इति गोस्वामिश्रीदीक्षितात्मजेन श्याममनोहरेण विरचितम्
भक्तिज्ञानवैराग्यत्रिकत्रैविध्यनिरूपणं सम्पूर्णम्

अम्बिकादत्त शर्मा
(९।९।२०२०)
दर्शन-संकाय-अध्यक्ष
श्रीहरिसिंग वि.वि.सागर

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठक्रम
श्रीमद्भागवतदशमसुबोधिनी नलकूबरमणिग्रीवकृतस्तुति...	१-१६
स्तुतिकी पृष्ठभूमि...	१७
सुबोधिनीकारिका-१...	२४-३४
सुबोधिनीकारिका-२...	३४-३७
सुबोधिनीकारिका-३...	३७-५६
सुबोधिनीकारिका-४...	५६-५८
सुबोधिनीकारिका-५...	५८-६०
सुबोधिनीकारिका-६...	६०-७३
सुबोधिनीकारिका-७...	७४-७६
सुबोधिनीकारिका-८-९...	७६-८५
सुबोधिनीकारिका-१०...	८५-८७
सुबोधिनीकारिका-११...	८७-८९
प्रश्नोत्तर...	८९
कॅटेगोरिकल् कॅरेक्टर् या वस्तुगत गुण...	९३
रिलेटिव् कॅरेक्टर् या सापेक्ष गुण...	९३
यूटिलिटेरियन् कॅरेक्टर् या व्यावहारिक गुण...	९४
कॉरस्पॉन्डिग् थियोरी...	९५
कोहियरन्स् थियोरी...	९५
यूटिलिटेरियन् थियोरी...	९६
कन्डीशनल् कॅरेक्टर् या औपाधिक गुण...	९९
भ्रमात्मक इल्युज़नरी कॅरेक्टर् या मिथ्या गुण...	१००
सॅन्टीमॅन्टल् कॅरेक्टर् या भावात्मक गुण...	१००
प्रश्नोत्तर...	१०६-११२
ज्ञानके विभिन्न सिद्धान्त...	११२
१.ज्ञानका स्वरूप : निष्क्रिय दर्पण और प्रतिबिंब...	११२

२.आत्म-प्रत्यावर्तन और अन्य-प्रतिबिंबक... ११३
३.स्व-परप्रकाशता... ११४
प्रकृति-पुरुषकी उत्पत्ति... ११६
ज्ञानके लेवल्... ११७
प्रकृति-पुरुषकी देशिक-कालिक मर्यादा... ११९
महत् तत्त्वकी उत्पत्ति... ११९
ज्ञानकी सक्रियता... १२१
रिचर्ड डॉकिन्के पूर्वपक्षमें भगवान्के अस्तित्वका अस्वीकार... १२३
महाप्रभुजीका दृष्टिकोण भगवान्के अस्तित्वके बारेमें... १२६
प्रश्नोत्तर... १३३
ज्ञान-क्रियाका सैद्धान्तिक निष्कर्ष... १३४
श्लोक-१, मूलश्लोक-२९, कृष्णकी सर्वरूपता... १३४-१६२
आद्यः पुरुषः परः = सच्चिदानन्द... १३९
'पुरुषोत्तम' प्रकृति-पुरुषसे पर... १४२
औपनिषदिक पुरुषोत्तमत्व... १४३
भगवद्गीतोक्त पुरुषोत्तमत्व... १४५
श्रीशंकराचार्यका "'न'इति"का अर्थ... १४६
महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यका "'न'इति"का अर्थ... १४९
श्लोक-२, मूलश्लोक-३०, आधिदैविक प्रकारसे भी कृष्णकी सर्वरूपता... १६२-१८०
श्लोक-३, मूलश्लोक-३१, आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक पहलुओंमें सर्वरूपता... १८०-१९८
प्रश्नोत्तर... १९४
श्लोक-४,मूलश्लोक-३१, कृष्णकी प्रत्यक्षग्राह्यताका निराकरण... १९८-२१७
सिंहावलोकन मूलश्लोक २९-३२... २१७-२३८
श्लोक-५, मूलश्लोक ३३, ऐसी स्थितिमें छुटकारा कैसे होगा?... २३९-२७४

प्रश्नोत्तर...	२६१
श्लोक-६, मूलश्लोक-३४, भगवदवतारोंके बहिःदर्शनका प्रकार...	२७५-२९१
प्रश्नोत्तर...	२८२
प्रश्नोत्तर...	२९१
श्लोक-७, मूलश्लोक-३५, भक्तिस्थापनके लिए भगवत्प्राकट्य...	२९५-३१२
प्रश्नोत्तर...	३१२-३१५
श्लोक-८, मूलश्लोक-३६, प्रार्थना...	३१५-३२६
प्रश्नोत्तर...	३२६
श्लोक-९, मूलश्लोक-३७, बिदा मांगनेकी प्रार्थना...	३४०-३६०
श्लोक-१०, मूलश्लोक-३८, जहां भी हम जायें वहां हमारी आपके प्रति भक्ति निभती रहे ऐसी प्रार्थना...	३६०-३६९
सर्वब्रह्मतादात्म्यवाद...	३७०-३८७
उद्धृतवचनानुक्रमणिका...	३८८-३९१

।। श्रीमद्भागवतदशमसुबोधिनी ।।

।। नलकूबरमणिग्रीवकृतस्तुति ।।

(निरोधलीलान्तर्गत तामसप्रकरणके अवान्तर प्रमाणप्रकरणमें वैराग्यगुणलीलापरक दसवां अध्याय)

(अध्यायार्थ)

(सुबोधिनीकारिकाः)

दशभिः प्राणभृच्छ्लोकैः चक्रतुः स्तोत्रम् उत्तमम् ।।
ज्ञानवैराग्ययोर् अत्र निर्णयः समुदीरितः ।।१।।
मूलरूपो भवान् पूर्वं जगद्रूपस् तथैव च ।।
मध्यरूपः इति त्रेधा ज्ञानरूपो निरूपितः ।।२।।
माहात्म्यज्ञापनार्थाय दुर्ज्ञेयत्वं च वर्णितम् ।।
सर्वरूपोऽपि सर्वस्मिन् गृह्यमाणैर् न गृह्यते ।।३।।
आध्यात्मिकस् ततो न अयं भौतिकोऽपि ततो नहि ।।
दैविकत्वेन सर्वः स्याद् द्वयं तस्मात् च जायते ।।४।।
अतः सर्वत्वकर्तृत्वे ज्ञानभक्ती फलिष्यतः ।।
अतो ज्ञानं निरूप्य आदौ भक्तिम् आहतुर् उत्तमाम् ।।५।।
अनेनैव च वैराग्यं ज्ञानाजनकता यदि ।।
तदा सर्वं परित्याज्यम् अन्यथा स्याद् विनाशनम् ।।६।।

अनुवाद :

दशविध प्राणोंकी संख्याके जैसे इन दस श्लोकोंमें उत्तम प्रकारसे नलकूबर और मणिग्रीव दोनोंने भगवान्‌की स्तुति की ।।

यहां ज्ञान और वैराग्य के बारेमें निर्णय मिल रहा है ।।१।।

पहेले मूलरूप भगवान्‌का ज्ञान बादमें जगद्रूप भगवान्‌का ज्ञान ।।

ऐसे ही मध्यरूप भगवान्‌का भी ज्ञान यों तीनों प्रकारसे नलकूबर-मणिग्रीवको भगवान्‌का ज्ञान हो गया ऐसा वर्णन अभिप्रेत है ।।२।।

तीन प्रकारसे ज्ञान हो जानेपर भी पूर्णतया भगवान्को जान पाना कठिन होनेसे भगवान्की दुर्ज्ञेयता दरसाने उनका माहात्म्य भी यहां वर्णित हुवा है।।

खुद भगवान्ने ही इस जगत्में सभी रूप धारण किये हैं तो भी उन सभी रूपोंमें अनुभूत होनेपरभी भगवान् खुद अनुभूत होते नहीं हैं।।३।।

यह सिर्फ आध्यात्मिक या आधिभौतिक रूपोंमें भगवान्को देखनेसे शक्य नहीं बन पाता।।

किन्तु आधिदैविक रूपमें भी भगवान्के दिखलायी देनेपर उपपन्न हो सकता है. भगवान्के ऐसे आधिदैविक स्वरूपमेंसे ही आध्यात्मिक और आधिभौतिक दोनों स्वरूप प्रकट होते हैं।।४।।

अतः भगवान्का सर्वरूप तथा सर्वकर्ता होना, उपपन्न हो जाता है. एतावता अन्तमें ज्ञान और भक्ति फलित हो जाती हैं।।

इसी कारणसे पहेले ज्ञानका निरूपण करनेके बाद अन्तमें उत्तम प्रकारकी भक्तिका वर्णन किया गया है।।५।।

वैराग्य भी अन्तमें तो इन ज्ञान और भक्ति के कारण सिद्ध हो जाता ही होनेसे विषयवैराग्य विषयोंकी भगवदात्मकताके ज्ञानरूपमें यदि फलित न हो पाता हो तो।।

विषयोंका त्याग न करनेपर तो भगवद्भावका सर्वथा विनाश हो जाता है।।६।।

कारिका :

भक्तिसिद्ध्यैतु यज् ज्ञानं श्लोके षष्ठे निरूप्यते।।
अन्यथाभावशंकायाः व्यावृत्त्यर्थं भवान् परः।।७।।
भगवन्तं नमस्कृत्य गमनप्रार्थना कृता।।
तद् अयुक्तं भक्तिमतामिति भक्तिस्तु षड्गुणा।।८।।
भक्तेः सहैव सा कार्या परोक्षेणैव सिध्यति।।
गुप्तो रसस् तदा उद्बुद्धो रसतां याति न अन्यथा।।९।।

गुणप्रधानभावत्वम् एकत्र हि विरुध्यते।।
अतो अत्र भगवान् लीला स्वयं कर्तुं समुद्यतः ।।१०।।
स्वस्यैव रसभोगार्थं परार्थं वा इति अनिर्णयः।।
ताभ्यां विमोचनं नैव शक्यं पक्षद्वयेऽपि हि।।११।।

<u>अनुवाद</u> :

अतः भक्तिकी सिद्धिलिये जैसे ज्ञानकी अपेक्षा होती है उनके वैसे स्वरूपका निरूपण छट्ठे श्लोकमें किया गया है।।

नलकूबर-मणिग्रीवमें दूसरा कोई अन्यथाभाव तो कहीं नहीं था ऐसी शंका दूर करने।।७।।

उन्होंने भगवान्को नमस्कार करके जानेकी आज्ञा मांगी ऐसा वर्णन किया गया है।।

भगवान्को उलूखलमें बंधा हुवा छोड़ कर खुदके बारेमें वहांसे विदा हो जानेकी आज्ञा मांगनी किसी भी भक्तके लिये कैसे योग्य मानी जा सकती है! अतः भक्तिके छह गुण सूचित किये गये हैं।।८।।

भक्ति तो भक्तोंके साथ हिलमिल कर करनेकी होती है. अतः भगवान्की संनिधिमें भी या परोक्षमें भी कहीं भी की जा सकती है।।

भक्तिका गुप्त रस तो तभी उद्‌बुद्ध हो कर स्वयंकी रसरूपता प्रकट कर सकता है. दूसरी कोई रीत नहीं है।।९।।

इस अध्यायमें वर्णित लीलामें स्वयंकी भक्तवश्यता प्रकट करने भगवान् स्वयंकी इच्छासे उलूखलमें बंध कर भक्तिका आनंद प्रदान कर खुदकी गौणता प्रकट करना चाहते हैं; अथवा तो खुदकी ऐसी लीलामें प्रमुख बनके खुद उस भक्तिरसका आनंद लेना चाहते हैं? यह नलकूबर और मणिग्रीव भलीभांति निर्धारित नहीं कर पाये अतः ।।१०।।

इस बारेमें किसी तरहका निर्णय इस स्तुतिमें दिया नहीं गया है. अतः दोनों पक्षोंमें कोई एक पक्ष स्पष्ट न था अतः वे भगवान्को

उलूखलके बन्धनसे छुड़ानेकी हिम्मत नहीं जुटा पाये॥११॥

उत्थानिका :

पूर्वस्मृतिः सन्दिग्धेति तन्निर्णयार्थं भगवान् आगतः इति उक्तम्. सा स्मृतिः सर्वलोकप्रसिद्धा भवतु इति कृष्णस्वरूपं ज्ञातं निरूपयतः, "ज्ञानी प्रियतमो अतो मे" (भाग.पुरा.११।१९।३) इति वाक्यात्. अन्यथा सर्वैव स्तुतिः विरुध्यते.

(कृष्णकी सर्वरूपता)

अवतरणिका :

तत्र प्रथमं पुरुषोत्तमो भवान् इति आहतुः :

श्लोक :

॥ नलकूबरमणिग्रीवौ ऊचतुः ॥

कृष्ण! कृष्ण! महायोगिन्! त्वम् आद्यः पुरुषः परः ॥
व्यक्ताव्यक्तम् इदं विश्वं रूपं ते ब्रह्मणो विदुः॥२९॥

अनुवाद :

॥ नलकूबर-मणिग्रीव बोले॥

ओ कृष्ण! ओ कृष्ण! ओ महायोगी! आप आद्य परम पुरुष हो॥

ओ विश्वरूप ब्रह्म! जगत्में अनुभूत होते व्यक्त या अव्यक्त दोनों रूपोंको धारण करनेवाले आप ही हो॥२९॥

सुबोधिनी :

कृष्ण! कृष्ण! इति, आदरे वीप्सा. कृष्णः सदानन्दः, सएव कृष्णनामा च. उभयविधाज्ञाननिवृत्त्यर्थं वा तथा उक्तम्. आकृत्या चेष्टया च न आवयोः भ्रमः इति आहतुः महायोगिन् इति. लौकिकाअपि

नानायोगचर्यायां प्रवृत्ताः हीनभावं न प्राप्नुवन्ति, कुतः पुनः निर्दोषपूर्णगुणविग्रहः? अतो नामरूपे वर्णनीये अर्थे न बाधके. आद्यः इति, मूलभूतत्वमेव महत्त्वं, सर्वैः हि स्वापेक्षया महत्त्वं ज्ञातव्यम् आद्यस्तु तथा. आद्यत्वं मतान्तरे अचेतनस्यापि सम्भवतीति तद्व्यावृत्त्यर्थम् आह पुरुषः इति. सांख्यतुल्यताम् आशंक्य आहतुः परः इति पुरुषोत्तमः इति अर्थः. निराकारपक्षनिवृत्त्यर्थं 'पुरुष'पदं, तस्मिन् पक्षे अयं विकृतो भवेदेव. परः कालादीनामपि नियन्ता.

सुबोधिनी :

एवं भगवतो मूलरूपत्वं निरूप्य कार्यरूपाभावे मूलरूपत्वं न उपपद्यतइति कार्यस्य च अन्यथात्वे तस्य गौणत्वम् अविकृतत्वम् असंगित्वं च विरुध्यतइति कार्यरूपमपि त्वमेव इति आहतुः व्यक्ताव्यक्तम् इदम् इति. इदं सर्वमेव जगद् द्विरूपमेव भवति. कालेन अपरिगृहीतम् अव्यक्तं भवति. परिगृहीतं व्यक्तं भवति. आकाशपरमाण्वादीनामपि व्यक्तता इति केचित्. तदा सर्वमेव जगत् कालादितृणस्तम्बान्तं व्यक्तम् अव्यक्तं च भवति. अवयुत्या अनुवादो वा. उभयथापि इदं जगत् तवैव रूपम्. अत्र प्रमाणम् आहतुः ब्रह्मणो विदुः इति, ब्रह्मणो वेदाद्, ब्राह्मणाः इति वा. ते ब्रह्मणः इति वा. तदा सर्वाएव श्रुतयः प्रमाणम् इति उक्तं भवति. रूपम् इति स्वरूपं निरूपकं वा.

(आधिदैविक प्रकारसे भी कृष्णकी सर्वरूपता)

अवतरणिका :

एवं सर्वरूपत्वं भगवतो निरूप्य आधिदैविकप्रकारेणापि सर्वरूपत्वम् आहतुः :

श्लोक :

त्वम् एकः सर्वभूतानां देहास्वात्मेन्द्रियेश्वरः ।।
त्वमेव कालो भगवान् विष्णुर् अव्ययः ईश्वरः ।।३०।।

अनुवाद :

आप अकेले ही सभी प्राणिओंके देह निजात्मा इन्द्रिय और उनके ईश्वर भी हो।।

आप ही काल भगवान् विष्णु अव्यय ईश्वर भी हो।।३०।।

सुबोधिनी :

त्वम् एकः इति, तत्तदाधिदैविकानां भेदो भविष्यति इति आशंक्य आहतुः एकः इति. देवादीनाम् उत्तमत्वात् तदाधिदैविकत्वम् अस्तु, कृमिकीटाधिदैविकत्वन्तु न भविष्यति इति आशंक्य आहतुः सर्वभूतानाम् इति. आब्रह्मतृणस्तम्बान्तजातिभेदानां देहाः असवः प्राणाः आत्मा अन्तःकरणम् इन्द्रियाणि ईश्वरो जीवः, स्वात्मा जीवो वा. 'इन्द्रिय'पदेन प्राणाः इन्द्रियाणि अन्तःकरणं च. ईश्वरः अन्तर्यामी, आधिभौतिकादीनाम् ईश्वरो वा, देहद्वयसहितजीवस्य वा.

सुबोधिनी :

नियामकत्वपक्षे भिन्नतया कालादीनामपि तथात्वम् इति कालादिरूपताम् आहतुः त्वमेव कालः इति. कालो भगवच्चेष्टा इति केचिद्, वस्तुतस्तु त्वमेव कालः. तत्र हेतुम् आहतुः भगवान् इति. ऐश्वर्यं सर्वस्यापि कालकृतमेवेति कालएव ईश्वरः; तथा बलमपि; तारुण्यएव बलं, तपोयोगादिभिरपि कालपुष्टैरेव बलं सिध्यति. यशोऽपि कालएव, नहि सर्वदा कस्यचिद् यशो भवति. एवम् अन्येऽपि गुणाः, कालान्वयव्यतिरेकात्. कालएव षड्गुणहेतुरिति गम्यते. ननु कालस्तु विष्ण्वात्मको, योहि व्यापको भवति स कलयति, नहि यो यं व्याप्तुं न शक्नोति स कलयति, अतो विष्णुरेव कालो न अन्यः इति आशंक्य आहतुः विष्णुः इति. त्वमेव विष्णुः आधिदैविकः कालो, यज्ञरूपो वा, पालको वा सत्त्वात्मकः. तस्य भिन्नत्वे भगवतः तदधीनत्वं स्यात्. अव्ययो अक्षरमपि त्वमेव, अन्यथा भगवतः समवायित्वं न स्यात्. अक्षरमेव हि समवायिकारणं,

प्रकृतिपुरुषोपादानत्वात्. ''सर्वं समाप्नोषि ततो असि सर्वः'' (भग.गीता ११-४०) इति सर्वत्वम् अन्यथापि उपपद्यते. वस्तुनः परिच्छेदकत्वं न सर्ववादिसम्प्रतिपन्नम्. अतो अक्षरो भगवानेव ईश्वररूपमपि अन्तर्यामीरूपं भिन्नरूपं वा अधिकारित्वेन निर्दिष्टं, यस्य असाधारणो धर्मः ऐश्वर्यं भवति.

(आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक पहलुओंमें सर्वरूपता)

अवतरणिका :

एवम् आधिदैविककालादिरूपत्वं निरूप्य आध्यात्मिकत्वम् आधिभौतिकत्वं च निरूपयितुं मध्यमभावं निरूपयति :

श्लोक :

त्वं महान् प्रकृतिः सूक्ष्मा रजःसत्त्वतमोमयी ।।
त्वमेव पुरुषो अध्यक्षः सर्वक्षेत्रविकारवित् ।।३१।।

अनुवाद :

आप महत् तत्त्व, रजोगुण सत्त्वगुण और तमोगुण रूपा सूक्ष्मा प्रकृति भी आप ही हो।।

सभी क्षेत्रोंके ज्ञाता और अध्यक्ष ऐसे पुरुष भी आप ही हो।।३१।।

सुबोधिनी :

त्वं महान् इति, सर्वस्यापि जगतो अंकुरभूतो महान्. तस्यापि क्षेत्ररूपं प्रकृतिः. तस्याअपि कार्योत्पत्तिसाधारणरूपं योनिवद् या प्रकृतिः सा सूक्ष्मा. तस्याअपि मूलभूता गुणाः, तन्मयी आधिदैविकी प्रकृतिः गुणाः च त्वमेव. एवं पञ्चरूपत्वम् उक्तम्. एवं योनिरूपत्वम् उक्त्वा बीजरूपत्वम् आहतुः त्वमेव पुरुषः इति, तस्याः प्रकृतेः पुरुषः तस्याः तावत्त्वसम्पादकः. अध्यक्षः साक्षी, साक्षिरूपं भिन्नम् इति सिद्धान्तः.

क्षेत्रज्ञः च तथा क्षेत्राभिमानी जीवः, सोऽपि क्षेत्रज्ञो भवति; क्षेत्रं जानातीति व्युत्पत्त्या यः क्षेत्रज्ञः स मुख्यो भवान्. एतावता यत्रैव प्रमाणप्रवृत्तिः केनापि प्रकारेण तदेव भवान् इति उक्तम् भवति.

(कृष्णकी प्रत्यक्षग्राह्यताका निराकरण)

अवतरणिका :

तत् प्रमाणं श्रुतिरेव, नतु प्रत्यक्षमिति अलौकिकत्वसम्पादनार्थं भगवतः प्रत्यक्षग्राह्यत्वं निराकरोति :

श्लोक :

गृह्यमाणैस् त्वम् अग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर् गुणैः ।।
कोनु इह अर्हति विज्ञातुं प्राक् सिद्धं गुणसंवृतः ।।३२।।

अनुवाद :

प्रकृतिके विकारोंके गुण जो प्रत्यक्षग्राह्य होते हैं उनके प्रत्यक्षमें भगवान् खुद गृहीत या अनुभूत होते नहीं हैं।।

अतः ऐसे प्राकृत गुणोंसे ढंके हुवे और उन प्राकृत गुणोंसे पूर्वसिद्ध भगवान्‌को कहो कि कौन भलीभांति जान सकता है? ।।३२।।

सुबोधिनी :

गृह्यमाणैः इति, गृह्यमाणैः घटपटादिभिः कृत्वा त्वम् अग्राह्यः तद्रूपोऽपि तैः गृहीतैः न गृहीतो भवसि. नवा तैः सह, तेषां धर्माणां त्वदाश्रयाणां धर्म्याश्रयसहभाननियमात्. तत्र हेतुः विकारैः इति, विकारे हि प्रकृतिः न प्रतीयते, यथा सन्निपाते. तत्र प्राकृतः तिरोभवति. स्वप्रकाशमेव हि जडैः सह भासते यथा ज्ञानं विषयैः, तथा भगवानपि विषयान् प्रकाशयन् विषयैः सह कुतो न भासते इति चेत् तत्र आहुः प्राकृतैः

इति, प्रकृतिर्हि जडा पुरुषाच्छादिका, प्रकृतौ प्रविष्टं पुरुषं न प्रकाशयति. तथा प्राकृतैरपि तत्र स्थितो भगवान् आच्छाद्यतइति न भगवान् गृह्यते. ज्ञानन्तु अन्यनिष्ठम्. ननु पुरुषो भगवान् प्रकृतिं स्त्रियम् उपमर्द्य कथं न प्रकाशते इति आशंक्य आहतुः गुणैः इति, गुणाहि बन्धकाः रञ्जकाः च. अतः प्रकृतौ प्रविष्टः तद्गुणानुरक्तः तद्गुणैः वशीक्रियते इति तैः सह न प्रकाशते.

सुबोधिनी :

ननु गुणाः साम्प्रतमेव जाताः, भगवांस्तु मूलभूतइति गुणक्षोभात् पूर्वमेव ज्ञात्वा उत्तरत्रापि तदनुवृत्तिः कथं न क्रियते? इति आशंक्य तत् परिहरन्तौ भगवान् तथैव करोति इत्यत्र हेतुं वदन्तौ तादृशस्य भक्तिमार्गप्रवर्तकत्वम् आहतुः को नु इह अर्हति इति. इह अस्मिन् संसारे, नु इति वितर्के; पश्चाद् उद्भूतः को वा प्राक् सिद्धं गुणक्षोभात् पूर्वस्थितं विज्ञातुम् इदमित्थतया द्रष्टुम् अर्हति! अपितु न कोऽपि. ननु अयमपि आत्मत्वाद् न इदानीं सिद्धः कुतो न अर्हति? इति चेत् तत्र आहतुः गुणसंवृतः इति, गुणैः वेष्टितः. गुणाहि पूर्वबुद्धिं दूरीकृत्य स्वरूपमपि आवृतवन्तः, अतो ज्ञातृज्ञेययोः आवरणाद् न ज्ञानं सम्भवति.

(ऐसी स्थितिमें छुटकारा कैसे होगा?)

अवतरणिका :

तर्हि कथं निस्तारः? इति चेत् तत्र आहतुः :

श्लोक :

तस्मै तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे।
आत्मद्योतैः गुणैश् छन्नमहिम्ने धीमहि नमः ॥३३॥

अनुवाद :

सभीके विधाता ऐसे आप भगवान् वासुदेवको ॥

जो खुदके कारण अनुभूत होते गुणोंसे अपनी महिमाको ढंकनेवाला ब्रह्म हो उसे नमस्कार! ॥३३॥

सुबोधिनी :

तस्मै तुभ्यम् इति, केवलं तस्मै सर्वदुर्ज्ञेयाय तुभ्यं नानाविनोदयुक्ताय नमः. ननु "तमेव विदित्वा अतिमृत्युम् एति" (श्वेता.उप.३।८) इति श्रुतेः कथं भगवदज्ञाने निस्तारः? इति चेत् तत्र आहतुः भगवते इति, भगवज्ज्ञानगुणेन भगवज्ज्ञानम्. अज्ञातोऽपि प्रमेयबलेन निस्तारयतीति भक्तिः तत्र प्रयोजिका. "यस्य अमतं तस्य मतं, मतं यस्य न वेद सो, अविज्ञातं विजानतां विज्ञातम् अविजानताम्" (केनोप.२।३) इति श्रुत्या अज्ञातएव ज्ञातो भवति. अतो भगवान् ईश्वरः केन ज्ञातुं शक्यः! किञ्च प्रमाणबलेन अज्ञातोऽपि स्वतो ज्ञातुं शक्यो, यतो अयं वासुदेवः वसुदेवे शुद्धे सत्त्वे आविर्भवतीति. आविर्भूतस्तु सर्वैरेव ज्ञातुं शक्यः. ननु एतदेव सर्वं कुतो भवेत्—साधनपरता साधनोत्पत्तिः सत्त्वशुद्धेः आविर्भावः इति? तत्र आहतुः वेधसः इति, सहि सर्वं विदधाति, अन्यथा तेन कृतः तन्मार्गो व्यर्थः स्यात्. धीमहि नमः इति वा. हृदये प्रत्यक्षे भगवति तत्पादयोः शिरः स्थापयित्वा मनसा यत् नमनं तत् सोपस्करं धीमहि इति अर्थः.

सुबोधिनी :

अतः अन्तःकरणप्रत्यक्षएव भगवान् न बहिःप्रत्यक्षविषयः. तर्हि बहिः न अस्ति इत्येव मन्तव्यं, तत्र आहतुः आत्मद्योतैः गुणैः छन्नमहिम्ने इति, आत्मना स्वेनैव द्योतो येषाम्. गुणाअपि भगवतैव प्रकाश्यन्ते यथा सूर्येण मेघाः. तएव तस्य आवरकाः भवन्ति. नहि गाढान्धकारे निशायां मेघाः दृश्यन्ते. एवं सर्वैरेव विषयैः आत्मनैव प्रकाशितैः छन्नो महिमा यस्य. अतो न प्रकाशते, वस्तुतस्तु वर्ततएव सर्वत्र. अन्तर्बहिःस्थितौ हेतुम् आहतुः ब्रह्मणः इति, "बृहत्त्वाद् बृंहणत्वाद् ब्रह्म" (द्र.वि.पु.१।१२।-५५); अतः सर्वत्रैव वर्तसे परम् अन्तरेव प्रकाशसे न बहिः इति.

(भगवदवतारोंके बहि:दर्शनका प्रकार)

अवतरणिका :

तर्हि कथम् अवताराद् बहिः प्रकाशरूपो भगवान् भवति? इति तत्र आहतुः :

श्लोक :

यस्य अवताराः ज्ञायन्ते शरीरेषु अशरीरिणः ॥
तैस्तैर् अतुल्यातिशयैः वीर्यैः देहिषु असंगतैः ॥३४॥

अनुवाद :

अशरीरी भगवान्के अवतार जो शरीरोंके साथ अनुभूत होते हैं॥
वे किसी भी देहधारीके साथ संगत न होते ऐसे अतुलनीय निरतिशय सामर्थ्यवाले होते हैं॥३४॥

सुबोधिनी :

यस्य अवताराः इति, मत्स्यादिषु शरीरेषु क्वचिदेव मत्स्यविशेषे अलौकिकभावो दृश्यते. सच न जीवधर्मो भवति इति अशरीरिणः तव तेषु अवताराः इति ज्ञायन्ते. अशरीरिणः इति वचनात् शरीराकृतिरेव तत्र प्रकाशते नतु तच्छरीरम्, अन्यथा वृद्धिः न उपपद्यते. सामर्थ्यं परम् अधिकं भवेत्. तस्मात् शरीराकारेण भासमानं भगवद्रूपमेव इति. न तुल्यम् अतिशयो वा यस्य यस्माद् अन्यत्र तद् अतुल्यातिशयम्. कालापेक्षया न अन्यस्य वीर्यम् अस्ति. कालमर्यादां चेद् उल्लंघति तदा भगवद्वीर्यम् अतुल्यातिशयम् इति ज्ञायते. सोऽपि न एकविधः पराक्रमः, क्षणेन विश्वरूपो भवति, क्षणेन वामनो, दृश्यश्च अदृश्यश्च, बहिरन्तः परिच्छेदो व्यापकश्च; अतो ज्ञायते सर्वेष्वेव देहिषु असंगतैः कदापि असम्बद्धैः भगवानेव अयम् इति. नतु प्रत्यक्षतया भगवान् इति निश्चेतुं शक्यते इति अर्थः. तत्रापि कदाचित् चेद् अलौकिकं भवति कल्प्येतापि कथञ्चिद् जातम् इति,

सर्वदा चेद् अवाङ्मनोगोचराः अनुभावाः तदा कथं न ज्ञायेत्? तद् आहतुः तैस्तैः इति. एवम् अवतारेषु भगवज्ज्ञानम् आनुमानिकं न प्रत्यक्षम् इति उक्तम्.

(भक्तिस्थापनके लिए भगवत्प्राकट्य)

अवतरणिका :

प्रकृतेतु शब्दादेव नारदकृपया वा भगवान् एतदर्थम् आगतः इति ज्ञायते इति आहतुः :

श्लोक :

स भवान् सर्वलोकस्य भवाय विभवाय च।।
अवतीर्णो अंशभागेन साम्प्रतं पतिः आशिषाम्।।३५।।

अनुवाद :

आप सभी लोगोंके भव और वैभव के वास्ते।।
आशिषोंको पूर्ण करनेवाले पति हो और अपने
सभी अंशोंके साथ अवतीर्ण हुवे हो।।३५।।

सुबोधिनी :

स भवान् इति, यः पूर्वोक्तः सर्वप्रमाणवेद्यो लौकिकैः अवेद्यो अन्तःकरणप्रत्यक्षो अवतारी चतूरूपो भवान्. अतएव सर्वस्यैव लोकस्य भवाय उद्‌भवाय ऐश्वर्याय च अंशेन भागेन च साम्प्रतम् अवतीर्णः, यतो भवान् आशिषां पतिः. स्वरूपतो भवान् चतूरूपो विवृतः. प्रकारेण ततोऽपि अधिकास्तु अत्र गुणाः. सर्वएव लोकाः उत्पादनीयाः. ततः तेभ्यः स्वसमानैश्वर्यादिकं च देयम्. भगवति अंशतः समागते सर्वे भगवदीयाः शुद्धसत्त्वांशेनैव आविर्भवन्ति भगवत्सेवौपयिकदासरूपांशेन वा. "सर्वे लोकाः स्वदासभावेन आविर्भवन्तु!" इति इच्छया भगवान् एकदेशभावं प्रकाशितवान्, समुदाये ग्रहणभजनाद्यनुपपत्तेः, नहि प्रलयाग्निः सेवितुं शक्यते. किञ्च

भागा: कला:, कलया अवतीर्ण:. सर्वेषां सर्वकलाकौशलाय सर्वा: कला: तदैव प्रादुर्भवन्ति यदि मूलभूत: कलारूपेण आविर्भवति, तदैव च सर्वा: कला: पूर्णा: भवन्ति. इदं स्वोपयोगाय उक्तं, स्वस्यापि वैष्णवरूपेण उद्भवो भक्तिकला: च पूर्णा: भविष्यन्तीति. एताएव आशिष: अग्रे प्रार्थ्यमानत्वात्. मानुषभावेन नानाविधा: क्रीडा भक्तान् उत्पाद्य तेषु भक्तिस्थापनार्था: इति अर्थ:.

(प्रार्थना)

अवतरणिका :

किञ्चित् प्रार्थयितुं नमस्कारं कुरुतो :
आदिमध्यावसानेषु नमनं मनआदिभि:

श्लोक :

नम: परमकल्याण! नमस्ते विश्वमंगल!॥
वासुदेवाय शान्ताय यदूनां पतये नम:॥३६॥

अनुवाद :

हे परमकल्याण! नमस्कार. हे विश्वमंगल! आपको नमस्कार!॥
यदुवंशके पति ऐसे शांत वासुदेव आपको नमस्कार॥३६॥

सुबोधिनी :

नम: इति, आदौ कायिकं नमनं, तत्र फलं परमकल्याण! इति. कल्याणानां निधानरूपो भगवान्. कल्याणानि शुभफलानि पुत्रजन्मादीनि लोके प्रसिद्धानि. परमानन्द: परमकल्याण:. कायेन नमस्कृत: शरीरोपभोगाय परमकल्याण: प्रादुर्भवति. नमस्ते इति वाचनिकं, ते तुभ्यम् इति कीर्तनात्. तस्य फलं विश्वमंगल! इति, वेदादिनिर्माणाद् विश्वस्मै तत्साध्यफलरूपो

मंगलं भवति. अन्ते नमनं मानसं, तदर्थं मनसि आविर्भावाय वासुदेवाय इति. शान्ताय इति ज्ञानरूपाय; केवलम् आविर्भूते नारदवद् अज्ञाते तथा पुरुषार्थो न भवतीति शान्तं लयविक्षेपशून्यं रूपम् आविर्भावो ज्ञानं च उक्तम्. फलम् आह यदूनां पतये इति, भगवान् स्वामी फलं, यथा यदूनाम्.

(बिदा मांगनेकी प्रार्थना)

अवतरणिका :

एवं नमस्कृत्य गमनार्थं प्रार्थयेते :

श्लोक :

अनुजानीहि नौ भूमन्! तव अनुचरकिंकरौ॥
दर्शनं नौ भगवतः ऋषेर् आसीद् अनुग्रहात्॥३७॥

अनुवाद :

हे भूमन्! आप हमें अनुज्ञा प्रदान करें क्योंकि हम तो आपके अनुचरके किंकर हैं॥

वस्तुतः तो देवर्षि नारदजीके हमपर हुवे अनुग्रहके कारण हमें आपके दर्शनका लाभ मिला॥३७॥

सुबोधिनी :

अनुजानीहि इति, नौ आवाम् अनुजानीहि अनुज्ञां प्रयच्छ. भूमन्! इति सम्बोधनं स्वस्य तत्र स्थातुम् अयोग्यतार्थम्. तदेव आहतुः तव अनुचरकिंकरौ इति, तव अनुचरस्य नारदस्य किंकरौ दासौ. सेवकसेवकत्वमेव उचितं नतु त्वत्सेवकत्वम् आवयोः, यतः त्वं भूमा महान्, नहि अल्पेन महतः सेवा कर्तुं शक्यते. ननु दर्शनयोग्यता यदा तदा सेवायोग्यता सिद्धैव, ततः कथम् अयोग्यौ इति चेत् तत्र आहतुः दर्शनं नौ भगवतः ऋषेः आसीद् अनुग्रहाद् इति. महाराजसेवकः

स्वभृत्यं कदाचिद् महाराजस्थानं नयति न एतावता तस्य महाराजसेवायोग्यता भवति. अतः दर्शनान्यथानुपपत्त्या न सेवायोग्यता, भगवतो दर्शनम् ऋषेः अनुग्रहाद् इति ऋषेः भगवतः इति गुरुदेवतयोः ऐक्यार्थं सहनिर्देशः.

(जहां भी हम जायें वहां हमारी आपके प्रति भक्ति निभती रहे ऐसी प्रार्थना)

अवतरणिका :

एवं गमनं प्रार्थयित्वा तत्र गतयोः भक्तिं प्रार्थयेते :

श्लोक :

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां॥
हस्तौ च कर्मसु मनस् तव पादयोर् नः॥
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत् प्रणामे॥
दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम्॥३८॥

अनुवाद :

तेरे गुणगानमें निरत हो वाणी दोनों कर्ण कथामें, दोनों कर कर्मोंमें तेरे, मन बन जाये मगन स्मरणमें तेरे ही चरणोंके, जगन्निवासके नमनमें अभिरत मस्तक यूंही झुका रहे, आपके विग्रहरूप सत्पुरुषोंके दर्शनमें दृष्टि लगी रहे.

सुबोधिनी :

वाणी इति, षडंगानि पुरुषे प्रधानानि :

वाक् श्रोत्रे च करौ चित्तं शिरः चक्षुस् तथैव च।
षड् एते भगवत्कार्ये यदि सक्ताः कृतार्थता॥
कीर्तने श्रवणे चैव गुणानां रूपदास्यके।
स्वरूपस्मरणे नत्वाम् अवतीर्णस्य दर्शने॥

गुणानाम् उत्कर्षाधायकधर्माणां कीर्तने वाणि अस्तु तत्रैव सा विनियुक्ता भवतु. यथा वराय दत्ता कन्या न अन्यगामिनी भवति, नापि अन्यः प्रार्थयते, नापि पतिभयात् सा अन्यसम्बन्धिनी कथञ्चिदपि भवति, तथा वाणी भवतु. एवमेव श्रवणौ कथायां, हस्तौ उभावपि भगवतः सर्वकर्मसु अष्टयामिकेषु. चकारात् पादावपि मन्दिरगमनादिषुः. तद्व्यतिरेकेण हस्तसेवा न उपपद्यते इति उभयम् एकरूपम्. तव पादयोः स्मृत्यां नो मनो अस्तु. स्मरणे सर्वानेव भक्तान् एकीकृत्य आहतुः पादयोः इतिद्विवचनं रूपान्तरे तथाभावाय. शिरस्तु प्रणामे. चतुरंगया भक्त्या भगवतः सर्वस्थितिः सर्वान्तरत्वं च स्फुरिष्यति. अतः सम्बोधनं यतो हे निवासजगद्! इति, निवासभूतं जगद् यस्य इति. दृष्टिस्तु सतां दर्शने अस्तु. भगवद्दर्शनन्तु धाष्टर्याद् न प्रार्थितम्. ननु तेषां दर्शने किं स्यात्? तत्र आहतुः भगवत्-तनूनाम् इति, भगवतः तनूरूपाः ते. तत्र भवान् वर्ततइति तथा, अयोगोलके वह्निः यथा वा गंगायां जलम्.

॥ नलकूबरमणिग्रीवकृतस्तुति ॥

(निरोधलीलान्तर्गत तामसप्रकरणके अवान्तर प्रमाणप्रकरणमें वैराग्यगुणलीलापरक दसवां अध्याय)

(स्तुतिकी पृष्ठभूमि)

श्रीमद्भागवतके अनुसार नलकूबर और मणिग्रीव ये दो यक्ष भाई थें. ये दोनों अपनी-अपनी पत्निओंके साथ सरोवरमें स्नान कर रहे थें. वहाँ जब नारदजी आये तो जलक्रीड़ामें निमग्न उन्होंने उनका आदर नहीं किया. इस कारण नारदजीको उनपर क्रोध आया और नारदजीने उन्हें शाप दिया कि "तुम खेलमें निर्लज्ज हो कर इतने डूबे हुए हो कि तुम्हें यह भी पता नहीं चलता कि कौन आया है. तुम्हारे और वृक्षके व्यवहारमें अंतर क्या है? इस कारण जाओ तुम वृक्ष ही हो जाओ" यह सुन कर उन्होंने क्षमा मांगी. उसके बाद नारदजीने उन्हें आश्वासन दिया कि "श्रीकृष्ण तुम्हारा उद्धार करेंगे." यह कहानी श्रीमद्भागवतमें वर्णित है. श्रीकृष्णको जब माता यशोदाने उनके माखन बिलोनेके बर्तनोंको तोड़ देनेके अपराधवश उलूखलसे बांध दिया तो उसे घसीटते हुए दो वृक्षोंके बीच ले जा कर फंसा दिया बलपूर्वक खींचते ही जानेपर दोनों वृक्ष जड़से उखड़ गये. इस प्रकार उनका उद्धार हुआ और उसके बाद उन्होंने जो श्रीकृष्णकी स्तुति की वह स्तुति 'नलकूबर-मणिग्रीवस्तुति' कहलाती है.

आपने यदि अवतार फिल्म देखी हो तो उसमें पृथ्वीके जो सैनिक रोबोट्में बैठे थें, वे पँडोराके सैनिकोंको मार थें, पर जब पँडोराके सैनिक यह निश्चय कर लेते हैं तो आधुनिक हथियार न होनेके बावजूद वे विशाल सेनामें तबाही मचा देते हैं. कहनेका अर्थ है कि ऐसी बातोंसे प्रभावित हो कर हम भगवत्ता और पुरुषोत्तमता का निर्णय करते हैं. अपना शुद्धाद्वैत कहता है कि "**अण्वपि ब्रह्म व्यापकं भवति, यथा कृष्णो यशोदाक्रोडे स्थितोऽपि सर्वजगदाधारो भवति**" (त.दी.नि.प्र.१।५४) एक अणु जितना छोटा ब्रह्म भी व्यापक हो

सकता है. उसका उदाहरण देते हैं कि **"यशोदाक्रोडे स्थितोऽपि सर्वजगदाधारो भवति"** यशोदाकी गोदमें सोनेवाला श्रीकृष्ण भी जगत्का आधार हो सकता है. यह अपने शुद्धाद्वैतका मूल सिद्धांत है. इस कारण आकारमें अथवा क्रियामें अथवा काल या ब्रह्मांड (स्पेस्)की परिधिमें क्या बड़ा है और क्या छोटा, यह उसको मापनेका कोई सही मापदंड नहीं है. ठीक है, उसका कुछ तो रोल है वह हम नकार नहीं सकते पर यह अंतिम मापदंड नहीं है.

इस लीलामें दिखलाई देता श्रीकृष्ण अत्यंत दयनीय स्थितिमें है. कमर उलूखलसे बंधी हुयी है. खड़ा हो सके ऐसी उसकी आयु नहीं है क्योंकि घुटने चलनेकी अवस्था है. ऐसे श्रीकृष्णकी स्तुति उन्होंने की है. ब्रह्मके जितने भी पहलु हैं उन सभी पहलुओंको श्रीकृष्णमें देख रहे हैं. वह जो श्रीकृष्णमें देख रहे हैं, ऐसा कि छोटे-से-छोटे कणमें एनर्जीका विपुल मात्रामें देखना जो न्यूक्लियर् साइंस्का सिद्धांत है वह ही अपने शुद्धाद्वैतका भी सिद्धांत है.

एक बहुत ही प्रचलित मुहावरा है कि *"मोटा देख कर डरना नहीं और पतला देख कर लड़ना नहीं"* मानें कई बार हम पतले व्यक्तिको देख कर उससे लड़नेको उतारु हो जाते हैं पर पतला व्यक्ति कभी बहुत खतरनाक भी होता है और मोटेसे हम प्राय: डर जाते हैं पर मोटा व्यक्ति प्राय: अन्दरसे खोखला होता है. अपने भारतके सिकन्दरसे ले कर मुगलों तकके इतिहासमें अपने देशके राजाओंका हारनेका लगभग कारण यह ही था कि उनको एक फितूर थी कि "हम हाथीपर सवार हो कर लड़ेंगे." हाथीमें घोड़े जितनी फुर्ती होती नहीं है. हाथी कुचल सकता है पर उसकी एक सीमा होगी. युद्धमें कुचल कर मारना एक प्रकार है पर उस तकनीकका व्यक्तिको मारनेमें प्रतिशत बहुत कम है, बजाय दौड़ाकर थकाकर मारनेके. जब पहली बार सिकन्दर यहां आया तो उसका सामना

करनेके लिए पुरुकी पूरी फौज हाथीपर सवार थी. सिकन्दरकी फौज एकदम घबरा गयी कि इतने बड़े जानवरके सामने हम टिक कैसे पायेंगे! लेकिन सिकन्दर बहुत चालाक था. उसने अपनी सेनाको तीन हिस्सोंमें बांट दिया. एक भागको उसने दूर जा कर नदी पार कर पीछेसे हमला करनेका निर्देश दिया. दूसरे भागको उसने न लड़नेका निर्देश दिया और तीसरे भागको कहा कि "तुम हाथियोंके पास जाओ ही मत आदमियोंपर भी हमला मत करो केवल हाथियोंकी आंखमें तीर मारो." अब यह बात अपने यहांकी नीतिके विरुद्ध थी. व्यक्तिको व्यक्तिके साथ ही युद्ध करना चाहिये, जानवरके साथ नहीं. पर इस बातकी पश्चिमी सभ्यताको कहां परवाह थी? उनके लिए तो युद्धमें सभी कुछ जायज़ था. जब हाथियोंकी आंखमें तीर लगे तो वे अंधाधुंध इधर-उधर दौड़ने लगे. इस कारण पुरुकी सेना उन्हींके हाथियों द्वारा कुचल गयी. उसके बाद सिकंदरकी सेनाके एक भागने पीछेसे हमला किया और दूसरे भागने दक्षिणसे. इस प्रकार जो सेना एक दीवारकी तरह खड़ी थी वह कुछ ही पलमें ढ़ेर हो गयी. कहनेका अर्थ है कि यदि आप छोटे भी हो पर आपके पास बुद्धि है तो बड़े-से-बड़े व्यक्तिको आप हरा सकते हो.

दूसरे विश्वयुद्धके समय ब्रिटेनने एक अत्याधुनिक युद्धपोत बनाया था. उस समयके हिसाबसे वह अविजेय था. ब्रिटिश लोगोंने यह बात गुप्त रखी थी कि उसे उन्होंने रखा कहां है. यह सभीको पता था कि उसका एक बारका उपयोग पूरे जापानको तहस-नहस कर सकता है. जापानने एक चालाकी करी. उन्होंने एक अफवाह फैला दी कि उस युद्धपोतको उन्होंने तोड़ डाला है. ब्रिटिश-सेना इस जालमें फंस गयी. वहांके लोगोंने नर्वस् हो कर हल्ला मचा दिया कि जापान जैसा छोटा देश ऐसे युद्धपोतको तोड़ कैसे सका! क्योंकि उस समय आधेसे अधिक क्षेत्रमें उन लोगोंका ही राज्य था. लोगोंके दबावमें आ कर सेनाने उस पोतकी स्थितिके बारेमें

बता दिया. अगले ही दिन जापानियोंने अपने आत्मघाती हमलावरोंको भेज कर उस युद्धपोतको खतम कर दिया. यह ब्रिटिश-सेनाके इतिहासकी सबसे बड़ी भूलोंमेंसे एक थी. जापानी-सेनाको इस कामके लिए केवल छ: सैनिकोंकी आवश्यकता पड़ी. उन छ: जनोंने उस युद्धपोतकी चिमनीमें ही डाइव् लगा दी और उस पोतके दो टुकड़े हो गये. मानें छोटा हो कि बड़ा, इस बातसे कोई फर्क नहीं पड़ता यदि आपमें उस कार्यको करनेकी इच्छाशक्ति हो तो.

इसी कारण अपने यहां कहा गया है कि **"अण्वपि ब्रह्म व्यापकं भवति, यथा श्रीकृष्णो यशोदाक्रोडे स्थितोऽपि सर्वजगदाधारो भवति"** (त.दी.नि.प्र.१।५४) अणु भी व्यापक हो सकता है, माँ यशोदाकी गोदमें बैठा श्रीकृष्ण पूरे जगत्का आधार हो सकता है.

यह महाप्रभुजीका सिद्धांतवाक्य है जो यहां नलकूबर-मणिग्रीवकी स्तुतिमें दिखलाई दे रहा है. यहां यह विरोधाभास देखो कि जो उलूखलसे स्वयं बंधा हुआ है और छूट नहीं पा रहा है वह वृक्षयोनिमें बंधे हुवेको मुक्ति दे रहा है!!! इस अध्यायमें इस विरोधाभासको भली प्रकार देखा जा सकता है. जो असमर्थ है(कृष्ण) वे समर्थ हैं और शापसे असमर्थ हो कर वृक्ष बन गये हैं. उन जैसे अपने ऐशोआराममें डुबे हुवोंको वृक्ष जैसी अवस्थामें से बाहर निकाल कर फिर देवयोनिमें वापस भेज सकता है. यह मूल संदेश है इस अध्यायका. मुक्त होनेके पश्चात् उन्होंने जो श्रीकृष्णकी स्तुति की उसमें ब्रह्मके उन सभी पहलुओंका वर्णन है.

ये सभी पहलु, जो श्रीकृष्णके उस समय गोकुलमें सखा थे, उन्हें दिखलाई नहीं दिये थे. यशोदा-नंदको दिखलाई नहीं दिये थे. जो यह शिकायत कर रहे थे कि "ऐसा हो कैसे सकता है कि इतने बड़े जमे हुए वृक्ष जमीनसे उखड़ कैसे सकते हैं!" कुछ

बालक जिन्होंने यह देखा था उन्होंने कहा भी कि यह काम श्रीकृष्णने ही किया है. पर उनकी बातपर किसीने विश्वास ही नहीं किया. यह बात बुद्धिकी समझके परे थी. पर श्रीकृष्णमें क्योंकि कर्तुम्-अकर्तुम्-अन्यथाकर्तुं सामर्थ्य है. इसी कारण उसने इस लीलाका प्रदर्शन किया. यह बालकृष्णके द्वारा की गयी एक ब्राह्मिक लीला थी. कृष्णके ब्राह्मिक तत्त्वज्ञानका पहलु उस समय तक किसीने देखा नहीं था. जिन्होंने देखा और उसका वर्णन किया.

यहां एक थियोलॉजिकल् ईश्यु खड़ा हो रहा है कि ब्रह्मके इन सारे पहलुओंका पता किस प्रकार चला. दूसरी एक बात इसमें यह भी उठती है कि हो सकता है कि मुक्त होनेके कारण जिसने मुक्त किया उसकी स्तुति एक अतिशयोक्ति हो. यह भी तो एक संभावना हो ही सकती है. क्योंकि स्तुति करते समय कोई व्यक्ति किसी भी सीमा तक जा सकता है. तीसरा पहलु इसका यह हो सकता है कि मुक्त होनेपर उन्हें देवयोनि मिली. तो जो इनसे भी बड़े देवता थे उन्हें इस बारेमें क्यों पता नहीं चला कि श्रीकृष्ण कौन है. इन्द्र ब्रह्मा जैसे कई देवता थे जो खोज रहे थे कि श्रीकृष्ण कहां जन्मा है. कहनेका अर्थ है कि क्या उनमें इतनी योग्यता थी कि वे उस परम-तत्त्वको पहचान सकें. यदि योग्यता नहीं थी तो यह केवल महानता दिखानेके लिए एक प्रशंसा मात्र हो सकती है.

जिस समय भारतमें इमरजेंसी लगी थी, उस समय टाइम्स् ऑफ् इन्डियावालोंने इन्दिरागांधीकी चापलूसीमें एक पुस्तक लिखी थी 'राग दुर्गा'. इन्दिराकी दुर्गादेवीसे समानता दिखानेके लिए वहांका जो एडिटर् था वह मेरे काकाका दोस्त था. उसने पहले इन्दिरागांधीको कहा कि यह पुस्तक स्कूलोंमें अनिवार्य होनी चाहिये. इन्दिरागांधीने किसी कारणवश ऐसा करनेसे मना कर दिया. उसने हमारे काकाको

पकड़ा और कहा कि इसका आप अपने मन्दिरसे प्रचार करो. दुर्भाग्यसे हमारे यहां एक आर.एस.एस.का व्यक्ति भी रहता था. वह हर समय इमरजेंसीके विरुद्ध प्रचार करता रहता था. उसकी इस हरकतसे मेरे काका हमेशा उससे नाराज रहते थे. इस कारण उसकी दुकानके आगे उन्होंने एक पाटिया लगवा दिया था कि जो भी व्यक्ति राजनैतिक वाद-विवाद मंदिरमें करता पकड़ा जायेगा तो उसे मंदिरसे तुरंत बाहर निकाल दिया जायगा. अब जबकि दोस्तने दबाब डाला था पुस्तक रखनेके लिए और उसमें साफ लिखा था 'राजनैतिक सफलताका इतिहास'. अब मंदिरमें जो भी आता यह पढ़ कर भाग जाता कि पता नहीं यह पढ़नेसे उसे मंदिरसे बाहर तो नहीं निकाल दिया जायगा. एक भी पुस्तक नहीं बिकी.

थोड़ा विषयांतर है पर आपको यह बात सुन कर आनंद आयेगा. सूर पंचशतीपर वही एडिटर् टी.वी पर मेरा इन्टरव्यू लेना चाहता था. उसमें एक मैं था और एक के.सी कॉलेज्के डॉ.प्रभात थे. मुझे टी.वी. पर सूरदासजीके ऊपर बोलना था. सबसे पहले तो वहांके कॅमेरामॅन्ने मेरी पोषाक देख कर ही ऑब्जेक्शन् उठा दिया कि "इस पोषाकमें तो बॅक्ग्राउंड् सफेद होनेके कारण आपका चेहरा ही नजर आ रहा है. आप कोई रंगीन कपड़ा पहनिये." उन दिनों तक टी.वी केवल ब्लॅक्-एंड्-व्हाइट् ही आये थे. मैं बोला "मैं तो यही कपड़े पहनता हूं." तभी वहांकी एक मेकअप् लेडी अपनी ब्लॅक्-शॉल् ले कर आयी और मुझे दी. अब जब चेहरा ही दिखलाई दे रहा हो तो वह भी पहननी पड़ी. वह एडिटर् मुझसे बोला कि "सूरदासजीमें कुछ समाजवाद था, आप ऐसा कुछ बोलना." अब मेरा माथा ठनका. मैं बोला कि "अभी आप कह रहे हो कि सूरदासमें समाजवाद खोजो फिर कहोगे कि उनमें इमरजेंसीका २०-पॉइंट प्रोग्राम् खोजो. तो मैं कहांसे खोजूंगा?" उसने मेरे पैर छू लिया और बोला कि "श्यामबाबा आप यदि २०-पॉइंट् प्रोग्रामको

सूरदासजीमें खोज निकालें तो हमारा यह प्रोग्राम् हिट हो जायेगा.'' मैंने कहा ''यह मेरे बसकी बात नहीं है. यदि आपको मेरा नाम इस प्रोग्रामसे हटाना है तो हटा दो.'' तभी डॉ.प्रभात बोले कि ''सूरदासजीमें २०-पॉइंट् प्रोग्राम् तो नहीं पर समाजवादपर मैं कुछ कह दूंगा.'' मुझे तो इतना सफोकेशन् हो रहा था वहां पर, लेडीज़ काली शाल ओढ़ कर फंस तो गये ही थे. डॉ.प्रभात बोले ''जो गोपियें गोकुल गांवसे मथुरा छाछ ले कर जाती थीं, उनके विरोधमें पहली बार किसीने रिवोल्ट् किया वह श्रीकृष्ण था. जिसने कहा कि जो छाछ गांवमें निकल रही है उसपर केवल गांववालोंका ही अधिकार है, राजाओंको यह नहीं मिलनी चाहिये. यह समाजवाद था.'' मैंने सोचा कि बेचारे सूरदासजीको दानलीला गानेमें यह कल्पना भी नहीं होगी कि इसमें कोई समाजवाद ढूंढेगा. मनमें बहुत त्रास हो रहा था. वहां तो मैं कुछ कह नहीं सका पर घर आ कर मैंने उन एडिटर्को एक गुमनाम पोस्टकार्ड लिखा. उसमें मैंने लिखा ''*क्रांतिकारी भ्रांतिभारी चाटुकारी सरकारी महावीर अधिकारी आज्ञाकारी पटवारी. मूरख राजा राज करत है. लेखक भये भिखारी सुनो भई कर्मनकी गति न्यारी.*'' इसमें आखिरी तुक सूरदासजीकी है. और क्या कर सकता था भड़ांस किसी तरह तो निकालनी थी. हद कर दी थी चापलूसीकी. एक बार जयप्रकाश नारायण मुम्बई आये, तो उनके पास पहुंच गया. जयप्रकाश नारायण उसपर बहुत गुस्सा हुए और कहा कि ''तुमने इतनी अधिक चापलूसी इन्दिराकी की है, तुम्हें टाइम्स् ग्रुप्से निकलवा दूंगा. वह बोला ''आप मुझे एक अवसर तो दें. मैं उससे भी चार गुनी चापलूसी आपकी कर दूंगा.'' पर उस बेचारेको अवसर नहीं मिला. कहनेका अर्थ है कि मोटा देख कर डरना नहीं और पतला देख कर लड़ना नहीं. इतनी बुद्धि तो लगानी ही चाहिये, और जगह नहीं तो कमसे कम ब्रह्मकी जब बात आये तो तो लगानी ही चाहिये.

(सुबोधिनीकारिका-१)

अब हम स्तुतिकी पृष्ठभूमिमें महाप्रभुजी क्या समझाना चाह रहे हैं वह समझनेका प्रयास करते हैं.

दशभिः प्राणभृच्छ्लोकैः चक्रतुः स्तोत्रम् उत्तमम् ॥
ज्ञानवैराग्ययोर् अत्र निर्णयः समुदीरितः ॥१॥

'प्राण' शब्द बनता है 'प्र+अन'के योगसे. इसके बाद इस प्राणसे 'प्राणी' शब्द बनता है. 'अन' है यह एनीमल्में जो 'अन' है वही है. 'ॲनीमल्' मानें जिसमें 'अन' हो. 'अन' मानें श्वास लेना-छोड़ना जिसका स्वभाव हो वह. 'प्राणी' शब्दका भी यही मीनिंग् है. 'प्राण' मानें जो सांस लेता है छोड़ता है. वह इसका Etymological मीनिंग् कहलाता है. Etymology मानें क्या? शब्द किस प्रकार गढ़ा गया है? शब्दकी जो बनावट है उसकी ॲनेलेसिस्, जैसे अपनी बॉडीमें हड्डीयां हैं, हड्डीयोंके ऊपर स्नायु हैं, स्नायुओंके ऊपर फिर माँस है, उसके बाद चमड़ी है, बादमें रोम हैं. ऐसी बहुत सारी लेयर्स् हैं. इसी तरह कोई भी शब्दकी हड्डी जैसी उसकी Etymology होती है. इस Etymology के बाद उस शब्दका स्नायु आता है. 'स्नायु' मानें उस शब्दका अर्थ. किस प्रकार फिक्स् हुआ, मानें बोलचालमें किस अर्थमें उसका प्रयोग हुआ है. हर समय जो शब्द जिस Etymology से गढ़ा गया है उस तरह उसका प्रयोग नहीं होता. उसका मीनिंग् कोई दूसरी तरह ही फिक्स् हो जाता है. उदाहरणके लिए हिन्दीमें जिसे हम गाय कहते हैं वह संस्कृतके 'गो' शब्दसे बना है. और 'गो' शब्द 'गच्छति'से बना है. जो चले उसको हम 'गो' कहते हैं. चलता तो घोड़ा भी है और गधा भी है. हम उनको गाय नहीं कहते. गायको ही गाय कहते हैं. यह एक तरहसे उसका मीनिंग् फिक्स् हो गया. Etymology से बहुत अर्थ निकले पर फिक्स् हुआ दूसरे स्थानपर. उदाहरणके लिये किसीका नाम 'गीता' है. उसकी Etymology क्या है? 'गायी जानेवाली'

पर यह आवश्यक नहीं है कि उसके गीत गाये जाते हों. यह तो हुआ Etymological meaning. 'गीता' शब्द जो गाया जानेवाला हो, उस अर्थमें आया. बादमें यह शब्द शास्त्रके लिए प्रकट हुआ. पुराण-उपनिषद्में बहुत सारी वस्तुएं गायी गयी हैं. उन सबको तो हम गीता नहीं कहते. अवधूतगीता पांडवगीता भगवद्गीता कहते हैं. इन सबमें भगवद्गीताने बाजी मार ली है. गीता हम हिन्दुओंका शास्त्र है. अब किसीका नाम 'गीता' हो तो उसके संबंधियोंके लिए 'गीता'का अर्थ शास्त्र नहीं हो कर व्यक्ति है.

शब्दकी यात्रा किस प्रकार होती है यह इसका प्रमाण है. अब यह 'प्राणी' शब्द है, यह प्र+अनिसे बना है. 'अनि'से एनीमल् और प्राणी शब्द भी बना. पुराने जमानेमें 'प्राण' शब्द हवाके लिए उपयोगमें नहीं आता था. अब यह शब्द हवाके अर्थमें आ गया है. तुम्हारी गुजरातीमें भी इसे प्राणवायु कहते हैं. इस शब्दने नया अर्थ ले लिया है.

पर पुराण और उपनिषद् में इसका अर्थ 'इन्द्रिय' है. 'प्राण' शब्द इन्द्रियोंका वाचक है क्योंकि प्राण हो शरीरमें तो आँख देख सकती है. प्राण हो शरीरमें तो कान सुन सकता है. प्राण हो शरीरमें तो हाथ हिल सकता है. प्राण हो शरीरमें तो पैरसे चला जा सकता है. इन सभी दस इन्द्रियोंको प्राण कहना शुरु किया. अब यह प्राणका अर्थ Etymological नहीं है. मानें "**दशभिः प्राणभृत्श्लोकैः**" मतलब प्राणका भरण करनेवाली संख्या कितनी, दस. प्राण हैं तो दसों इन्द्रियाँ काम कर रही हैं और प्राण छूट जायें तो सभी दस इन्द्रियाँ काम करनी बंद कर दें. '**प्राणभृत्श्लोकैः**' यह शब्द हमको बहुत बॉम्बास्टिक् लगता है पर इसका मतलब है कि जब प्राण हैं तब अपने भीतर दस इन्द्रियाँ काम करती हैं पर इसमें जो शेडो है वह बहुत विशेष है. जैसे हम किसीको

कहें कि "तू तो मेरा प्राण है" तो यह एक अलग शेड हो गया. प्राण तो अपने भीतर है, नाकके बाहर थोड़े ही हैं पर जैसे हम किसीको कहें 'प्राणप्रिय' अथवा 'प्राणप्रिया', यह एक दूसरे प्रकारका शेड् है. इस प्रकार महाप्रभुजी इसमें यह सुझाव देना चाह रहे हैं कि यह दस श्लोक प्राण जैसे हैं. अर्थात् इन श्लोकोंका महत्त्व, इन श्लोकोंका आकर्षण प्राण जैसा है.

इस नलकूबर-मणिग्रीवकी स्तुतिमें यहां जो कहा गया है इसके लिए स्तुति करनेवालेके हृदयमें भक्तिका भाव होना चाहिये. भक्तिका भाव न हो तो प्रेमका भाव होना चाहिये. दास्यभाव भी हो सकता है. केवल ज्ञानका भाव भी हो सकता है. स्तुति करनेवालेके हृदयमें कभी कर्मका भाव भी हो सकता है. पर यहां इनकी स्तुतिमें जो केन्द्रिय प्रेरकभाव है वह ज्ञान और वैराग्य का है. महाप्रभुजीके मतके हिसाबसे यह ऐसी स्तुति कर रहे हैं कि जिससे इनमें (नलकूबरमणिग्रीवमें) ज्ञान और वैराग्य का भाव कितना दृढ़ है, यह प्रकट हो रहा है. भक्तिका भाव नहीं है यह कहनेका अर्थ नहीं है. आपको शायद ख्याल हो तो मैंने आपको एक बात पहले बतायी थी कि **"ज्ञान-वैराग्ययो: भक्तिप्रवेशाय उपयोगिता ईषत् प्रथममेवेति नांगत्वम् उचितं तयो: यदुभे चित्तकाठिन्यहेतू प्राय: सतां मते सुकुमारस्वभावेयं भक्ति: तद्धेतु: ईरिता"** (भक्तिरसामृतसिन्धु.२।२।६७-६८) ज्ञान और वैराग्य एक सर्विस्-रोड जैसा है कि जिसके द्वारा हम भक्तिके हाइवेपर जा सकते हैं. यह दोनों स्वयं हाइवे नहीं हैं. पर भक्तिके हाइवेपर जानेके लिए इनकी उपयोगिता तो है है और है.

हमें यह बात यहां समझमें नहीं आ रही है पर बात समझनी हो तो भागवतका जो माहात्म्य है उसमें ऐसा आता है कि भक्तिमाताके दो पुत्र थे, ज्ञान और वैराग्य. उसमें ऐसा आता है कि जब भक्तिमाता वृन्दावन आयी तो वह तरुणी हो गयी और ज्ञान-वैराग्य जो कि

उसके पुत्र थे वे बूढ़े हो गये. ऐसा देख कर भक्ति दुःखी हो गयी कि मेरे जीते जी मेरे दोनों पुत्र बूढ़े कैसे हो गये! कहनेका अर्थ यह है कि वृन्दावनका वातावरण ही ऐसा है कि जिससे भक्ति नवयौवना हो जाती है और ज्ञान-वैराम्य मरणासन्न स्थितिमें पहुंच जाते हैं, मरते नहीं हैं. भक्तिकी अपेक्षा ऐसी नहीं है कि मेरे पुत्र बूढ़े और मरणासन्न स्थितिमें पहुंच जायें. क्योंकि भक्ति उनकी माता है. एक माँको यह कैसे अच्छा लग सकता है कि उसके बेटे उसके सामने बूढ़े हो जायें. इसी कारण भक्ति वहां रो रही है. यह भागवतकी व्याख्याका मूल आधार है. फिर वहां नारदजी आते हैं और कहते हैं कि भागवत यदि पढ़ोगे तो भक्ति भी तरुणी रहेगी और ज्ञान-वैराग्य भी बूढ़े नहीं होंगे, स्वस्थ रहेंगे. भागवतका मूल संदेश यह है कि ज्ञान-वैराग्यका अपना कोई स्वतंत्र औचित्य नहीं है. यदि है तो यह है कि ज्ञान-वैराग्य भक्तिके पुत्र हैं. मानें भक्तिमार्गमें ज्ञान और वैराग्य, भक्तिके पुत्र बन कर रहें तो ठीक है पर भक्तिके बिना ज्ञान-वैराग्यका भक्तिमार्गमें कोई रोल् नहीं है.

इसके विपरीत एक बात यह भी समझो कि ज्ञान-वैराम्यसे भक्ति होना यह भी बात हमें स्वीकार नहीं है. क्योंकि ज्ञान और वैराग्य, दोनोंकी एक सीमा है कि ज्ञानको कभी अज्ञान माफिक नहीं आता है और वैराग्यको कभी भी संसार माफिक नहीं आता है. भक्तिके साथ समस्या यह है कि भक्तिसे ज्ञान-वैराग्य उत्पन्न तो होता है पर भक्तिको अज्ञान और विषयानुराग के साथ द्वेष नहीं है. मानें यदि आप अज्ञानी हो तो भी भक्ति कर सकते हो और संसारी हो तो भी भक्ति कर सकते हो. भक्तिसाधना एक तरहसे सभीको साथ ले कर चलती है. इस कारण ज्ञान-वैराग्य भक्तिके अंगतया तो स्वीकार्य हैं पर ज्ञान-वैराग्यसे उत्पन्न भक्ति भक्तिमार्गमें स्वीकार्य नहीं है. क्योंकि आनुवांशिक रूपसे ऐसी भक्तिमें ज्ञान-वैराग्यका ही रूप दिखलायी देगा. अर्थात् यह अज्ञान और विषय को सहन

नहीं कर पायेगी. अज्ञान और विषय को सहन नहीं कर पानेकी सीमा यदि भक्तिमें हो तो फिर तो ज्ञान-वैराग्य-कर्म साधना दुनियामें पर्याप्त थी. भक्तिकी यहां आवश्यकता ही कहां थी!

भक्तिकी खास आवश्यकता है कि वह पूर्ण रूपसे खुली है. पुण्य-पाप, ज्ञान-अज्ञान, संसार-वैराग्य, धन-निर्धन, उच्चकुल-नीचकुल अपने जीवनके अच्छे-बुरे जितने भी रंग हैं, उन सभीसे भक्तिको कोईभी समस्या नहीं है. भक्ति सभीके लिए खुली है, भक्तिके सभी अधिकारी हैं. ज्ञानमार्गका अधिकारी अज्ञानी नहीं हो सकता. वैराग्यमार्गका अधिकारी कभी संसारी नहीं हो सकता. निष्कर्म व्यक्ति कभी कर्ममार्गका अधिकारी नहीं हो सकता. भक्तिके अधिकारी ज्ञानी अज्ञानी कर्मी निष्कर्मी संसारी वैरागी सभी हो सकते हैं. इसीसे भगवान् गीतामें आज्ञा करते हैं "**अपि चेत् सुदुराचारो भजते माम् अनन्यभाक् साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः, क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वत् शान्तिं निगच्छति, कौन्तेय! प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति**"(भग.गीता ९।-३०-३१) जो दुराचारी है वह भी भक्ति कर सकता है. इसका खोटा अर्थ करना हो तो कहा जा सकता हैं कि भक्तको दुराचार करना चाहिये. पर गीताकार ऐसा नहीं कह रहे, वे कह रहे हैं कि जो भक्ति करे तो दुराचारी नहीं रहेगा. पर इस कारण दुराचारी भक्ति करनेका अधिकारी नहीं है ऐसा नहीं कह सकते.

मैं अक्सर एक बात कहता हूं कि आप अपने कॉलेज्में नब्बे प्रतिशत लानेवालेको ॲडमिशन् दे रहे हो और कह रहे हो कि हमारे अध्यापक अच्छे है. यह तो कोई बड़ी बात नहीं हुयी. अध्यापक अच्छे तब कहलायेंगे जब पेंतीस प्रतिशतवालोंको ॲडमिशन् दें और फिर भी रिजल्ट् अच्छा आये. इसी प्रकार भक्ति कोई ऐसी कॉलेज् नहीं है कि जहां नब्बे प्रतिशतवालोंको ही ॲडमिशन् मिलता हो. यहां तो नब्बे प्रतिशतवाला भी चलेगा और फेल् भी

चलेगा पर रिजल्ट् सौ प्रतिशत रहेगा. भक्तिकी कॉलेज्में ॲडमिशन् मिला मतलब पास होगा होगा और होगा ही. यही बात यहां समझायी है **"अपि चेत् सुदुराचारो भजते माम् अनन्यभाक् साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः."** (भग.गीता ९।३०) यदि बीमार आदमी ही हॉस्पिटल्में भर्ती नहीं किया जायेगा तो उसके होनेका लाभ क्या? भक्ति ऐसी हॉस्पिटल् है कि कैसे भी प्रकारके बीमारको अच्छा कर सकती है.

पर इसका ऐसा नहीं कर देना कि उस हॉस्पिटल्को ही हम बीमार कर दें! आजका पुष्टिमार्ग उस हॉस्पिटलको ही बीमार कर रहा है, भक्तिका व्यवसाय करके. जो भक्ति हमको ठीक कर सकती थी उसीको हम बीमार कर रहे हैं. यह एक अलग कहानी है उसका असलियतके साथ कोई संबंध नहीं है.

यहां जो हमको समझना है वह यह है कि यदि ज्ञान-वैराग्यसे भक्ति उत्पन्न हो रही है तो ज्ञान-वैराग्यके जो नकारात्मक पहलु है वह भक्तिमें भी दिखलायी देंगे. और यदि भक्तिसे ज्ञान-वैराग्य उत्पन्न हो रहे हैं तो भक्तिके सकारात्मक पहलु है, वह ज्ञान-वैराग्यमें आयेंगे. उस प्रकारका भक्तका ज्ञान-वैराग्य कभी ऐसा नहीं होगा कि जो लीलामें बाधक हो और लीलामें विरक्ति पैदा करे.

भगवल्लीलामें विरक्ति पैदा करनेका अर्थ है कि जैसे एक प्रसिद्ध कथा है कि कोई व्यक्ति शालिग्रामजीको भोग धरनेके लिए रसोई बना रहा था. वहां एक कुत्ता सुगंध सूंघ कर बार-बार, आ-जा रहा था. उसको कोई चीज पास दिखी नहीं तो उसने शालिग्रामजीको ही उठा कर उस कुत्तेको दे मारा. कुत्ता तो भाग गया पर शालिग्रामका क्या, जिनके भजनके लिए तुम भोग-सामग्री सिद्ध कर रहे थे उसको तुमने कुत्तेको मारनेके काममें लिया, उस भगवान्का क्या? तुमने अपरसका तो माहात्म्य रखा कि कुत्ता नहीं

आना चाहिये पर भगवान्के माहात्म्यका तो ध्यान नहीं रखा. जैसे अपने यहांके मर्यादी, मेंड-मर्यादके लिए ठाकुरजीको ग्वालमंडलीमें पधरा देते हैं. अरे! अपरस पाल किसके लिए रहे हो? यह जो ज्ञान-वैराग्य है कि जिसके कारण हम अपरसके लिए अपने बच्चोंको सेवासे अलग कर देते हैं, घरमें सबसे झगड़ा करते हैं, पड़ौसियोंसे झगड़ा करते हैं पर इसकी कीमत हम अपने ठाकुरको छोड़ कर सबको उससे अलग करके चुकाते हैं. यह बिल्कुल वही कुत्तेको शालिग्रामसे मारने जैसी कथा है. ऐसी अपरस तुम्हें कहां तक आगे ले जा सकेगी? इसी कारण ज्ञान-वैराग्यसे भक्ति नहीं होनी चाहिये.

भक्तिके कारण जो ज्ञान-वैराग्य होगा उसमें एक ऐसी नाजुकता होगी कि वह लीलाका अनुभव करा सकेगी. हृदयको ऐसा कोमल बना देगी कि आप इस संसारमें ही लीलाका अनुभव कर सकोगे. **"सुकुमारस्वभावेयं भक्तिः तद्धेतुः ईरिता"** (भक्तिरसामृतसिन्धु.२।२।६८) भक्तिका स्वभाव बहुत कोमल है और इस कारण ही जो ज्ञान-वैराग्य उससे उत्पन्न हो रहे हैं, उनमें अपनी माँके गुण तो आयेंगे ही. यह बात भी बहुत लोग मानते हैं कि जो लड़का अपनी माँपर जाता है वह बहुत भाग्यशाली होता है और जो लड़की अपने बापपर जाती है वह बहुत भाग्यशाली होती है. इस कारण ज्ञान-वैराग्य यदि भक्तिसे उत्पन्न हैं तो उसके गुण लेनेके कारण बहुत भाग्यशाली होते हैं और यदि भक्ति, ज्ञान-वैराग्यसे उत्पन्न है, तो होगी किसीके लिए भाग्यशाली, पर उसके गुण लेनेके कारण अपने पुष्टिमार्गके लिए नहीं है. क्योंकि यह भक्तिमें भी ज्ञान-वैराग्य उत्पन्न करेंगे मानें भक्तिका समूल नाश. यह तो भक्तिका यूटिलिटेरियन् उपयोग है जो कि भक्तिको अभिलषित नहीं है. इस कारण भागवतकी सारी विषयगत नींव है उसका मर्म अथवा निचोड़ यहां आ गया है. महाप्रभुजी कह रहे हैं कि तुम किसी गलतफहमीमें मत रहना कि ये दोनों स्तुति कर रहे हैं और अपनी भक्ति नहीं दिखा रहे हैं. अपितु ये भक्ति

कर रहे हैं और अपना ज्ञान-वैराग्य भी दिखा रहे हैं.

यह जो स्तुति कर रहे हैं वह भक्ति ही है पर भाव प्रकट ज्ञान-वैराग्यका हो रहा है. यह ज्ञान-वैराग्य भक्तिमार्गीय ज्ञान-वैराग्य है. उनके भावको यहां समझनेकी आवश्यकता है. इस स्तुतिका विषयगत औचित्य (Thematic justification) है. इसके दार्शनिक पहलु आयेंगे वह तो अद्भुत है. इन्होंने कोई भी पहलु छोड़ा नहीं है. ब्रह्मके प्रत्येक पहलुका इस स्तुतिमें वर्णन है. ऐसा हम इसलिए कह सकते हैं क्योंकि यदि केवल ज्ञान-वैराग्यरहित भक्तिसे यह स्तुति की होती तो इसमें जो बालरूप उन्होंने देखा, केवल उसीका वर्णन आता. पर क्योंकि भक्तिमयी ज्ञान-वैराग्यसे स्तुति की है इस कारण ब्रह्मके वह पहलु भी चाहे अच्छे लगते हों अथवा नहीं, पर यदि ज्ञान-वैराग्य भक्तिके सत्पुत्र हों तो उनमें इतना साहस तो होना ही चाहिये.

इस भक्तिकी बातकी बारीकी समझो. जो अपने यहां अन्याश्रयका प्रश्न है, जैसा कि शुद्धाद्वैतका सिद्धांत है कि ब्रह्मके अलावा यहां है कौन कि अन्याश्रय हो! ब्रह्मके अतिरिक्त कोई हो तो ही अन्याश्रयका प्रश्न होगा. जब अन्य कोई न हो तो अन्याश्रय कहांसे हो पायेगा और अन्याश्रय शक्य न हो तो अनन्याश्रय और अनन्यासक्ति की बात फिजूल है. भगवान् गीतामें कह रहे हैं कि **"अपि चेत् सुदुराचारो भजते माम् अनन्यभाक् साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः"** (भग.गीता ९।३०) अर्थाद् अनन्यभक्तिसे मुझे भजो. अब क्या भगवान्को इस वाक्यका संशोधन करनेके लिए कहें, जब अन्य कोई है ही नहीं तो अनन्यभाक् बनना चाहें तो भी कैसे बने? इन दो विरोधी बातोंको तो हमको समझना पड़ेगा. "जो दुराचारी अनन्यभावसे मेरा भजन करता है वह साधु ही है." यह अनन्यभाव न तो ज्ञान और न वैराग्य का भी औचित्य सिद्ध कर सकता है. क्योंकि शुद्धज्ञानके पहलुसे तो जब कोई अन्य है ही नहीं तो अनन्यभाव आयेगा कहांसे?

वैराग्यके पहलुसे तो भगवान्‌के सिवाय सभी कुछ अन्य है, ऐसा विचार जगत्‌के प्रति न हो तो वैराग्य होगा ही नहीं. वैराग्यकी साधना यदि करनी हो तो भगवान्‌को हमें अन्य मान कर ही चलना पड़ेगा. ज्ञान और वैराग्य आपसमें झगड़ती हुयी दो वस्तुएं हैं. यदि ज्ञान सच्चा है तो वैराग्य खोटा है और वैराग्य सच्चा है तो ज्ञान खोटा है. भागवत इसका बहुत सुंदर वर्णन करती है कि "**कामं दहन्ति कृतिनो ननु रोषदृष्ट्या, रोषं दहन्तम् उत ते न दहन्ति असह्यम्. सो अयं यदन्तरमलं प्रविशन् बिभेति कामः कथं नु पुनः अस्य मनः श्रयेत?**" (भाग.पुरा.२।७।७) हृदयकी कामनाओंपर तुम्हें इतना अधिक क्रोध आया कि हृदयकी सारी कामनाओंको तुमने जला दिया. ऐसा करनेसे जो रोष तुमने उन कामनाओंके प्रति रखा, वह ही रोष तुम्हें जला रहा है कि नहीं! काम और क्रोध, एक-दूसरेके ज्ञान-वैराग्यकी तरह विपरीतभाव है. जिसपर काम होता है उसपर क्रोध नहीं आता और जिसपर क्रोध आता है उसपर काम नहीं होता. मनुष्यकी लाचारी ऐसी है कि उसमें काम भी है और क्रोध भी है. मनुष्यका हृदय काम क्रोध के द्वंदसे मुक्त हो नहीं सकता. इसलिए मैं हमेशा मजाकमें कहता हूं कि सारे संत प्रवचन करते हैं कि "निंदा करना महान् पाप है" कोई भी साधारण व्यक्ति दस अथवा पन्द्रह मिनिटसे अधिक निंदा नहीं कर सकता पर संत इसपर डेढ़ घंटा प्रवचन देते है. अब यह निंदा हुयी कि नहीं! आप भी तो निंदा कर रहे हो और उसका आनंद ले रहे हो. यह निंदककी निंदा है. उसका आनंद यदि नहीं ले रहे हो तो डेढ़ घंटा प्रवचन कैसे कर सकते हो! ज्ञानी-वैरागी उसी बातके शिकार हो जाते हैं जिसकी वे मना करना चाहते हैं. यह दुर्भाग्यपूर्ण है और भागवतने पहली बार इस बातकी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया. "**कामं दहन्ति कृतिनो ननु रोषदृष्ट्या, रोषं दहन्तम् उत ते न दह्यन्ति असह्यम्. सो अयं यदन्तरमलं प्रविशन् बिभेति कामः कथं नु पुनः अस्य मनः श्रयेत?**" (भाग.पुरा.२।७।७) जैसे भावनाके लेवलपर काम और क्रोध एक-दूसरेके विरोधी हैं. उसी

तरह ज्ञान और वैराग्य की समझके लेवलपर एक-दूसरेके विरोधी हैं.

इस स्थितिमें हमारे पास दो विकल्प हैं. पहला, इन दोनोंको झगड़ने दो. दूसरा, किसी प्रकार इनको शांत करो. अपने आप तो यह शांत हो नहीं सकते. जैसे माँ युक्ति करे कि दोनों भाई यदि झगड़ते हों तो दोनोंका झगड़ा भी निबटा सके और दोनों जिसमें प्रसन्न भी रहें भक्ति ऐसी माँका रोल अदा करती है. जैसे कृष्ण और बलराम के झगड़ेका सूरदासजीने बहुत सुंदर पद लिखा है *"मैया मोहे दाऊ बहुत खिजायो मोसों कहत मोलको लीनो तू जसुमति कब जायो! कहा करों इह रिसके मारे खेलन हों नहीं जात. पुनि पुनि कहत कौन है माता को है तेरो तात? गोरे नंद यशोदा गोरी तुम कित श्यामल गात? चुटकी दे दे ग्वाल नचावत हंसत सबे मुसकात. तू मोहीको मारन सीखी दाऊ कबहू न खीजे. मोहन मुख रिसकी यह बातें जसुमति सुनि सुनि रीझे. सुनहु कान्ह बलभद्र चबाउ जनमत ही को धूत सूर-श्याम मोहि गोधनकी सों हों माता तू पूत."* अर्थाद् यदि माँ बालकको आश्वस्त कर सकती हो तो भाईका झगड़ा बहुत बड़ी बात नहीं रह जाती. बलरामको किसी और तरहसे आश्वस्त कर देगी और कृष्णको इस तरहसे कर देगी. यह हुनर भक्तिमें है. ज्ञान-वैराग्य झगड़ा करेंगे. ज्ञान कहेगा कि कोई अन्य है ही नहीं, वैराग्य कहेगा कि भगवान्के सिवाय सभी अन्य हैं. भक्ति कहेगी कि दोनों मेरे पास बैठो, मैं तुम्हें हकीकत समझाती हूं कि जिसको भगवान्का जो स्वरूप अच्छा लगता है बस उसके अलावा उसके लिए सबकुछ अन्य है. उन सभी वस्तुओंका त्याग कर और ज्ञानको समझा देगी कि ये सारे रूप उसीके तो हैं. अर्थात् तुम्हारे घर बिराजते ठाकुरजी अखिल ब्रह्मांड-स्वरूप हैं और वैराग्यको समझायेगी कि अन्याश्रय नहीं करना क्योंकि इनके अलावा बाकी सभी अन्य हैं. भक्तिमें ऐसी माँ होनेके गुण हैं कि

वह ज्ञान और वैराग्य दोनोंको समझा सकती है.

यह जो पूरी पृष्ठभूमि है उसे ध्यानमें रख कर तुम जब यह स्तुति पढ़ोगे तो समझमें आयेगा कि भक्ति भगवान्के बहुरूपोंका समन्वय किस प्रकार कर रही है! वैराग्य जब यह कह रहा है कि भगवान्के सिवाय अनुराग किसी और वस्तुमें नहीं करना, तो भक्ति कहेगी कि भगवान्ने तुम्हारे लिए कोई एक स्वरूप धारण किया है, उसीमें तुम्हें सर्वात्मभाव रखना चाहिये. उसके सिवाय अन्य सभीमें वैराग्य करना चाहिये. यह अन्याश्रय न करनेका भाव है. ज्ञानकी आवश्यकता यह है कि बाकी सब द्वेष करनेके लिए अन्य नहीं हैं, समझनेके लिए अन्य हैं. बाकी तो अन्य कुछ है ही नहीं. यह है इस स्तुतिका आधार. इस कारण कह रहे हैं "**ज्ञान-वैराग्ययोः अत्र निर्णयः समुदीरितः**" नलकूबर-मणिग्रीवने स्तुति करके ज्ञान-वैराग्यका झगड़ा यहां सुलझा दिया है. जैसे यशोदाजीने झगड़ा सुलझा दिया था. महाप्रभुजी संक्षेपमें स्तुतिका विषय समझा रहे हैं.

(सुबोधिनीकारिका-२)

मूलरूपो भवान् पूर्वं जगद्रूपस् तथैव च।।
मध्यरूपः इति त्रेधा ज्ञानरूपो निरूपितः।।२।।

भगवान्का एक मूलरूप है, जो कि पहला है. इसके बाद जगद्रूप है. तीसरा रूप मध्यरूप भी है. ये तीनों रूपसे भगवान् ही काम कर रहा है. जो प्रपंच है वह भगवान्के द्वारा धारण किया हुआ एक रूप है पर जिस तरह तपेलीमें भरे हुए दूधमें जामन डालनेसे सारा दूध दही बन जाता है, उस तरह भगवान् जगद्रूप बननेके बाद पूर्णरूपसे जगत् नहीं बन जाता. अपितु कर्तारूप होनेके कारण जगत् बननेके बाद भी अपना एक अलग अस्तित्व रख सकता है. इस कारण ब्रह्मको जाननेके लिए उसके जगत्रूपको देखना चाहिये और माननेके लिए उसके मूलरूपको देखना चाहिये. यह संश्लेषणमें

ज्ञान-वैराग्यके झगड़े मिट जाते हैं क्योंकि "ब्रह्मरूपं जगत् ज्ञातव्यं (ब्रह्म) जगतो अतिरिच्यतेइति न तत्र आसक्तिः कर्तव्या" (भाग.सुबो.२।९।३५) जगत्को ब्रह्मरूप समझना है पर ब्रह्म जगत् बननेके कारण पूर्णतया खप नहीं जाता. इसलिए आसक्ति तो जगत्में नहीं, अपितु ब्रह्ममें ही होनी चाहिये. अब आपने यदि भक्तिवर्धिनी पढ़ी हो तो समझ आयेगा कि जब-तक प्रेम है तब-तक जगत्में आसक्ति होनेमें कोई समस्या नहीं है क्योंकि जगत्को आप प्रेम कर रहे हो भगवान्में आसक्तिके लिए. पर भगवान्के साथ यदि आप प्रेम कर रहे हो तो जगत्की आसक्तिके लिए तो यह विपरीत हो गया. आप प्रपंचको प्रेम कर रहे हो प्रपंचके लिए नहीं अपितु भगवान्के लिए. इसका अर्थ है कि आप भगवान्में आसक्त हैं. इस प्रेमके साथ वैराग्य चल सकता है पर इसके विपरीत यदि आपकी आसक्ति प्रपंचमें है तो उसके साथ वैराग्य नहीं चल सकता. क्योंकि आसक्ति और वैराग्य साथ नहीं चल सकते. प्रेम और वैराग्य साथ चल सकते हैं. आपके भावनात्मक लगावके पदानुक्रमपर यह निर्भर करता है कि आप किस वस्तुको प्राथमिकता दे रहे हो, प्रपंचको अथवा भगवान्को. यदि आपकी प्राथमिकता भगवान् है और उसके साथ आप संसारको भी प्रेम कर रहे हो तो वह चल सकता है क्योंकि आपकी प्राथमिकताएं सुनिश्चित हैं.

अब यह जो बात है कि ज्ञान-वैराग्य दो भाई आपसमें झगड़ रहे हैं, यदि ये भक्तिके पुत्र हैं तो भक्ति इनका झगड़ा सुलझा देगी. महाप्रभुजीने वेदस्तुतिमें एक जगह कहा है कि "यदि आप जगत्को भगवान्के रूपमें समझ रहे हो और यह कह रहे हो कि अब मुझे भगवान्से क्या प्रयोजन, जगत्को ही क्यों स्नेह नहीं करना चाहिये. यदि ऐसी बात है तो मैं आज ही ब्रह्मवादका त्याग करता हूं. फिर तो मैं बुद्धके शून्यवादको इससे अधिक पसंद करूंगा" वहां महाप्रभुजीने शून्यवादको उचित ठहराया है "यदि मेरे ब्रह्मवादका

आप इस तरह दुरुपयोग करोगे तो मैं बुद्धके शून्यवादको इससे अधिक पसंद करूंगा. ब्रह्मवाद तो मैंने इसलिए स्थापित किया क्योंकि इससे आपको भक्ति करनेका आधार मिले. यदि इसी ब्रह्मवादका आप भक्तिके विरोधमें उपयोग कर रहे हो तो फिर मैं इस बातसे सहमत नहीं हूं''. यहां महाप्रभुजीने अधिक शक्तिशाली तर्क दिया है कि ब्रह्मवाद झूठ है और शून्यवाद सच्चा है. बड़े-बड़े पंडित अचंभित रह जाते हैं कि महाप्रभुजी यह क्या कह रहे हैं! सभी ग्रंथोंमें जो महाप्रभुजी ब्रह्मवादको स्थापित कर रहे हैं वे यहां शून्यवादका समर्थक अचानक क्यों बन गये! महाप्रभुजीने ब्रह्मवाद इसलिए कहा क्योंकि आपको भक्तिका Eco-friendly environment प्राकृतिक वातावरण मिल पाये. उसीका यदि तुम भक्तिके विरोधमें उपयोग करना चाह रहे हो तो चलो मैं खड़ा हूं इस ब्रह्मवादका विरोध करनेके लिए.

जो महाप्रभुजी पुष्टिभक्तिका समर्थन कर रहे हैं, यदि लोग उसका दुरुपयोग कर रहे हैं तो महाप्रभुजी कह रहे हैं कि छोड़ो पुष्टिभक्ति जो मैंने आपको समझाया. "**विक्षेपाद् अथवा अशक्त्या प्रतिबन्धादपि क्वचिद् अत्याग्रहप्रवेशे वा परपीडादिसंभवे... तत्र पूजा त्यक्तव्या**'' (त.दी.नि.प्र.२।२४७) छोड़ दो भक्ति यदि तुम्हारी भक्तिके कारण तुम्हें कोई विक्षेप होता हो, अशक्तिमें भी तुम हठसे भक्ति ही कर रहे हो, घरमें सब विरोधी होनेके बावजूद तुम उनको दबा कर भक्ति कर रहे हो, तुम्हारे भीतर किसी प्रकारका अत्याग्रह बंध गया हो कि सेवा तो इसी तरह होगी दूसरी तरह नहीं तो सेवा-पूजा छोड़ दो. परपीड़ा दे कर सेवा कर रहे हो तो भी छोड़ दो सेवा-पूजा. क्योंकि पुष्टिभक्तिकी सुकुमारता इसमें खंडित होती है. आपको भक्तिका बुखार गांवका लहु पीनेके लिए तो नहीं आया. ऐसा बुखार चढ़ानेकी कोई आवश्यकता नहीं है. चढ़ाओगे तो दिमागी तौरपर बीमार हो जाओगे.

महाप्रभुजीने अपने सिद्धांतमें बहुत ही संतुलन रखा है. जब इस सिद्धांतको हम उसी भावनासे लेंगे तो ही हमें भक्तिमार्गमें आते सभी प्रश्नोंका उत्तर मिल जाता है और यदि उस भावनासे नहीं लेंगे तो न्यायसंगत वस्तु भी अनुचित हो जाती है. इसी कारण **"मूलरूपो भवान् पूर्वं जगद्रूपस् तथैव च, मध्यरूपः इति त्रेधा ज्ञानरूपो निरूपितः"** महाप्रभुजी यहां ब्रह्मके तीन रूप दिखा रहे हैं. बादमें यह व्यवस्था करके बतायेंगे कि कौनसे रूपके साथ हमारा कैसा व्यवहार होना चाहिये.

(सुबोधिनीकारिका-३)

माहात्म्यज्ञापनार्थाय दुर्ज्ञेयत्वं च वर्णितम्॥
सर्वरूपोपि सर्वस्मिन् गृह्यमाणैः न गृह्यते॥३॥

तीन रूप बतानेके बाद कह रहे हैं कि यह मत समझना कि तीन ही रूप हैं. यह तो केवल उसकी महानता बतानेके लिए कहे हैं. एक होनेके बाद भी उसके तीन रूप हैं. यदि तुम्हें माहात्म्य समझ नहीं आया और कहीं उलटा ही समझमें आया कि बस तीन ही रूप हैं. फिर तो आपने उसके माहात्म्यका सही आकलन नहीं किया. यह पक्ष खुला रखना पड़ेगा कि वह वह अपने ऐक्यकी तरह त्रैतमें भी बंधा हुवा नहीं नहीं है. उसे बांधोगे तो माहात्म्य खंडित होगा. इसी कारण महाप्रभुजी एक स्थानपर कहते हैं कि भगवान्ने जगत् बनाया इसे हम भगवान्का माहात्म्य समझते हैं, यह भगवान्के पक्षसे उनका माहात्म्य है ही नहीं. यह तो बस इतनी छोटीसी बात है कि कोई मनुष्य बैठा था और वह खड़ा हो गया. इसमें माहात्म्य जैसी क्या बात है? माहात्म्य इसमें नहीं है. बहुतसे लोग भगवान्के जगत्के कर्ता पालक और संहार करनेके कारण उनको महान मानते हैं. महाप्रभुजी कहते हैं कि इसमें उन्होंने कौनसा शेर मार दिया! मुझे सचमुच महाप्रभुजीकी यह पंक्ति बहुत अरसे तक गले नहीं उतरती थी कि वे कहना क्या चाह रहे हैं. जब

मैंने बर्ट्रेंड् रसॅल्को पढ़ा तब उसका एक तर्क पढ़ा कि "जो लोग यह कहते हैं कि भगवान् सर्वशक्तिमान है क्योंकि उसने इस ब्रह्मांडकी रचना की है. मैं कहता हूं कि यह एक झूठा तर्क है क्योंकि उसकी शक्ति इतनी ही तो है कि वह ब्रह्मांडकी रचना कर पाया. उससे उसे सर्वशक्तिमान तो नहीं कहा जा सकता" यह पढ़नेके बाद मुझे महाप्रभुजीकी बात सच लगी कि यह बात ही तो महाप्रभुजी कह रहे हैं. उसी बातको रसॅलने नास्तिकताके लिए कही है. वही बात महाप्रभुजीने आस्तिकताके लिए कही है. वे कहते हैं कि भगवान्ने जगत् बनाया वह तो अपनी दृष्टिसे महानता है. भगवान्की दृष्टिसे कोई महान कार्य नहीं है.

एक बात समझो कि हाथी कितने सारे गन्ने खा जाता है. यह हमारे लिए बड़ी बात है हाथीके लिए थोड़े ही कोई बड़ी बात है! इतने सारे गन्ने हम नहीं खा सकते. इसीलिए हमको हाथीका माहात्म्य लगता है. प्रभाकर माचवेने एक बहुत सुंदर कविता लिखी है— "*गाय बोली बैलसे क्यों घूरते हो भाई, देखते नहीं दुनिया कहती मुझे माई, बैल बोला धत्त रे मारूंगा दुलत्त रे, मैं भी चौपाया तू भी चौपायी.*" होगी गाय लोगोंकी माँ पर बैलके लिए माँ थोड़े ही है? बैलके लिए गायका कोई माहात्म्य नहीं है. इसी तरह जगत् रचने, पालन करने, संहार करने के कारण मनुष्यके लिए वह माहात्म्य हो सकता है. पर महाप्रभुजी कह रहे हैं कि भगवान्के लिए वह कोई माहात्म्य नहीं है. हम उसे माहात्म्य इसलिए मान रहे हैं क्योंकि हमारी सामर्थ्यसे वह परेकी वस्तु है. रसॅल्को पढ़नेके बाद मुझे महाप्रभुजीका वाक्य समझ आया. कई बार नास्तिकवाद पढ़नेसे आस्तिकवाद समझ आता है, आपमें वह सिफत होनी चाहिये बातको पकड़नेकी.

यही बात कह रहे हैं कि "**माहात्म्यज्ञापनार्थाय दुर्ज्ञेयत्वं च**

वर्णितम्'' तीन तरहसे समझानेके बाद कह रहे हैं कि दुर्ज्ञेय है. वेदमें कई तरह मॉडल् समझाये गये हैं ब्रह्मके बारेमें. ब्रह्मने जगत् कई तरहसे उत्पन्न किया उसका वर्णन आता है. महाप्रभुजीने उसकी समीक्षा की है ''**कदाचित् पुरुषद्वारा कदाचित् पुनर् अन्यथा कदाचित् सर्वम् आत्मैव भवति इह जनार्दनः महेन्द्रजालवत् सर्वं कदाचिद् मायया असृजत्**'' (त.दी.नि.१।३७-३८) महाप्रभुजी अंतमें कहते हैं कि इस तरह कई तरहके वर्णनसे तो समझनेमें उलझन होगी. कोई निर्णय तो आ नहीं रहा है. जैसे मैं कहूं कि यह सोफा है, फिर कहूं कि नहीं यह तो कुर्सी है, फिर कहूं कि नहीं यह तो पलंग है. अब सुननेवाले तो उलझनमें पड़ जायेंगे. क्योंकि एक तरहसे वर्णन करो तो समझमें आये. दस तरहसे वर्णन करो तो कैसे समझ आयेगा! मूलमें वेदने एक तरहसे नहीं, अनेक तरहसे वर्णन किया है कि भगवान्ने जगत्की रचना किस तरह की है. और सारे वर्णन एक दूसरेके विरोधाभासी हैं.

उदाहरणके लिए शिवपुराण उठा कर देखो कि शिवजीने जगत्की रचना की है, वही इसका पालन कर रहे हैं और वही इसका संहार करेंगे. विष्णुपुराण कहता है कि विष्णुने जगत्की रचना की है, वह ही इसका पालन कर रहे हैं और वही इसका संहार करेंगे. देवीपुराण कहता है कि देवीने जगत्की रचना की है, वही इसका पालन कर रही हैं और वही इसका संहार करेंगी. वहां तो यहां तक कहा है कि देवीने ही ब्रह्मा विष्णु महेश को बनाया. विष्णुपुराणमें लिखा है कि देवी तो विष्णुकी अर्धांगिनी है. शिवपुराणमें लिखा है कि यह तो अर्धनारीश्वर है. पाश्चात्य शास्त्रविद समझते हैं कि हमारे शास्त्र एक-दूसरेके विरोधी होनेके कारण सब अप्रमाण हैं. क्योंकि इनमें आपसमें संगति नहीं है. वेद कहता है कि ऐसी थोथी संगतिकी आवश्यकता आपको अपनी संकीर्ण बुद्धिके कारण लग रही है. यह बात बौद्धिक स्तरसे ऊपरकी बात है. ये संकीर्णताओंका समावेश

करके चलनेवाली बात है. जैसे कि जगत्‌में चूहा है तो बिल्ली नहीं हो सकती. बिल्ली है तो चूहा नहीं हो सकता. और दोनों हों तो बिल्ली चूहा खाती नहीं होगी या फिर दोनों ही नहीं होंगे. ऐसा क्यों, क्योंकि बिल्ली चूहेको खा जाती है. तर्कके अनुसार बिल्ली यदि चूहेको खा जाती है तो चूहे रहने ही नहीं चाहिये और चूहे यदि नहीं हों तो बिल्ली भूखी मर जानी चाहिये. इस अर्थमें तो दोनों ही नहीं होने चाहिये. पर पृथ्वी इतनी विशाल है कि इसपर बिल्ली और चूहे दोनों हैं. एक छोटे फ्लॅटमें दोनों नहीं हो सकते पर पृथ्वीकी विशालतामें तो साथ हो ही सकते हैं. बकरी और बाघ साथमें होते हैं कि नहीं? इसी तरह यह जो असंगति है वह बुद्धिकी संकीर्णताके कारण दिखायी दे रही है. बुद्धिकी क्षुद्रतामें तो यह सचमें असंगत है पर One has to rise above the narrow framework of rationality, then only one can realise the Brahmic enormity or magnitude.

इसी कारण अनेक तरहके वर्णन करनेके बाद वेद कहता है कि **“को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुतः आजाता कुतः इयं विसृष्टिः यो अस्य अध्यक्षः परमे व्योमन् सो अंग वेद यदि वा न वेद”** (ऋक्.संहि.८।७।१७।६-७) इसमेंसे कौनसी बात सही है यह कौन कह सकता है! जो इसका मूलभूत कारण है कि जो एक परम व्योममें है, उसको पता चलता है या उसे भी पता नहीं चलता? मॅक्सम्यूलर् कहता है कि भगवान्‌के बारेमें यदि कोई दूसरे धर्मका आस्तिक ऐसा कहे तो उसके फेफड़े फट जाते. हमारे फेफड़े क्यों नहीं फटते क्योंकि हम तो यह बात भगवान्‌की स्तुतिमें कर रहे हैं. महाप्रभुजी कहते हैं कि यह बात हम इसलिए कह पा रहे हैं क्योंकि हम यह बात भगवान्‌पर कोई आरोप लगानेके लिए नहीं कर रहे हैं. अपितु इस कारण कह रहे हैं क्योंकि हम समझ रहे हैं कि जितनी भी ये विरोधी बातें कही जा रही हैं वे उस

विरोधाभासको समझ कर, उसकी संगतिको समझ कर, उसकी स्तुतिमें कही जा रही हैं. ये सारी बातें उसके यश वर्णन करनेके लिए कही जा रही हैं. आपकी बुद्धि संकीर्ण है, इसलिए सारी बातें आपको विरोधी लग रही हैं.

आपको एक बात बताऊं, राजस्थानमें रणमें एक लंगनिया बंधु हैं. वे मुसलमान हैं. ये लोग अशिक्षित हैं, कुछ पढ़ना लिखना नहीं जानते. पर पांच-छ हजार हिन्दुओंके भजन इनको याद हैं. आज-तक कोई भी गायक मैंने ऐसा नहीं देखा जो गाते समय सामने लिखा हुआ न रखे. इन लोगोंको जब पढ़ना ही नहीं आता तो लिखा हुआ सामने रख कर लाभ क्या! पूरी-पूरी रात भजन गाते हैं. इनको इन्टरव्यूमें पूछा कि "आप रियाज़ कब करते हो?" उन्होंने पूछा "रियाज़ मानें क्या?" पूछनेवालेने कहा "'रियाज़' मानें अभ्यास" वह बोले "हम तो छोटेपनेसे गा रहे हैं. हमने तो अभ्यास किया ही नहीं." मेरी एक परिचित उन्हें रशिया ले गयी. साथमें एक संगीतके आलोचकको भी ले गयी थी. दो कार्यक्रम सुननेके बाद आलोचकने वहां स्टेज्पर यह घोषणा की कि "अब यह गीत इस रागकी बंदिशमें गायेंगे" उन्होंने इससे पहले जितनी भी जगह वह गीत गाया था वह इस बार अलग बंदिशमें गाया. बेचारा आलोचक घबरा गया कि इनके साथ क्या करना. हर बार एक नयी चीज प्रस्तुत कर रहे थे. वे कितनी तरहके राग, कितनी तरहके अंदाज़, कितनी तरहके भजन और ऊपरसे अनपढ़. यह है विरुद्धधर्माश्रयता. दिल्ली सरकारने उन्हें कार्यक्रम देनेके लिए बुलाया और पारिश्रमिकके बारेमें पूछा. उन्होंने कहा "किसीको हमारा कार्यक्रम यदि पसंद आता है तो वह एक बकरा देते है और बहुत पसंद आता है तो ऊंट देते है. आप क्या देंगे?" वहांके कल्चरल् सॅक्रेटरीने कहा "यह सब यहां नॅशनल् प्रोग्राम्में कैसे लाया जाय!" बहुत बड़ी समस्या खड़ी हो गयी वहां. चले गये वे लोग. मैंने पूरी रात जाग कर

इनके भजन सुने हैं. उनका भण्डार ही खतम नहीं होता, फिर थकते भी नहीं हैं. अपन् सोचें कि यह भजन तो इन्होंने पहले इस रागमें गाया था तो उसी रागमें गायेंगे पर वे उसे दूसरे ही रागमें गा देते हैं.

वेद भी यह ही कह रहा है कि "**को अद्धा वेद कः इह प्रवोचत् कुतः आजाता कुतः इयं विसृष्टिः यो अस्य अध्यक्षः परमे व्योमन् सो अंग वेद यदि वा न वेद**" (ऋक्.संहि.८।७।१७।६-७) ब्रह्मने कौनसे मॉडल्से कौनसी सृष्टि पैदा करी, कौन इसका अनुमान लगा सकता है और कौन इसको समझ सकता है? गानेवालोंको भी गानेसे पहले यह कभी-कभी पता नहीं होता होगा कि वह अब गीत कौनसे रागमें गायेंगे. गाते-गाते ही मूड्के हिसाबसे निश्चय करते होंगे कि इस रागमें गा देते हैं.

एक धनी व्यक्तिकी शादीमें इनका प्रोग्राम् था. ये लोग कव्वाली भी गाते हैं. मैं भी वहां गया था. बाकी सारे लोग अपनी बातोंमें व्यस्त थे. मुझे क्योंकि इनकी कला बहुत पसंद है इसलिए मैंने निश्चय किया कि मैं तो इनका गाना शांतिसे बैठ कर सुनूंगा. बस मुझे देख कर सूरदासजीके ही भजन गाने लगे. मैं भी अचंभित रह गया कि क्या सामर्थ्य है इन लोगोंकी! कब क्या गायेंगे यह बिल्कुल ही अप्रत्याशित है. इससे हम समझ सकते हैं कि ब्रह्मका स्वभाव क्या है. अभी किसीने एक शंका करी है कि ऐसा भी तो हो सकता है कि सारे मॉडल् झूठे हों. लॉजिकली और बौद्धिक स्तरपर तो यह ठीक हो सकता है. पर यदि भक्ति हो तो लगेगा कि इसमें झूठ क्या हो सकता है. वह जो कर रहा है, जैसा कर रहा है, वह सब सच है. अब विरोधाभासको आरोपकी तरह लेना अथवा उसके यशके रूपमें लेना यह आपके रवैयेपर निर्भर करता है.

इसीलिए समझा रहे हैं कि "**माहात्म्यज्ञापनार्थाय दुर्ज्ञेयत्वं च वर्णितं, सर्वरूपोऽपि सर्वस्मिन् गृह्यमाणैर् न गृह्यते**" तीन तरहसे माहात्म्य समझाया. इससे हमें लगेगा कि अब तो हम सब समझ गये. पर तीन रूप होनेपर भी वह दुर्ज्ञेय है. महाप्रभुजीकी वाणीका सौंदर्य देखो कि क्या है, ब्रह्मका सौंदर्य यह है कि वह सर्वरूप है और सब तुम्हें दिखलायी दे रहा है पर जो तुम्हें दिखलायी दे रहा है वह उसीमें छिपा बैठा है. यह सब रूप उसने धारण किये हैं. वे सभी रूप हमको दिखायी दे रहे हैं. पर जो दिख रहा है उसीमें वह छुपा है. एक पर्शियन् सूफीने बहुत सुंदर बात कही है "*चश्मे जुज रंगे गुलो लालाओ बीनद वर्ना आंच-ए दर पर्द-ए-रंगस्त पदीदारतरस्त*" अपनी आंख पुष्पोंके विविध रंगोंको देखनेमें इतनी अटक जाती है कि इन रंगोंमेंसे जो वस्तु प्रकट हो रही है बस उसीको नहीं देख सकती. बाकी सब देख रही है. ईश्वर भी वैसा ही है. सर्वरूप होते हुए भी सारे रूप उसके दिखायी दे रहे हैं. पर उन रूपोंमें वही दिखलायी देना बंद हो जाता है.

ब्रह्ममें स्वरूपकोटि (subtantial aspect), कारणकोटि (causal aspect) और कार्यकोटि (resultant aspect) ऐसे तीन भेद बताये गये हैं. 'स्वरूप'का अर्थ है all encompassing मानें जो सभीको शामिल करे ऐसा सर्वरूप. उस स्वरूपके दो भाग हैं. एक कारणकोटि और दूसरा कार्यकोटि. 'कारणकोटि' मानें ब्रह्मका ऐसा स्वरूप कि जिससे जगत् गढ़ा गया है. 'कार्यकोटि' मानें गढ़ा हुआ जगत्. जैसे यह सफेद बोर्ड है उसे आप ब्रह्म समझो. उसपर तीन रेखा एक त्रिकोणके रूपमें चित्रित करो. अब रेखाओंका चित्र बनानेके या देखनेके लिए कोई सरफेस् सफेद बॅक्-ग्राउन्ड् तो चाहिये. वह बॅक-ग्राउन्ड् स्वरूपकोटि कहलायगी. जब यह त्रिकोण पूरा हो गया तो वह कार्यकोटि हो गया. यहां स्वरूपको महाप्रभुजी 'मूलरूप' कह रहे हैं. उसके बाद एक 'मध्यरूप' कह रहे हैं. तीसरा एक 'जगद्रूप' कह रहे हैं.

अब **“मूलरूपो भवान् पूर्वं जगद्रूपस् तथैव च, मध्यरूप: इति त्रेधा ज्ञानरूपो निरूपित:.”** (कारिका-२) मूलरूप भगवान् अर्थात् स्वरूपकोटि मध्यरूप भगवान् अर्थात् कारणकोटि और जगत्रूप भगवान् अर्थात् कार्यकोटि. इस प्रकार भगवान्का वर्णन करना यह भगवान्का ज्ञान है. महाप्रभुजी इसको किस प्रकार विभाजित कर रहे हैं यह थोड़ा समझें तो यह बात बिल्कुल साफ जायेगी.

भागवतके दशमस्कन्धका महाप्रभुजी सात्त्विक राजस तामस और निर्गुण ऐसे चार प्रकरणोंमें वर्गीकरण करते हैं. इस दशमस्कन्धमें ९० अध्याय हैं. इन सारे अध्यायोंका चार विभाजन जो कि **“चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च त्रिभिस्तथा षड्भि: विराजते यो असौ पञ्चधा हृदये मम”** (मंग.५) पहले चार अध्याय जन्मप्रकरणके, दूसरे चार तामसप्रकरणके २८ अध्याय, तीसरे चार राजसप्रकरणके २८ अध्याय, चौथे तीन सात्त्विकप्रकरणके २१ अध्याय, पांचवें गुणप्रकरणके ६ अध्याय. इस तरह ८७ अध्याय और १२-१३-१४ यह तीन अध्यायोंको महाप्रभुजी प्रक्षिप्त मानते हैं. इस रूपरेखामें २८ अध्यायोंका जो एक प्रकरण है वह चारमें विभाजित है. ७ अध्यायका प्रमाणप्रकरण, ७ अध्यायका प्रमेयप्रकरण, ७ अध्यायका साधनप्रकरण और ७ अध्यायका फलप्रकरण.

तामसप्रकरणसे कहना चाह रहे हैं कि जो भक्त कृष्णके साथ है वे तामस प्रकृतिके हैं. प्राय: ‘तामस’ शब्द गालीके अर्थमें आता है. वह अर्थ यहां नहीं है. तामस इस अर्थमें प्रयोग हुआ है कि कृष्णकी पूरी हकीकत इन्हें पता नहीं है और इतना ही नहीं वह हकीकतको जाननेके इच्छुक भी नहीं हैं. इसलिए यह उनका तामसत्व है. वे बस कृष्णसे संतुष्ट है. उन्हें कृष्णकी हकीकतसे कुछ लेना-देना नहीं है. वे केवल कृष्णसे प्रेम करते हैं. क्योंकि कृष्ण उनके बीच पैदा हुआ है. इस कारण उनको ‘तामस’ कहा गया है.

इसके पश्चात् राजसप्रकरण आता है. राजस प्राय: संशयमें रहते हैं. इसका एक उदाहरण देता हूं. किसी राजाके बारेमें ऐसा कहा जाता है कि वह किसीपर गुस्सा हो गये. उन्होंने उसे फांसीकी सजा सुना दी. वह यह भी चाहते थे कि फांसी उनकी हाजिरीमें हो. जो गुनहगार थे उसे राजाके राजस स्वभावकी कमजोरी पता थी. उन्हें जब फांसीके तख्तपर ले जा रहे थे तो वे अपना सिर धुनाने लगे. राजाको बड़ा विचित्र लगा और उन्हें जाननेकी जिज्ञासा हुयी कि यह क्या कहना चाह रहे हैं. उन्होंने उन लोगोंको अपने पास बुला कर पूछा. उन्होंने कहा "यह कहने लायक बात नहीं है." राजाने बहुत जिद्द की. वह बोला "चाहे फांसी चढ़ा दो पर यह बात तो हम नहीं कह सकेंगे." राजा बोले "चलो फांसी माफ. पर कहो तो सही कि बात क्या है?" यह सुननेके बाद वह बोला "ऐसा है महाराज कि ज्योतिषीने हमको बताया था कि जो तुम्हारी मृत्युका कारण होगा वह अवैध संतान होगा. हम यही सोच रहे थे कि ऐसे तो आप हो नहीं सकते" राजाको खुद संशय हो गया और इस प्रकार माफी मिल गयी. यह राजस प्रकृति है. इसी प्रकार जो राजस भक्त थे वे इसी संशयमें रहते थे कि भगवान् है कि क्या है. उनकी संशयात्मक बुद्धि है, उसे राजस कह रहे हैं. क्योंकि उनको निश्चय नहीं हो पा रहा है कि यह मनुष्य जैसा दिख रहा है पर काम तो मनुष्य जैसे कर नहीं रहा है. तो यह आदमी है कि भगवान् है? उनकी दुविधा है वह उनका राजस स्वभाव है. वह उनके स्नेह में भी प्रकट हो रहा है. क्योंकि यदि यह भगवान् है तो स्नेहके लायक नहीं, अपितु वंदनके लायक है. फिर वह मनुष्यकी तरह लगने लगता है तो फिर स्नेह हो जाता है. वे निरंतर इस दुविधामें थे कि उसे आदर देना चाहिये कि स्नेह करना चाहिये. उनका मन निरंतर हिचकोले लेता रहता है आदर और स्नेह के बीच. इसलिए उनको वहां 'राजस' कहा है.

राजस प्रकरणके अंत तक कृष्णने इतने तूफान कर दिये थे कि तब-तक यह निश्चित हो गया था कि यह है कौन! इसलिए सात्त्विक भक्तोंको प्रमाणकी आवश्यकता रह नहीं गयी थी. इसलिए सात्त्विक प्रकरणमें प्रमेय साधन और फल ऐसे तीन ही विभाग हैं.

उसके बाद यह तो पूरे तौरपर स्थापित हो ही गया था कि यह मनुष्य नहीं पूर्ण ब्रह्म है. इसलिए अंतके अध्याय गुण प्रकरण कहे जाते हैं. प्रमाण प्रमेय साधन और फल ऐसे चार खंड हैं उनका महाप्रभुजीने बहुत व्यवस्थित विश्लेषण किया है. इसके एक-एक अध्यायमें भगवान्के यश श्री ज्ञान वैराग्य वीर्य ऐश्वर्य यह छ गुण और सातवें स्वयं भगवान् ऐसा सातमें विभाजन है. ऐसे सात-सात अध्यायोंका एक-एक चौकड़ा है. उदाहरणके लिए तामस प्रकरणके पहले अध्यायमें ऐश्वर्यके प्रमाणका वर्णन है. दूसरे अध्यायमें वीर्यका प्रमाण. पर ये सब तामसके अंतर्गत आते गुण हैं.

इसका एक उदाहरण देता हूं. व्रजसे हमारे यहां एक व्यक्ति नौकरी ढूंढता हुआ आया. मैं उस समय कोल्हापुरमें था. गरमीके दिन थे. पर उन दिनों क्योंकि वहां औद्योगीकरण नहीं हुआ था, इस कारण व्रजकी गरमी और कोल्हापुरकी गरमीमें बहुत अंतर था. कोल्हापुरमें तो जेठके महीनेमें भी ठंड लगती थी. वह ऐसा मौसम देख कर बोला "अरे, हम कौनसे देसमें आय गये. यहां तो जेठमेंहु जाड़ो पड़ रह्यो है." मैंने कहा "हां यहां तो इस समय जाड़ा पड़ रहा है." उस समय देशकी प्रधानमंत्री इन्दिरागांधी थी. उसने पूछा "यहां हू इन्दिरागांधीको राज है कहा!" मैंने कहा "हां यहां भी उसीका राज है." उसी वर्ष इमरजेंसी लगी थी. उसे मेरी बातपर विश्वास नहीं हुआ. नीचे जा कर दो-चार दुकानोंमें पूछ कर आया "भैया यहां इन्दिरागांधीको राज है का?" जब वहाँसे भी उसे यही जवाब मिला तो वह बोला "अरे बड़ो राज है इन्दिरागांधीको. यहां

तो जेठमें हू जाड़ो पड़त है.'' अब उसके तामस स्वभावके कारण उसे वहांके वातावरणमें भी इन्दिरागांधीका माहात्म्य दिख रहा है. यह है तामस ऐश्वर्य. उनके अपने मापदंड होते है, किसीका ऐश्वर्य वीर्य यश समझनेके लिए.

मेरा एक सितारवादक मित्र है. उसके पड़ौसमें एक पारसी बाई रहती थी. उसके यहां सितारकी ट्यूशन चलती थी. वह बहुत गुस्सा होती थी. बोलती थी ''सारा दिन टूं टूं करता है. पता नहीं कुछ कमाता भी है या नहीं.'' किसीने उसे कहा ''अरे बड़ा कलाकार है. एक प्रोग्राम्का पंद्रहसौ रुपये लेता है.'' यह बहुत पुरानी बात है. तब पंद्रहसौकी कीमत बहुत होती थी. यह सुन कर वह तुरंत आयी और कहने लगी ''तुम तो बहुत अच्छा बजाते हो.'' जो यह कहती थी कि दिन भर टूं-टूं करते हो, वह पैसेकी बात सुन कर कह रही है कि ''अच्छा बजाते हो.'' यह है तामस ज्ञान. किसीकी महानता समझनेका उसका मापदंड है. कला उसके लिए कुछ कीमत नहीं रखती पर पैसेसे वह व्यक्ति महान है. यह उसे समझ आता है. इसी तरह तामस भक्तोंका भगवान्के गुणोंको समझनेका कोई तामसी मापदंड ही है. राजस भक्तका कुछ राजसी मानें संशयात्मक मापदंड है. घड़ीमें कुछ लगता है घड़ीमें कुछ और लगता है. इसी तरह सात्त्विकोंके अपने मापदंड हैं.

इस तरह प्रमाण प्रमेय साधन फल ऐसे चार-चार प्रकरणोंके जो सात-सात अध्याय हैं, उनमें ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य और सातवें भगवान् ऐसे वर्गीकरण महाप्रभुजीने किया है. पहला विभाजन जन्म तामस राजस सात्त्विक गुण. दूसरा उपखंड प्रमाण प्रमेय साधन फल. तीसरा उप-उप-खंड ऐश्वर्य श्री यश वीर्य ज्ञान वैराग्य और भगवान्. इसतरहसे महाप्रभुजीने दशमस्कंधकी रूपरेखा बनायी है. इस रूपरेखामें यह नलकूबरका प्रकरण ज्ञान-वैराग्यके अंतर्गत आता है.

सात्त्विकवृत्ति यदि किसीकी है तो वह हर बातको पहले समझनेका प्रयास करता है. जब वह किसी बातको समझ जाते हैं तभी वह उसे स्वीकार करते हैं. तामस लोग बिना समझे भी स्वीकार कर लेते हैं, यदि उन्हें जच गयी कोई बात तो. राजस संशयसे स्वीकारता है.

एक उदाहरण देता हूं. लखनऊमें एक रस्तोगीजी थे. बहुत अच्छे विद्वान. जब-तक वह लखनऊमें थे, तब-तक कोई भी गोस्वामी बालक वहां पधारनेसे घबराते थे. क्योंकि वह ग्रन्थोंपर प्रश्न कर-करके उनका लहु पी जाते थे. महाराजने वह ग्रन्थ देखा भी न हो तो उत्तर कहांसे देंगे? एक बार मेरे पिता दीक्षितजी महाराज वहां गये. उनसे भी उन्होंने वही किया. पहले तीन दिन तो केवल वाद-विवादमें ही गये. कही हुयी बातको आसानीसे वह मानते ही नहीं थे. तीन दिनके बाद वह संतुष्ट हुए और बोले "प्रसन्नता हुयी आपके उत्तरोंसे. अब मुझे कुछ सेवा बताइये." उसके बाद ठंडाई घोट कर उन्हें पिलायी. वह तो अच्छा था कि दीक्षितजी महाराज पढ़े थे. कोई साधारण होता तो भाग ही जाता. यह उनके सात्त्विक स्वभावका परिचायक था. कोई द्वेषभाव नहीं था. कोई अपना बड़प्पन दिखानेका भाव नहीं था. बहुत भगवदीय थे. जब-तक बात समझ नहीं आये वह उसे स्वीकारते नहीं थे.

निर्गुणके स्वभावका सौंदर्य यह है कि उसमें सात्त्विक राजस तामस इनमेंसे किसी भी ओर इनका झुकाव नहीं होता. जो जैसा है उसे उसी रूपमें वह सराह सकते है. यह भाव निर्गुणताका भाव है. कई बार ज्ञानिओंको अज्ञानिओंकी बात अच्छी नहीं लगती और कई बार अज्ञानिओंको ज्ञानिओंकी बात अच्छी नहीं लगती. पर जिसने मनोविज्ञान पढ़ा है उसे दोनोंकी बात अच्छी लगती है. क्योंकि उसमें ज्ञान-अज्ञान दोनों हैं. कोई कितनी भी मूर्खताकी बात करता हो,

जिसने मनोविज्ञान पढ़ा है उसे उस बातको समझनेमें कोई समस्या नहीं होती. जिसने मनोविज्ञान नहीं पढ़ा है वह उत्तेजित हो जाता है. इसी प्रकार जो निर्गुण हैं उन्हें किसी भी बातसे कोई समस्या नहीं होती क्योंकि उनका झुकाव तामसता राजसता अथवा सात्त्विकता किसीभी ओर होता ही नहीं है. जो कुछ भी हो रहा है, उसे वे समझ सकते हैं और उसे संभाल सकते हैं.

ठाकुरजी जब रासके समय तिरोहित हो गये तो वहां तामस स्वभावकी गोपिका थी. वे ठाकुरजीको गाली दे रही हैं कि "एक तो हमें मुरली बजा कर रातके समय वनमें बुलाया और फिर तिरोहित हो गये. तुम्हारे जितना धूर्त निष्ठुर कौन होगा? उनमें एक निर्गुण गोपिका भी है जो कह रही है "इसमें तुम्हारी कोई गलती नहीं है, हमारी ही है. क्योंकि आप केवल हमारे तो हैं नहीं, पूरी दुनियाके हैं. "**न खलु गोपिकानन्दनो भवान् अखिलदेहिनाम् अन्तरात्मदृक्, विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान् सात्वतां कुले**" (भाग.पुरा.१०।३१-।४) आप कोई अकेले हमारे ही थोड़े ही हो. अखिल जगत्के हो. कहीं प्रकट हो जाते हो कहीं तिरोहित हो जाते हो. यह निर्गुणभाव है. वह भगवान्का तिरोहित होना और प्रकट होना दोनों स्वीकार रही है. उसे कोई समस्या नहीं है. यदि तुम केवल हमारे हो तो हमारे बीचसे तिरोहित नहीं हो सकते. पर आप तो सारे जगत्के हो, जहां इच्छा होती है वहां प्रकट हो जाते हो और जहां इच्छा नहीं होती वहांसे तिरोहित हो जाते हो. पर भगवान् जब व्रजमें पधारे तो यह कह कर ही तो आये कि मैं व्रजका गोपबालक हूं. यह तो पोल ही खोल रही है. इस कारण भगवान् डर कर प्रकट हो गये कि यदि मैं प्रकट नहीं होऊंगा तो यह अधिक पोल खोल देगी. व्रजमें वे इसलिए तो प्रकट नहीं हुए थे कि वे अखिल भुवनके स्वामी हैं. वे तो यह कह कर ही प्रकटे थे कि मैं गोकुलका ही हूं और गोपीजनोंको तो निर्गुणभावसे

सब समझमें आ रहा है कि ''हम तो यह झूठ समझ रहे थे कि तू केवल हमारा है. तुम तो सारे ब्रह्मांडके हो.'' यह उनका निर्गुणभाव है.

इस तरह निर्गुणभावका किसी गुणकी तरफ कोई झुकाव नहीं होता. यह बिल्कुल एक शीशेकी तरह होते हैं. शीशेमें तुम जैसे हो वैसेही दिखलाई दोगे. ऐसे ही भगवान् जैसी लीला कर रहे हैं, निर्गुणभाववाले भक्तके मन और बुद्धि में वह लीला एक शीशेकी तरह प्रतिफलित हो जाती है. सात्त्विकभावके भक्तमें यह सात्त्विकके गुण ले कर प्रकट होती है. तामसभावके भक्तमें यह तामसके गुण ले कर प्रकट होती है. जैसे कोई कॉन्वेक्स् अथवा कॉन्केव् शीशेमें, प्रतिबिंबित व्यक्ति जैसा है उसी प्रकारका नहीं दिखलायी देता. उसमें शीशेके गुण आ जाते है. शीशेकी बनावटके हिसाबसे व्यक्ति लंबा-मोटा दिखायी देता है. कॉन्वेक्स् अथवा कॉन्केव् शीशा भी प्रतिबंब तो दिखाते हैं पर अपने गुण उसमें जोड़ देते हैं. पर सीधा शीशा जैसा व्यक्ति हो वैसा दिखाता है.

एक भाई मेरे पास आया था. उसकी लड़की अमेरिकासे आयी हुयी है. जहां उसकी शादी हो रही है वहां सेवा बिराज रही है. वह मुझे बहुत कह रहा था कि उस लड़कीको भी ब्रह्मसंबंध दे दो. मैंने उसे कहा कि ''यदि यह भगवत्सेवा करे तो मैं इसे दूं, नहीं तो नहीं.'' उसके माता-पिता मुझसे विवाद कर रहे थे. मैंने कहा कि ''आप उस लड़कीको यहां लाओ. मैं उससे पूछताछ करके फिर यदि मुझे जचा तो ब्रह्मसंबंध दूंगा.'' वे दोनों मेरे घर आयें, लड़कीको फिर भी नहीं लाये. मुझसे पूछा ''बोलिये आपको क्या समस्या है.'' मैंने कहा ''मुझे लड़कीसे कुछ प्रश्न करने हैं. यदि मुझे उत्तर ठीक लगे तो मैं उसे ब्रह्मसंबंध दे दूंगा.'' बोले ''लड़की तो आज आ नहीं सकी है.'' मैंने कहा ''आप मेरी

ओरसे उसे कह दो कि यदि वह सेवा करनेको तैयार है तो मैं उसे ब्रह्मसंबंध दे दूंगा.'' वे बोले ''सेवा तो हम घरमें करते ही हैं.'' मुझे उनके परिवारका इतिहास पता था क्योंकि मैं उनके घर बचपनसे जाता था. मैं बोला ''आप तो नहीं करते हो. आपके घर ठाकुरजी बिराजते हैं और आपने उनकी सेवाके लिए स्टाफ रखा है.'' वह बोले कि ''नहीं, ऐसा नहीं है. हमारे बड़े कह कर गये हैं कि बिना ब्रह्मसंबंधके ठाकुरजीको स्पर्श नहीं किया जा सकता. हम अपनी सेवा अलग करते हैं और परिवारके ठाकुरजीकी अलग सेवा होती है.'' मैंने सोचा यह तो हाथमें नहीं आ रहा छटक जा रहा है. मैंने उनसे थोड़ी बात घुमा कर कहा ''आपने अलगसे ठाकुरजी रखे हैं, बात तो यह सच्ची है पर मैं इसको इस तरह समझ रहा हूं कि जिसको मैं ब्रह्मसंबंध दूं उसे स्वयं सेवा करनी चाहिये और जहां सेवा व्यवसायके तौरपर होती हो वहां हिस्सा नहीं लेना चाहिये जैसे कि नाथद्वारा.'' अब तो उनकी दुखती रग मेरे हाथमें आ गयी. वह खुल कर बोला कि ''मैं इन विभाजनोंमें विश्वास नहीं करता. मैं तो नाथद्वारा भी जाता हूं, चर्चमें भी जाता हूं, मस्जिदमें, दरगाहमें भी जाता हूं क्योंकि भगवान् तो एक है.'' मैं बोला कि ''आपकी बात सच्ची है. मैं भी इस तरहके विभागोंमें विश्वास नहीं करता. आप मंदिर मस्जिद चर्च कहीं भी जा कर भजन करते हैं अथवा किसी कुत्तेको भी भजते हैं, मुझे इस बातसे कोई समस्या नहीं है क्योंकि कुत्ता भी तो ब्रह्मका एक रूप है. पर कुत्तेको भजनेके लिए ब्रह्मसंबंध लेनेकी आवश्यकता नहीं है. आप कुत्तेको भजो, उसमें मुझे क्या आपत्ति हो सकती है!'' वह बोला ''यही बात मैं लगभग विवाहके समयसे अपनी पत्नीको समझानेका प्रयास कर रहा हूं कि पति परमेश्वर होता है तू मुझे कृष्णकी तरह देख.'' मैं बोला कि ''आपके आपसी मामलोंमें मैं कौन होता हूं दखल देनेवाला. पर मेरे कहनेका अर्थ इतना ही है कि जिसको अपने घरमें कृष्णकी ही सेवा करनी हो,

मैं उसीको ब्रह्मसंबंध देता हूं. इसके अलावा मैं नहीं दे सकता हूं. आपको किसी औरसे लेना हो तो ले सकते हो." उसको भी शुद्धाद्वैतका ज्ञान पच नहीं रहा था. मैने आगे कहा "भई सभी ब्रह्म है और तुम यह भी कह रहे हो कि पत्नीको तुम्हें ब्रह्म मानना चाहिये, तो तुम उसको क्यों नहीं ब्रह्म मानते? वह उसे कौनेमें ले गयी और पूछने लगी "अब जवाब दो." मैंने कहा "अरे तुम चर्चमें मस्जिदमें ब्रह्म मानते हो तो पत्नीमें ब्रह्म क्यों नहीं मानते पहले." वह बोला "यह तो कैसे हो सकता है?" मैंने कहा "फिर तो बात ही खत्म हो गयी न! तुम्हें किसको भजना है यह विषय तुम्हारा है और दीक्षा किसे देनी है यह विषय मेरा है. फिर केवल पूछनेके लिए मैंने उनसे पूछा "क्या मैं ठीक कह रहा हूं?" वह बोला "आपसे मुझे बहुत ज्ञान मिला है." कुछ लोगोंको भ्रमणा होती है शुद्धाद्वैतको सात्त्विकरूपसे समझनेकी पर सात्त्विककी भी नस कहीं न कहीं तो दुखती ही है. जो कि निर्गुणकी नहीं दुखती. मैने उससे जो कहा कि कुत्तेको भी भजा जा सकता है वह निर्गुण भावसे कहा. क्योंकि निर्गुणभावमें ब्रह्मतो कोईभी रूप ले सकता है. एक बात समझो कि कुत्ता ब्रह्म है, यह बात तो सच्ची है पर उसको भजना मुझे अच्छा नहीं लगता. मुझे तो ब्रह्मको कृष्णके रूपमें ही भजना अच्छा लगता है. मुझे अच्छा नहीं लगता इसलिए मैं यह तो नहीं कह सकता कि कुत्ता ब्रह्म नहीं है.

बनारसमें पांच सितारा होटल्में एक सॅमिनार् थी. फादर् मून् उसके आयोजक थे. मैं पहले भी बनारस दो वर्ष रह चुका था पर वह पुराना शहर था और महाप्रभुजीके विवाहकी बैठकके बिल्कुल पास वह जगह थी. अक्सर मैं वहां जा कर गंगाजीमें स्नान करता था और महाप्रभुजीकी बैठकमें जा कर चरणस्पर्श करता था. जिस हिस्सेमें सॅमिनार् थी वहांसे इस ओर आनेमें तो डेढ़-दो घंटे लग

जाते. इसलिए लंचके समय मुझे लगा कि यहां आये है तो कम-से-कम गंगास्नान तो करें. सबसे पास जो घाट था वहां मुर्दोंको फूंका जाता है. मैंने सोचा मुझे इससे क्या फर्क पड़ेगा? मैं सीधा बीच धारामें जा कर तैरने लगा कि जिससे किसी मुर्देसे मेरा संपर्क न हो. जैसे ही मैंने तैरना शुरु किया एक मुर्देकी खोपड़ी मेरे हाथके नीचे आ गयी. मैंने निश्चय किया कि गंगाजी तो ठीक हैं पर यह घाट ठीक नहीं है. अब गंगाजी तो अच्छी लगती हैं पर शवकी खोपड़ी हाथमें आये तो क्या गंगा अच्छी लगेगी? अच्छी लगे अथवा नहीं, पर वह गंगाजी तो है. मैं तीन दिन वहां रहा पर फिर वहां जानेका नाम मैंने नहीं लिया. ब्रह्मका भी कोई पहलु अच्छा लगता है और कोई नहीं. क्योंकि अच्छा लगना अथवा न लगना यह अपनी रुचि और सामर्थ्य पर निर्भर करता है. हमें क्या अच्छा लगता है और क्या नहीं यह हम ब्रह्मपर तो नहीं थोप सकते. ब्रह्म तो ब्रह्म है. वह तो सभी कुछ हो सकता है. हम हर वस्तुके अस्तित्वके कारणको समझ या सराह नहीं सकते. यह हमारी सीमा है.

तामसभावमें 'कृष्ण' मानें कृष्ण कृष्ण और कृष्ण. उसका कोई और रूप नहीं. प्रत्येक व्यक्तिको हर चीजको देखनेका एक नज़रिया होता है, जैसे शीशा. हर शीशा प्रतिबिंब तो दिखाता ही है पर प्लेन् शीशा सीधा प्रतिबिंब दिखाता है, कॉन्केव् अथवा कॉन्वेक्स् लंबा-मोटा प्रतिबिंब दिखाते हैं. और टूटा हुआ शीशा एक ही बिंबके कई रूप दिखा देता है.

इसी प्रकार यहां तामस-प्रकरणमें जो प्रमाण-प्रकरणका भाग है उसमें यह अध्याय ज्ञान-वैराग्यका है. इसलिए किसी प्रकारका ज्ञान और किसी प्रकारका वैराग्य यहां कथाकी रूपरेखा है. ज्ञान किस प्रकार है वह बात महाप्रभुजी बता रहे हैं. ये दोनों वृक्षयोनिमें जन्मे

हैं और यह तामस-योनि कहलाती है. क्योंकि वृक्षमें समझका विकास उतना नहीं हुआ है जितना मनुष्यमें. फिर उन्हें कृष्णके तीन रूपोंका ज्ञान कैसे हुआ? तो महाप्रभुजी कहते हैं कि नारदजीने उन्हें वरदान दिया था कि जो तुम्हें इस योनिसे मुक्त करेगा वह ब्रह्म होगा और जिस प्रकारके ब्रह्मका वर्णन नारदजीने किया था वह ज्ञान उनको था. जब कृष्णने इनको मुक्त किया तो ये उसे पहचान गये. इस कारण यह कहानी ज्ञानका वर्णन करती है. वृक्षके रूपमें नहीं हुआ था पर जैसे ही ये उस योनिसे मुक्त हुए उन्हें यह ज्ञान हो गया. वैराग्य क्यों कहा यह आगे आयेगा.

"**मध्यरूप: इति त्रेधा ज्ञानरूपो निरूपित:**" इस ज्ञानका यहां निरूपण हुआ है. अब "**माहात्म्यज्ञापनार्थाय दुर्ज्ञेत्वं च वर्णितम् सर्वरूपोपि सर्वस्मिन् गृह्यमाणैर् न गृह्यते**" अब यह मनुष्यकी समस्या है कि कोई भी जादू आपको तभी-तक अच्छा लगता है जब-तक कि आपको उसका भेद मालूम न पड़े. जैसे ही आपको उसका भेद मालूम पड़ता है, वह अच्छा लगना बंद हो जाता है. केवल जादूमें ही नहीं, ऐसा बहुतसे स्थानोंपर होता है. जिनके पास सीमित जादू करनेकी सामर्थ्य होती है उसको समझनेमें अधिक समय नहीं लगता पर जिसके पास जादू दिखानेकी अनंत सामर्थ्य हो, उसकी यदि एक चालाकी आपको समझमें आयी तो उसका माहात्म्य घट जाता है. समझनेके बाद भी यदि कुछ अंश समझ ना आता हो तो फिर उसका माहात्म्य लगता है. आपने शायद विश्वमोहन भट्ट मोहनवीणा वादकका नाम तो सुना होगा. बहुत अच्छी वीणा बजाते हैं. उनके पुत्रका यहां मुम्बईमें इन्टरव्यू था. उनसे पूछा गया कि "आप अपने पिताके साथ बजाते हो तो उस समय आपको कैसा लगता है?" उसने कहा ""पिताके साथ बजाना मुझे अच्छा नहीं लगता, अकेले प्रोग्राम् देनेमें मुझे बहुत आनंद आता है" उसने पूछा "ऐसा क्यों?" तो लड़केने बहुत मीठा उत्तर दिया, बोला "बजाते बजाते वह ऐसी

तान बजा देते हैं कि जो मुझसे बजती नहीं है और मुझे फिर क्रोध आता है कि मुझे यह तान क्यों नहीं सिखायी. श्रोताओंके सामने मुझे नीचा देखना पड़ता है'' पहली दृष्टिमें ऐसा लगता था कि वह पिताकी निंदा कर रहा है पर ऐसा नहीं था. वह एक तरहसे पिताकी प्रशंसा ही कर रहा था. पिता तो आखिर पिता है. एक-आध चीज ऐसी अपने पास रखी होती है कि जो उन्हें पिताका दर्जा देती है.

किसीका भी माहात्म्य समझमें आ जाये तो उसकी कीमत कम हो जाती है. यह समस्या उन लोगोंके साथ अधिक है जिनको अपनी समझका अहंकार है. क्योंकि वे लोग अपनी समझपर भरोसा करते हैं. अगर वह आपको समझ गये तो आपकी कीमत कम आंकेगे. यदि नहीं समझ पाये तो उन्हें लगता है कि बहुत बड़ी बात हो गयी. ऐसे-ऐसे विचित्र प्रवचन करें तो श्रोता समझते हैं कि बहुत ज्ञानी है. कहते हैं ''बहुत ज्ञानी है पर पता ही नहीं चल पा रहा है कि क्या बोल रहा है'' जिन लोगोंकी भावना समझपर आधारित होती है उनकी यही समस्या है. सात्त्विक लोगोंमें भी यह समस्या तो होती ही है. इस कारण तीन माहात्म्य समझमें आ गये तो आ गया सब समझमें. अब बाकी क्या रहा? महाप्रभुजी कहते हैं कि तीन माहात्म्य समझनेके बाद भी बहुत कुछ बाकी रह गया है. इसी कारण वे 'दुर्ज्ञेय' कह रहे हैं. न्यूटन्‌ने कहा था कि ''आज-तक साइंस्‌ने जो कुछ भी डिस्कवरी की है यह समुद्रके किनारेपर हमने केवल सींप इकट्ठी की हैं. अभी भी बहुत कुछ बाकी है'' उस जमानेमें वह समझता था कि उसने बहुत कुछ ढूंढ निकाला है पर उसे इस ब्रह्मांडकी दुर्ज्ञेयता लग रही है. यह भी सही है कि बादके उसके अन्वेषणमें बहुत सारे सिद्धांतोंमें फेर-बदल की गयी. जब नहीं समझ आता तो ही उसका माहात्म्य लगता है. समझ आ जाये तो माहात्म्य लगना बंद हो जाता है.

हम भारतीयोंमें यह रोग बहुत अधिक है. कोई बीमार हो और उसे किसी डॉक्टर्ने यदि कोई दवा बता दी, बस पता चल गया कि इस रोगकी यह दवा है. पता हो कि न हो कि रोगकी जड़ कहां है, दवा हर किसीको बताना शुरु कर देते हैं. डॉक्टर् तो दवा दे रहा है रोगका निदान करके और आप बिना समझके दिये जा रहे हैं. कोई भी एक लक्षण दस रोगोंके कारण हो सकते है. जैसे माथा दुखनेके कई कारण हो सकते हैं, ब्लड्प्रेशर् बढ़े, आंखकी कोई बीमारी हो, शुगर् बढ़ गयी हो, रातको अधिक जग गये हों, कोई चिंता हो, इनमेंसे किसी भी कारणसे माथा दुख सकता है. अब आप यदि एक ही दवाई दोगे तो वह काम तो नहीं करेगी. ज्ञानमें तुरंत माहात्म्य खंडित हो जाता है. "**माहात्म्यज्ञापनार्थाय दुर्ज्ञेत्वं च वर्णितम्**" यह महाप्रभुजी कुबूल कर रहे हैं कि इतना वर्णन किया पर अभी भी जानना बहुत बाकी है क्योंकि वह दुर्ज्ञेय है.

"**सर्वरूपोऽपि सर्वस्मिन् गृह्यमाणैर् न गृह्यते**" यह सर्वरूप है अर्थात् सब दिखलायी देनेके बाद भी यह दीखायी नहीं देता. सब रूपोंमें वही दिखलाई दे रहा है. फिर भी इसके सारे रूप दिखायी दे रहे हैं पर वही दिखायी नहीं दे रहा. कोई भी अच्छा एक्टर् अपने कॅरेक्टर्में छुप जाता है और दिखलाई नहीं देता. केवल कॅरेक्टर् ही दीखायी देता है. कॅरेक्टर्के रूपमें दीख तो एक्टर् ही रहा है पर वह उस कॅरेक्टर्में छुप जाता है. इसी तरह यह जगत् उसीका रूप है और सर्वत्र वही दिखलायी दे रहा है पर इसमें छुपा भगवान् दिखायी नहीं दे रहा.

(सुबोधिनीकारिका-४)

आध्यात्मिकस् ततो न अयं भौतिकोऽपि ततो नहि।।
दैविकत्वेन सर्वः स्याद् द्वयं तस्मात् च जायते।।४।।

महाप्रभुजीकी अंतरदृष्टि ऐसी है कि जगत्में जितनी भी वस्तुएं हैं उनमें वे तीन रूप मानते हैं, आधिभौतिक आध्यात्मिक और आधिदैविक. जगत्की कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है कि जिसका आधिभौतिक आध्यात्मिक और आधिदैविक रूप न हो. जैसे अपना शरीर, अपना आधिभौतक रूप है, अपनी आत्मा अपना आध्यात्मिक रूप है और आत्मामें बिराजा हुआ अंतर्यामी अपना आधिदैविक रूप है. इसी तरह वे जगत्की हरेक वस्तुमें तीन रूप देखते हैं. यह सहीमें तो वेदका ही सिद्धांत है. इसी कारण हम वृक्षको अग्निको जलको भी देवता मानते हैं. पर कृष्णका जो प्रकट रूप है उसके लिए यह कह रहे हैं कि इसे केवल आध्यात्मिक अथवा आधिभौतिक न समझ कर आधिदैविक समझना. **''दैविकत्वेन सर्वः स्याद् द्वयं तस्मात् च जायते''** इस आधिदैविक रूपसे ही सारा आध्यात्मिक आधिभौतिक जगत् बना है. दूसरे शब्दोंमें भगवान्का यह आधिदैविक रूप है. सारा जड़रूप ब्रह्मांड उसका आधिभौतिक रूप है और काल कर्म स्वभाव प्रकृति पुरुष जो कि इस ब्रह्मांडके कारणरूप हैं उन्हें महाप्रभुजी इस जगत्का आध्यात्मिक पहलु मानते हैं. इस काल कर्म स्वभाव प्रकृति पुरुष रूपमें, पुरुषोत्तम इस जगत्का आधिदैविक रूप है. अब इस कृष्णको जो कि उलूखलसे बंधा है उसे आधिभौतिक मानना अथवा आध्यात्मिक मानना? क्योंकि नारदजीने उन्हें बरदान दिया था कि जो तुम्हें मुक्त करेगा वह परब्रह्म परमात्मा भगवान् होगा. इसी कारण वे कह रहे हैं कि यह आधिदैविक रूप है **''गृह्यमाणैर् न गृह्यते''** पर जो इस कृष्णरूपकी दुर्गति हो रही है कि वह बंधा है, घिसट रहा है, उसमें परमात्मता ब्रह्मता, किसी भी गोपबालकोंको अनुभवमें नहीं आती थी कि ऐसे बंधा हुआ ब्रह्म कैसे हो सकता है! पर हमें इस स्टोरीका मॉरल् समझना है. कोई भी व्यक्ति यदि डूबता हो तो उसे बचानेके लिए हम रस्सी फेंकते हैं. पर अपना यदि कोई डूबता हो तो रस्सी नहीं फेंकते, स्वयं कूद जाते हैं. इसी प्रकार कोई रस्सी फेंक कर जो तुम्हें मुक्त करे उसका नाम

भगवान्. इससे इन्कार तो नहीं किया जा सकता पर तुम्हारे साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार वह अभी नहीं रख रहा है, मर्यादाका व्यवहार रख रहा है. कर्म ज्ञान भक्ति तप वैराग्य सांख्य योग ऐसी बहुत सारी रस्सीयें फेंक कर वह स्वयं तुम्हें मुक्त करने इस संसारमें कूद जाये तो उसमें मर्यादा नहीं रही, पुष्टि हो गयी. वह स्वयं बंधनमें बंध कर आपको मुक्त कर रहा है. यह उसकी आधिदैविकताका प्रमाण है.

(सुबोधिनीकारिका-५)

अतः सर्वत्वकर्तृत्वे ज्ञानभक्ती फलिष्यतः ।।

अतो ज्ञानं निरूप्य आदौ भक्तिम् आहतुर् उत्तमाम् ।।५।।

अर्थात् यह आधिदैविक आध्यात्मिक आधिभौतिक रूपोंका कर्ता है और मूलरूप मध्यरूप जगतूरूप भी स्वयं ही है. मानें सर्वरूप है और सर्वकर्ता है ऐसे दोनों प्रकारसे उसे जानो. जितने भी द्वैतवादी हैं वे भगवान्को सर्वकर्ता मानते हैं पर सर्वरूप नहीं मानते और जितने भी अद्वैतवादी हैं वे भगवान्को सर्वरूप मानते हैं पर सर्वकर्ता नहीं मानतें. महाप्रभुजी कहते हैं कि सर्वकर्ता भी है और सर्वरूप भी है. अर्थात् सर्वत्व और कर्तृत्व जब उसका जान जाओगे तो तुम ब्रह्मतत्त्वको पहचान सकोगे. केवल सर्वकर्तृत्व जाननेसे तुम्हें सॅमेटिक् धर्मोंमें वर्णित भगवान्के बारेमें ज्ञान हो सकता है पर ब्रह्म परमात्मा भगवान् ये तीन रूप होनेके लिए उसको सर्वरूप और सर्वकर्ता दोनों होना पड़ेगा. श्रीशंकराचार्य भी ब्रह्मको सर्वरूप मानते हैं पर सर्वकर्ता नहीं मानतें. सर्वकर्ता वे मायाको मानते हैं. वे मानते हैं कि ब्रह्म ही सबकुछ बना है पर उसे सर्वरूप बनानेवाली माया वह खुद नहीं. महाप्रभुजीका साकार ब्रह्मवाद उसे सर्वकर्ता और सर्वरूप मानता है. वे कहते हैं कि यदि तुम ब्रह्मको केवल सर्वकर्ता मानोगे तो तुम्हें उसकी भक्तिकी बजाय भय अधिक लगेगा और यदि तुम ब्रह्मको केवल सर्वरूप मानोगे तो तुम्हें उससे भय तो नहीं लगेगा

पर उसमें अनन्य भक्ति नहीं हो सकेगी. यदि अपने अंदर भक्ति जाग्रत करनी है तो भगवान्‌को सर्वरूप भी मानना होगा और सर्वकर्ता भी. दोनों ही आवश्यक हैं. नहीं तो जिस प्रकारकी भक्ति महाप्रभुजी कह रहे हैं वह भक्ति तो नहीं हो सकती है. केवल सर्वकर्ता मानोगे तो समस्या यह होगी कि उस समय हम भगवान्‌के जिस रूपको भज रहे हैं, उसमें भगवत्ता हमको अनुभव नहीं होगी क्योंकि अंततः तो हमें यह ही लगेगा कि यह पत्थर अथवा धातु ही तो है. यह भगवान् किस प्रकार हो सकता है! हमें लगेगा कि यह स्वरूप केवल उस ब्रह्म तक पहुंचनेका ज़रिया है; जम्पिंग्-पॅड् है, जिसके द्वारा हमें भक्ति करके डाइव् तो ब्रह्ममें लगानी है. पर इस तरह तो आप उस भगवद्‌रूपको ही नीचा दिखा रहे हो. उसकी ऐसी उपयोगिता ढूंढ कर उसको एक साधारण विषय मान रहे हो. यदि तुम उसे केवल सर्वरूप मान रहे हो तो फिर तो तुम स्वयंको भी ब्रह्म मानोगे. यदि मैं स्वयं ही ब्रह्म हूं तो मुझे किसी औरकी भक्तिकी क्या आवश्यकता है! इसलिए भक्तिकी पहली आवश्यकता है कि उसे सर्वरूप भी मानो और सर्वकर्ता भी मानो. इसके बाद जो भक्ति होगी वह महाप्रभुजीके अनुसार भयरहित भक्ति होगी.

इसे भलीभांति समझानेके लिए मैंने महाप्रभुजीके भक्तिवर्धिनी ग्रंथपर एक पॅरोडी रची थी *"यथा भीति प्रवृद्धा स्यात् तथोपायो निरूप्यते बीजभावे दृढेतु स्याद् अपरससेवाप्रदर्शनात्"* उसके बाद मैंने यह बताया कि यह भय कैसे बढ़ाया जा सकता है, उसके अनेक उपाय हैं तगडी मर्यादा, नेग, भोग, राग के वैभवका प्रदर्शन. जो देखते ही वैष्णवोंके छक्के छूट जायें कि ऐसी भक्ति तो हमसे हो ही नहीं सकती. ऐसे लड्डु-पेड़े घरमें हमसे कहां बन सकते हैं!

एक बहन मेरे पास बार-बार आकर कहती थी "श्याम बाबा

आप सारी पंचायत छोड़ कर श्रीनाथजीकी बूरा भुरकी हुयी खासापूरी खा कर तो देखो, आ हा हा! क्या स्वाद आता है!'' मैं उससे कहता ''अरे तुम घरमें क्यों नहीं बनाते.'' वह कहती ''ऐसी घरमें कहां बन सकेगी, आप खा कर तो देखो एक बार.'' तब-तक तो मैं उसकी बात मज़ाकमें लेता था. पर चरम सीमा तब हुयी, जब मेरी बड़ी बेटीकी सगाईके समय नाथद्वारा जाना तय हुआ. वे लोग उदयपुरके हैं. वह भी हमारे साथ थी. बसमेंसे सुबह वह श्रीनाथजीके मंगलाके दर्शन करने अपने ठाकुरजीको लगेजूके ऊपर छोड़ कर भाग गयी. अब कोई उठा कर ठाकुरजीको न ले जाये इसलिए मैं वहां खड़ा रहा. आधा घंटे बाद वह आयी और मुझसे पूछने लगी ''आप यहां क्यों खड़े हो?'' मैंने कहा ''तुम झांपीको ऐसे कैसे छोड़ कर चली गयीं'' वह बोली ''मेरे झांपीके ठाकुरजी श्रीनाथजीका मुकाबला थोड़े ही कर सकते हैं'' मैंने कहा ''तो सेवा क्यों कर रहे हो इनकी, पधरा दो कहीं. जब तुम इनको सामानके साथ छोड़ कर जा रही हो, तुम अपने ठाकुरजीको नीचा देख रही हो, तुम्हें उनकी सर्वरूपताका ख्याल ही नहीं है''.

प्राय: वैष्णवोंके हृदयमें यह बात घर कर गयी है कि अपने ठाकुरजी तो झांपीके हैं. उनके साथ वह लगेज जेसा ही व्यवहार करते हैं. कई लोग तो प्लेनूमें उन्हें लगेजूमें डाल भी देते हैं. सर्वरूपता ना होनेके कारण भक्तिमें बहुत बाधाएं आती हैं. इसीलिए महाप्रभुजी कह रहे हैं **''अत: सर्वत्वकर्तृत्वे ज्ञानभक्ती फलिष्यत:''** यदि तुम उसमें सर्वत्व और कर्तृत्व की भावना करोगे तो सर्वत्वसे ज्ञान और कर्तृत्वसे भक्ति तुममें फलित होगी. **''अतो ज्ञानं निरूप्य आदौ भक्तिम् आहतुर् उत्तमाम्''** अब ज्ञानका निरूपण करनेके बाद उत्तम भक्तिका निरूपण भी इस स्तुतिमें आ रहा है.

(सुबोधिनीकारिका-६)

अनेनैव च वैराग्यं ज्ञानाजनकता यदि॥

तदा सर्वं परित्याज्यम् अन्यथा स्याद् विनाशनम्॥६॥

यह भक्ति उत्तम हो तो ही तुम्हारे भीतर ऐसा वैराग्य आ सकता है. सर्वरूप होनेपर भी मुझे तो अपने भजनीयरूपका ही भजन करना है. जैसे वह भाई मुझे शुद्धाद्वैत समझा रहा था कि भगवान् तो सब जगह है. शुद्धाद्वैतके दृष्टिकोणसे यह बात सही है पर भक्तिके दृष्टिकोणसे यह बात इसलिए खरी नहीं उतरती क्योंकि भक्तिके लिए किसी एक रूपको तो तुम्हें चुनना ही पड़ेगा और उस रूपके प्रति तुम्हारी प्रतिबद्धता तुम्हें साधनाके प्रारंभसे अंत तक रखनी पड़ेगी. प्रारंभमें ही प्रतिबद्धता तोड़ देनी, यह तो बहुत साधारणसी बात है. उस रूपके प्रति तुम्हारी कोई डिमिनिशिंग् युटिलिटी नहीं होनी चाहिये कि अभी तो तुम उसका भजनमें उपयोग कर रहे हो पर जब भजन होने लगा तो उस स्वरूपकी कोई आवश्यकता नहीं है. यह सिद्धांत अर्थशास्त्रीय व्यवस्थाके लिए ठीक हो सकता है पर भक्तिके लिए उचित नहीं है. कुछ लोग मान लेते हैं कि यह भक्ति है पर यह भक्तिके बिल्कुल विपरीत बात है. इसलिए "**अनेनैव च वैराग्यं ज्ञानाजनकता यदि**" यदि भक्ति करनेसे ज्ञान उत्पन्न नहीं होता हो कि जिसकी मैं सेवा कर रहा हूं, उसीसे यह सारा जगत् प्रकटा है, उसीमें स्थित है और उसीमें लय हो जायेगा. यह ज्ञान, भक्ति करते हुए होना चाहिये. हां, यह अवश्य है कि मैं इसके हर रूपको भज नहीं सकता पर यह मेरी सीमा है.

इस प्रकारका ज्ञान यदि प्रकट न होता हो तो वैराग्य होना चाहिये. यह वैराग्य सकारात्मक वैराग्य है, नकारात्मक वैराग्य नहीं है. आपका ध्यान एक ऐसे किसी पर है कि जिसके कारण आप अन्य सभी कुछ भूल जा रहे हो. अन्यथा तो श्रीनाथजी जा कर मस्जिद याद आयेगी, चर्च याद आयेगा. यह तो एक प्रकारकी चेइन् है. एक वस्तुके बाद दूसरी, दूसरीके बाद तीसरी, तीसरीके बाद चौथी याद आती चली जायेगी. इसीलिए एकाग्रताकी बात कही गयी

है. आप एक स्वरूपपर एकाग्र होंगे तो ही भक्ति कर पायेंगे, अन्यथा नहीं. जहां भी एकाग्रताकी बात आयेगी वहां सकारात्मक वैराग्यका कुछ तो रोल् होता ही है.

विज्ञानका भी कोई प्रयोग एकाग्रताके बिना संभव नहीं है. वैज्ञानिकोंको भी अन्य सभी वस्तुओंके प्रति वैराग्य हो ही जाता है. आप भी जब यहां आये होंगे तो रास्तेमें आपने कितनी सारी वस्तुएं देखी होंगी पर क्या आपको सब याद हैं? नहीं. क्योंकि आपने उसपर अपने चित्तको एकाग्र नहीं किया. जैसे ही आप किसी वस्तुपर एकाग्र चित्त होते हैं, आपको उसको याद रखना आसान हो जाता है.

इसलिए भक्तिके लिए थोड़ीसी एकाग्रताकी आवश्यकता होती है और यह एकाग्रता तभी होगी, जब अन्य वस्तुओंमें वैराग्य होगा. इस वैराग्यमें जिसके द्वारा हमें एक प्रेरणा मिल रही है अपने भजनीयके भजनकी, यह वैराग्य होगा तो तो तुम्हारी भक्ति सफल होगी अन्यथा नहीं. यह एकाग्रता अपनी प्रत्येक क्रियामें बहुत ही महत्त्वपूर्ण रोल् अदा करती है, चाहे वह विज्ञान हो, पढ़ाई हो, रोजानाके काम हो, संगीतकी साधना हो, रसोईका काम हो. कुछ भी हो यदि एकाग्रता नहीं होगी तो कुछ भी ठीकसे नहीं आ सकेगा. "तदा सर्वं परित्याज्यम् अन्यथा स्याद् विनाशनम्." इस अर्थमें वैराग्य यहां वर्णन करनेमें आया है. यह नकारात्मक वैराग्य नहीं है. हम किसी और वस्तुमें कमी नहीं ढूंढ रहे हैं. अपितु हम केवल उस वस्तुपर अपना चित्त एकाग्र कर रहे हैं, जिसका चयन हमने किया है.

वाल्लभ दर्शनमें असंमजसताका आभास होता है कि यदि सबकुछ ब्रह्म है तो फिर वैराग्य किसलिए? ब्रह्मकी तो भक्ति करनी होती है. पर वैराग्य तो अपने यहां भी है. केवल साधनाके रूपमें ही

नहीं है; आगे आप टॅक्स्ट्में देखेंगे कि ब्रह्मको जाननेके लिए जो विद्या है, उसके पंच पर्व हैं. **"वैराग्यं सांख्ययोगौ च तपो भक्तिश्च केशवे पंचपर्वेति विद्येयं यया विद्वान् हरिं विशेत्"** (त.दी.नि.१।४५) वैराग्य विद्याका एक महत्त्वपूर्ण पर्व है. समझका एक विशेष पहलु भी है. वैराग्य यदि ऐसा है तो हम ब्रह्मसे कैसे पृथक् हो सकते हैं! यह वल्लभ-दर्शनकी सबसे बड़ी दुविधा है. जो दर्शन यह दावा कर रहा है कि 'सबकुछ ब्रह्म है'.

मूल बात यह है कि हमको पहले 'वैराग्य'की etymology समझनी पड़ेगी. वह यदि समझ जायें तो सबकुछ समझमें आ जायगा. 'वैराग्य'का अर्थ समझनेसे पहले 'राग'के अर्थपर ध्यान दो मनोबंधन अथवा आसक्ति. 'वैराग्य'का अर्थ है मुक्ति अथवा अनासक्ति. वैराग्य किसीके विरागका गुणधर्म है. किसीके प्रति अनासक्ति = उससे विरक्त होना है. 'विरक्त' होनेका नाम वैराग्य. Detachmentमें de है. जैसे derail, decomposition ये सब नॅगेटिव् प्रिफिक्स् हैं. अतः 'वि'के ट्रान्सलेशन्में अपन् 'de' लगाते हैं, लेकिन 'debase' या demoralise का अर्थ मॉरॅलिटीका निषेध नहीं है. अपितु वह जो मॉरॅलिटीके विरुद्ध जाये. 'डीबेस्'का अर्थ बेसकी अनुपस्थिति नहीं है, अपितु ऐसा बेस जो आवश्यकतासे नीचा हो. अतः 'डी'का अर्थ केवल नॅगेटिव् ही नहीं, अपमानजननात्मक भी है. जब आप उपरोक्त बातको स्वीकारते हैं तो आपको वैराग्यका दूसरा अर्थ भी ध्यानमें आयेगा और वह अर्थ केवल रागका संपूर्णरूपसे लोप होना ही नहीं है. अपितु मिथ्या अथवा सच्चा राग न होना भी वैराग्यका एक प्रकार हो सकता है. हमको लगता है कि राग न होनेका नाम वैराग्य है पर वैराग्यका अर्थ कोई मिथ्याराग होना भी तो हो सकता है.

उदाहरणके लिए हम समझ सकते हैं कि बहुतसे लोग हवेली या मन्दिर में जाते हैं. जो हवेलीमें जाते हैं, हमको लगता है

कि भगवान्के नाममें बहुत अनुरागके कारण यह जाते होंगे. पर कोई बिचारा आमदनीके बिनाका व्यक्ति हो सकता है कि जो भगवान्में अनुरागके कारण नहीं पर जो भगवान्के दर्शन करने आ रहे हैं उनके जूते चुराने आता हो. क्या उसे मन्दिरमें राग नहीं है? क्योंकि जूते चुराना चर्चमें नहीं मिलता, मन्दिरमें ही मिलता है. दर्शनार्थियोंकी अपेक्षासे उसे(चोरको) मन्दिरमें बहुत राग हो जाता है. दर्शन करनेवालोंकी रोज़ी-रोटी दर्शन करनेसे नहीं चलती. केवल एक संतुष्टि जैसा कुछ है जो चलता रहता है. पर उसकी तो रोज़ी-रोटीका सवाल है यह. यदि मन्दिरमें जूते चोरने न जाय तो कहाँ जाय! अब इस रागको हम भगवान्की भक्तिमें विराग कहेंगे कि नहीं! क्योंकि भगवान्के दर्शन करनेवालोंके जूते चुरानेमें इसे अधिक अनुराग है और मंदिरमें विराग है. क्या यह कोई छोटा राग है? क्या अपन् ना कर सकेंगे कि यह राग नहीं है. यह भी राग तो है ही. भगवान्के भक्तोंसे अधिक उसका मंदिरके जूते चुरानेमें राग है. कभी-कभी हम नॅगेटिव् प्रिफिक्स्का नॅगेटिव् अर्थ ही लेते हैं, पर उसका डॅरोगेटिव् अर्थ भी होता है.

महाप्रभुजी एक बात बहुत सुंदर कहते हैं कि कहीं भी राग होनेकी पहली शर्त है कि रागी और जिसमें राग हो वह विषय. लड़केका लड़कीसे, दुकानदारका धंधेसे, मकान-मालिकका मकानसे, माता-पिताका संततिसे, भोजन-भट्टका भोजनसे, जो राग है उसकी पहली शर्त है कि १.रागी और २.जिसमें राग है उन दोनोंका होना. पर सोचो कि कोई अकेला ही व्यक्ति हो तो थियोरिटिकली यह संभव नहीं है. दुनियाकी रचना ऐसी नहीं है कि कोई पूर्णरूपमें अकेला हो पाये. पर धारणा करो कि कोई वस्तु पूर्णरूपसे एकांतिक है तो राग करेगा कौन उसे? कोई दूसरा विषय ही नहीं मिलेगा, जिसमें वह आसक्त हो पाये. किसी रागकी वृत्ति यदि हो तो रागके विषयके ना मिलनेके कारण मनुष्य वैरागी हो जाता है. एक बहुत

प्रसिद्ध कहावत है कि *"न मिली नारी तो बाबा ब्रह्मचारी."* इसका अर्थ : यह जो विराग है यह वांच्छित वस्तु न मिलनेके कारण विराग है. नहीं मिलती तो क्या करे मनुष्य, वैरागी ही तो होगा. यह विराग, नॅगेटिव् विराग नहीं है. रागकी पूरी-पूरी सामर्थ्य है पर रागके विषयके ना मिलनेके कारण विराग है. यह ही स्थिति ब्रह्मकी है. ब्रह्मके बाहर कुछ भी संभव नहीं है. जो भी कुछ अस्तित्वमें है वह ब्रह्म ही है. जब ब्रह्म अकेला है तो वह किससे आसक्त होगा ? किसीसे नहीं.

क्योंकि 'ब्रह्म' मानें पूर्णता. इस अर्थमें उसके बाहर तो कुछ भी संभव नहीं है. लेकिन ब्रह्मको कुछ न कुछ तो वैराग्य होना चाहिये और वह वैराग्य नकारात्मक भी नहीं हो सकता. साफ शब्दोंमें आत्म-आकर्षण है. उसके लिए उपनिषदोंमें एक बहुत सुंदर शब्दका प्रयोग किया गया है "ब्रह्मकी आत्मरति=विराग." ब्रह्म केवल स्वयंसे रति रखता है. ब्रह्म किसी दूसरेमें राग नहीं रखता क्योंकि उसके लिए कोई दूसरा है ही नहीं. उसके बाहर किसीका अस्तित्व न होनेके कारण क्योंकि वह ही समग्र है. वह आत्मरत है और उसके आत्मरत होनेका स्वभाव ही उसके विरागका कारण है. यह एक बहुत सकारात्मक वैराग्यकी धारणा है, न कि नकारात्मक. जिसे भी ब्रह्मका ज्ञान होता है अथवा जो ब्रह्मका अनुभव कर सकता है वह अपने अलावा किसी और वस्तुमें आनंद नहीं ले सकता. क्योंकि ब्रह्मज्ञान होनेका अर्थ है संपूर्णता समग्रता का ज्ञान, जिसका वह व्यक्ति स्वयं भी एक अंश है. इस कारण जिस व्यक्तिको उसका ज्ञान हुआ है, उसे स्वयंका ज्ञान भी उस ब्रह्मके अंशरूपेण ही होता है. इस कारण वह जब भी आकर्षित होता है तो वह ब्रह्मसे एक विषयके रूपमें आसक्त नहीं हो सकता. अपितु एक आत्मपरकके रूपमें आसक्त होता है.

इसीलिए महाप्रभु वल्लभाचार्य एक बहुत सुंदर बात कहते हैं कि किसी विषयको तुम ब्रह्मकी तरह स्वीकार सकते हो. विषयको ब्रह्मकी तरह स्वीकार करना, न कि मानना. दोनों बातोंमें अंतर है. जो ब्रह्मको स्वीकार करता है वह ब्रह्मको विषयकी तरह नहीं जानेगा. अपितु विषयमें भी ब्रह्मको ही देखेगा और जो विषयको ही स्वीकारता है उसके हृदयमें यदि ब्रह्म स्वयं भी आ जाय तो उसेभी वह ब्रह्मकी तरह नहीं बल्कि विषयकी तरह ही स्वीकारेगा.

महाप्रभुजीने एक मौलिक स्पष्टीकरण इस संदर्भमें दिया है कि पुष्टिभक्ति कभी भगवान्को विषयरूपमें लेनेसे नहीं होती. विषयको भगवान्के रूपमें स्वीकारनेसे होती है. पुष्टिभक्तिका मौलिक स्वरूप यही है कि भगवान्को विषयकी तरह नहीं अपितु विषयको भगवान्के एक रूपकी तरह स्वीकारा जाय. आपको केवल उस ब्रह्मकी पूर्णताके उस अंशको जानना और उसका आनंद लेना है. बस ब्रह्म वहीं प्रकट हो जायगा. जब भी आप किसी वस्तुविशेषको ब्रह्मकी तरह स्वीकारते हो तो आप उस वस्तुका वस्तुके रूपमें आनंद नहीं ले रहे हो, अपितु उसके पीछे रहे हुए तत्त्वका आनंद ले रहे हो क्योंकि आप दोनों ही उस परमतत्त्व पूर्ण ब्रह्मके अंश हो. इसलिए जिस वस्तुका आप आनंद ले रहे हो वह ब्रह्म है ब्रह्म है और ब्रह्म ही है.

कर्मके लिए ऐसा कहनेमें आया है "**ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतं, ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना**"(भग.गीता ४।२४) जो आहुति तुम अर्पण कर रहे हो वह ब्रह्म है. जिस घीका तुम होम कर रहे हो वह घी भी ब्रह्म है. अग्नि भी ब्रह्म है. वह आहुति देनेवाला भी ब्रह्म है. जिसको तुमने आहुति दी वह आहुति भी ब्रह्म तक ही पहुंचती है.

हमें इसको अपनी भक्तिकी भाषामें कहना है तो यों कहेंगे ‘‘ब्रह्म भक्ति: ब्रह्म भक्तो ब्रह्मैव भजनं तथा’’ यह अपन् कह सकेंगे भजन क्या है, ब्रह्म है क्योंकि ‘‘सर्वं खलु इदं ब्रह्म’’. इस तरह यदि आप एकका आनंद ले पा रहे हो तो आप विषयका ब्रह्मके रूपमें आनंद ले रहे हो. यदि ब्रह्मका आनंद तुम विषयके रूपमें ले रहे हो तो जैसे भागवतके तृतीय स्कंधमें एक बहुत सुंदर बात कही गयी है. उसमें ऐसा कहा गया है कि यदि देवताकी मूर्तिको तुम विषयके रूपमें भज रहे हो, ब्रह्मके रूपमें नहीं, तो बुझी हुयी यज्ञाग्निमें तुम आहुति दे रहे हो. **‘‘भस्मन्येव जुहोति स:’’** (भाग.पुरा.३।२९।२२) यदि आपकी धारणा साफ है कि ‘सब कुछ ब्रह्म है और देवमूर्ति भी ब्रह्म है,’ तभी तुम्हारी भक्ति ब्रह्मकी ओर जानेवाली भक्ति है. अब यदि तुम कहो कि शेष सब दुनिया है और केवल यह मूर्ति ही ब्रह्म है, तो ठीकसे समझ जाओ कि वहाँ सारी कथा समाप्त हो गयी. तुम भजनकी जो बुझी हुई आहुति ब्रह्माग्निमें दे रहे हो, भगवान्‌को नहीं अर्पित कर रहे हो. जैसा कि मुसलमान कहते हैं ‘बुत-परस्ती’, बस तुम एक प्रकारकी बुत-परस्ती ही कर रहे हो. मूर्तिको ही भज रहे हो भगवान्‌को नहीं भज रहे. भगवद्‌भजन और मूर्ति-भजनमें यही एक मूल भेद है कि मूर्ति सर्ववस्तु हो नहीं सकती पर भगवान् सर्ववस्तु बन सकता है क्योंकि भगवान् ही इस ब्रह्माण्डके सारे नाम रूप और कर्म बना है. आप उसको हर जगह नहीं भज सकते अपनी सीमाओंके कारण. इसलिए आपने एक मूर्तिको चुना भजनके लिए. यह आपकी सीमा है पर भगवान्‌के लिए ऐसी कोई सीमा नहीं है. आपको गंगाजीमें स्नान करना है और आप गंगोत्रीसे ले कर गंगासागर तक नहाओ तो आपको न्यूमोनिया हो जायगा और बहुत जल्दी आप ऊपर पहुंच जाओगे. आपको कोई एक घाट तो चुनना पड़ेगा नहानेके लिए. फिर वह हरिद्वारका हो, ऋषिकेशका हो, प्रयागका हो अथवा काशीका हो. घाट जो आप चुन रहे हो वह आपकी सीमा है.

(प्रश्नोत्तर)

प्रश्न : क्यों हम ऐसा करनेके लिए अपने आपको तैयार नहीं कर सकते.

उत्तर : देखो, एक बात बताऊं. डॉक्टर् जो स्टेथस्कोप् लगाते हैं, तो मुझे हर समय यह चिंता होती थी कि इनको सुनाई क्या पड़ता है? मैंने भी अपने कानमें स्टेथस्कोप् लगा कर सुना पर मुझे मेरा दिल धड़कता हुआ सुनायी नहीं दिया. भर्र-भर्रकी सी आवाज़ आ रही थी. मैंने डॉक्टर्से पूछा "डॉक्टर्, मुझे पता नहीं चल रहा है कि मेरा दिल धड़क रहा है कि नहीं. इसमें आपको कैसे पता चलता है?" उसने कहा "यदि दिल धड़कता न होता तो आप यह बात कैसे बोलते. आप बोल रहे हो तो यह तो पक्का है कि आपका दिल धड़क रहा है. हाँ, सुनायी नहीं दे रहा. यह तो ट्रेनिंग्की बात है." दो-तीन बार प्रयासके बावजूद मुझे सुनाई नहीं दिया क्योंकि अपना कान ट्रेन्ड् नहीं है. बहुत सारी बातें ऐसी होती हैं कि जब हमारी ट्रेनिंग् नहीं होती है तो जो चीज हमको सामने दिखलायी देती है वह भी दिखलायी नहीं देती. एक सीधीसी बात बताऊं कि कोई भी गीत, चाहे वह सिनेमाका हो या भजन हो या शास्त्रीय हो, वह 'सा रे ग म'के बिना तो नहीं होता पर जब आप गीत सुनते हैं तो क्या आपको सा रे ग म प ध निं सा सुनायी देता है? वह तो यदि कान ट्रेन्ड् हो तो ही उस गीतमें सा रे ग म प ध निं सा कहाँ है वह सुनायी देगा. नहीं तो *छोड़ गये बालम मुझे हाय अकेला छोड़ गये* ही सुनायी देगा. आप गा कर देखो एक गीत. आपको गीतके बोल तो सुनायी देंगे पर 'सा रे ग म प ध निं सा नहीं सुनायी देगा.

रोज़ानाके जीवनमें बहुत सारी चीजें ऐसी होती हैं जो हम उपयोगमें लाते हैं. उन्हें पढ़ाते भी हैं पर हमको पता नहीं होता

है कि यह क्या है. आपका जो प्रश्न है कि ट्रेनिंग् अथवा भक्ति की क्या आवश्यकता है. तो समझो कि भक्ति किसी भी चीजको सुननेका अभ्यास है. जैसे आप छह महीना आठ दस गीतोंमें 'सा रे ग म प ध निं सा'का रियाज़ करो. उसके बाद आप कोई भी गीत सुनोगे तो उसमें गीतसे पहले आपको 'सा रे ग म प ध निं सा' सुनायी देगा. अब आप क्या कह सकते हो कि कोई भी गीत 'सा रे ग म प ध निं सा'के बिना बन सकता है! गीत तो नहीं बन सकता. अब समझो कि ब्रह्म 'सा रे ग म प ध निं सा'के जैसा है. वह गीतोंमें छुप गया है. गीतोंकी आवाज़में, गीतके बोलोंमें, गीतकी धुनमें, गीतकी तालमें, वह छुप गया है. बस वह ही सुनायी नहीं देता और सारी बातें सुनायी देतीं हैं. अब इस बातका दोष क्या ब्रह्मको देना? ऐसी एक नहीं बहुत सारी बातें हैं जीवनमें कि जिनका उपयोग हम रोज़मर्राकी ज़िदगीमें करते हैं पर हमको वह बिना ट्रेनिंग्के समझ नहीं आता.

एक आदमी गाँवसे मुम्बई आया. उसने देखा कि एक ऊंची इमारतमें लिफ्टमें एक बुढ़िया चढ़ रही थी और जब वहाँसे कोई उतरा तो वह एक जवान लड़की थी. उसने सोचा यह तो कोई चमत्कार है. गयी बुढ़िया और उतरी एक जवान लड़की! वह दौड़ कर अपने गाँव जा कर अपनी पत्नीको ले आया कि उसे भी जवान कर लूँ. बहुतसी चीज दिखलायी नहीं देती हैं पर होती हैं. दिखायी नहीं देती हैं क्योंकि उसका दिमाग व्यस्त है. अपनी पत्नीके बुढ़िया होनेकी तकलीफसे उसे यह बात दिखायी नहीं देती कि उसमें चढ़ी कोई और थी और उतरी कोई और है. अपना मस्तिष्क कई बातोंमें व्यस्त रहता है और भेद नहीं कर पाता. वह एक मूल बात है. जैसे आप घी चखोगे तो क्या उसमें आपको दूध दिखलाई देता है, दूधका स्वाद अथवा रंग दिखलाई देता है? वहाँ कुछ भी तो नहीं है. पर क्या आप कह सकते हो कि

दूधके बिना घी बन सकता है? बिल्कुल वैसी ही स्थिति है. दूधको भी हम किसी लॅब्में भिजवा कर वह किन-किन तत्त्वोंसे बना है इसकी जांच करें और ऐसी ही जाँच घीकी भी करें तो क्या पता नहीं चल जायगा कि जिस तत्त्वसे घी बना है उसी तत्त्वसे दूध भी बना है. कभी लॅब् ऍक्सपेरीमेंट् करने भगवान् भी आ जाय और कहे कि "भई, जाँच लो कि मैं हूँ कि नहीं?" अब तो "*मरना भी मुहब्बतमें किसी काम न आया*" भगवान् आ भी जाय तो भी अपन् कहेंगे कि वह नहीं है. इसका इलाज भगवान्के पास भी कहाँ है!!

बंगालके एक बहुत प्रसिद्ध उपन्यासकार हुए हैं विभूतिभूषण उपाध्याय. उन्होंने एक बहुत अच्छा उपन्यास लिखा है. उसमें एक Agnostic philosopher होता है. आप जानते हैं कि यह Agnosticism क्या है? 'Agnosticism' means that the reality can not be known. वह फिलॉसॉफर् उसी बारेमें एक लेख लिख रहा होता है. That the truth of the God cannot be known, cannot be explained, cannot be justified. तभी उसके ड्रॉइंग्रूममें अचानक भगवान् प्रकट हो जाते है. वह पूछता है "तुम कौन हो?" वे कहते हैं "मैं भगवान् हूँ." फिलॉसॉफर् कहता है "यह कोई सभ्य पुरुषका व्यवहार नहीं है. आपको अंदर आनेसे पहले घंटी बजानी चाहिये थी. "क्या मैं अंदर आ सकता हूँ" ऐसे पूछके आपको मेरे कमरेमें आना चाहिये था." भगवान्ने कहा "दरवाजा खटखटाना, घंटी बजाना, यह बंधन मेरे ऊपर लागू नहीं हैं." उस फिलॉसॉफर्ने जवाब दिया "फिर आपको जब मेरे कमरेमें दाखिल होना हो तो आपको समझना चाहिये कि मेरी क्या अपेक्षाएं हैं." अब बिचारा भगवान् क्या करे? वह प्रकट भी हो जाय और हम उसे स्वीकार करनेको ही तैयार न हों! वे कहें कि "**यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिः भवति भारत! अभ्युत्थानम् अधर्मस्य तदा आत्मानं सृजामि अहम्.**"(भग.गीता ४।७)

और अपन् पूछें "क्यों आये?" तो भगवान् भी कहेंगे कि "माफ करो गलती हो गयी." अब इसमें भगवान् क्या कर सकता है?

अब हम वापस अपने टॉपिक्पर आते हैं.

भगवान्को जब हम जान पाते हैं अथवा उसे रियलाइज़ करते हैं तो भगवान् किसी विषयकी तरह नहीं, अपितु एक पूर्ण सत्यकी तरह अपने सामने प्रस्तुत होते हैं. और यदि आप भगवान्का आनंद उसकी समग्रताके साथ लेते है, तो आपके द्वारा चुना गया भगवान्का स्वरूप वास्तविक और प्रामाणिक है. लेकिन समझो कि आप अपने भगवान्के रूपको एक वस्तु अथवा प्रतीक मान रहे हैं और ब्रह्मकी समग्रता और सत्य नहीं मान रहे हैं तो फिर आप 'जूता चोर'की तरह उसकी किसी विकृत भक्तिसे पीड़ित हैं. जूताचोरको भी मंदिरमें प्रेम होता है पर उसका प्रेम किसी और कारणसे है, भगवान्के कारण नहीं है. यह बात हमको ठीकसे समझ लेनी चाहिये.

वैराग्यका एक संदर्भ है और वह है कि जब भी हमको ब्रह्मकी भक्ति करनी है तो भक्ति करनेमें ब्रह्मके जिस पहलुमें ब्रह्म विषय बना है, उसके अलावा सर्वत्र हमें वैराग्य होना चाहिये और ब्रह्मका वह पहलु कि जिस पहलुमें विषय ब्रह्म है उसमें हमको अनुराग होना चाहिये.

एक बात समझो कि हम किसी व्यक्तिका परिचय-पत्रके लिए फोटो लें तो हम सामनेका ही तो फोटो लेंगे. पीछेका फोटो थोड़े ही लेंगे? क्यों व्यक्ति अलग तरहका है? अरे, व्यक्ति अलग नहीं है पर व्यक्तिको परखनेकी अपनी जो पद्धति है, उसमें पीछेसे लिया हुआ फोटो बहुत काममें नहीं आता. आगेसे लिया हुआ ही अधिक काममें आता है. ऐसे ही विषयका जो आगेसे लिया हुआ फोटो है वह ब्राह्मिक भक्तिमें काम आता है और ब्रह्मका पीछेसे लिया हुआ फोटो; विषय होनेका, वह भक्तिमें काम नहीं आता. इसलिए

ब्रह्मको यदि तुमने realise किया है, और तुम भजना चाहते हो, तो विषयका जो ब्राह्मिक पहलु है वह तुम्हें अच्छा लगना चाहिये. ब्रह्मका जो विषय होनेका सत्य है वह अच्छा नहीं लगना चाहिये.

मैं तुमको दूसरा उदाहरण देता हूँ. जिस लड़कीको हम ब्याह कर लाये हैं, यदि कोई दहेज लायी है तो हम इतने तो अहंकारी नहीं बन सकते कि "ले जा, फेंक दे, तेरे बापका माल हमें नहीं चाहिये" पर जो पैसा है वह किसलिए अच्छा लगना चाहिये कि "यह सारा मेरी पत्नीका है." पत्नी इसलिए अच्छी नहीं लगनी चाहिये क्योंकि वह बहुत सारा दहेज ले कर आयी है. पत्नी अच्छी लग रही है इसलिए पैसा संभालना है. सचमुच यह वैसी ही बात है कि विषय अच्छा लगता है इस कारण ब्रह्म अच्छा लगता है, तो भले ही विषय ब्रह्म हो पर बात तो बदल गयी. पर ब्रह्म अच्छा लगता है इसलिए विषय अच्छा लगता है, इसका नाम ही 'माहात्म्यज्ञान' है. इस माहात्म्यज्ञानके कारण भगवान्में सर्वतोधिक स्नेह होता है उसका नाम 'भक्ति' है. यदि तुम्हें विषय अच्छा लगता है जैसे कि "ओहोहो! क्या शृंगार धराए है मुकुट-काछनीके, हीरा-मोतीके, लड्डू-पूरी-मोहनथाल!" तब तुम्हें क्या अच्छा लग रहा है? विषय! भगवान् नहीं.

मेरे एक जानकार थे. जब किशनगढ़का मंदिर मैंने बंद किया तो मेरे पास आ कर कहने लगे "आप मंदिर बंद कर रहे हैं तो इस प्रकारका राग-भोग-नेग कैसे चला पाओगे? यह मंदिर चल रहा है इसीलिए आपको पैसेकी सुविधा है." मैंने कहा कि "जो मेरे पास होगा वह मैं भोग धरूँगा." वह भाई ऑडिट्का एक्सपर्ट था. इसलिए उसने कहा "ठाकुरजीकी भेंट आती है उतनी क्या तुम्हारी आती है? तुम्हारी भेंटमें तो तुम एक मठरी भी नहीं धर सकते ठाकुरजीको!" मैंने कहा कि "मैं मठरी धर सकूँ अथवा नहीं,

पर 'मठरी' बोलते समय तुम्हारे मुँहमें पानी क्यों आ रहा है यह तो खुलासा करो." लोगोंके मुँहमें मठरी कहते ही पानी छूट जाता है. उसे मैं ठाकुरजीको भोग धर सकूं कि नहीं, इसका दुःख नहीं था पर मठरी उसे नहीं मिलेगी उसका दुःख था. जितनी मठरीकी मोह-माया है उतनी भगवान्‌की नहीं है. हम ले रहे हैं भगवान्‌के नामसे पर उसकी मोह-माया अलग ही है.

इसलिए भगवान्‌को हम एक प्रकारका विषय समझ सकते हैं या विषयको हम भगवान्‌की तरह मान सकते हैं अथवा नहीं मान सकते हैं. फरक किससे पड़ा? मठरी बोलते ही माथेपर चढ़ानेकी इच्छा होती है कि यह ठाकुरजीकी प्रसादी मठरी है. यह यदि भाव हो तो तो ठीक है पर यदि ठाकुरजीकी याद मठरीके कारण आ रही है तो बात तो विपरीत हो गयी.

पॉज़िटिव् वैराग्यका अर्थ है कि तुम्हारा पेट भरा हुआ है. क्षुद्र वस्तुकी तुम्हें आकांक्षा ही नहीं है और यदि तुम्हारा पेट भरा हुआ न हो तो तुम्हें क्षुद्र वस्तुकी आकांक्षा रहेगी रहेगी और रहेगी. मूल मुद्देकी बात यह है. इस कारण वैराग्यका रोल् बहुत कठिनाईवाला रोल् है.

"यदि सबकुछ ब्रह्म है तो उस ब्रह्मसे कोई व्यक्ति अपने आपको कैसे अलग कर सकता है अथवा उससे किस प्रकार विरक्त हो सकता है?" मान लो कि मैं ब्रह्मके किसी अंशसे स्वयंको विरक्त कर भी लेता हूं तो यह एकदम साफ है कि मैं ब्रह्ममें दोष देख रहा हूं. लेकिन वैराग्यका एक विपरीत अर्थ भी है. हमारा वैराग्य एक भूखे व्यक्तिकी तरह नकारात्मक वैराग्य नहीं है, अपितु एक पूर्णरूपसे संतुष्ट स्वस्थ व्यक्तिका वैराग्य है और क्योंकि हम पूरी तरह संतुष्ट हैं. हम किसी गलत पदार्थकी ओर आकर्षित नहीं होते जो कि हमें किसी प्रकारका नुकसान पहुंचा सके.

(सुबोधिनीकारिका-७)

भक्तिसिद्ध्यैतु यज् ज्ञानं श्लोके षष्ठे निरूप्यते।।

अन्यथाभावशंकायाः व्यावृत्त्यर्थं भवान् परः।।७।।

इस प्रकारकी भक्तिकी सिद्धिके लिए जैसे ज्ञानकी अपेक्षा होती है वैसे स्वरूपका निरूपण छठ्ठे श्लोकमें किया गया है. हर प्रकारका ज्ञान अथवा समझ भक्तिके अनुकूल नहीं है. उसी प्रकार हर प्रकारका वैराग्य भी भक्तिके अनुकूल नहीं है. एक विशेष प्रकारका ज्ञान, एक विशेष प्रकारका वैराग्य ही भक्तिकी मनोदशामें सहायक है.

उदाहरणके लिए कोई लड़का-लड़की शादी करने जा रहे हों तो हस्त-मिलापके समय कौनसे मन्त्र बोलने, इसका विचार/विवेक तो रखना ही पड़ेगा. हस्त-मिलापके समय अक्सर पुरोहित कन्यादाताका मन्त्र बोलते हैं ''इस सर्वाभरणोंसे विभूषित लक्ष्मीरूपा सुन्दर कन्याका हाथ मैं विष्णुरूप तुम्हें सोंप रहा हूं!'' फिर कन्याप्रतिगृहीता वरका मन्त्र भी बोल देते हैं ''मैं इस कन्याको अपनी अर्धांगिनीके रूपमें स्वीकार रहा हूं''. बेचारे वरराजाको तो उस समय मन्त्र बोलनेकी सुधबुध कहां होती है? यह मन्त्र भी तो पुरोहित ही बोलता है. अब ऐसेमें अचानक कोई ब्रह्मज्ञानी वहां पहुंच जाय; जबकि वर-वधु एक-दूसरेकी ओर मुग्धभावसे निहार रहे होते हों तब कहने लगे कि ''इस मांसपिण्डके शरीरमें लक्ष्मीविष्णु रूपी होना कैसे सम्भव है? क्योंकि मूलमें तो भीतर एक हाड़पिंजर है. उसके ऊपर स्नायुका आवरण है. उनके भीतर मांस भरा हुवा है और उनमें भरी रक्तवाहिनीमें रक्त बह रहा है. उनके ऊपर त्वचा और रोम का आवरण है. इसमें लक्ष्मीविष्णुके विवाहसंबन्ध जैसा है क्या?'' क्या उस समय ऐसा ज्ञान किसीको स्वीकार्य होगा? ऐसा ज्ञान तब क्या मिथ्या नहीं है? चाहे वह सुंदर स्त्री न हो, भीतर तो हाड़-मांसका पिंजर ही हो. यह अन्दरकी हकीकत है. सत्य तो है पर यह ब्रह्मज्ञान प्रेममें साधक नहीं होता, बाधक होता है. हरेक ज्ञान जब हम

किसीको एक्स-रे फोटोकी तरह दिखाते हों जैसे सगाईसे पहले एकदूजेका फोटो भेजनेके बजाय एकदूजेकी एक्स-रे फोटो भेजने लगे तो "तुम जो सगाई करने जा रहे हो उससे पहले अन्दरूदी हक़ीकत तो देखपरख लो" तो वह तो घबराके दोनों वहांसे भाग ही जायेंगे.

इसका कारण है, प्रत्येक ज्ञान, प्रत्येक वैराग्य, भक्तिमें सहायक नहीं होता. एक विशेष प्रकारका ज्ञान ही भक्तिमें सहायक होता है. और नहीं प्रत्येक भक्ति प्रत्येक ज्ञान-वैराग्यमें सहायिका बन पाती है. जैसे नकारात्मक वैराग्य भक्तिमें सहायक नहीं होता परन्तु सकारात्मक वैराग्य भक्तिमें अत्यधिक सहायक होता है. विवाहके मन्त्र हमको समझमें नहीं आते परन्तु कितने उत्तम मन्त्र है! "जैसे शिव-पार्वती लक्ष्मी-विष्णु नर-नारायणी नदी-पहाड़ का चिरन्तन कालसे संबन्ध है वैसे ही तुम वर-वधु एक-दूसरेके साथ जुड़े रहो" इस बातसे एक अलग प्रकारकी आसक्ति उत्पन्न होती है. विवाहकी बात तो मैं तुम्हें इसलिए सुना रहा हूं कि मेरे दार्शनिक प्रवचनसे तुम्हारे सरमें दर्द न हो जाय. जो ज्ञान भक्तिमें साधक होता है वह भगवान्‌का माहात्म्य ज्ञान है. जिस प्रकारका वैराग्य भक्तिमें साधक होता है वह तुम्हारा टोटालिटीके लिए(भगवान्) समर्पणकी भावना लिया हुवा वैराग्य है कि "मैं उसके लिए हूं". एक बार आपने यह चुना कि आपका मस्तिष्क किसी औरके लिए है, तब आपको एक सकारात्मक वैराग्यकी अनुभूति होगी. उदाहरणके लिए आपने यदि यूनिवर्सिटीका कोई विषय चुना, साईंस् आर्टस् अथवा कॉमर्स्. एक बार आपने वह विषय चुना फिर यूनिवर्सिटीमें कितने ही विषय पढ़ाये जाते हों पर आप उनसे अलग ही रहेंगे. आप उनकी ओर आकर्षित नहीं हो पायेंगे. क्योंकि आपने एक विशेष विषय चुना है. इस प्रकार होनेवाला वैराग्य एक सकारात्मक वैराग्य होगा. वह वैराग्य आपको उस विषय विशेषके प्रति आसक्ति पैदा करेगा. महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यने भक्तिकी नींव इसी सिद्धान्तपर रखी है.

अब "अन्यथाभावशंकाया: व्यावृत्त्यर्थं भवान् पर:" इतने सारे भक्तिके वर्णनके बाद समस्या यह खड़ी होती है कि भगवान्‌ने इनको वृक्षयोनिके बन्धनसे छुड़ाया और यह नलकूबर-मणिग्रीव भगवान्‌की स्तुति करके आभार व्यक्त करके अपने घर चले गये. यह किस प्रकारका उनका व्यवहार है! इस तरहका आभार तो एक प्रकारसे आभार नहीं व्यक्त करना हुआ. जैसे कि यदि किसीका बच्चा नदीमें डूबता हो और कोई उस बच्चेको बचाये और उस बच्चेका बाप उस व्यक्तिसे यह पूछे कि "बच्चेको बचाया वह तो ठीक है पर इसकी टोपी कहां है?" एक तो वह बच्चेको बचा रहा है और आप उससे टोपी क्यों नहीं बचा पाये का झगड़ा करने लगो! यह एक प्रकारसे आभार नहीं व्यक्त करनेका प्रकार हुआ. एक तो भगवान्‌ने तुम्हें वृक्षयोनिसे छुड़ाया और तुम उनका बस आभार व्यक्त करके चले गये. ऐसे आभारका क्या प्रयोजन? इसलिए कहते हैं कि इस प्रकारकी भक्तिकी सिद्धिके लिये छट्ठे श्लोकमें जो ज्ञान वर्णित करनेमें आया, उस ज्ञानमें कोई अन्यथाभाव न आ जाय मतलब कोई दूसरे प्रकारका मूड् तुम्हारे अन्दर रसाभास न पैदा करने लग जाय. इस कारणसे कहते हैं कि भगवान् हरेकसे 'पर' है.

(सुबोधिनीकारिका-८-९)

भगवन्तं नमस्कृत्य गमनप्रार्थना कृता।।
तद् अयुक्तं भक्तिमतामिति भक्तिस्तु षड्गुणा।।८।।
भक्तै: सहैव सा कार्या परोक्षेणैव सिध्यति।।
गुप्तो रसस् तदा उद्बद्धो रसतां याति न अन्यथा।।९।।

तत्पश्चात् भगवान्‌को नमस्कार करके भगवान्‌की स्तुति की कि "आप आज्ञा दें तो हम जायें." यहां एक बहोत बड़ा प्रश्न उपस्थित होता है कि नलकूबर-मणिग्रीव यदि सच्चे भक्त हैं तो इन्हें भगवान्‌को छोड़ कर जाना नहीं चाहिये? ये वृक्षयोनि छोड़ कर भगवान्‌के सामने प्रकट हो गये और भगवान् भी इनके रुचिकारक बालभावके स्वरूपसे

उनके सामने प्रकट हो गये. फिरभी इनको भगवान् क्यों नहीं पसंद आ रहे हैं कि ये भगवान्को छोड़ कर जानेके लिए तैयार हैं! यह एक बड़ी समस्या है. इन श्लोकोंमें यदि भक्तिका वर्णन है तो भगवान्को छोड़ कर जानेवाली बात भक्तिके मूड्में तो फिट नहीं बैठती.

महाप्रभुजी कह रहे हैं कि जानेकी आज्ञा माँगनेके बावजूद भक्तिहीन नहीं हैं. क्योंकि इनको यह बात समझ नहीं आ रही है कि ऐसा भगवान् केवल हमें छुड़ानेके लिए ही बंधे हैं या बन्धनेका कोई दूसरा हेतु भी है. इसका निर्णय किस प्रकार किया जाये यह समझे बिना यदि हम यहांसे चले जायें तो भगवान्की कौनसी लीलामें विक्षेप आयेगा यह पता नहीं चलता. एक तो प्रभुने हमें मुक्ति दी और हम उसकी लीलामें विक्षेप उत्पन्न करें, यह तो उचित नहीं है. ऐसा न हो इसलिए उन्होंने दैन्यसे भगवान्से जानेकी अनुमति माँगी. यह उनका एक भक्तिमय व्यवहार ही था और कुछ नहीं. दूसरी तरहसे देखें तो भक्ति तो तभी होती जब वे भगवान्को बंधे देख कर उन्हें छुड़ाते. पर भगवान्का और हेतु है कि व्रजमें निरन्तर भगवान् तामस-भक्तोंके साथ तामसलीला ही कर रहे हैं. वे सीधे-सीधे तो यह नहीं कह सकते कि "तुम मुझपर ध्यान लगाओ." कोई भी नटखट बच्चा जब कुछ तूफान करता है तो मनोनिगूढ़ कारण होता है वह बड़ोंका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करना चाहता है. यह तामस उपाय है. उसी प्रकार कृष्ण भी बंधे हैं और वे व्रजभक्तोंके आनेकी और उनको छुड़ानेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं. जब कोई आ नहीं रहा तो वे वृक्ष गिराने जैसी नटखट लीला करके उनका ध्यान आकृष्ट कर रहे हैं. भगवान् तो यह लीला करना चाह रहे हैं और नलकूबर-मणिग्रीव यह मान रहे हैं कि यदि वे उनको छुड़ा देंगे तो यह लीला संपन्न नहीं होगी. इसलिए वे विनती कर रहे हैं कि "आपकी यदि इच्छा

हो तो हम जायें!" यह उनकी उपेक्षा नहीं, एक प्रकारकी भक्ति ही है.

मुझे अभी एक ब्रजभाषाकी सुंदर कविता याद आ गयी : "*रोकहिं जो तो अमंगल होय औ प्रेम नसे जो कहें पिय जाइए, जो कहें जाहु न तो प्रभुता, जो कछु न कहें तो सनेह नसाइए, जो 'हरिचन्द' कहैं तुमरे बिन जीहैं न तो यह क्यों पतियाइए, तासों पयान समै तुमरे हम का कहैं आपै हमें समुझाइए*". एक प्रीतम बिदा लेते समय अपनी प्रियतमासे पूछता है अच्छा तो मैं चलुं! प्रियतमा कह रही है कि रोकुं या टोकुं तो कहीं अमंगल न हो जाये. जो 'जाओ' कहूं तो मेरा प्रेम खण्डित हो जाता है. 'मत जाओ' कहुं तो 'डिक्टेटरशिप् लगेगी. मैं क्या कह सकती हूं तुम ही बता दो न कि तुमको मुझसे क्या सुननेकी अपेक्षा है. 'जाओ' यदि कहनेकी अपेक्षा रखते हो तो 'जल्दी आना' कह दूंगी. और 'न जाओ'की अपेक्षा हो तो तुम ही बता दो न कि सचमुचमें तुम्हारी जानेकी इच्छा या नहीं? केवल कहनेके लिए ही तो कहीं कह नहीं रहे हो न. इस बातपर एक शेर याद आगया "*हम तो बस कहनेको कह बैठे थे कि जाते हैं, तुम जो कहते कि बैठ जाओ तो बैठ क्यों न जाते हम*". हम कहीं बैठे हों और हमें पता नहीं चले कि आप हमारे कारण बोर हो रहे हैं कि नहीं, तो हम कह देते हैं "अच्छा चलें." दूसरा कह दे कि "अच्छा जाओ" तो चले जाना चाहिये. हम तो ऐसे ही पूछ रहे थे. आपने कहा होता कि "कहां जायेंगे बैठिये न अभी!" तो हम बैठ जाते, हमें कहाँ जानेकी जल्दी थी!"

यह बात ध्यानसे समझनी चाहिये कि भक्ति रूपी स्नेहके मूड्में नलकूबर-मणिग्रीव कह रहे हैं कि "हम जायें?". अब यदि भगवान्‌को उनका जाना अच्छा न लगे तो भगवान् कहेंगे कि 'बैठो' और

कहें कि "जाओ भले" तो भगवान्‌को बंधे छोड़ कर चले जायेंगे. यही तो भक्तिका बड़ा रहस्य है. यह तो एक पौराणिक वृत्तान्त हुवा. हम सभी भगवान्‌की अनुपस्थितिमें नलकूबर-मणिग्रीवकी तरह भगवान्‌की भक्ति कर रहे हैं कि नहीं? ऐसे प्रसंग अपने जीवनमें आते हैं कि नहीं कि जिस भगवत्स्वरूपकी सेवा अथवा भक्ति कर रहे हों तब तब छोड़ कर अन्यत्र कहीं जाना पड़ता ही है. उस समय अपना ह्रदय भक्तिमय है कि अभक्तिमय है, ऐसा ही कोई पॅरामीटर् यहां आया है. प्राण जैसे जीवनमें होता हैं उसी प्रकार भक्तिके जीवनमें यह प्राण जैसे दस-श्लोक हैं. यह भक्तिकी पूर्ण समझ है कि जो भक्तिकी शुद्ध-भावनापर अवलम्बित है. कहनेका अर्थ भक्तिके यह प्राण समान श्लोक है.

"**तद् अयुक्तं भक्तिमतामिति भक्तिस्तु षड्गुणा**" यहां छ गुणवाली भक्तिका वर्णन करनेमें आया है. यह गुण आगे कहे जायेंगे. यह छ गुणवाली भक्ति प्रभुके साथ नहीं पर भक्तोंके साथ की जा रही है. जबकि नवधा भक्ति प्रभुके साथ की जाती है. यह भक्ति छ गुणवाली होनेसे भक्त भगवान्‌को छोड़ कर जा सकता है अथवा नहीं जा सकता; यह योग्य है कि अयोग्य है, इस समस्याके समाधानके लिए कहते हैं "भक्ति तो भक्तोंके साथ हिलमिल कर करनेकी होती है. अत: भगवान्‌की असंनिधिमें भी कहीं की जा सकती है."

"**भक्तैः सहैव सा कार्या परोक्षेणैव सिध्यति**" एक मूल सिद्धान्तकी बात समझो कि कोई भी कर्म अथवा ज्ञान गीताके परिप्रेक्ष्यमें कहें तो कर्मयोग और ज्ञानयोग की मूल धारणा है कि उसके अनुरूप जो विषय है वह तुम्हारे साथ संपर्कमें होना चाहिये. विषयकी अनुपस्थितिमें परोक्षमें कर्मयोग या ज्ञानयोग सिध्ध नहीं हो सकते. उदाहरणके तौरपर जैसे मैं तुम्हें पढ़ा रहा हूँ, यह मेरा कर्म है. मैं तुम्हें कब पढ़ा सकता हूँ जबकि तुम यहाँ बैठो और सो नहीं जाओ तब. यदि

पांच-दस मिनिटमें मुझे पता चले कि जिन्हें मैं पढ़ा रहा हूँ वे तो सो रहे हैं. तो फिर पढ़ाऊँ कैसे?

मेरे साथ किशनगढ़में ऐसी ही दुर्घटना हुयी. गर्मीके दिन थे. मैंने रातको छतपर गीताके द्वादश अध्यायपर प्रवचन प्रारंभ किये. अचानक बरसात आयी और ऐसी ठंडी हवा चली कि आनन्द आ गया. पर थोड़ी देरमें बिजली भी चली गयी और अंधेरा हो गया. मुझे लगा कि बिजली जानेसे, बोलने और सुनने में तो कोई समस्या नहीं होनी चाहिये. वहाँ सीमित श्रोता थे. मैंने सोचा कि प्रवचन चालू रखूँ. आधे घंटे बाद बिजली आयी तो मेरे सिवाय सभी श्रोता सोये हुवे मिले. मुझे इतनी झेंप चढ़ी कि अंधेरेमें मैंने किसके सामने बॉलिंग करी! मैंने एकसे पूछा कि "समझ तो आया न!" वह बोले "महाराज अभी तो नींद जोरोंसे आ रही है. हम कल इस विषयपर बात कर लेंगे". धंधेमें भी कोई ग्राहक आयेगा तब ही धंधा तो चलेगा. कोई ग्राहक ही नहीं हो तो दुकानदार दुकानपर कितने दिन बैठ सकेगा? अत: कर्मकी एक ही आवश्यकता है कि जिसके साथ संबंधित है उसके साथ वह निरन्तर वार्तालापतया एक डायलॉग्के तरह चलना चाहिये.

ज्ञानके लिए भी आवश्यक बात यही है कि जिसको तुम जानना चाह रहे हो उसके साथ तुम्हारा निरन्तर डायलॉग् वार्तालाप होना चाहिये. थोड़ी भी यदि इसमें कमी आयी तो तुम्हारा विश्वास हिल जाता है. यदि आपके सामने विषय नहीं है तो अनुभव और भ्रम में क्या भेद रहेगा? दोनों ही स्थितिओंमें आपको किसी विषयका ज्ञान होता है. अनुभवमें संबंधित वस्तुकी उपस्थिति होती है पर भ्रममें वह वस्तु नदारद है. जैसे ही आपको पता चलता है कि संबंधित वस्तु है ही नहीं तो आपका आत्मविश्वास डगमगा जाता है. जो भी मुझे अनुभव हो रहा है वह सत्य है अथवा मिथ्या?

यहीं आकर ज्ञान और कर्म एक सीमामें बंध जाते हैं;

परन्तु इससे एक 'आसक्ति'का गुण निखर कर सामने आता है. यदि मैं किसीसे आकृष्ट हूँ तो बस आकृष्ट हूँ. जिसको भी में प्रेम करता हूँ वह है अथवा नहीं है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता. क्या हम अपनी प्रेमिकासे प्रेम नहीं करते? वह सामने हो अथवा न हो तो भी करते तो हैं ही न! बहुत सारी वस्तुएँ खतम हो जाती हैं पर हम जिसको प्रेम करते हैं प्रेम तो अपना कायम रहता है. स्नेहकी एक ऐसी गरिमा है कि स्नेह विषयका मोहताज नहीं है. ज्ञान अथवा कर्म में यह संभव नहीं है. ज्ञान अथवा कर्म में तुम्हें संबंधित विषय उपस्थित होने चाहिये ही. भक्तिके लिए यह आवश्यक नहीं है.

यदि किसीको यह आवश्यक लगता है वह अपने स्नेहके विषयको ब्रह्मकी तरह नहीं, अपितु ब्रह्मको विषयकी तरह ट्रीट् करता है. तब तो स्नेहमें भी यह ड्रॉ-बॅक् आ जायेगा.

पर समझो कि यदि कोई किसीको दिलसे चाहता है, उसका हर समय हाजिर होना आवश्यक नहीं है. लड़का पच्चीस बरससे अमेरिकामें रह रहा हो तो भी क्या माँका स्नेह खंडित हो पायेगा? नहीं होगा. स्नेह तो कायम रहेगा ही. अपने प्रेमीके हाजिर होनेकी जितनी आवश्यकता कर्म और ज्ञान को है उतनी भक्तिको नहीं है और क्योंकि भक्तिकी प्राथमिक आवश्यकता प्रेम है. इसलिए भक्तिको किसी भी विशेष साकार विषयकी आवश्यकता नहीं है. भगवान् है अथवा नहीं, इस बातसे कोई खास फरक नहीं पड़ता.

"दिल है कदमोंपर किसीके सर झुका हो या ना हो, बन्दगी है अपनी फितरत अब खुदा हो या ना हो." मेरा दिल किसीके

पैरोंपर झुका है. सर नहीं झुक पा रहा तो उससे कोई फर्क नहीं पड़ता. तेरी भक्ति तो मेरी प्रकृति है. अब खुदा हो या न हो मुझे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता. आप इसे समझनेका प्रयास करो कि जब नलकूबर-मणिग्रीवने भगवान्से आज्ञा माँगी कि "आप हमें जानेकी आज्ञा दो तो हम जायें." इसपर महाप्रभुजी कहते हैं कि उन्हें इस बातसे फर्क नहीं पड़ता कि प्रभु उनके साक्षात् रहें या परोक्ष रहें. क्योंकि वे भगवान्को पूर्णरूपसे समर्पित है. यदि भगवान् उनके सामने है तो वे समर्पित है और यदि भगवान् उनके सामने नहीं है तो भी वे पूर्णरूपसे समर्पित है. इसी कारणसे वे भगवान्की लीलामें व्यवधान नहीं बनना चाहते. ऐसा क्यों नहीं चाहते, इसका कारण कहते हैं कि इन्होंने पहले भगवान्के बारेमें बहुत सारी बातें सुन रखी थीं. पर भगवान्की ऐसी विचित्र स्थिति कभी नहीं सुनी कि भगवान्को कोई बांध दे और उसे वे खोल ही न सकें!!! घिसटते-घिसटते जायें और ऊलूखल वृक्षोंमें फंस जाय और वृक्ष उखड़ जायें. उन्हें निश्चित नहीं था कि ऐसी स्थितिमें भगवान्को उनका वहाँ रहना पसंद आयेगा कि नहीं आएगा. अतः उन्होंने भगवान्को समर्पण कर दिया और कहा कि "भगवान् यदि आप ऐसी लीला करना चाह रहे हैं तो कीजिये और हमें आज्ञा दीजिए. यदि आप चाहते हैं कि हम भी इस लीलाका हिस्सा बन कर इसका आनन्द लें, तो हम प्रसन्नतासे वह आज्ञा भी स्वीकार लेंगे. हमें, परन्तु, निश्चित नहीं है कि यह आपकी निजी लीला है या सर्वोद्धारक लीला है" इनकी जानेकी प्रार्थना इनके भक्तिके मूड़के विपरीत नहीं जा रही है, ऐसा वे कह रहे हैं. भक्ति परोक्षमें भी हो सकती है.

इसके बाद महाप्रभुजी कहते हैं कि "**गुप्तो रसस् तदा उद्बुद्धो रसतां याति न अन्यथा**" हर समय घनिष्ठ मित्रता जिसके साथ होती है उसके साथ एकान्त अच्छा लगता है. तभी उसमें शिष्टता और

माधुर्य प्रकट होता है पर यदि वह ही बात जग-जाहिर हो जाय जैसा कि हवेलियोंमें होता है तो बात कुछ और ही मोड़ ले लेती है. हम कहनेको तो कहते हैं कि भगवान्की भक्ति हम कर रहे हैं, पर करते हैं प्रदर्शन. ऐसा यदि अपनी पत्नी जिद पकड़ ले कि "आप प्यार एकान्तमें बॅडरूममें नहीं पर जाहिरमें करो तो मानूं." ऐसेमें कोई पति उसका साथ देगा? भक्ति कभी भी धंधा नहीं बन सकती, व्यापार नहीं बन सकती. भक्ति और समर्पण कभी भी प्रदर्शनकी वस्तु नहीं बन सकते. यदि ऐसा है तो वह भक्ति नहीं हो सकती.

यह बात नलकूबर-मणिग्रीव भगवान्को कह रहे हैं कि "हमें ज्ञात नहीं है कि आज आप व्रजभक्तोंके लिए स्नेह प्रकट कर रहे हो अथवा कि आप जो बंधे हुओंके बन्धनको छुड़ानेवाले होनेके कारण खुद बन्धनमें बंध गये हो यह तो तुम्हारा कोई स्नेह लगता है उनके प्रति. तुम्हें ऐसी स्थितिमें हमारी उपस्थिति अथवा अपना यह अनावरण हमारे समक्ष अच्छा लग रहा है कि नहीं लग रहा! वह हमें पता नहीं है. क्योंकि किसी भी स्नेहमें गुप्तता हो तो ही रस प्रकट होता है और प्रकट होते ही रसाभास हो जाता है. अत: यदि आपको हमारी मौजूदगी रसाभास लग रही है तो हमें जानेकी आज्ञा दीजिये. यदि हमें यहाँ रखनेकी आपकी इच्छा है तो हम भी इस लीलामें हिस्सा बन सकते हैं"

'रसाभास'का अर्थ है अँटीक्लाइमेक्स्. कोई भी फिल्म अथवा नाटक देखने जाओ, उसका एक मूड् होता है. यह मूड तो रहना चाहिये न! अपने बॉलीवुड्की फिल्मकी एक विशेषता है कि उनमें कोई रस ही नहीं होता. हर फिल्ममें थोड़ी मारा-मारी, थोड़ा प्रेम-प्रसंग, थोड़ा मर्डर् होता है. हर फिल्ममें हरेक अॅलीमेन्ट् रख दिया जाता है, जिससे विशेष कोई रस रह ही नहीं जाता. एक प्रकारकी चौपाटीकी

भेल-पुरी जैसा. कोई एक अच्छी फिल्म हो तो वह एक रसको ले कर चलती है. फिर चाहे वह कोई भी रस हो; क्राइम् हॉरर् लव् सस्पेंस्, एक रसके थीम्को ले कर चलना उसका नाम 'रस'. उस थीम् अथवा मूड् को बदलना मतलब रसाभास.

यहाँ जो बात कही जा रही है वह यह है कि "जिस मूड्में आप लीला कर रहे हो, उस मूड्में यदि आपको हमारी उपस्थिति अच्छी लगती हो तो हम उपस्थित रहना चाहेंगे. किन्तु; यदि आपको हमारी उपस्थिति अच्छी नहीं लगती तो हमें जानेकी आज्ञा दें. इस बातसे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप हमारे समक्ष हैं अथवा नहीं हैं." वह ही बात कह रहे हैं कि "**गुप्तो रसस् तदा उद्बुद्धो रसतां याति न अन्यथा**" यदि रस गुप्त रहे तो ही उसकी रसरूपता कायम रहती है.

शास्त्रमें रसकी परिभाषामें एक बात कही गयी है उदाहरणके लिए करुणरस और शृंगाररस इनमें क्या भेद है? शृंगाररस अथवा स्नेह में प्रीतम और प्रियतमा एक-दूसरेसे अलग हों तो रोना आयेगा. उसे 'करुणरस' कहा जायगा. इसमें रसशास्त्रकारोंने एक खुलासा किया है कि रोना तो कोई मर जाय तब भी आता है. कोई अपनेसे जुदा हो तो भी आता है. तो दोनों रोनेमें अन्तर क्या है? एक रोनेमें आशा है कि फिर मिलेंगे, दूसरे रोनेमें फिर मिलनकी आशा ही समाप्त हो जाती है. यदि मिलनकी आशा ही समाप्त हो जाय तो वह रुदन 'करुणरस' कहलाता है और फिर मिलनकी आशा हो तो उस रुदनको 'शृंगाररस' कहा जाएगा, यह मूलभेद दोनोंमें है. इसीलिए कहते हैं कि आपको यदि लवस्टोरी दिखानी हो तो हीरो-हिरोईनकी मृत्यु न दिखायें. यदि मृत्यु ही दिखानी है तो उसे लवस्टोरी न कह कर ट्रेजडी कहें. इन दो प्रकारकी कहानियोंको दो प्रकारसे प्रस्तुति की जाती है. प्रारंभसे ही आपको कुछ प्रसंग

ऐसे प्रस्तुत करने होते हैं कि आपका हृदय उस मर्मको पकड़ कर रखे.

एक बात समझो कि भक्ति और भक्तिरस दो अलग-अलग वस्तुएं हैं. जैसे क्रोध अलग वस्तु है और रौद्र-रस एक अलग वस्तु है. रौद्र-रसका स्थायिभाव क्रोध है. इसी तरह भय अलग है और भयानकरस एक अलग वस्तु है. इनमें अन्तर इस प्रकार समझा जा सकता है कि अचानक यहां भूकंप आ जाये तो हमें भय लगेगा, भयानक रस उत्पन्न नहीं होगा पर यदि हम कोई भूकंपकी वीडियो देख रहे हैं तो भय नहीं भयानक-रस उत्पन्न होगा. इसी प्रकार भक्ति एक अलग वस्तु है और भक्तिरस एक अलग वस्तु है. हरेक भक्तिका केस भक्तिरसका केस नहीं है. भक्तिरसका केस भक्तिसे उत्तम है क्योंकि भक्तिकी रसता यदि हम समझें तो उसका एक अलग ही आनन्द है. जैसे भयमें हमें लगता नहीं है कि इसमें आनन्द जैसी कोई बात है जैसे जब हम किसी भयानक परिस्थितिमें होते हैं तब हमें भयानकरसका अनुभव नहीं होता पर यदि उस स्थितिसे बाहर आनेके बाद हमें उसकी बात करनेका एक अलग ही आनन्द आता है. वह भयानकरसका ही आनन्द है. इसी प्रकार भक्तोंके साथ भक्ति रसरूपमें प्रकट होती है और भगवान्के साथ भक्ति भक्तिकी तरह प्रकट होती है. भक्तोंके साथ जब भगवान्की भक्तिकी चर्चा होती है तो उसमें एक अलग ही आनन्द आता है. भक्ति तो भगवान्के साथ भक्तका व्यवहार है.

(सुबोधिनीकारिका-१०)

गुणप्रधानभावत्त्वम् एकत्र हि विरुध्यते।।

अतो अत्र भगवान् लीलां स्वयं कर्तुं समुद्यतः ।।१०।।

हमेशा एक बड़ी समस्या भक्तिमें खड़ी होती है कि भगवान् बड़े कि भक्ति बड़ी! लॉजिकली देखें तो यह बात सामने आती

है कि यदि भक्ति न हो तो भगवान् कितने भी बड़े क्यों न हों, पर उनकी कोई कीमत नहीं है. कंसको कहां कीमत थी भगवान्की! निरंतर वह भगवान्को मारनेका ही प्रयास कर रहा था. क्योंकि उसमें भक्ति नहीं थी. हमें लगेगा कि फिर तो भक्ति भगवान्से बड़ी होगी क्योंकि वह भगवान्को माननेका साधन है. पर यही बात यदि हम भक्तिसे पूछें तो वह कभी नहीं कहेगी कि वह भगवान्से बड़ी है. भगवान्से पूछोगे तो वे खुदके बजाय भक्तिको ही बड़ी मानेंगे. भक्ति तो अन्तमें भगवान्के लिए ही है तो फिर भगवान् बड़े. है न असमंजसकी स्थिति! इसका एक ही समाधान है कि यदि हमारी समझ और प्रवृत्ति इन दोनोंके बीच एक पँडुलम्की तरह डोलती रहे तो ही इसका आनन्द लिया जा सकता है. यदि वह एक जगह स्थित हो गयी तो दोनोंका मजा छूट जायगा. केवल भक्तिमें स्थित हो गये तो भगवान्का मजा चला जायगा और यदि केवल भगवान्में स्थित हो गये तो भक्तिका मजा चला जायगा.

उदाहरणके लिए जैसे कोई कहे कि मुझे तुमसे बहुत स्नेह है. तुम मेरे घर आओ तो भी ठीक है और न आओ तो भी ठीक है. ''मैं तो स्नेहका आनन्द ले रहा हूं, तुमसे कोई प्रयोजन नहीं है''. ठीक इसके विपरीत ''तुम आओ पर मुझे तुमसे स्नेह नहीं है.'' कोई आयेगा ऐसे किसीके घर? इस कारण स्नेह और स्नेही में कौन बड़ा? इसका निर्णय हो नहीं सकता. दोनों ही आवश्यक हैं. दोनों ही अन्योन्याश्रित हैं, एक दूसरेपर निर्भर हैं. इसी प्रकार भक्ति और भगवान् के बीच अपनी भावनाओंका पँडुलम् निरंतर डोलता रहना चाहिये. तभी अपनी भक्तिका मजा हम ले सकेंगे.

''**गुणप्रधानभावत्वम् एकत्र हि विरुध्यते**'' मानें अपनी दीनता भी रखनी और प्रधानता भी रखनी, यह कैसे संभव है? तो कहते हैं कि ''**अतो अत्र भगवान् लीलां स्वयं कर्तुं समुद्यतः**'' क्योंकि

यहाँ भगवान् स्वयं ही लीला करनेके लिए समुद्यत हैं.

(सुबोधिनीकारिका-११)

स्वस्यैव रसभोगार्थं परार्थं वा इति अनिर्णयः ।।
ताभ्यां विमोचनं नैव शक्यं पक्षद्वयेऽपि हि ।।११।।

"स्वस्यैव रसभोगार्थं परार्थं वा इति अनिर्णयः" भगवान्के एक लाचार बालककी तरह बंधे रहनेकी जो लीला है, वह स्वयंको प्रसन्न करनेके लिए कर रहे हैं. इसका निर्णय किस प्रकार करना? यदि स्वयंको प्रसन्न करनेके लिए यह लीला कर रहे हैं तो व्यर्थमें हमको अपनी चोंच उसमें नहीं डालनी चाहिये. यदि हमको प्रसन्न करनेके लिए कर रहे हैं तो हमको आज्ञा दे ही देंगे कि तू भी यहाँ खड़ा रह और देख कि मैं क्या लीला कर रहा हूँ. इसलिए जहाँ ऐसा कोई प्रसंग आये और वहाँ निर्णय न होता हो, ऐसी स्थिति नलकूबर-मणिग्रीवकी वहाँ हुयी, पूर्णरूपसे भक्ति और समर्पण होनेके बावजूद. "ऐसी विचित्र स्थितिमें भगवान् हैं वह स्वयंको प्रसन्न रखनेके लिए यह लीला कर रहे हैं कि भक्तोंको प्रसन्न करनेके लिए कर रहे हैं, इसका निर्णय किस प्रकार लेना?"

मैं अक्सर एक बात कहता हूं कि विवाहके लिए जब कोई लड़का-लड़की आपसमें मिलें और यह पूछना प्रारंभ करें कि "मैं क्यों पसंद आया?" बस समस्या वहींसे खड़ी हो जाती है. रूप गुण स्वभाव परिवार सम्पत्ति कीर्ति आदि सभी बातोंमें कोई न कोई तो अपनी पसन्दसे अधिक श्रेष्ठ हो ही सकता है. तो फिर किसी एकपर पसन्द ढोलनेका प्रयोजन क्या? इस बातका समाधान मिलेगा कैसे? किसी भी भावावेशका विश्लेषण करना अच्छी बात नहीं है. क्योंकि वह कोई-न-कोई समस्या खड़ी कर देगा. भावावेशको उसकी पूर्णता अथवा पवित्रता में लेना चाहिये.

साइकोलॉजीका एक सिद्धान्त है कि जब भी आप किसी त्रिकोणका तीन लाइनोंमें ज्योमेट्रिकल विश्लेषण करने लगते हो तो वह त्रिकोण अपनी पहचान खो देता है. इसी प्रकार बहुतसी भावनाओंके साथ यह समस्या होती ही है कि जब-तक हम उनका विश्लेषण नहीं करते हैं तब-तक तो वह भावनाएं दिखलाई देती हैं. पर जैसे ही हम उनका विश्लेषण करने लगते हैं तो भावनाएं अपना अस्तित्व ही खो देती हैं. उदाहरणके लिए एक माँ जो अपने बच्चेको दूध पिलाती है उसका यदि हम विश्लेषण करें कि दूध पिलाया क्योंकि वह उसका बच्चा था. इसलिए कि वह बड़ा हो कर उसकी सेवा करेगा. यह सुन कर बच्चेमें आदरभाव कभी जगेगा? प्रत्येक संबन्धमें किसी भी भावनाका विश्लेषण संबन्धको पूर्णतया खंडित करनेवाला ही होता है.

"स्वस्यैव वा परार्थं" मानें जैसे कि कोई लड़का अपनी फियांसीसे पूछे यह पूछे कि "मैं तुझे प्रेमके कारण अच्छा लगता हूं इसलिए तू मुझसे विवाह करना चाहती है अथवा मेरे कारण तेरा कोई स्वार्थ पूर्ण होनेकी स्वाप्निक लालसाके कारण?" इसमें जितने भी कारण हम ढूंढने जायेंगे उनसे कोई न कोई बखेड़ा खड़ा होगा. कोई समाधान तो निकलेगा नहीं. इस बातके जितने भी उत्तर हम खोजेंगे वह सभी झूठे होंगे. सच्चा तो केवल वह संबन्ध ही रहेगा. इसलिए वह स्वार्थ हो अथवा परार्थ हो, इसके विश्लेषणकी कोई आवश्यकता नहीं है. वह जिस कारण भी हो उसे उसी रूपमें लेना चाहिये. हमारे शरीरकी भावनात्मक संरचना ही इस प्रकारकी है कि हम स्वार्थ और परार्थ दोनोंको साथ ले कर चल सकते हैं.

इसी प्रकार भगवल्लीला भगवान्के सुखके लिए है कि हमारे सुखके लिए? यदि केवल भगवान्के सुखके लिए हो तो फिर हमें क्यों इतनी समस्याओंमें डाला? हमने क्या गुनाह किया था? और

यदि हमें सुख देनेके लिए यह लीला है तो इसे हमारे ऊपर छोड़ दे. तू क्यों इसमें हस्तक्षेप कर रहा है? बायबलमें आता है कि यही बात एडम्ने गॉड्से कही थी. गॉड्ने एडम्से पूछा था कि "तेरा अकेलेका मन इस गार्डन्में नहीं लग रहा है तो चल मैं तुझे ईव् दे देता हूं." ईव्ने एडम्से कहा कि "तू ॲप्पल् खा ले." गॉड् इस बातपर एडम्से नाराज़ हो गये कि क्यों एडम्ने उनकी आज्ञाकी अवहेलना की! एडम्ने उस समय यही उत्तर दिया कि "आपने मुझे ईव्को मेरी जीवन-संगिनीके रूपमें दिया. आप स्वयं तो मेरे जीवन-संगी बने नहीं. अब मुझे किसका कहा मानना?" यह एडम् और गॉड् का झगड़ा आज-तक नहीं सुलझा. इस कारण स्वार्थ और परार्थ के द्वन्द्वके विभागोंमें हम संबन्धोका विश्लेषण करते हैं तो अन्ततः वह संबन्ध टूट ही जाता है. इस कारण भगवान्की इस लीलाका यहां विश्लेषण नहीं करना है. भगवान्की यह लीला भक्तको भी सुख देनेवाली है और भगवान्को भी सुख देनेवाली है. दोनोंका सुख एक-दूसरेपर अन्योन्याश्रित है. यह भक्तिका उत्तमोत्तम प्रकार है. भगवल्लीला यदि केवल भक्तके लिए हो तो भक्त कहेगा कि आप यह लीला इस प्रकार करो, उस प्रकार नहीं करो और यदि वह भगवान्के ही लिए हो तो भगवान् कहेंगे कि तू मेरी भक्ति केवल इस प्रकार ही कर. पर इस प्रकारकी सिस्टम्में दोनोंको आनन्द नहीं आयेगा.

यह विषयगत विश्लेषण महाप्रभुजीने पहले ही कर दिया है. अब इस पृष्ठभूमिको ध्यानमें रख कर हम श्लोक देखते हैं.

(प्रश्नोत्तर)

प्रश्न : उपपन्न और उपपत्ति का अर्थ क्या है?

उत्तर : 'उपपन्न' मानें 'जस्टीफाइड्' और 'उपपत्ति' अर्थात् जस्टीफिकेशन्. 'जस्टिफिकेशन्'का अर्थ है कि कोई वस्तु सच्ची है तो क्यों सच्ची है, यह समझ आना 'उपपत्ति' कहलाता है. 'पत्ति'का

अर्थ है 'ज्ञान'. कोई भी वस्तु तुम्हें समझमें आ गयी पर यह समझ नहीं आ रहा है कि यह वस्तु सच्ची क्यों है और सच्ची सिद्ध करनेके लिए हम जो कुछ भी विचार करते हैं, जो भी कुछ प्रबंध करते हैं, उसे 'उपपत्ति' कहते हैं. जैसे समझको 'प्रतिपत्ति' कहा जाता है. 'संपत्ति'का अर्थ 'वॅल्थ्'. 'उपपत्ति' मानें सच्ची क्यों है, उसका हेतु. 'अनुपपत्ति' मानें मिथ्या किसलिए है उसका हेतु. जो समझ आ गया हो, वह प्रतिपन्न. जिसका हेतु समझ आ गया हो वह 'उपपन्न'. जो समझानेवाली बात हो वह प्रतिपादक. जो सच्ची ठहरानेवाली बात हो वह उपपादक. जो गलत ठहरानेवाली बात हो वह अनुपपादक. जो समझा दी गयी हो वह प्रतिपादित और जो उपपन्न कर दी गयी हो वह उपपादित.

यदि भूलता न होऊँ तो एक दिन मैंने समझाया था कि सिरसे पैर तक अपनी अस्मिता समान रूपसे बंटी हुयी है. मतलब मेरा सिर और मेरा पाँव, मेरे सिरका बाल और मेरे पैरका नाखून, वहाँ तक अपनी अस्मिता बराबर बंटी हुयी है. उसके बाद भी हमको यह सॅन्स् है कि नहीं कि 'मेरा सिर'. गुजराती भाषामें ऐसा प्रयोग नहीं है परंतु संस्कृत भाषामें ऐसा प्रयोग है कि सिरको 'उत्तमांग' कहा जाता है और नीचेका हिस्सा 'अधमांग' कहलाता है. एक ही एकाईमें नीच और ऊँच का विभाजन, अनुपात अथवा अपेक्षाकृत हो सकता है, ॲसेन्शियली(तत्त्वरूप) होना आवश्यक नहीं है. यदि किसी भी वस्तुको तत्त्वरूप अथवा साररूप में देखें तो यह विभाजन आवश्यक नहीं है क्योंकि सिरसे पांव तक हम एक इकाई हैं. फिर भी हम स्वयं ऐसा अनुभव करते हैं कि सिर उत्तम है और पैर अनुत्तम. यह एक पक्षपात है, सोनाकी एक डली है, उसमें कुछ ऊँचा-नीचा नहीं होगा पर समझो कि उसी सोनेकी हमने एक मूर्ति गढ़ी तो उसमें अवश्य कुछ ऊपर कुछ नीचे होगा. लकड़ीका कोई थड़ है, उसका कदाचित् कुछ ऊपर-नीचे न भी हो पर जैसे

ही आपने उसकी कोई कुर्सी बनायी तो उसमें भी कुछ तो ऊपर और कुछ नीचे होगा ही. एक बर्तनमें हम जब खिचड़ी बनायें तो उसमें दाल-चावलकी दृष्टिसे कुछ ऊपर अथवा नीचे नहीं होता. पूरे बर्तनमें दाल और चावल भरे हुए हैं पर जैसे ही उसको तपाना शुरु करेंगे तो नीचेके भागमें उसके जलनेके चान्सिस् अधिक होते हैं. ऐसा इसलिए क्योंकि गरमाहट नीचेसे आ रही है. एक ही यूनिट् होनेके बावजूद भी यह प्रभेद तो आ ही रहे है. संस्कृतमें एक कहावत है "न शयानो पतति अधः" सोता हुआ मनुष्य नीचे नहीं गिरता क्योंकि नीचेके लेवल्पर जा कर सो गया है. उठा हुआ व्यक्ति ही गिर सकता है. यदि थोड़ा भी पैर इधर-उधर हो जाय तो क्योंकि उठते ही उसमें ऊपर और नीचे का प्रभेद खड़ा हो जाता है. इसी प्रकार वस्तु भी व्यवहार करना आरम्भ कर देती है और हम भी उसके उस रूपको स्वीकार करना शुरु कर देते हैं.

सीताजीको जब रावण हर कर ले गया, उस समय सीताजी अपने गहने रास्तेमें फेंकती गयी. उन गहनोंको बन्दरोंने इकट्ठा किया और लक्ष्मणजीसे पूछा कि आप इन्हें पहचानो. लक्ष्मणजी उन्हें पहचान ही नहीं सके, केवल उनके पैरके नुपूरको ही पहचान सकें. वे कहने लगे कि "मैंने तो अपनी भाभीके पैरके अतिरिक्त कुछ देखा ही नहीं है. इस कारण मेरे लिये यह बहुत कठिन है. मैंने यह नुपूर अवश्य देखे हैं." अब देखो, लक्ष्मणजीने सीताजीमें भी एक भेद तो किया ही है. वैसे भेद तो नहीं किया पर जिस वस्तुको उन्होंने देखा उसे ही याद रखा. जिन वस्तुको नहीं देखा उसे याद भी नहीं रखा. इस प्रकार वस्तुका व्यवहार प्रकट होता है. सो नूपुरको पहचान पानेके कारण उपपन्न हुवा किय सीताजीको रावण जहां नूपुर पड़े मिले उस मार्गसे अपहरण करके ले गया.

मैंने अपनी बड़ी लड़कीके विवाहका रिसेप्शन् रखा. वहाँ जो फोटोग्राफर् था पता नहीं उसे नींद आ गयी कि क्या हुआ. उसका वीडियो कॅमरा नीचे झुक गया. जितने भी मेहमान आये, केवल उनके पैर ही दिख रहे थे, किसीका चेहरा दिख ही नहीं रहा था. जो भी मेहमान आये वह आमंत्रित नहीं थे ऐसी बात नहीं थी. उनके पैर उनके नहीं थे, यह भी बात नहीं थी परन्तु रिसेप्शन्की वीडियोमें पैरके फोटो आनंदके बजाय सस्पेंस् अधिक उजागर करती है. इसलिए मुझे फिल्मका वह हिस्सा कटवाना पड़ा. हां वही कॅमरा यदि मुंहपर होता तो वह सीन् नहीं काटना पड़ता क्योंकि सस्पेंस् तो नहीं होता. पैर नहीं आयें फिल्ममें तो चले क्योंकि हम लक्ष्मणजीकी तरह आनेवाले अतिथियोंके पैर तो नहीं पहचानते, चेहरा पहचानते हैं. मेरी भी यदि आनेवाले मेहमानोंमें लक्ष्मणजी जैसी भक्ति होती तो मैं भी पहचान सकता होता कि यह भाई आये और यह नहीं आये.

मेरा एक दोस्त था, जो मेरे साथ पढ़ता था. उसका लव्-मॅरेज् हुआ था. कुछ समय बाद उसका डाइवोर्स् हो गया. मुझे इस बातकी खबर नहीं थी. बेटीकी शादीमें हम दोस्तको तो याद करते ही हैं. इसलिए मैंने उसके नामका मिस्टर और मिसीस् लिख कर कार्ड भेज दिया. अब ये दोके चार आ गये. मैंने अपने जमाईसे उनकी पहचान कराई कि "यह मेरे दोस्त और यह उनकी वाईफ्." उसने मुझे चुटकी काटी कि "अब यह मेरी पत्नी नहीं है इसके साथ मेरा डाइवोर्स् हो चुका है. तुमने नाम लिखा था इसलिए इसे साथ ले कर आया हूं. इसका पति यह है और मेरी पत्नी यह है." मैंने सोचा कि अब मुझे परिचय देनेकी आवश्यकता रही नहीं है. मुझे भी थोड़ा अजीब लगा था कि यह दोके स्थानपर चार कैसे आये! मुझे लगा था कि दोस्त ही तो है वह किसी अपने दोस्तको साथ ले कर आया होगा ऐसी उपपत्ति मनमें ला कर सन्तोष हो

गया था... पर वह तो अपने दोस्तको नहीं अपनी एक्स-वाईफ्को बुला कर ले आया. वह एक्स-वाईफ् अपने पतिको साथ ले कर आयी और यह भाई अपनी अभीकी पत्नीको ले कर आया तो दोके स्थानपर चार हो गये. तो मेरी सोची उपपत्ति ही अनुपपन्न हो गयी.

शास्त्रार्थ प्रकरणमें महाप्रभुजीने खुलासा किया है कि "'**ब्रह्म'इति 'परमात्मा'इति 'भगवान्'इति शब्द्यते त्रितये त्रितयं वाच्यं क्रमेणैव मया अत्र हि.**" (त.दी.नि.१।६) जो मैंने आपको डेटा और प्रासेस्की बात बतायी उसके अनुसार महाप्रभुजी कह रहे हैं कि यहाँ मुझे तीन प्रकारके डेटाकी प्रोसेसिंग् करनी है. सचमें तो ये तीन नहीं, पांच है. पर आरम्भमें महाप्रभुजी तीन डेटाकी ही बात कर रहे हैं. बाकीके दो बादमें आ रहे हैं.

कॅटेगोरिकल् कॅरेक्टर् या वस्तुगत गुण

अब एक बात ध्यानसे समझो कि किसी भी वस्तु अथवा व्यक्तिका कोई भी कॅरेक्टर् (गुण) हो तो वह उसका एक कॅटेगोरिकल् कॅरेक्टर् (अन्यनिरपेक्ष गुण) होता है, या उसका रिलेटिव् कॅरेक्टर (अन्यसापेक्ष गुण) होता है. कॅटेगोरिकल्को हम ॲब्सोल्यूट् भी कह सकते हैं. अब ॲब्सोल्यूट् और रिलेटिव् कॅरेक्टर् इन दोनोंको प्रकट करनेके लिए वस्तु अथवा व्यक्ति को फिरसे पैदा होनेकी आवश्यकता नहीं होती. उदाहरणके लिए यह एक ब्लॅक-बोर्ड है. यह पदार्थसे बना है उस पदार्थसे दूसरी भी कोई वस्तु बनी हो सकती है. वह पदार्थ इस ब्लॅक-बोर्डका एब्सोल्यूट् पदार्थ है.

रिलेटिव् कॅरेक्टर् या सापेक्ष गुण

पर जब उस पदार्थका यूनिवर्सिटीका ब्लॅक-बोर्ड बनानेके लिए उपयोग किया गया तो वह इसका स्पेसिफि कॅरेक्टर् (विशेष गुण)

हो गया. पर यह उसका रिलेटिव् कॅरेक्टर् है, कॅटेगोरिकल् कॅरेक्टर् नहीं है. उदाहरणके लिए एक रमेशभाई है. रमेशभाई होना यह एब्सोल्यूट् कॅरेक्टर् है पर रमेशभाईके भाईका यदि कोई लड़का है तो उसके लिए रमेशभाईका 'रमेश-काका' होना उसका रिलेटिव् कॅरेक्टर है. रमेशभाईका रमेश-काका होना यह पैदा होते ही उनका गुण नहीं है पर काका होनेके लिए रमेशभाईका कोई भाई होना चाहिये और उसका कोई लड़का होना चाहिये. रमेशभाईका यदि कोई भाई नहीं होगा तो उनका काका होना संभव नहीं है. उनमें वह कॅरेक्टर नहीं आयगा. आप पति-पत्नीका संबंध भी ले सकते हैं. लड़की लड़की है और लड़का लड़का है पर पति-पत्नी होना, यह कॅटेगोरिकल् कॅरेक्टर नहीं है. यदि कोई लड़का पति है तो प्रश्न उठता है कि किसका पति? माता-पिताके अर्थमें भी पूछ सकते हैं पर व्यक्तिके अर्थमें नहीं पूछ सकते. व्यक्ति है उसको यह नहीं पूछ सकते कि किसका व्यक्ति. व्यक्ति, व्यक्ति है.

यूटिलिटेरियन् कॅरेक्टर् या व्यावहारिक गुण

सो वस्तु अथवा व्यक्ति का कॅटेगोरिकल् कॅरेक्टर् होता है और दूसरा रिलेटिव् कॅरेक्टर्. पहलेको जबकि हम ॲब्सोल्यूट् कॅरेक्टर् कहते हैं तो दूसरेको रिलेटिव् कॅरेक्टर् कहते हैं. ये दोनों कॅरेक्टर व्यक्तिमें होते हैं और वस्तुमें भी हो सकते हैं. उदाहरणके लिए, कुम्हारने एक घड़ा बनाया. यह घड़ा तो घड़ा है पर उसे पानी भरनेके उपयोगमें लाना है अथवा कर्नाटिक संगीत बजानेके उपयोगमें लाना है, वह जिस प्रकार प्रयोगमें लिया जा रहा है उस पर निर्भर है. संगीत बजानेमें आते घड़ेमें पानी नहीं भरा जा सकता ऐसा नहीं है और पानी भरनेके घड़ेसे संगीत नहीं निकाला जा सकता ऐसा भी नहीं है. पर उसका जिस प्रकारका उपयोग है वह ही उसका कॅरेक्टर् निश्चित करता है. अपने आप उसका कॅरेक्टर् निश्चित नहीं होता अथवा किसीके रिलेशनसे भी वह निश्चित नहीं

किया जा सकता. जिस प्रकारके उपयोगमें वस्तु आ रही है उसीसे उसका कॅरेक्टर् निश्चित होता है.

अब गुण तीन प्रकारके हो गये. पहला कॅटेगोरिकल् दूसरा रिलेटिव् और तीसरा यूटिलिटेरियन् कॅरेक्टर्, जिसको हम व्यावहारिक गुण भी कह सकते हैं. उस वस्तु अथवा व्यक्ति की उपयोगिता क्या? वह किस प्रकार उपयोगमें लाया जा सकता है फिलोसॉफीमें? अपने यहाँ तो नहीं पर बुद्ध-फिलोसॉफीमें इस प्रकारकी एक अवधारणा की गयी थी, करीब आजसे ढ़ाई हजार साल पहले. अमेरिकामें तो सौ वर्ष पूर्व एक यूटेलिटेरियनिज़्मका दौर आया. उसमें इससे पूर्व जो सत्यके दो पहलु पर चर्चा होती थी उसके बारेमें कुछ और विचार रखे गये.

कॉरस्पॉन्डिग् थियोरी

सत्य (truth) अर्थात् क्या? इसके बारेमें कहा गया कि कि अनुभूति या समझ के अनुरूप विषय विद्यमान हो तो अर्थात् कॉरस्पॉन्डिग् ऑब्जेक्ट् (अनुरूप पदार्थ) हो तो अपनी अनुभूति या समझ वॅलिड् (वैध) मानी जाती है. उदाहरणके तौरपर यह ब्लॅक-बोर्ड आपको दिखलाई दे रहा है इसीलिये यह ब्लॅक-बोर्ड है. मानें आपको इसके ब्लॅक-बोर्डकी अनुभूतिके साथ इसके होनेकी भी निश्चिति हो रही है, इसीलिए यह वैध सत्य है.

कोहियरन्स् थियोरी

फिर विचार किया गया कि कॉरस्पॉन्डिग् थियोरी सत्यको परिभाषित करनेके लिए पर्याप्त नहीं है क्योंकि यदि स्वप्नमें हमको प्यास लगे तो स्वप्नमें पानी पी लेनेसे प्यास बुझ भी जाती है. यहाँ अनुरूपता भी है परन्तु इस बातकी गॅरंटी नहीं है कि जो स्वप्नमें हमने पानी पिया वह वहाँ था. ऐसा तो हम नहीं कह सकते. यह अनुरूपता तो सिद्ध नहीं करता. इस कारण एक-दूसरी थियोरी प्रस्तावित की

गयी कि भूल जाओ अनुरूपता (correspodence) को सत्य वह है जिसका 'कोहियरन्स्' (coherence) हो, सुसंगत हो. प्रत्येक सत्य दूसरे सत्यसे सुसंगत होना चाहिये अर्थात् दो सत्य आपसमें सुसंगत होने चाहिये. यदि वह एक-दूसरेके साथ सुसंगति नहीं बैठा पा रहे हैं तो उनके सत्य होनेमें कुछ न कुछ त्रुटि है. इस प्रकार एक और थियोरी कोहियरन्स् (सुसंगति)की आ गयी. इसको हम एक सामान्य उदाहरणसे समझ सकते हैं. अपनी सबकी समझ ऐसी है कि अपनी नाक आगे होती है. किसी फोटो अथवा मूर्तिमें यदि नाक पीछे दिखलाई दे तो हम कहेंगे कि इसमें कोहियरन्स् (सुसंगति) नहीं है क्योंकि अपनी समझ ऐसी है कि चेहरेके आगेके भागमें नाक होती है, पीछे नहीं. इसलिए चेहरेके पीछे नाकका होना कोहियरन्स् (सुसंगत) नहीं लगता. इसलिए यदि कोई चित्र अथवा मूर्ति में ऐसा दिखे तो तुरंत हम कहेंगे की यह सत्य नहीं है, इमेजिनेरी है. ऐसा है कि नहीं? किसीने बनानेके लिए ऐसी मूर्ति अथवा चित्र बनाया है, हकीकतमें नाक चेहरेके पिछले भागमें हो ही नहीं सकती. क्योंकि यह बात साधारण समझके साथ सुसंगत नहीं बैठती, यह है कोहियरन्स् थियोरी. पर क्योंकि अमेरिकाकी पूरी संस्कृति भौतिकवादी थी.

यूटिलिटेरियन् थियोरी

इस कारण उन्होंने इन दोनों बातोंसे इन्कार कर दिया. उन्होंने कहा कि भूल जाओ इन कॉरस्पोन्डेंस् और कॉहियरन्स् को, क्योंकि यह साबित करनेके लिए कि कॉरस्पॉन्डन्स् है. हमें एक और ज्ञानकी आवश्यकता पड़ती है. अब यह दूसरा ज्ञान भी कॉरस्पॉन्डिग् है कि नहीं? हमें तीसरे ज्ञानकी आवश्यकता होगी. उदाहरणके लिए जैसे मेरे हाथमें यह चौक है. अब यह चॉक मुझे दिखलाई दे रहा है कि इसकी अनुभूति हो रही है? यह सचमें मेरे हाथमें है अथवा केवल यह मेरे मनका कोई ख्याली पुलाव है? इस

तथ्यको चॅक् करनेके लिये मुझे अपने पास जो चॅक् करनेके पॅरामीटर् है उन्हें इस्तेमाल करना होगा. यह मुझे दिखलाई दे रहा है, अनुभूत भी हो रहा है कि हाथमें चॉक जैसा कुछ है. पर यह चॉक है कि नहीं? अब मैं अपनी समझके विभागको पूछूंगा कि इसका कोई कॉरस्पॉन्डन्स् है कि नहीं? है तो वह प्रश्न तो वहींका वहीं खड़ा रहा (न उसका कॉरस्पॉन्डन्स् है, न कोहियरन्स्) तो बादमें तीसरी चीज़ चॅक् करो. इस बातका तो अंत ही नहीं आयगा कभी. उदाहरणके लिए, मानो कि आप जंगलमें जा रहे हैं. कोई आपको आता हुआ दिखे तो वह बाघ है अथवा तुम्हारा भय है. भयके कारण भी बहुत समय हमको बाघ दिखलाई देता है और भी बहुत कुछ भयके कारण दिखलाई देता है. अपेक्षाके कारण भी हमको बहुत कुछ दिखलाई देता है. बहुत सी कविता अथवा शायरी में भी तुम्हें सुननेको मिलेगा कि प्रियतम अपनी प्रियतमाकी राह देख रहा हो और दरवाजेपर खटकी आवाज़ आ गयी तो लगता है प्रियतमा आ गयी. ऐसा अति अपेक्षाके कारण होता है. अत्यधिक भयके कारण, जो वस्तु नहीं है उसका अनुभव भी होने लग जाता है. तो कॉरस्पॉन्डेन्स् चॅक् करनेके लिए हमको दूसरी वस्तुको चॅक् करना पड़ता है और उसका अंत ही नहीं आता. इसी कारण लोगोंने कोहियरन्स् कहा. वहाँ भी समस्या तो वहींकी वहीं कायम रही. कोहियरन्स्को चॅक् करनेके लिए कॉरस्पॉन्डन्स् थियोरीका आह्वान करना पड़ता है और कॉरस्पॉन्डिन्ग् थियोरीको साबित करनेके लिए कोहियरन्स् थियोरीका सहारा लेना पड़ता है. दोनोंको पुष्ट करना हो तो फिर तो यही बात हुयी कि ‘‘घर कहाँ?’’ ‘‘बगीचेके सामने.’’ ‘‘बगीचा कहाँ?’’ ‘‘घरके सामने.’’ ‘‘दोनों कहाँ है?’’ ‘‘आमने-सामने.’’ अब कहाँ जायें? इसी कारण अमेरिकन फिलोसॉफर्ने यह बात कही कि ‘‘दोनों थियोरीको भूल जाओ. यूटिलिटेरियन् थियोरी ही ठीक है. जो वस्तु तुम्हारे काममें आती हो वह ही सत्य है. जो काममें ना आती हो वह मिथ्या है.’’ इसी कारण उन्होंने भगवान्के बारेमें

ऐसा कहा कि “भगवान्‌का अस्तित्व क्यों है क्योंकि उसकी उपयोगिताकी कुछ कीमत है.” अब भगवान्‌की उपयोगिताकी क्या कीमत हो सकती है? तुमको कुछ कमजोरी आती हो अथवा तुम्हें किसी चीजकी आवश्यकता है तो तुम चर्चमें जाते हो, हनुमानजीके मंदिरमें जाते हो, सिद्धिविनायकके मंदिरमें गये, श्रीनाथजीमें गये, गिरिराजजीमें गये, कोई मानता मानी और वह पूरी हुयी तो भगवान् तुम्हारे काम आया. काम आया तो ठीक और नहीं आया तो दूसरा दरवाजा खटखटाओ. जो काम नहीं आ रहा वह है ही नहीं. यह एक भौतिकवादी दृष्टिकोण है. सत्यको परखनेके लिये उन्होंने एक पूरा यूटिलिटेरियन् कॉन्सेप्ट् खड़ा किया. सत्य क्या है, जिसकी कुछ उपयोगिता है वह ही सत्य है. यदि आपके लिए वह उपयोगी है तो ही वह सत्य है. यदि उपयोगी नहीं है तो मिथ्या है. आपको प्यास लगी है, आपको एक गिलास पानी मिला और वह पीनेके बाद आपकी प्यास बुझा रहा है तो उसकी उपयोगिता सिद्ध हो गयी अर्थात् वह सत्य है.

उन्होंने सत्यके बाबतमें एक यूटिलिटेरियन् थियोरी खड़ी कर दी. यह तो अमेरिकामें पिछले सौ वर्षमें ही आयी है पर बुद्ध भगवान्‌ने यह ही बात आजसे ढ़ाई हजार साल पहले कही थी. “सत्यका कोई उद्देश्य होना चाहिये. वह उपयोगी होना चाहिये.” हम कह सकते हैं कि कोई भी पदार्थ अथवा व्यक्ति में उपयोगिताका गुण भी देखा जा सकता है. यह यूटिलिटेरियन् गुण एब्सोलयूट् गुणके साथ मेल खाय यह आवश्यक नहीं है. इसके लिए ही मैंने आपको कर्नाटक संगीतका उदाहरण दिया था. वे घड़ा बजाते हैं. कोई भी कुम्हार संगीत बजानेके लिए घड़ा नहीं बनाता; वह पानी रखनेके लिए बनाता है, पर यदि कोई उस पर संगीत ही बजाने लगे तो उपयोगिताके अनुसार उसका सत्य होनेका गुण बदल जाता है. अब संगीत बजानेका वाद्य बन जाता है और पानी रखनेका गुण

उसमें नहीं रहता.

कन्डीशनल् कॅरेक्टर् या औपाधिक गुण

हम समझ सकते हैं कि उपयोगिताकी कीमतके अनुसार वस्तु अथवा व्यक्ति में पूरे नये गुण आ जाते हैं. इसके बाद एक औपाधिक गुण भी वस्तुमें होता है. 'औपाधिक' मतलब कन्डीशनल् कॅरेक्टर्. किसी भी वस्तुके चारों ओर एक ऐसा कन्डीशनल् कॅरेक्टर् बन जाता है कि जिसके कारण उस वस्तुका कॅरेक्टर् बदल जाता है. इसका ठीक-ठीक उदाहरण सूर्य और चन्द्रमा है. वे इतने दूर हैं कि एक छोटीसी फूटबॉलकी तरह दिखते हैं. हमें पता है कि यह सूर्य और चन्द्रमा का गुण सत्य नहीं है. आकाशमें ऐसे कई तारे हैं जो सूर्यसे कई गुना बड़े हैं. वे केवल आकाशमें एक बिन्दुकी तरह दिखलाई देते हैं. हम जानते हैं कि यह सत्य नहीं है पर वातावरण उनको ऐसा दिखाता है. इसीको संस्कृत भाषामें 'औपाधिक स्वरूप' कहते हैं.

उदाहरणके लिए इस दीवारका रंग बादामी दिखलाई दे रहा है. अब मानो कि हम इस पर नीली या लाल रंगकी लाईट फेंके तो इसका रंग बादामी होनेपर भी हमको नीला अथवा लाल ही दिखलाई देगा. अब यदि उस रंगका वह दिखलाई नहीं दे रहा है तो क्या हम कह सकेंगे कि वह उसका ॲब्सोल्यूट कॅरेक्टर् है? नहीं है, क्योंकि यदि आप लाईट ऑफ् कर दो तो वह रंग वहाँ मौजूद नहीं है. तो क्या वह उसका रिलेटिव् कॅरेक्टर है? ऐसा भी नहीं है, क्योंकि कोई रंग लाइट् है कि डार्क् है वह हम रिलेटिवली समझ सकते हैं. कोई रंग अथवा कॅरेक्टर लाईट्की उपाधिके कारण कोई दूसरा ही रंग दिखाता हो तो वह उसका औपाधिक या कन्डीशनल् कॅरेक्टर् है. उसका बहुचर्चित उदाहरण है रेलकी दो पटरी. पर्सपॅक्टिव्के सिद्धांतसे, दूर अपनेको यह दो पटरी

एक दूसरेके पास आती दिखलाई देती है. सत्यमें ऐसा होता तो नहीं है. यदि ऐसा हो तो ट्रेनका ॲक्सीडेंट् ही हो जाय. चाहे वह एक-दूसरेके पास जाती दिखलाई दे रही है पर पास जाती नहीं है. यह उसका औपाधिक कॅरेक्टर् है, यह ॲब्सोल्यूट् और रिलेटिव् कॅरेक्टर् नहीं है. पर औपाधिक और भ्रमात्मक गुणोमें प्रभेद होता है वस्तुके साथ उसकी उपाधिका जो उस वस्तुमें अपने गुणोंका आभास प्रकट करती है दोनोंके विभेदावभासके साथ अन्यथा गुणका भास हर वक्त भ्रमात्मक नहीं होता.

भ्रमात्मक इल्युज़नरी कॅरेक्टर् या मिथ्या गुण

यह अन्यथा गुणको प्रकट करनेवाली उपाधिके ज्ञान बिना जब किसी वस्तुमें अन्यथा गुणका भासन भ्रमजनक बन जाता है. यह इल्युज़नरी कॅरेक्टर है. वह इस तरह कि जो वस्तुको हमने भली प्रकार जाना नहीं है उसके बारेमें हमारे मनमें एक चित्र बनता है. वह सुपरइम्पोज् हो जाता है जो श्रीशंकराचार्यका सांप और रस्सी का प्रचलित उदाहरण है. अंधेरेमें लटकती रस्सी सांपकी तरह दिखलाई देती है. यह उसका इल्युज़नरी कॅरेक्टर् है.

सॅन्टीमॅन्टल् कॅरेक्टर् या भावात्मक गुण

अब इससे भी आगे जितने भी एस्थेटीक् शास्त्र है; जैसे भागवत, महाप्रभुजी यह प्रपोज़् कर रहे हैं कि किसी भी वस्तुका एक भावनात्मक कॅरेक्टर् भी हो सकता है. भावात्मक स्वरूप कॅटेगोरिकल् रिलेटिव् यूटिलिटेरियन् और औपाधिक या इल्यूजनरी नहीं होता. यह एक सॅन्टीमॅन्टल् कॅरेक्टर् है. किसी भी वस्तुके बारेमें जैसे अपना भाव है वैसा उस वस्तुका गुण अपने सामने प्रकट होगा. यह बात दुनियाकी किसी भी हकीकत और वस्तु के लिए जितनी सच्ची है उतनी ही सच्ची ब्रह्मके बारेमें भी है. ब्रह्मका भी कोई एक ॲब्सोल्यूट् कॅरेक्टर् है जिसको हम ब्रह्म ही कहते हैं. मानें ब्रह्म,

ब्रह्म ही है. किसी वस्तुकी अपेक्षामें नहीं पर स्वयंकी हकीकतमें. यह उसका ॲब्सोल्यूट् कॅरेक्टर् है. जैसे रमेशभाईका मनुष्य होना उसका ॲब्सोल्यूट् कॅरेक्टर् है. यह जो मनुष्यका गुण है वह पालनकर्ताका ही गुण है और यह गुण ॲब्सोल्यूट् गुण न हो कर रिलेटिव् गुण है. बिल्कुल ऐसा ही परमात्माका कॅरेक्टर् भी है. परमात्मा रिलेटिव् कॅरेक्टर् है. तत्त्व एक ही है. व्यक्ति नहीं बदला है. जैसे यह रमेश है और बादमें यह रमेश-भाई हो गये. क्योंकि किसीके रिलेशन्में ही तो यह 'भाई' हुए. यह गुजरातीके 'भाई' नहीं है क्योंकि गुजरातीमें तो पत्नी भी पतिको भाई कह कर बुलाती है. दूसरे प्रांतवालोंको कठिनाई हो जाती है कि पति किस प्रकार भाई हो गया! किसीका भाई होना एक रिलेटिव् कॅरेक्टर् है. रमेश होना एक कॅटेगोरिकल् कॅरेक्टर् है.

अब तुम रमेशभाईका किस प्रकार उपयोग करते हो उससे इनका एक यूटिलिटेरियन् कॅरेक्टर् भी खड़ा हो सकता है. एक पड़ौसिन थी. वह सुबहसे शाम तक खुदके पतिको बुलाना हो तो धीरसे न बुला कर जोर-जोरसे बुलाती थी. पर कोई शाक-भाजीवाला आये तो बहुत धीरसे कहती कि "इतना भाव लोगे तो मेरे मिस्टर नाराज़ हो जायेंगे." मैं अपनेसे पूछता रहता था कि "पतिको तो कभी नाराज़ होते देखा ही नहीं. इतना जोरसे बोलनेके बाद भी नाराज़ नहीं होते." पर उनकी पत्नी उनका उपयोग शाक-भाजीवालोंसे भाव घटानेमें करती थी. पतिकी यूटीलिटेरियन् वॅल्यु कुछ और ही थी. इस तरह किसी भी व्यक्तिकी कुछ यूटिलिटेरियन् वॅल्यु भी तो हो सकती है.

इसके बाद औपाधिक कीमतको इस तरह समझें. सेहरा-साफा पहन लिया, घोड़ेके ऊपर बैठ गये तो उस दिन रमेश भाई वर-राजा दिखलायी देंगे. कितनी देर ऐसा होगा? जितनी देर वर-राजाकी उपाधि

होगी. मानें जब-तक घोड़े पर चढ़े हुए हैं तब-तक यह कॅरेक्टर् उपाधिके कारण है.

हम इल्युज़नरी वॅल्युकी चर्चा अधिक नहीं करेंगे रमेश भाईमें सुरेश भाईका इल्युज़न् हो तो सकता है इतना जान रखना प्रर्याप्त है.

अब सॅन्टीमॅन्टल् वॅल्यु क्या है? किसीके बारेमें अपना कोई सॅन्टीमॅन्ट् है. उस सॅन्टीमॅन्ट्के कारण हम उसको उस रूपमें देखते हैं. उदाहरणके लिए किसीके दोस्त अथवा दुश्मन होनेका कॅरेक्टर् हम लोगोंमें उसके प्रति वैसे सॅन्टीमॅन्ट्के सिवाय क्या है! तुम्हारे भीतर यदि किसीके प्रति दोस्त होनेका सॅन्टीमॅन्ट् है तभी तो वह तुम्हारा दोस्त हो सकता है. यदि तुम्हारा उसके प्रति दुश्मन होनेका सॅन्टीमॅन्ट् है तो वह दुश्मन होगा. इसी प्रकार ब्रह्मके बारेमें जो अपने भाव है; जैसे कामभाव क्रोधभाव द्वेषभाव भक्तिभाव ईश्वरभाव दास्यभाव सख्यभाव, वह सारे भाव ईश्वर दिखलायगा. भागवतमें कहा है कि "**गोप्यः कामाद्, भयात् कंसो, द्वेषात् चैद्यादयो नृपाः, सम्बन्धाद् वृष्णयः, स्नेहाद् यूयं, भक्त्या वयं विभोः**" (भाग.७।१।३०) कोई उसको दोस्त, कोई उसको दुश्मन मानता था. कोई उसे मृत्यु, कोई उसे देव मानता था. "*जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरत देखी तिन तैसी.*" यह स्वरूप है वह भावनात्मक स्वरूप है. इस तरह ब्रह्मका भावात्मक स्वरूप भी हो सकता है.

परमतत्त्वका ब्रह्म होना किस प्रकार कॅटेगोरिकल् है, परमात्मा होना रिलेटिव् है. क्योंकि कोई भी तत्त्व परमात्मा किस प्रकार हो सकता है, जैसे कोई भी व्यक्ति प्राइम्-मिनिस्टर् होता है. क्योंकि उसकी केबीनेट्के बहुतसे मिनिस्टर् हैं और वह उनमें मुख्य है. इसीलिए वह साधारण मिनिस्टर् नहीं, 'प्राइम्-मिनिस्टर्' कहलाता है. ऐसे ही

बहुतसी आत्माएं बहुतसे देव हैं पर इन बहुतसी आत्माओंमें कोई एक परम-आत्मा है, इसीलिए वह परमात्मा है. जब-तक कोई आत्मा नहीं होगी तब-तक परमात्माका अस्तित्त्व भी नहीं होगा. इसी कारण परमात्मा एक रिलेटिव् कॅरेक्टर् है. जब हम भगवान् कहते हैं तो कदाचित् भगवान्को हम यूटिलिटेरियन् कॅटेगिरिमें डाल सकते हैं कि जो मुझे भजनेमें काम आये वह भगवान्. जो मुझे भजनेमें काम न आये वह भगवान् नहीं. उदाहरणके लिए परमात्मा केवल महाराजके भीतर ही है ऐसा नहीं है. वह तुम्हारे भीतर भी है, इस कुर्सीके भीतर भी है, मेरे जूतेके भीतर भी है, सर्वव्यापी होनेके कारण.

पर जूतेके भीतर रहा हुआ जो परमात्मा है वह मेरे भजनेके काम नहीं आता. यह जब मेरे भजनेके काममें आता है वह मेरा भगवान्. फिर वह अल्ला खुदा यहोवा हो अथवा राम कृष्ण शिव माताजी हो, जो मेरे भजनेके काममें आये वह मेरा भगवान्. क्योंकि भजन एक ऐसी वस्तु है कि करनेवालेको भक्त बनाती है और जिसका भजन हो रहा है उसे भगवान्. इसलिए कोई भजन करनेवाला ही न हो तो ब्रह्म है वा ब्रह्म रहेगा. जो परमात्मा है वह परमात्मा रहेगा. पर यदि भजन करनेवाला कोई हो तो ही वह भगवान्का रूप लेगा. यदि भजन करनेवाला कोई न हो तो भगवान् नदारद हो जाता है. मैंने जो तुम्हें जूतेका उदाहरण दिया. भरतजीने रामचन्द्रजीके खडाऊंको भजा ही था. उन्हें सिंहासनपर पधराया तो रामचन्द्रजीकी खड़ाऊं भगवान् हो गयी. संत तुकारामजीकी, संत ज्ञानेश्वरजीकी, सांइबाबाकी भी पादुका पालकीमें बिराजती हैं. महाप्रभुजी गुसांसाईजी श्रीगोकुलनाथजी की पादुका भी सेवामें बिराजती ही हैं और हम उनका भजन भी करते हैं. कोई पादुकाको भजन नहीं कर रहा है तो उसके लिए वह भगवान् नहीं रह गयी, केवल पादुका ही है. पुस्तक तो केवल पुस्तक ही है. गुरुग्रंथसाहिबमें जितने भी भजन है वे राम-कृष्णके हैं. यह सरदारोंके भी नहीं है, अपने यहांके ही है. नामदेवजीके

मीराके सभी हिन्दु भक्तोंके भजन हैं. उनको कम्पाइल् करके ही एक ग्रंथ बनाया है और गुरुद्वारेमें पधराया है. उनको भोग धरा जाता है, उनको पंखा किया जाता है, उनको अत्तर लगाया जाता है, उनका कीर्तन किया जाता है. यह सब करनेसे वह गुरुग्रंथसाहिब हो गया. भजन करना प्रारंभ किया तो ग्रंथ भगवान् हो गया. कोई भजन नहीं करे तो ग्रंथकी क्या कीमत? लाइब्रेरीमें ही रखो. भजनकी इतनी यूटिलिटी है कि जिसके कारण ब्रह्म परमात्मा भगवान् बन सकता है. क्योंकि 'भज्' धातुसे भगवान् और भक्त दोनों बनते हैं. जो भजन करे वह भक्त और जिसका भजन किया जाय वह भगवान्. अभी सॅन्टीमॅन्ट्लूकी यहां बात अवश्य करेंगे.

दशरथ-कौशल्याने यशोदा-नंदने वसुदेव-देवकीने उस ब्रह्म परमात्माको अपना बेटा माना. अब हम उनको जा कर कितना भी समझायें कि यह बेटा नहीं है, यह तो ब्रह्म है परमात्मा है भगवान् है. क्या नंद-यशोदाको यह बात गले उतरेगी, नहीं उतरेगी. क्योंकि उन्होंने एक प्रकारका सॅन्टीमॅन्ट् बांधा है. होगा भगवान् पर इस सॅन्टीमॅन्ट्के कारण राम अथवा कृष्ण का पुत्र होनेका कॅरेक्टर है, यह सॅन्टीमॅन्ट्ल् कॅरेक्टर् है. जैसे हम किसीको अपना दोस्त मानें अथवा दुश्मन मानें. उस प्रकार ब्रह्मके ऐसे कई सारे कॅरेक्टर् हो सकते हैं. उस तत्त्वका आदि और अंत कहां तक जाता है वह हम देख सकते हैं कि सृष्टिरूप और मध्यरूप में इसका विस्तार कहां तक है! यह सब मैंनें तुम्हें समझा दिया है. यह सारे फन्डामॅन्टल् कॉन्सेप्ट्स हैं.

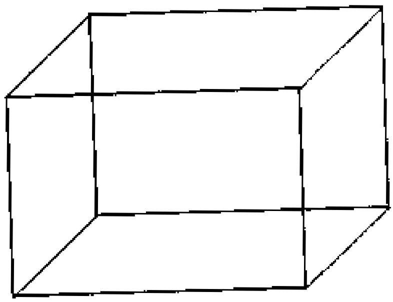

आप इस चित्रपर फोकस् करिये. कभी आपको लगेगा कि यह ऊपरका भाग आगे है, कभी नीचेका भाग आगे लगेगा और लगेगा कि बाकी सभी साइड् पीछे हैं. केवल आप किस तरफ ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं उसके ही कई पर्सपॅक्टिव् बन जाते हैं. कभी आपको यह अनुभव होना शुरु हो जायगा कि आप इस ऑब्जेक्ट्में किसी द्वारसे भीतर जा सकते हैं. तो कभी आपको लगेगा कि आप इस ऑब्जेक्ट्को यहाँ रख सकते हैं. कभी आपको लगेगा कि इसे वहाँ भी रख सकते हैं. बहुतसे पर्सपॅक्टिव् वहाँ उजागर होने शुरु हो जाते हैं. ऐसा क्यों होता है क्योंकि इस ऑब्जेक्ट्की क्षमता है कि वह अपने आपको आपके सामने कई पर्सपॅक्टिव्में उजागर कर सके. अब यदि इस ऑब्जेक्ट्को मैं ऐसे दिखाऊं तो यह अपनी उस क्षमताको आपके समक्ष खो देता है. यह आप सबको एक ही प्रकारकी दिखलाई देगी. आप जैसे ही इनको जोडेंगे, यह फिर वह ही क्षमता हासिल कर लेगा. इसी तरह किसी व्यक्ति अथवा विषय में इतना लोच होता है कि वह आपके भावोंके साथ आदान-प्रदान कर सकता है. किसी व्यक्ति या विषय में ऐसा होना संभव भी नहीं होता. इसलिए मोटे तौरपर जिन लड़के अथवा लड़कियों को समस्या होती है कि वह बॉलीवुडकी फिल्मोंमें देख आते हैं कि कोई किसीको टक्कर मारे या आंख मारे तो वह खुश हो जाती है. असलमें वह जूता ही मारती है. किसी-किसीमें ऐसा भी होता है कि आप यदि प्यार भरी निगाहसे देखो तो वह पहलेसे ही बाट देख रही होती है कि *"सौ साल पहले मुझे तुमसे प्यार था आज भी है और कल भी रहेगा."* यह उस व्यक्तिके सोचपर निर्भर करता है. कोई ऑब्जेक्ट् ऐसा लगने लगता है कि वह आपकी भावनाओंके अनुरूप व्यवहार कर पा रहा है या नहीं. किसीके साथ ऐसा जुड़ाव नहीं भी होता है. कॉम्प्यूटर्की स्क्रीन्में जो ईमोजी दिखते हैं उनका सिद्धांत क्या है, उसमें दो स्माइली होते हैं, एक मुस्कुराता हुआ और एक रोता

हुआ. केवल पॅन्का एक स्ट्रोक् ही उसी चेहरेको मुस्कुराता कर देता है और रोता हुआ भी कर देता है. उस स्माइलीमें आपके साथ व्यवहारके आदान-प्रदानकी आपके व्यवहारके अनुसार क्षमता तो है ही. आप यदि उस लाइन्को नीचेकी तरफ झुकी हुयी बना दें, तो वह अपनी मुस्करानेकी क्षमताको खो देता है. क्या हम इसको इल्यूज़न् कह सकते हैं? नहीं. क्योंकि उसमें हमारे भावोंका अनुभाव प्रकट करनेकी क्षमता है. किसी वस्तुमें ऐसी क्षमता होती है कि वह हमारे भावोंका अनुभाव प्रकट कर सकती है. किसी विषयमें इसके विपरीत भी हो सकता है. आप देखें कि केवल एक लाइन्में आंखके भाव भी बदल गये है. जो आंखे हंसती हुयी दिखलाई देती थीं वे अब रोती दिखलाई दे रही हैं. इस प्रकार आंखके एक्सप्रेशन् बदल गये. इसके पीछे सिद्धांत क्या है, हमारे मस्तिष्कको इन आइकोन्के द्वारा सूचना मिलती है. जब यह आइकोन् हमारे भावोंके अनुभाव प्रकट करते हैं तब कुछ न कुछ भाव तो होते ही हैं.

(प्रश्नोत्तर)

प्रश्न : क्या इस ब्रह्मके बारेमें भी कुछ इल्यूज़न् हो सकता है?

उत्तर : हाँ बिल्कुल हो सकता है. ब्रह्मके भी कई इल्यूज़न् हो सकते हैं. आप यदि ज़ाकिर नायकको देखते हों तो उसके प्रोग्राम्में एक साईंस्का विद्यार्थीने उसको पूछा कि "तुम सभी लोग भगवान्के बारेमें बताते हो पर मैं उस भगवान्के अस्तित्त्वमें विश्वास नहीं करता. ज़ाकिर नायकने एक बहुत मज़ेदार बात कही "मैं आपको धन्यवाद देता हूँ और आपका आभार प्रकट करता हूँ." ज़ाकिर नायक एक नास्तिकका आभार कैसे प्रकट कर सकता है और उसको धन्यवाद भी कैसे दे सकता है! उसने एक बड़ी चतुराई भरी बात कही "हमारे कलमेंके तीन हिस्से हैं. पहला 'ला-इलाह' दूसरा 'इल्लिल्लाह' और तीसरा 'मुहम्मद रसूलुल्लाह.' पहला हिस्सा कहता है कि "कोई

खुदा नहीं है'', दूसरा कहता है कि ''अल्लाह ही सब कुछ है'' और तीसरा कहता है कि ''मोहम्मद उसका संदेशवाहक है'' उसके बाद वह कहता है कि ''आपने इस कलमेके पहले हिस्सेको मान लिया है कि कोई खुदा नहीं है. इसलिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ. अब दूसरा और तीसरा हिस्सा मैं आपको सिखा दूंगा.'' अब आप क्या कभी सोच सकते हैं कि 'ला-इलाह'में किसीका आभार प्रकट करनेवाली कोई बात हो सकती है! भला यह तो कॉम्प्लीमेंट् हो गया. इल्युज़न् तो हो ही गया न! इसके समर्थनमें वह कहता है कि ''अल्लाह क्यों नहीं है क्योंकि हिन्दु कहते हैं कि राम भगवान् है. राम भगवान् नहीं है. हिन्दु सोचते हैं कि देवी भगवान् है. देवी भी भगवान् नहीं है. हिन्दु सोचते हैं कि कृष्ण भगवान् है, कृष्ण भगवान् हो ही नहीं सकता. इसी कारण 'ला-इलाह' कहा है जो आपने स्वीकार किया है. तो आपने एक तिहायी कलमा स्वीकार कर लिया. बाकी दो-तिहाई मैं आपको सिखा दूंगा. केवल अल्लाह ही ईश्वर है.'' अब आप यदि किसी हिन्दुसे पूछेंगे तो क्या वह ज़ाकिरसे सहमत होगा कि हमें अपनी आस्थाके बारेमें इल्युज़न् हो रहा है, रामके बारेमें, कृष्णके बारेमें अथवा देवी या गणेश के बारेमें! हम भी कुछ अल्लाहके बारेमें ऐसा ही सोचते हैं कि वह ईश्वर नहीं है, केवल राम ही भगवान् है. कई शैव भी ऐसा ही सोचते हैं कि केवल शिव ही ईश्वर है. वैष्णव सोचते हैं कि कृष्ण ही ईश्वर है, शिव नहीं है और पुष्टिमार्गमें तो और भी लोग आगे बढ़ गये हैं कि व्रजमें ही भगवान् है व्रजके बाहर नहीं है. जो ब्रह्म सारे यूनिवर्समें व्याप रहा है उसको हमने व्रज चौरासीकोस और हवेलियोंमें बांध दिया है कि इसके बाहर भगवान् है ही नहीं. हम कहते हैं कि आप व्रजके बाहर चले गये तो भगवान् ही नहीं रहे.

हमको ऐसा इल्युज़न् तो है ही. हम भगवान्में विश्वास रखते

हैं पर एक इल्युज़न् तो है ही. केवल व्रजमें कदम रखनेसे यदि कोई भगवान् बन जाता हो और व्रजसे बाहर पैर रखनेसे भगवान् मिट जाता हो तो यदि वह एक पैर व्रजमें और एक पैर मथुरामें रखता हो तो उसे भगवान् मानना कि नहीं मानना? इस प्रकारके इल्युज़न्से बहुतसे पुष्टिमार्गीय पीड़ित है. यह केवल ज़ाकिर नायक ही पीड़ित नहीं है.

बहुतोंको तो लगता है कि हमारे घरके ठाकुरजी अलल्-टप्पू हैं. क्या यह इल्युज़न् नहीं है? यदि हवेलीमें ही भगवान् हो और तुम्हारे घरमें न हो, तो इसका मतलब है कि वह सर्वव्यापी नहीं है. यदि वह सर्वव्यापी नहीं है तो आवश्यक नहीं है कि वह हवेलीमें भी हो. यदि वह हवेलीमें है तो केवल इसका एक ही अर्थ है कि वह सर्वव्यापी है. यदि यह उपपत्ति सही है तो वह आपके घरमें क्यों नहीं हो सकता? वह वहां भी हो सकता है लेकिन हम किसी एक इल्युज़न्से पीड़ित है. हवेलीका ठाकुर तो सच्चा है और अपने घरमें वह चालू खाताका है. ऐसे तो बहुत लोगोंको भगवान्के विषयमें इल्युज़न् होते ही है. उनका कॅरेक्टर् भी इल्युज़नरी हो सकता है, नहीं हो सकता ऐसी बात नहीं है. और ज़ाकिर कहां तक गया है कि जब कयामत होगी उस दिन अल्लाह सारे मुर्दोको जिन्दा करेगा और उनसे पूछेगा कि “तुमने नमाज़ पढ़ी थी, रोज़ा रखा था, ज़कात दी थी, हज की थी, अल्लाह एक है कबूल किया था?” जीव कहेगा कि “हाँ, सब कुछ किया था.” उसके बाद वह अंतिम प्रश्न करेगा कि “तुमने मोहम्मदको रसूल माना था?” यदि जीव कहे कि “नहीं, यह नहीं माना था.” अल्लाह कहेगा कि “फिर जाओ नरकमें.” अल्लाह कितनी सीमामें बंधा हुवा है कि “मोहम्मदको क्यों नहीं माना” “मैने मोहम्मदको मेरा संदेशवाहक बना कर भेजा और तुम उसीको मानना भूल गये तो फिर जाओ नरकमें, मुझमें तुम्हारा पूर्ण विश्वास है इसके बावजूद

भी'' हमारे यहां भी ऐसे इल्युज़नूसे हम लोग पीड़ित हैं ही. भगवान् भी इल्युज़नूसे पीड़ित है ही. यह एक थियोलॉजीका भयावह मुद्दा है. यह केवल इस्लाममें हैं ऐसा नहीं है. यह तो दुनियाके सभी धर्मोंमें ऐसा है. क्योंकि हमें पता ही नहीं है कि धर्म क्या है. यह ही एक समस्या है.

एक ओर हम कहते हैं कि अल्लाह एक है सर्वस्व है और दूसरी ओर अल्लाहको पराश्रित मानते हैं कि तुम यदि मोहम्मदको मानना भूल गये तो अल्लाह भी तुम्हें बचा नहीं सकता. बहुतसे वैष्णवोंकी भी ऐसी ही धारणा है कि यदि तुम ठाकुरजी बालकसे पुष्ट नहीं कराओ तो ठाकुरजी मूर्ति है, पुरुषोत्तम नहीं है. इस प्रकार तो ठाकुरजीसे बड़े बालक हो गये! वह भगवान्को बना सकते है, भगवान् उन्हें नहीं बना सकता. बालकसे पुष्ट कराओ तो ही वह पुरुषोत्तम. जो तुम भोग धर रहे हो वह प्रसाद नहीं है. जो सेवा कर रहे हो वह सेवा नहीं है. क्या हम भी किसी इल्युज़न्में नहीं है? महाप्रभुजी कह रहे हैं कि तुम्हें यदि गुरु न मिले तो स्वयं सेवा शुरु कर दो. ''**तदभावे स्वयं वाऽपि मूर्तिं कृत्वा हरेः क्वचित् परिचर्यां सदा कुर्यात्**'' (त.दी.नि.२।२२८) लेकिन महाप्रभुजीके बारेमें कौन चिंतित है? महाप्रभुजी कह रहे हैं कि गुरु भगवान्के लिए है, भगवान् गुरुके लिए नहीं है. परन्तु हमने इल्युज़न् इस तरहके पाले है कि है कि यदि गुरु नहीं है तो भगवान् भी नहीं है. दुनियाके प्रत्येक धर्मके भीतर यह इल्युज़न् भरा है ईश्वरके बारेमें. और इस हद तक कि हमें अपने आदि गुरु मार्गस्थापकपर ही भरोसा नहीं है. मैंने एक बात केवल छाप दी तो सारे गोस्वामी बालक मुझपर नाराज़ जो गये. ''आपको सिद्धांत कहनेकी छूट दी है, छापनेकी तो नहीं दी कि हमारे बिना कोई वैष्णव सेवा कैसे कर सकता है! इस बातसे साफ हो गया कि आप संप्रदायके विरोधी हो.'' उनका संप्रदायके संबंधमें क्या अर्थ है? उनके अनुसार संप्रदायका

अर्थ है कि उनका यश भगवान्से भी बड़ा होना चाहिये. भगवान्का संप्रदाय खड्डेमें जाता हो तो जाय. यह किस प्रकारका इल्युजन् है? संसारमें जन्मा व्यक्ति अपने आपको भगवान्से भी बड़ा मान लेता है. हर धर्मकी यह समस्या है.

भगवान्के तो कई रूप गुण हो सकते हैं. ब्रह्मसे भगवान् तक, भगवान्से कृष्ण तक, कृष्णसे नन्दात्मज अथवा दशरथात्मज तक, उसके तो कई कॅरेक्टर् हो सकते हैं. जैसे कि आदिरूप मध्यरूप सृष्टिरूप. सृष्टिमें ही तो कृष्ण प्रकट हुआ. यदि वह सृष्टिमें प्रकट नहीं होता तो नन्दात्मज किस प्रकार हो सकता था? महाप्रभुजी इसके लिए एक बहुत सुन्दर वचन कहते हैं **"सएव परमकाष्ठापन्नः कदाचिद् जगदुद्धारार्थम् अखण्डः पूर्णएव प्रादुर्भूतः 'कृष्णः'इति उच्यते"** (त.दी.नि.प्र.१।१) भगवान् अखण्ड है पूर्ण है पर सृष्टिमें प्रकट हो तभी तो उनको 'कृष्ण' कहा जायगा. सृष्टिमें प्रकट नहीं होते हों तो वह 'ब्रह्म' 'परमात्मा' या 'भगवान्' कहलायेंगे. पर 'कृष्ण' तो तभी हम उनको कहेंगे जब वह सृष्टिमें नन्दात्मजके रूपमें प्रकट हों तब. यह एक बहुत बड़ी समस्या है. पर महाप्रभुजीकी एक अन्तर्दृष्टि है, ब्रह्मके विभिन्न रूपोंका मूल्यांकन करनेकी.

(प्रश्नोत्तर)

प्रश्न : *.*.*

उत्तर : मैंने इस प्रश्नका उत्तर पहले ही दे दिया था. आपकी भक्ति और भावों के अनुरूप कुछ कॅरेक्टर् होते हैं. हमारे विशेष प्रकारके अनेक भाव होते हैं. (ब्लेकबोर्डपर ड्रॉ करते हुवे) हम इसे स्माइली क्यों कहते हैं? हम इसे एक मुस्कराते हुए चेहरेके ईमोजी आइकोन्के रूपमें लेते हैं. आप एक परिस्थितिकी कल्पना कीजिए कि रातको आपके सामने यह चेहरा आ जाय. चाहे वह मुस्कुराता हुआ ही क्यों न हो. आप उस स्थानसे डर कर भाग खड़े होंगे कि नहीं? यह सच है कि यह आपके भावोंके अनुरूप

ही है, लेकिन यह मनुष्यका चेहरा तो नहीं है. मनुष्यका चेहरा नहीं होनेपर भी यह मुस्कुराहटके भावको तो व्यक्त करता है. इसका अर्थ है कि मनुष्यके चेहरे और भावों में भेद है. इसी तरह भक्तके भावानुरूप होना और नराकृति होनेमें भी कुछ अन्तर पड़ जाता है.

जैसे आप कभी उस्ताद ज़ाकिर हुसैनका तबला सुनिये. वह इतना महान तबलावादक है कि किसी भी कहानीको शब्दोंसे नहीं, तबलेके बोलसे आपके सामने प्रस्तुत कर सकता है. आपको बिल्कुल लगेगा कि आपके भावोंके अनुरूप ही वह तबला बजा रहा है. कई बार हम जो भाव हम शब्दोंसे व्यक्त नहीं कर पाते और वह तबलेके बोलमें प्रस्तुत कर पाता है. उदा. कबूतरकी आवाज़, रेलकी आवाज़, घोड़ा दौड़नेकी आवाज़, ऐसी सारी आवाजें वह तबलेपर बजा कर सुना देता है. तबलेके बोल हमारी भाषाके बोल बोल नहीं है फिरभ हमारे भावको प्रकट कर देते हैं. भावके अनुरूप होना वास्तविकताका एक अन्य ही वस्तुस्वरूपाती रूप है. जो कुछ हो वह इल्युज़न् नहीं है.

'ॲब्सोल्यूट्'का अर्थ है ''असन्नेव सः भवति 'असद् ब्रह्म'इति वेद चेत्'' (तैत्ति.उप.२।६) उपनिषद् कहता है कि जब आप ब्रह्मके अस्तित्वको नकारते हो तो आप उसके अस्तित्वको न नकार कर अपने स्वयंके अस्तित्वको नकार रहे हो. क्योंकि ब्रह्म क्या है? जब भी आप टोटालिटीको नकारते हो तो अंशका अस्तित्व ही नहीं रह जायेगा. आप उसके अंश हो कर उस टोटालिटीको कैसे नकार सकते हो! आपका कोई अंग जैसे मस्तिष्क कहे कि ''मैं नहीं हूँ'' तो पूछना पड़ेगा कि 'मैं' नहीं तो 'मस्तिष्क' कैसे हो सकता है. और न होनेका विचार भी तो मस्तिष्कका एक अंशरूप क्रियाकलाप है. यदि मस्तिष्क ही नहीं है तो फिर विचार कहाँसे

आया ? यदि ऐसे विचार आ रहे हैं तो यह स्वयंको ही नकारने जैसी स्थिति है. यह स्वयंको नकारनेकी प्रवृत्ति कोई स्वस्थ व्यक्तिकी प्रवृत्ति तो नहीं हो सकती.

हम विकासके नामपर पृथ्वीके वातावरणको समाप्त करते जा रहे हैं. हम पृथ्वीको खतम नहीं कर रहे पर स्वयंकी आत्महत्याकी तैयारी कर रहे हैं, क्योंकि हम इस पृथ्वीका हिस्सा है. कोई व्यक्ति इस सीमा तक जा सकता है पर फिर आपको उपपत्तिके विषयमें सोचना होगा.

संस्कृतमें एक बहुत मजेदार कहावत है, "वाच्यतां समयो अतीत: स्पष्टम् अग्रे भविष्यति इति पाठयतां ग्रन्थे काठिन्यं कुत्र वर्तते ?" अभी बांचते जाओ बादमें कभी यह समझमें आ जायगा इस तरह पढ़ने-पढ़ानेमें तो कोई कठिनाई रह नहीं जाती. सब कुछ सरल बन जाता है. कुछ इस तरह अपना सोच आजकल ऐसा हो गया विकास करते जाओ वातावरणके बारेमें बादमें फुरसद्से सोच लेंगे. सो बिना कठिनाईके विचारके हमें विकासका पाठ पढ़ाया जा रहा है.खैर.

(ज्ञानके विभिन्न सिद्धान्त)

१.ज्ञानका स्वरूप : निष्क्रिय दर्पण और प्रतिबिंब :

ज्ञानके बारेमें दर्शनके इतिहासके अनुसार तीन-चार मत हैं.

सबसे पहला सिद्धान्त है कि ज्ञान सक्रिय पदार्थ नहीं है, दर्पणकी तरह निष्क्रिय होनेपर भी पुरोवस्थित वस्तुको अपनेमें प्रतिबिंबित कर देता है. जैसे दर्पणके सामने हम खड़े हों तो दर्पणको इस बातसे कुछ मतलब नहीं है कि उसके आगे कौन खड़ा है. वह तो केवल प्रतिबिंब दिखा देता है, एक यह सिद्धान्त है.

२.आत्म-प्रत्यावर्तन और अन्य-प्रतिबिंबक :

दूसरा मत यह है कि ज्ञान निष्क्रिय और रिफ्लॅक्टिव् सिद्धान्त नहीं है; अपितु, जैसे आत्म-प्रत्यावर्ती (Self-reflective) होता है वैसे ही अन्य-प्रतिबिंबक (Reflective of others) भी होता है. अब आत्म-प्रतिबिंबित होना यह एक कठिन परिकल्पना है. पर बहुतसी बातोंमें हमको इस आत्म-प्रतिबंबित होनेके मॉडल् मिलते हैं. जैसे रोड़के आजु-बाजु पेड़ोंपर अथवा कारोंके पीछे एक फ्लोरोसेंट् पेइन्ट् लगा देते हैं कि यदि लाईट्की रोशनी उसपर पड़े तो वह चमक उठता है. हमें लगता है कि रोशनी उस वस्तुसे आ रही है पर असलमें वह हमारी ही रोशनी है जो कि वापस हमारी ओर ही आ रही है. यह सेल्फ्-रिफ्लेक्शन् या आत्म-प्रतिबिंबितता का उदाहरण है. इसका सरल उदाहरण मिलना कठिन है पर नयी कारोंमें जो हॅड्लाईट् आगे पीछे लगायी जाती है उसमें हम देख सकते हैं कि बल्ब केवल एक अथवा दो होते हैं पर उसमें इतने अधिक दर्पण लगा देते हैं कि एक बहुत बड़ी रोशनीका बीम पैदा हो जाता है. इस मल्टीप्लिकेशन्में एक खूबसूरती यह है कि इतने सारे सेल्फ्-मल्टीप्लिकेशन्में भी प्रकाश स्वयं ही प्रतिबिंबित होता है. मूलमें वह बल्ब् इतना प्रकाशित नहीं होता है पर आत्म-प्रतिबिंबित होनेपर वह बहुत अधिक प्रकाशमान लगता है. हम यदि इस हॅड-लाईट्की संरचना देखें तो ही हमें पता चलता है कि एक प्रकाश दूसरे प्रकाशको ही प्रतिबिंबित कर रहा है. इसी प्रकार अपनी चेतनामें अपने ज्ञानका सेल्फ्-रिफ्लेक्शन् दीखता है क्योंकि जब भी आप कह रहे हैं कि "मैं बोल रहा हूँ" यह आपको सुनाई दे रहा है तो आपके बोलनेके साथ ही आप यह भी कह रहे हो कि "मुझे सुनाई दे रहा है" सो हमारी समझ दूसरी वस्तुको हमारे भीतर प्रतिबिंबित करती है और साथ ही साथ हमको भी प्रतिबिंबित करती है. मेरे लिए इस बातके लिए सावधान होना कठिन है कि आप सुन रहे हैं कि नहीं? क्योंकि जिज्ञासुकी मुद्रा बना कर कोई बैठ

जाये और विचार कुछ और ही कर रह हो तो मुझे किस प्रकार ज्ञात होगा कि वह सुन रहा है या नहीं! पर आपको पता है कि आप मुझे सुन रहे हो और साथ ही साथ यह भी पता है कि आप क्या सुन रहे हो. यह है सेल्फ्-रिफ्लॅक्टिव्नेस् (आत्म-प्रतिबिंबितता) मोड ज्ञानके बारेमें. यह दूसरा सिद्धान्त.

३. स्व-परप्रकाशता :

तीसरा सिद्धान्त है पॅसिव-रिफ्लॅक्टिव्, 'स्वयं प्रकाशित' कहा जाता है. स्व-प्रकाशक भी है और पर-प्रकाशक भी है. अब जबकि स्वयं-प्रकाशक हो तब उसे संपूर्णरूपसे निष्क्रिय नहीं कह सकते, जैसे कि दर्पण. उदाहरणके लिए, जिसे कुछ सुनाई नहीं देता हो उसे यह तो सुनाई देता ही है कि मुझे कुछ सुनाई नहीं दे रहा. यह ज्ञानका सौंदर्य है कि यह 'स्व-प्रतिबिंबित', 'स्व-प्रकाशित' वस्तु है और यह दूसरेको भी प्रकाशित करता है. इस अर्थमें 'स्व-प्रकाशित' वस्तुको पूर्णरूपसे निष्क्रिय नहीं माना जा सकता. यह जो ज्ञानकी मोडेलिटी है यह सौ प्रतिशत सक्रिय घटना है. इसमें अपने आपमें एक सक्रियता है.

बहुतसे लोगोंको यह बात आरम्भमें समझ नहीं आती थी पर आजकी तारीखमें हम अच्छी तरहसे जानते हैं कि चाहे आंखसे देखना हो या कानसे सुनना हो या नाकसे सूंघना हो अथवा जीभसे स्वाद चखना हो अथवा चमड़ीसे किसीके स्पर्शका अनुभव करना हो, इनके बारेमें धारणा ऐसी थी कि आंख नाक कान चमड़ी आदि यह सभी इन्द्रियां द्वार जैसी है. वस्तुके जिस गुणधर्मको इनके अन्दर आना हो वह आ सकता है. कोई भी द्वार अपनी ओरसे कोई क्रिया नहीं करता. आनेवालेको निश्चय करना पड़ता है कि उसे अंदर जाना है कि नहीं. खुली खिड़की या दरवाज़ोंकी तरह

एक निष्क्रिय होनेकी धारणा थी पन्तु अब वह बात नहीं है.

मॉडर्न्-बॉयोलॉजी इस बातको कबूल नहीं करती क्योंकि देखनेमें कई सारी नसोंकी एक्टिवीटी काम करती होती है. एक सामान्य उदाहरण दूँ तो आपको समझ आयगा. कानके ऊपर पर्दा जो होता है उसपर हमारे बोलनेसे एक तरंग उत्पन्न होती है. उसके भीतर एक हथोड़े जैसी कोई चीज़ होती है जो कि दूसरी जगह तरंग पैदा करती है. उसके कारण नसोंमें तरंग उत्पन्न होती है. जब नसोंमें इलॅक्ट्रो-मॅग्नेटिक् तरंग चलती है. उनका सिग्नल् दिमाग तक पहुंचता है. देखो, यहां कितनी सारी क्रियाएँ हो गयी! अब दिमागमें जो मिररन्यूरोन होते हैं उनपर इन तरंगोंका चित्र जैसा बनता है. तब सुननेकी क्रिया पूरी होती हे. जब-तक उनके ऊपर तरंगोंका चित्र बनता है तब-तक सुननेकी क्रिया चलती है. जब वह बंद हो जाता है तो सुनना भी बंद हो जाता है. दिमागके पास ऐसी सुविधा भी है कम्प्यूटर् जैसी कि जो सुना वह उसको स्टोर् भी कर लेता है. जैसे कि आप की-बोर्डपर काम कर रहे हैं तो वह स्क्रीन्पर दिखलाई देता है. जैसे ही आप 'सेव्'का बटन दबाते हैं तो वह स्क्रीन्पर सेव् नहीं होता. वह तो केवल रिज़ल्ट दिखाता है. यह सेव् होता है मेमोरी सॅल्में. अब देखिये, यहां कितनी क्रिया हो रही है और सब भूल भी जायें पर कम्प्यूटर् तो इस बातका गवाह है ही कि ज्ञान कभी भी निष्क्रिय नहीं होता. यह एक सक्रिय सिद्धान्तपर चलनेवाली क्रिया है.

जैसे साइंस् इस बातको मॉडर्न् टर्मिनोलॉजीमें कह रह है पर अपने यहांका सांख्यमत भी इसी बातको कहता आया है. सांख्य-सिद्धान्तके दो भाग हैं, सेश्वर सांख्य और निरीश्वर सांख्य. भागवतमें सेश्वर सांख्य है. सेश्वर सांख्यकी एक अवधारणा है. आप इस चार्टको देख लें तो आपको समझ आ जायगा.

ब्रह्म=सच्चिदान्द=देशकालस्वरूपापरिछिन्न

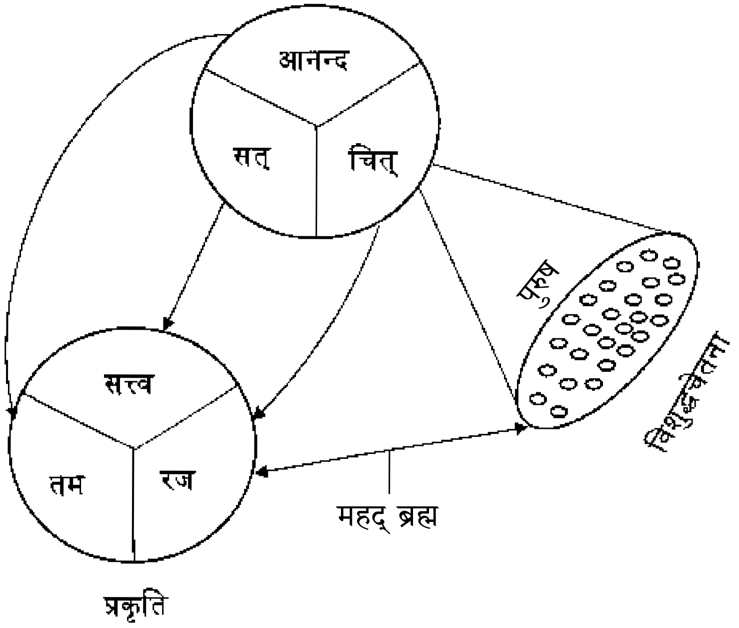

प्रकृति-पुरुषकी उत्पत्ति :

सच्चिदानन्द ब्रह्मके आनन्दांशमेंसे तमोगुण प्रकट होता है. ब्रह्मके सदंशमेंमेंसे सत्त्वगुण प्रकट होता है. ब्रह्मके चिदंशमेंसे रजोगुण प्रकट होता है. सत्त्वगुणका स्वभाव सस्टैनूमेंट (बनाए रखने) का होता है. रजोगुणका स्वभाव क्रियाशीलताका एजाईलिटीका होता है. तमोगुणका स्वभाव स्थितप्रज्ञता(!)का होता है. 'स्थितप्रज्ञ' मानें जो जैसी स्थितिमें

है वही स्थितिमें पड़ा रहे भैंसकी तरह. जड़को जड़ इसी कारण कहते हैं कि उसमें इनर्शिया होता है. तीनोंको मिला कर प्रकृति बनती है. इन तीन गुणोंको विभिन्न प्रकारसे क्रियान्वित करनेवाला कौन ?

ये तीनों एक-दूसरेसे बिल्कुल विपरीत है. जैसे आप बिजलीके तारोंमें देख सकते हो कि एक पॉज़िटिव्-चार्ज्का वायर् है और एक नॅगेटिव्-चार्ज्का वायर् है. उन दोनोंके कॉम्बीनेशन्से एक अलग सर्किट बन जाती है. इसी प्रकार प्रकृति एक अलग ही सर्किट बनाती है. इन तीन गुणोंसे प्रकृति क्या काम करेगी वह सौ प्रतिशत हम कह नहीं सकते क्योंकि तीन फोर्सिस् (शक्तियाँ) इसमें काम कर रही है. परन्तु इसके सामने एक और बात समझने जैसी है कि ब्रह्मके चिदंशमेंसे 'पुरुष' नामका तत्त्व उत्पन्न होता है. इस पुरुषकी एक विशेषता है कि इस तत्त्वमें प्रकृतिके तीन गुण नहीं हैं. उसी चिदंशमेंसे प्रकृति केवल रजोगुण लेती है पर चिदंशमेंसे जो पुरुष व्युच्चरित होता है वह उससे रजोगुण नहीं लेता. इसी कारण पुरुष त्रिगुणातीत है. यह तीनों गुणोंसे ऊपर है. हम इसे 'प्योर् कॉन्शियसनेस्' (विशुद्धचेतना) कह सकते हैं. इस शुद्धचेतना और ब्रह्ममें रही हुयी चेतनामें (चिदंशमें) मूल भेद यह है कि इस शुद्धचेतनामें स्वतः किसी प्रकारके विज्ञान बन पानेका सामर्थ्य नहीं है.

ज्ञानके लेवल् :

ज्ञानरूपी चेतनाके कई लेवल् होते हैं. सबसे पहला लेवल् है सेंसिटिवीटी (संवेदनशीलता)का, दूसरा लेवल् है सेंसेशन् (उत्तेजना)का, तीसरा है पर्सेप्शन् (अनुभूति)का, चौथा लेवल् है कन्सेप्शन् (अवधारणा)का, पांचवां लेवल् है रिकलेक्शन् (अनुस्मरण)का, छट्ठा लेवल् है रिकॉग्निशन् (पूर्वानुभूतको पहचान पानेका) का. इस प्रकार ज्ञानके कई लेवल् होते हैं.

'संवेदनशीलता' मानें क्या? जैसे एयरपोर्ट अथवा ज्वेलरी शोरूमके दरवाज़ेपर एक कॅमरा बैठा देते हैं. कोई भी आये तो यह अपने आप खुल जाता है. वह इसलिए क्योंकि वह कॅमरा किसी भी तरहकी मूवमेंट प्रति संवेदनशील होता है. इसके बाद जो दरवाजेकी संरचना है वह इस उत्तेजनाको ग्रहण करके उसको स्टोर करती है. फिर वह उस व्यक्तिकी पहचान भी सकती है. किसी अपराधीका पूरा विवरण यदि उसमें फीड् कर दिया जाय तो वह तुरंत एलार्म् बजा देगा. ऐसे कई सारे चेतनाके अलग-अलग लेवल् हैं. इसी प्रकार अपनी चेतना भी काम करती है. शुद्धचेतनामें केवल संवेदनशीलता होती है, उत्तेजना नहीं होती. पर जब इसके सामने कुछ आता है तो ही उसमें उत्तेजना होती है. जब-तक कोई इसके सामने नहीं आता, तब-तक यह वैसीकी वैसी ही रहती है. शुद्ध हिन्दीमें समझना हो तो *न मिली नारी तो बाबा ब्रह्मचारी.* कोई सामने नहीं आ रहा तो संवेदनशील तो है पर उत्तेजनाहीन है. जैसे ही कोई सामने आया तो वह ही संवेदनशीलता उत्तेजनामें परिवर्तित हो जाती है. यह जो शुद्धचेतना है जो पुरुष होनेके रूपमें प्रकट होती है.

प्रकृति ब्रह्मके तीन पहलुओंसे प्रकट होती है. पुरुष एक पहलुसे प्रकट होता है. सभी पहलुओंसे प्रकट नहीं हुआ है. प्रकृतिको 'प्रकृति' इस कारण कही जाती है क्योंकि इसका नाम नेचर है. 'नेचर्'का अर्थ उसका मूलतत्त्व. वह तत्त्व कि जिससे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड प्रकट हुआ है. प्रकृतिको समझनेके लिए उचित उदाहरण है कि जैसे कम्प्यूटर्में कोई एक डिजिटल् वर्च्युअल आकृति बना दें, जो अपने ही जैसी हो पर हम तो वह नहीं है. अपने सारे क्रिया-कलाप उसमें हैं. जैसे कम्प्यूटर्में रिप्लीकेशन् हो जाता है कि हमारी आवाज़ आकृति चाल सभी बातका रिप्लिकेशन् हो जाता है. पर हम वहाँ मौजूद नहीं है. ऐसा ही कुछ रूप प्रकृतिका है. वह ब्रह्मका रिप्लिकेशन् है पर ब्रह्म वहाँ नहीं है. ब्रह्मका जो मूलरूप है वह होमोजिनियस्

है, त्रिगुणाकार नहीं है. क्योंकि ब्रह्म सच्चिदानन्द है, उसका आनन्द ऐसा नहीं है कि जो चिद्रूप न हो. सत् ऐसा नहीं है कि जो चिद्रूप न हो.

(प्रकृति-पुरुषकी देशिक-कालिक मर्यादा)

'सत्' मानें वस्तुका अस्तित्व या होना. यह टेबल् है पर इस टेबल्को अपने होनेकी अवेयरनेस् नहीं है. हम हैं और हमको अपने होनेका भान भी है. पर अपनी अवेयरनेस् एक सीमाके अन्दर ही रही हुयी है, अनन्त अवेयरनेस् नहीं है. मुझे भान है कि मैं हूं पर तुम्हारी अवेयरनेस् मुझे अपनी अवेयरनेस्में एक ऑब्जेक्ट्की तरह लगती है, सब्जेक्ट्की तरह नहीं. मेरी अवेयरनेस्में कोई एक प्रकारकी लिमिटेशन् आ गयी कि नहीं मेरी अवेयरनेस् आपकी अवेयरनेस्में दखल नहीं दे सकती और आपकी अवेयरनेस् मेरी अवेयरनेस्में दखल नहीं दे सकती. यह अपनी सीमा है. टाईम् (काल) स्पेस् (आकाश) की सीमामें अपनी अवेयरनेस् बंधी हुयी है. मैं जानता हूँ कि मैं यहाँ हूं पर कुर्सीकि किस तरफ हूं इसके बारेमें मुझे सोचना पड़ता है. देखो, अवेयरनेस्की लिमिटेशन्. मैं यहां हूं पर दूसरे क्लासरूममें तो नहीं हूं. अपने घरमें तो नहीं हूं. यह सारी सीमाओंमें मेरी अवेयरनेस् बंधी हुयी है. स्थान विषयक सीमाओंमें ब्रह्ममें यह सारी लिमिटेशन् नहीं है पर प्रकृतिमें हैं.

(महत् तत्त्वकी उत्पत्ति)

अब एक बात देखो कि प्योर कॉन्शियसनेस् (पुरुष) और प्रकृति जब एक-दूसरेसे आदान-प्रदान मानें व्यवहार करते हैं तो पुरुष, इनर्शिया (स्थितप्रज्ञता) सस्टेन्मेन्ट् (अवस्थित होना) और एक्टिवीटी (क्रियाशीलता), यह प्रकृतिके गुण ग्रहण कर लेता है और इसके साथ-साथ प्रकृति भी एक प्रकारकी अवेयरनेस् (चेतनता) ग्रहण कर लेती है. हम जैसे ही स्विच् ऑन करते हैं तो सी.सी.टीवी कॅमरा

चालू हो जाता है. स्विच् ऑफ् करें तो बंद हो जाता है और कॅमरेमें सेंसिटीवीटी भी बंद हो जाती है. चेतना, बिजलीकी तरह है. वह उस उपकरणमें संवेदनशीलता और उत्तेजना ले आती है पर स्वयंमें संवेदनशील नहीं हो पाती. वह कॅमरेको तो संवेदनशील बना देती है (पर स्वयं अन्यके प्रति संवेदनशील नहीं हो पाती) इसी प्रकार पुरुष जब प्रकृतिके साथ व्यवहार करता है तो पुरुषके गुण प्रकृति ग्रहण करती है और प्रकृतिके गुण पुरुष ग्रहण करता है. इसीको भागवत पुरुष-स्त्रीके मॉडलमें प्रस्तुत करता है. जैसे पुरुषका वीर्य स्त्रीमें जाता है तो वह गर्भवती हो जाती है. इसी प्रकार शुद्धचेतना(पुरुष) जब प्रकृतिके सम्पर्कमें आकर क्रियाप्रतिक्रियात्मक व्यवहार करती है तो ऑवरी जैसी प्रकृति वीर्यकण जैसे पुरुषचैतन्यको अपने गर्भमें धारण कर लेती है. तब उस प्रकृतिके गर्भसे उत्पन्न होता है 'ऑवम्' जैसा महत्' तत्त्व. जैसे भगवान् गीतामें कहते हैं **''मम योनिः महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधामि अहं संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत!''** (भग.गीता १४।३) महत् जो कि स्त्रीके भ्रूणकी तरह होता है. उसे मैं अपनी चेतनासे गर्भवती बनाता हूँ. उस महत्में चेतना नहीं है. मुझमें गर्भ नहीं है. दोनोंके कोलोबोरेशन्से मेरी चेतना महत् (प्रकृति)में जाती है और सृष्टिमें जितने भी जड़-चेतन हैं वह महत्से उत्पन्न होते हैं. महत् ब्रह्माण्डके ब्लू-प्रिन्टकी तरह है. जो कुछ भी पैदा होना है वह इस महत् रूपी ब्लू-प्रिन्टमें मौजूद है. उस चेतनाके द्वारा प्रकृतिने जो गर्भ धारण किया, उससे महत् तत्त्व उत्पन्न हुआ. उस महत् तत्त्वमें प्रकृतिके सत्त्व-रज-तमोगुण अनुगत रहते हैं. कर्मेन्द्रिय-ज्ञानेन्द्रियके, आत्मचेतनाके पंचतन्मात्राओंके जो मूल हैं, वे इस महत्के कारण उत्पन्न हुये हैं. मतलब एक ऐसी वस्तु जगत्में उत्पन्न हुयी है कि जिसमें आत्म-जागरूकता है. जिसमें ग्रहण करनेकी शक्ति है. संवेदनशीलता है कि उसके बाहर क्या है और जो कुछ भी बाहर है उसको समझनेके लिए उसके पास ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय मन के उपकरण भी है.

(ज्ञानकी सक्रियता)

इस महत्‌में रजोगुणके कारण क्रियाशीलता आती है. पुरुषके कारण चेतना भी उसमें आती है. महत् एक क्रियाशील-चेतना है. अब क्योंकि प्रकृति और पुरुष आपसमें जुड़ रहे हैं तो पुरुष भी इस क्रियाशील होनेके गुणको स्वसात् कर लेता है. दोनों ही एक-दूसरेके स्वभावको ग्रहण कर लेते हैं. इसके कारण अपनी सेल्फ्-अवेयरनेस्‌में भी क्रिया होती है. अपनी सॅल्फ्-अवेयरनेस्‌के कारण हमको कोई प्रकारकी क्रिया नहीं करनी पड़ती यह बात सर्वथा गलत है. यहां तक कि इस सॅल्फ्-अवेयरनेस्‌की जो क्रिया है बुद्धिमें, मॉडर्न् साइंस्‌के हिसाबसे उसको हटाया जा सकता है. उसे वहां इन्स्टॉल भी किया जा सकता है. उसी तरह अपने यहां भी यह ही बात कही गयी है कि इन सारी प्रक्रियाके अंतमें जो जीव पैदा हुआ, जैसे चार्टके इस ओर यह प्रकृतिके वंशज है. उसी प्रकार पुरुषके भी अनेक वंशज चेतनाके उत्पन्न होते हैं जिन्हें 'जीवात्मा' कहा जाता है. जैसे लोहेके गोलेमें हम बिजलीका करंट छोड़े तो वह भी करेंटवाला हो जाता है. उसी प्रकार पुरुषके अंश जब प्रकृतिमें आते हैं तो जीवात्मा बनते हैं. अब जीवात्मामें जीवात्मा होनेके कारण शुद्धचेतना काम नहीं करती बल्कि क्रियाशील-चेतना काम कर रही है. प्रकृतिद्वारा दिये गये जितने भी अपने अंदरके फंक्शन् है, चाहे वह बौद्धिक फंक्शन् हो अथवा संवेदनाके फंक्शन् हो अथवा मोटर् (क्रिया)-फंक्शन् हों. मानें क्रिया ज्ञान अथवा अवेयरनेस् ये निष्क्रिय नहीं हो सकते क्योंकि सभीमें स्वभावतः प्रकृतिका जो रजोगुण है उसके कारण वह कुछ-न-कुछ क्रियामें लिप्त रहते हैं. इसी कारण सारे-के-सारे ज्ञानमें कुछ-न-कुछ क्रियाशीलता भी आती ही है. आज साइंस् जो बात कर रहा है वह मॉडर्न्-टर्मिनोलॉजीमें कर रहा है. वह ही बात गीता भागवत में किसी दूसरी टर्मिनोलॉजीमें कही है. सिद्धान्त, परन्तु, वही है. हम भी साइंस्‌की ही बात कह रहे हैं कि ज्ञान कोई निष्क्रिय फिनोमिना नहीं है. ज्ञान कोई सेल्फ्-रिफ्लॅक्टिव् अथवा दूसरोंके

रिफ्लॅक्शन्‌का फिनोमिना भी नहीं है. अपनेको जो ज्ञान मिला, यह एक चेतनाशील क्रिया है या क्रियाशील चेतना है. इसमें भेद क्या है? क्रियाशील चेतनामें चेतनाशीलताकी प्रमुखता है और चेतनाशील क्रियामें क्रियाकी प्रमुखता है.

नलकूबर-मणिग्रीव जब स्तुति कर रहे हैं कि हमारा ज्ञान हो अथवा हमारा जो ज्ञेय हो, कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय यह अपनी चेतनाको उपकरण प्रदान किये गये हैं. क्रियाशीलताके लिए अथवा संज्ञानात्मकताके लिए पर ध्यान रहे कि कोई भी क्रियाशीलता किसी प्रकारके संज्ञानके बिना हो ही नहीं सकती. इसी तरह कोई भी संज्ञान किसी क्रिया अथवा कर्म के बिना संभव नहीं है. पर होता क्या है कि जो मुख्य वस्तु होती है वह ही ध्यानमें आती है और जो मुख्य नहीं होती वह ध्यानमें भी नहीं आती. आपको इसका एक सटीक उदाहरण देता हूँ. एक अध्यापक अपनी कक्षामें पढ़ा रहा था. एक विद्यार्थी जो खिड़कीके पास बैठा था उसका पढ़नेमें ध्यान नहीं था खिड़कीके बाहर था. वहाँ गार्डन्‌में एक सांप अपने बिलमें घुस रहा था. उसके चेहरेके भावको देख कर शिक्षकको समझ आ गया कि यह ध्यानसे नहीं सुन रहा है. इसलिए अध्यापकने क्रोधमें आके कहा "भेजेमें कुछ घुसा कि नहीं?" विद्यार्थी बोला "नहीं सर, केवल पूंछ बाकी रह गयी है." अब देखो शिक्षक पूछ रहा है कि "मेरी बात समझमें आयी कि नहीं?" विद्यार्थी जो कि पूरी तरहसे दृश्यमें डूबा हुआ था, बोला "सर नहीं, केवल पूछ बाकी रह गयी है." अध्यापकने भी अपना माथा धुन लिया कि अध्ययनकी पूंछको इसके भेजेमें कैसे घुसाऊँ. यह तो मजाककी बात है परन्तु दूसरा एक उदाहरण देखो : हमारे मुखके लिये दूसरा पर्यायवाचक शब्द है 'आस्य'. मुखको 'आस्य' इसलिये कहा जाता है क्योंकि स्वादिष्ट भोज्य पदार्थको मुंहमें लार आने लगती है. इसे रशियाके पावलॉव वैज्ञानिकने 'कंडिशंड्‌ रिफ्लेक्स' कहा. अब यह लार आनेका 'आस्य'का मूलार्थ "आस्यमें

ढोकला या रसगुल्ला रख रहा है" ऐसे वाक्यमें मुखरित रहेगा परन्तु "दर्पणमें आस्य देख कर दाढ़ी बना रहा है" ऐसे वाक्यमें मुखरित होनेके बजाय 'नाईट्'शब्दमें 'जी'-'एच'की तरह सायलेंट् हो जायेगा कि नहीं? इसी तरह पुरुषपर ध्यान देते हैं तो ज्ञानशीलता मुखरित रहती है और प्रकृतिपर ध्यान देते हैं तो क्रियाशीलता. परन्तु दोनोंमें दोनों गुणधर्म विद्यमान तो हैं ही दोनोंमें किसी भी एकका कहीं अभाव नहीं है.

इससे हम समझ सकते हैं कि अपना मन इस प्रकार व्यवहार करता है. ध्यान रहे कि विद्यार्थी सब कुछ सुन रहा है, इसका मतलब नहीं समझ रहा ऐसा भी नहीं है. पर दृश्यमें डूबे रहनेके कारण उसकी पूरी सॅल्फ्-अवेयरनेस् उसी दृश्यपर केन्द्रित हो गयी है. अपना मन एक साथ कई सारे काम कर रहा होता है. यह इस बातका प्रमाण है कि ज्ञान किसी भी समय निष्क्रिय नहीं होता. किसी भी समय कोई क्रिया संज्ञानरहित हो ऐसा किसी जैविक देहमें तो संभव नहीं है. अब आपके प्रश्नपर आयें. ऊपरी तौरपर ऐसा लगता है कि आपका प्रश्न श्रीवल्लभाचार्यके सिद्धान्तपर है. यदि हम इस प्रश्नकी जड़ तक जायें और उससे होनेवाले परिणामपर जायें तो आप जान पायेंगे कि यह प्रश्न ऐसा नहीं है कि जो श्रीवल्लभाचार्यके दर्शनको ही मिथ्या सिद्ध कर दे. यह प्रश्न इस प्रकारका है कि जो भगवान्के अस्तित्वपर ही प्रश्न लगा रहा है. यदि भगवान् है तो सारे धार्मिक-दर्शनोंको इस प्रश्नका उत्तर तो ढूंढना ही होगा. यह इस प्रश्नके भीतर रहा हुआ मूल है.

(रिचर्ड् डॉकिन्के पूर्वपक्षमें भगवान्के अस्तित्वका अस्वीकार)

रिचर्ड् डॉकिन् एक बायोलॉजीका वैज्ञानिक है. उसने एक बहुत मज़ेदार बात कही है कि जितने भी भगवान्के बारेमें दर्शन है वह सर्वथा झूठे और मिथ्या है. क्योंकि वह ब्रह्माण्डके बारेमें सही प्रकारसे

व्याख्या नहीं करते और लोगोंको गुमराह करते हैं, ब्रह्माण्ड किस प्रकारसे कार्य करता है उस बातको ठीकसे समझे बिना. वैसे उसका बहुत ही अद्‌भुत और आकर्षक व्यक्तित्व है और साथ-साथ अच्छा दार्शनिक भी है. आप कभी उसें पढ़ें तो उसके विचारोंको सुन कर आप भी भगवान्‌पर विश्वास करना बंद कर देंगे. वह जिस प्रकारसे अपने विचारोंकी प्रस्तुति करता है और धर्मशास्त्रोंपर प्रश्न करता है वह बहुत अद्‌भुत तरीका है. उसकी सबसे बड़ी उसकी खूबी यह है कि सारे धार्मिक लोग जो धर्ममें मूढ़विश्वास रखते हैं वह चर्चामें उसके साथ अपना संतुलन खो देते हैं और गाली-गलौचपर उतर जाते हैं. पर वह शांत चित्तसे मुस्कुराते हुए ही उनको उत्तर देता रहता है. कभी उसको उत्तेजित होते अथवा क्रोध करते हुए नहीं देखा. मुझे उसे पढ़ना भी बहुत अच्छा लगता है और देखना-सुनना भी बहुत अच्छा लगता है. जो कुछ रिचर्ड डॉकिन् कह रहा है उसे शांतिसे हमें फेस करना पड़ेगा. इसके प्रश्नको इतने छोटे दायरेमें सीमित रहने देनेके बजाय रिचर्ड डॉकिन्‌के बड़े प्लॅटफॉर्मपर ले जा कर प्रश्नका उत्तर देना चाहूँगा. क्योंकि भगवान् हैं तो हमेशा समस्या खड़ी हो जाती है. स्टीफन् हॉकिंस् भी यही बात कहता है पर वह इस बातको सांइन्टिफिक् तरीकेसे कहता है. रिचार्ड डॉकिन्‌ने तो मानों झंडा ही उठा रखा है कि मुझे तो किसी भी तरहसे भगवान्‌के अस्तित्वको चॅलेंज् करना ही है.

रिचर्ड डॉकिन् इस बातको कहता है कि जब किसी भी भगवान्‌के बारेमें हम धारणा बांधते हैं कि भगवान्‌ने इस ब्रह्माण्डकी रचना की. तो सबसे पहली समस्या खड़ी होती है कि जिस प्रकारसे इस ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति सामने आ रही है, इसमें कुछ दिव्य कारण हमको दिखलाई तो नहीं देता. इस ब्रह्माण्डको रचनेमें कोई दैविक हेतु पूरा हो रहा हो ऐसा लगता नहीं है. क्योंकि सारे ब्रह्माण्डमें सिस्टम् ऐसी दिखलायी देती है कि एक प्राणी दूसरे प्राणीको खा

कर ही जीवित रह सकता है. यह तो आपमें कितना निर्दय सिद्धान्त है जीवसृष्टिकी उत्पत्ति या जीवन का? हम यह समझते हैं कि हम शाक-भाजी खा रहे हैं तो प्राणीको नहीं खा रहे हैं. ठीकसे, परन्तु, समझो कि शाक-भाजीमें भी चेतना तो है ही ना! जैसे जैन लोग अपना मज़ाक उड़ाते हैं कि तुम आलू कंद कैसे खा सकते हो? यह तो घोर हिंसा है. समझनेकी बात यह है कि हम चाहे शाकाहारी हों अथवा माँसाहारी, हम मनुष्य जातिको बिल्कुल समाप्त भी कर दें तो भी, वृक्ष भी तो एक-दूसरेको खा कर ही जिंदा है. बॅक्टीरिया और जर्म्स् भी तो एक-दूसरेको खा ही रहे हैं. कोई भी बॉयोलॉजिकल् जीव, दूसरे बॉयोलॉजिकल् जीवको खा ही रहा है. उसीमें उसका संरक्षण है अर्थात् सृष्टिकर्ता कितनी हिंस्र मनोवृत्तिका है कि सर्वसमर्थ और दयालु होनेके बावजूद ऐसी हिंसाप्रधान जीवनप्रक्रिया उसने बनायी! अन्यथा कोई अहिंसापूर्ण जीवनप्रणाली भी तो सर्वसमर्थ सर्वज्ञ दयालु होनेके कारण बना सकता था. इसके बाद जो डॉकिन् आगे कहता है वह और भी मजेदार युक्तिवाद है. भगवान्‌का अस्तित्व अनन्तकालके लिए जो माना जाता है वहां 'अनन्तकाल'का अर्थ है कि भगवान्‌का कोई आदि नहीं है और कोई अन्त भी नहीं है. वह हमेशा था और हमेशा रहेगा.

हमें कई वैज्ञानिक परीक्षणोंसे ज्ञात हुआ है कि इस ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति एक विशेष समयपर हुयी है. इस विरोधाभासको समझें कि जो इस ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिसे बहुत पहले था और वह ब्रह्माण्डके समाप्त होनेके बाद भी रहेगा. तो बताइये कि उत्पत्तिसे पहले वह कर क्या रहा था? ऐसा सवाल रिचर्ड डॉकिन्‌ने करता है. यदि मान भी लें कि भगवान्‌ने यह सृष्टि बनाई तो पहली बात तो उसने इतना समय क्यों लिया और वह ऐसी सृष्टि क्यों नहीं बना सकता था कि जिसमें हिंसा न हो! उस सर्वज्ञको कोई इससे अच्छा फॉर्म्यूला क्यों नहीं सूझा? अब तो वैज्ञानिक भी इस बारेमें सोचने

लगे हैं. आप यह भी कह रहे हैं कि भगवान् सर्वज्ञ है. जब वह सर्वज्ञ है ही तो उसने ऐसी सृष्टि पैदा क्यों नहीं की जिसमें हिंसा हो ही नहीं जिससे कि निरीह पशु-पक्षी या अन्य जानवर पीड़ित न होते. इसका अर्थ है कि या तो भगवान्‌को परपीड़ासे आनंद मिलता है. यदि ऐसा है तो ऐसे भगवान्‌की पूजा तो सर्वथा नहीं करनी चाहिये. यदि ऐसा नहीं है तो उसे किसी और प्रकारकी सृष्टि उत्पन्न करनी चाहिये थी. उसने ऐसी सृष्टि बनाई ही क्यों कि जिसमें एक जीव दूसरे जीवका भक्षण करे बिना जी नहीं सकता. यदि ऐसा है तो ऐसे भगवान्‌की आवश्यकता क्या है? हमें इस संसारमें बिना ईश्वरके, बिना उसकी पूजाके, बिना उसके प्रति समर्पणके, रहना अधिक उचित है. अब देखो, यह बात सांइटिफिक् थियोरीके हिसाबसे उत्पत्तिके बारेमें सत्य है.

यदि यू-ट्युबपर रिचर्ड डॉकिन्‌के संवाद देखेंगे तो, उसे उसकी चर्चाके बाद बहुतसी गालियाँ सुननेको मिलती है. वह भी उन गालियोंको बड़े शान्तभावसे सुन लेता है. वह कहता है कि ‘‘यह सब गालियाँ आप मुझे नहीं, अपने भगवान्‌को दे रहे हैं. क्योंकि आप मेरे विचारोंको तर्कसे तो काट नहीं सकते’’ उसकी खासियत यही है कि वह हंसते-हंसते उन सारी बातोंको झेल लेता है. जो धार्मिक लोग हैं वे उसको खुली गालियाँ देते हैं. इन सब धार्मिक लोगोंका दिमाग क्यों गरम हो जाता है यह पता नहीं चलता!

(महाप्रभुजीका दृष्टिकोण भगवान्‌के अस्तित्वके बारेमें)

हमारे शास्त्रोंके साथ कभी उसने चर्चा की नहीं है. इस बारेमें अपने शास्त्र क्या कहते हैं वह जैसे-जैसे हम आगे बढ़ेंगे, अपने आप समझमें आ जायगा. इस सभीका संक्षेपमें महाप्रभुजी क्या समाधान दे रहे हैं वह तुम लिख लो ‘‘**आत्मैव तदिदं सर्वं सृज्यते सृजति प्रभुः, त्रायते त्राति विश्वात्मा, ह्रियते हरति ईश्वरः, आत्मैव तदिदं**

सर्वं ब्रह्मैव तदिदं तथा... अयमेव ब्रह्मवादः शिष्टं मोहाय कल्पितम्'' (त.दी.नि.२।१८३-१८४) मानें यह सभी कुछ वही है वह प्रभु खुदको पैदा कर रहा खुद पैदा हो रहा है, वह विश्वात्मा खुदका पालन कर रहा है और पालित भी वही खुद है, वह ईश्वर होनेसे खुद संहार करता है और खुदका संहार कर रहा है. ब्रह्मवादका स्वारस्य यही है और सारी बातें तो मोहार्थ कल्पित ही हैं. कोई उस ईश्वरको पूछनेवाला नहीं क्योंकि उसके सिवा और कुछ है ही नहीं. वही क्रियेटर् है और वही क्रियेशन् है. वही नष्ट हो रहा है और वही नष्ट कर रहा है. वही पोषक है और वही पोषित है. ''**अयमेव ब्रह्मवादः शिष्टं मोहाय कल्पितम्**'' बस हमारे ब्रह्मवादका यह ही अर्थ है. इसके अलावा जो भी वाद हैं वह व्यामोहन है. यहां 'शिष्ट' कहनेको क्या बचा रहता है? महाप्रभुजीने वह भी स्पष्ट किया ही है ''**अपरं तत्र पूर्वस्मिन् वादिनो बहुधा जगुः, मायिकं सगुणं कार्यं स्वतन्त्रं चेति नैकधा तदेव एतत्प्रकारेण भवति इति श्रुतेः मतम्**'' (सिद्धा.मुक्ता.४-५) अर्थात् जगत् और अक्षरब्रह्म के विकल्पतया विभिन्न मतवाले अनेकविध कारणोंकी कल्पना करते हैं परन्तु ऐसे कोई उत्प्रेक्षित कारण किसी प्रमाणसे सिद्ध हैं तो ब्रह्मका ही कोई अवान्तरकारणरूप है. यानि कि ब्रह्म तो सर्वान्तर्भावी तत्त्व है सो वह कारण ब्रह्मका ही एक अवान्तर कारणरूप मानना पड़ेगा कि माया हो या प्रकृति या परमाणु या जगत् कारणविहीन स्वभावसिद्ध हो तो वह तब भी ये माया आदि सभी रूपोंमें ब्रह्म ही प्रकट हुवा है. यही बात श्वेताश्वतरोपनिषद्में भी कही गयी है ''**कालः स्वभावो नियतिः यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुषः इति... यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तानि अधितिष्ठति एकः**'' (श्वेता.उप.१।२-३) मतलब यह कि आधुनिक आणविक सापेक्षवादके अनुसार 'टाईम-स्पेस्-मेटर-एनर्जि' या पारमाण्विक विज्ञानके 'enp' या प्राचीन मतोंमें यथा जैनदर्शनमें स्वयं द्रव्यको ही उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वभावका मान कर कर्ता ईश्वरको इन्कारा गया ऐसे सभी मतोंद्वारा पुरस्कृत

तत्त्व ब्रह्मसे बहिर्भूत न होनेके कारण ब्रह्मकारणताका निराकरण नहीं कर सकते. अब इस आधारपर जरा सोचो कौन सा जीव किस दूसरे जीवकी हींसा या भक्षण कर रहा है. हम अपनी बुद्धिके अनुसार ऐसा सोचते हैं कि यह जीव दूसरे जीवका भक्षण कर रहा है परन्तु सत्यमें तो भगवान् ही भगवान्का भक्षण कर रहा है. यदि वह कोई चीज़ उत्पन्न करता है तो वह चाहे अच्छे फॉर्मूलेसे हो या बुरेसे, वही उत्पन्न हो रहा है. यह किसी औरका विषय हो नहीं सकता. क्योंकि वही उत्पत्तिका कारण है, वही उत्पन्न कर रहा है, वही उत्पन्न हो रहा है. वही पोषक है. वह किसी औरका पोषक नहीं है अपितु अपने ही दूसरे रूपका पोषण कर रहा है. वहाँ कोई द्वैत नहीं है. जब भी हम ब्रह्मके बारेमें कहते हैं कि वह निर्विकार है तो हमारा अर्थ होता है कि वह इस अद्वैतके कारण ही निर्विकार है. जब हम कहते हैं कि विकार भी सत्य है तो उसका अर्थ है कि वही अपने आपमें उत्पन्न होता है.

मैं एक बात कई बार कहता हूँ कि जैन लोगोंमें ऐसी धारणा है कि महाभारतमें हिंसा करनेके कारण भगवान् श्रीकृष्णको साठ हजार वर्षकी नरककी यातना भोगनी पड़ेगी. पर मुझे लगता है कि जैन लोग बहुत कम बता रहे हैं क्योंकि महाभारत करानेके कारण तो उसे साठ लाख वर्षकी नरक होनी चाहिये थी. पर इस बातका उत्तर नहीं मिलता कि उसने महाभारत करायी किनके बीचमें! कौरव-पांडवके बीच कि स्वयंके बीच! जैन लोग कहते हैं कि वे हिंसा नहीं करते और परन्तु जब अट्ठाईका अनशन व्रत करते हैं तब तो शरीरके कितने सारे सॅल्स् मर जाते होंगे! महाभारतमें कुल जितने मरे, उससे दस गुने सॅल्स्को हरेक जैन मुनि जब अट्ठाई करता है अथवा संथारा करता है तब मरते है. क्या संथारे करनेवाले मुनि नरकमें जायेंगे? यह यदि नरकमें नहीं जा रहे हैं तो भगवान् कृष्णने जो भी महाभारत

की वह सब अपने अंदर ही तो की थी. और अपने विराट रूप धारण कर वह अर्जुनको दिव्यदृष्टिद्वारा दिखला भी दी थी. तुम चाहे कुछ भी न करो पर तुम्हारे शरीरके भीतर व्हाईट-सॅल् और रेड-सॅल् का एक महाभारत तो निरन्तर चल ही रहा है. वहाँ तो निरन्तर यही काम चल रहा है. बाहरसे जो भी कुछ वायरस् आता है उसे व्हाईट-सॅल् खा जाते हैं और रेड-सॅल्स् वहाँ जा कर पॅचअप्का काम करते हैं.

इस प्रकार महाभारत तो प्रत्येक शरीरमें चल ही रही है. जब शरीरक्षेत्रके भीतर चलती हो या कुरुक्षेत्रके मैदानमें बाहर चलती हो महाभारतपर हम कोई प्रश्न चिन्ह नहीं लगा सकते. तो फिर भगवान्को हमें पूछनेका कोई अधिकार कैसे मिल सकता है कि क्यों तुमने प्रकृति और पुरुष रूपसे सृष्टिकी रचना की? क्यों पुरुष प्रकृतिसे मिल कर त्रिगुणात्मक सृष्टिकी रचना करता हो? अरे, हमारे शरीरमें प्रत्येक सॅल् दूसरेके साथ मिल कर एक और सॅल्की रचना करता है. प्रत्येक परिस्थितिमें वह ही कहानी चल रही है और हम कभी इसपर प्रश्न चिन्ह नहीं लगाते हैं कि यह ऐसा क्यों है. क्योंकि हमने इसे तो ऐसे ही रूपमें स्वीकार कर लिया है कि यह तो ऐसा ही है.

अब तो आप स्वीकारो कि यह पूरा यूनिवर्स्, अपने शरीरकी तरह ही है. बस वहाँसे आपको सारे समाधान मिल जायेंगे. यह अपनेको समझना पड़ेगा कि रिचर्ड डॉकिन् किस प्रकारके प्रश्न कर रहा है और अपने शास्त्र इन प्रश्नोंके क्या उत्तर दे रहे हैं. हिंसात्मक, परपीड़ासे आनंद लेनेवाला, यह सब आरोप उस भगवान्पर कब आयेंगे कि जब एक व्यक्ति किसी दूसरेपर अत्याचार करता हो. पर समझो कि यदि कोई पर्वतारोही पर्वतपर चढ़े तो ऑक्सीजन्की कमीसे वह बेहोश हो जाता है. उसकी नसें फटने लगती है, उसे भूखा रहना

पड़ता है, पैरोंमें सूजन आ जाती है. क्या आप इसको अत्याचार या हिंसा कहेंगे? कोई भी खिलाड़ी अथवा दौड़नेवाले अपने खेलके दौरान कितनी पीड़ासे गुजरते हैं! तो क्या वह अपने प्रति हिंसा कर रहे है? कोई भी बॉक्सर् जब एक-दूसरेको पंच लगाते हैं तो उनके प्रत्येक पंचमें कई लाख सॅल्स् खत्म हो जाते हैं. फिर भी हम उसे एक खेलकी तरह लेते हैं. हम उनको पारितोषिक देते हैं. जब हम इन सभीको एक खेलकी तरह ले रहे हैं तो क्यों नहीं हम इस जगत्की उत्पत्तिको इसी प्रकार ले सकते!!! ये हमारे शास्त्र पूछ रहे है. यह केवल इसीलिए समझ नहीं आता क्योंकि हम स्वयंको उस भगवान्से अलग मानते हैं पर भगवान्की ये परेशानी है कि वह आपको स्वयंसे पृथक नहीं समझता.

अभी कुछ दिन पूर्व मुझे एक एस.एम.एस मिला. उसमें यह कहा गया था कि हमको अपने अहंकारका ज्ञान है. एक संभावना यह है और दूसरी संभावना ज्ञानके अहंकारकी भी हो सकती है. इन दोनोंमें अहंकार भी है और ज्ञान भी है. खाली क्रमके कारण बात पूरी बदल जा रही है. अच्छा और बुरा कहाँ जा कर हो रहा है? न तो अहंकारके कारण और न ज्ञानके कारण, अपितु गलत क्रमके कारण. यदि हमने अपने अहंकारका क्रम पहले रखा और ब्रह्माण्डको बादमें लाये, तो हर वस्तु जो ब्रह्माण्ड हमको दिखा रहा है उसे हम अपने अहंकारके मापदंडपर तोलने लगेंगे. यदि अपने अहंकारको ब्रह्माण्डके मापदंडपर तोलें तो तस्वीर एकदम साफ हो जाती है. हम भी उसी ब्रह्माण्डके अंश है. अपना अहंकार उस ब्रह्माण्डका ही अंश दिखलाई देगा अथवा यह भी कह सकते हैं कि अपना अहंकार ब्राह्मिक अहंकारका अंश है.

यदि आपको यह समझ आ रहा है कि आपका अहंकार उस ब्राह्मिक अहंकारका अंश है तो फिर उसमें कोई बुराई नहीं

है. पर यदि आप यह नहीं समझ पा रहें हो कि आपका अहंकार उस ब्राह्मिक अहंकारका हिस्सा है, तब क्या होगा? आपको अपनी समझका अहंकार हो जायगा. आप अपने अहंकारको समझनेके बजाय आपको अपनी समझका अहंकार हो जायगा. बस, यहींसे सारी चीजें बिगड़ना शुरु हो जाती है और फिर इनपर प्रश्न-प्रतिप्रश्न-चर्चाएँ; जैसे रिचर्ड डॉकिन्‌से हो रही है, शुरु हो जाती हैं. आवश्यकता हर वस्तुको ठीकसे समझनेकी, उसको सही स्थानपर रखनेकी है. बस एक नयी सुंदर तस्वीर सामने उभर कर आ खड़ी होगी. आपने उसे व्यवस्थित नहीं रखा तो बस वह सारी तस्वीर बीभत्स बन जायगी. आंख कहीं, नाक कहीं, कान कहीं बन जायेंगे. वही नाक कान आंख यदि सही स्थानपर, सही अनुपातमें हों तो उसी तस्वीरका सौंदर्य निखर कर आयगा. जो भी कुछ ये सही स्थानका निर्णय हुआ है यह किसी औरने नहीं, ब्रह्मने अपने ही रूपमें अपने अंगोका स्थान निश्चित किया है. यदि आप इसकी सराहना कर सकते हैं तो ठीक है, नहीं कर सकते तो भी ठीक है.

ब्रह्म आपकी सब समस्याओंकी चिंता नहीं करता. अपने शास्त्र भी कभी इन बातोंकी चिन्ता नहीं करते. क्योंकि उनकी धारणा है कि उत्पत्तिका मूल कारण वह 'एक' मानें यूनिटी है. अरविंद ऋषिने इसके लिए एक बहुत सुंदर बात कही है "God is one but he is not bound by his unity. We see him here despite of being one and single in multiple forms." भगवान् एक है पर भगवान्‌का एकत्व उनके लिए बंधनकारी नहीं है. वह 'एक' होनेपर भी जितने चाहे उतने रूप धारण कर सकता है. 'एक' होते हुए भी अनेक रूपमें प्रकट हो सकता है. एक जब अनेक रूपमें प्रकट हो सकता है, उसे अनेकताका 'ईश्वर' कहते हैं. उसका 'भगवान्' नाम पसंद नहीं आ रहा है तो उसे कोई और नाम दे दो. 'ब्रह्म' नाम दे दो. ब्रह्म पसंद नहीं आ रहा है तो शिव

दे दो. शिव नहीं पसंद आ रहा है तो माताजी कह दो. माताजी पसंद नहीं आ रहा तो अल्लाह कह दो. अल्लाह नहीं पसंद आ रहा है तो अहुर्मज़्द कह दो. पर जो भी तुम नाम उसको दोगे वह एक ऐसा तत्त्व होगा कि जो एक खुद अनेक हुआ है. यदि एक तत्त्व अनेक न हुआ हो तो यह ब्रह्माण्डका अस्तित्व ही नहीं रह जायेगा. यदि अस्तित्व होगा भी तो वह बहुत ही अव्यवस्थात्मक होगा क्योंकि मानो कि वहां एक नहीं, दो तत्त्व होते एक उत्पत्तिके कारण और दूसरा उसके पोषणार्थ, तो यदि उनमें आपसी सहमत न बन पाये तो क्या परिणाम होगा! यदि उनमें अच्छी सहमति है तो यह सहमति ही उनके एक होनेका कारण बन जाती है.

पति-पत्नी दोनों दो इकाई होती हैं पर 'दम्पत्ति' कहते ही एक समन्वयरूप इकाई आ जाती है. बहुतसे लोग इसका अलग ही अर्थ निकालते हैं कि 'दम्पत्ति'शब्दमें एक तो पति है और दूसरी जो दम् मारती हो. अरे भई! यह अर्थ नहीं है. इस शब्दकी मजाककी कथा अलग है पर संस्कृतमें 'दम्' का अर्थ है कि अपने आपको इतना नियंत्रित करो कि आप दो अलग इकाई नहीं रह जाओ. क्योंकि हर पतिमें पति होना इस बातपर निर्भर करता है कि 'जो रक्षा करे' वह पति. पर जो रक्षा करता है उसे व्यर्थ ही दम मारनेका अहंकार होता है. अब वह पत्नी हो अथवा पति हो, जो भी रक्षा करनेका रोल अदा करता है उसे थोडा अहंकार तो हो ही जाता है. पर संस्कृतमें 'दम्' शब्दका वहां अर्थ है कि आप जिसकी रक्षा कर रहे हो उसकी रक्षा तो करो पर भाव ऐसा होना चाहिये कि दूसरेको दबना न पड़े. दम्पत्तिमें भी एक इकाई है इसी प्रकार प्रकृति और पुरुष का जो दाम्पत्य है वह ऐसा नहीं है कि उसमें बड़ा कौन, प्रकृति अथवा पुरुष? ब्रह्म ही तो कि एक तत्त्व था. दाम्पत्य भाव निभानेके लिए उसने अपने आपको दो भागोंमें विभक्त किया. इसी कारण उपनिषद्में एक सुंदर

वचन आता है.

"सः द्वितीयम् ऐच्छत्" (बृह.उप.१।४।३) उस एकको दो होनेकी इच्छा हुयी. इस दो होनेकी इच्छाके कारण वह स्वयं ही दो भागोंमें विभक्त हो गया, एक रूपमें पति और दूसरे रूपमें पत्नी **"सः इममेव आत्मनं द्वेधा अपातयत्. ततः पतिश्च पत्नी च अभवताम्"** (बृह.उप.१।४।३) यह उपनिषद्का वाक्य है. अपने आपको दो रूपोंमें बाँट सके उसका नाम 'ब्रह्म'.

(प्रश्नोत्तर)

प्रश्न : क्या इस प्रकारकी सोच, एक प्रकारकी रीयालिटीसे छटकना नहीं है?.

उत्तर : यह विषमता हमें अपने अहंकारके कारण दिखलाई दे रही है. आप अपने अहंकारको उस ब्राह्मिक अहंकारमें लीन कर दोगे तो फिर सारी समस्याका समाधान हो जाएगा और 'हम देखते हैं' के स्थानपर 'ऐसा दिखलाई देता है' हो जायगा. हाँ, आप जो कह रहे हो वैसा एस्केपिज्म् अर्थात् पलायनवाद तो है ही. पर छटकना कहाँ? क्योंकि ब्रह्मके बाहर तो कुछ है ही नहीं. उस सर्वव्यापी अनन्त तत्त्वके बाहर तो कुछ है ही नहीं, जहाँ तुम छटक सको. आप अपने आपसे डर रहे हो, आप अपने आपको चाह रहे हैं, वह एक प्रकारका एस्केपिज्म् हो सकता है. यह भागना कब खतरनाक होता है कि जब दो हों और आप युद्ध करनेके लिए जायें और वहाँसे भागनेके बारेमें सोचें. जब आप अपने आपसे ही डर रहे हैं तो एस्केपिज्म् कहाँ हुआ? मान लो कि ब्रह्म है ही नहीं तो विकल्पतया जो भी कारण आयेगा वह भी खुद उत्पादक-उत्पाद्य पालक-पालित और संहारक-संहार्य बना है यह तो स्वीकारना ही पड़ेगा. अभी आर्टिफिशिअल् मांस बनानेकी सोच रहें हैं वैज्ञानिक. मार्केटमें बनके बिकने आ जायेगा उससे क्या हिंसासे

छुटकारा मिलेगा? कल तो मनुष्यभी फेक्टरीमें बनाया जा सकेगा तो क्या ऐसे फेक्टरीमें पैदा किये गये मनुष्यका मांस खाना अहिंसा कहलायेगी क्या?

(ज्ञान-क्रियाका सैद्धान्तिक निष्कर्ष)

अब ये सारी बातें समझ लेनेके बाद वापस अपने विषयपर आयें कि ज्ञान अपने यहाँ क्रियात्मक चेतना है, निष्क्रिय चेतना नहीं. और क्रिया अपने यहाँ ज्ञानात्मक स्पन्दन है अज्ञानरूपा या अज्ञानजन्य भ्रान्ति नहीं. अज्ञानात्मक सिद्धान्त नहीं है. कोई भी क्रिया अथवा ज्ञान के द्वारा भगवान्‌की स्तुति उभयात्मिका होनेकी महत्ताका प्रतिपादन है. उस समय क्रियाको इस तरह नहीं लेना चाहिये कि वह अज्ञानात्मक हो, अर्थात् केवल शुद्ध क्रियाके रूपमें नहीं लेना चाहिये. और अवेयरनेस् अथवा ज्ञान को इस प्रकार नहीं लेना चाहिये कि जिसमें किसी भी प्रकारकी क्रियात्मकता नहीं आती हो. यह यहाँ कहनेमें आया है.

(श्लोक-१, मूलश्लोक-२९)

उत्थानिका :

पूर्वस्मृतिः सन्दिग्धेति तन्निर्णयार्थं भगवान् आगतः इति उक्तम्. सा स्मृतिः सर्वलोकप्रसिद्धा भवतु इति कृष्णस्वरूपं ज्ञातं निरूपयतः, "ज्ञानी प्रियतमो अतो मे" (भाग.पुरा.११।१९।३) इति वाक्यात्. अन्यथा सर्वैव स्तुतिः विरुध्यते.

कहते हैं कि पूर्वजन्मकी स्मृति सन्दिग्ध होती है. हम मनुष्योंमें भी करोड़ोंमेंसे किसी एकको ही होती है. तो वृक्षयोनिमें पूर्वजन्मकी स्मृति सैद्धान्तिक रूपसे सम्भव नहीं लगती. ऐसी स्थितिमें यह "पूर्वजन्मकी स्मृतिसे कृष्णको पहचान पाये" यह कहना कहां तक उचित है? इसके उत्तरमें कहते हैं कि यहां भगवान् स्वयं इन वृक्षोंके पास

नारदजीके वचन झूठे न पड़ जायें, इस कारण पधारे हैं.

भगवद्गीता देखें तो वहां भगवान्‌ने बहुत ही मधुर शब्दोंमें एक बात कही है **"दैवी सम्पद् विमोक्षाय निबन्धाय आसुरी मता, मा शुचः सम्पदं दैवीम् अभिजातोऽसि पाण्डव!"** (भग.गीता१६।५). कितने जीव आसुरी हैं केवल इस कारणमात्रसे नहीं कि बन्धनमें फंसे हुवे हैं. भगवान्‌का उद्देश्य उनको आसुरी रखना है इस कारण वे बन्धनमें फंसे रहते हैं. इस विषयमें कोई भी अपना आत्म-मूल्यांकन भलीभांति नहीं कर सकता. क्योंकि किसे पता है कि भगवान् हमसे चाह क्या रहे हैं, बन्धन अथवा मुक्ति! भगवान् कह क्या रहे हैं कि **"दैवी सम्पद् विमोक्षाय"** अर्थात् वह दैवी हैं इसलिए मैं उन्हें मुक्ति देता हूं ऐसा नहीं है. मैंने उन्हें मुक्ति देना निश्चित किया है इस कारण उनको दैवी रोल् दिया है. जैसे सिनेमाके डाइरेक्टर्‌को किसी कॅक्टर्‌को मूविमें ज़िन्दा रखना हो वह उसे हीरोका रोल् देता है और जिसे मारना हो तो विलनका रोल् देता है, यदि पिक्चरको ट्रेजिडी नहीं पर सुखान्त बनाना चाहता हो तो.

जब भगवान्‌ने दैवी और आसुरी सम्पद्‌का वर्णन किया, तब इसके बादका श्लोक यदि देखें तो साफ दिखता है कि ऐसा विभेद प्रतिपादित करनेपर भगवान्‌को अर्जुनके चेहरेपर चिन्ताके भाव दिखने लगे : "तो फिर मेरा इसमें क्या रोल् है?" ऐसी चिन्ता जान लेनेके कारण ही भगवान् अर्जुनको कह रहे हैं **"मा शुचः सम्पदं दैवीम् अभिजातोऽसि पाण्डव!"** "तू चिन्ता मत कर, तुझे तो मैंने दैवी बनाया है". यह कहनेकी आवश्यकता भगवान्‌को इसीलिए तो लगी होगी क्योंकि उन्होंने अर्जुनके चेहरेपर आती चिन्ताको पढ़ लिया होगा. भगवद्गीताका मधुरतम वाक्य मुझे लगता है तो वह यह है. क्योंकि इससे अधिक कोई व्यक्तिगत मधुर कथन भगवान्‌ने अर्जुनको पूरी गीतामें कहीं नहीं बोला है. यह कथन तो केवल अर्जुनके लिए

ही है. बहुत करके कोई भी लेखक अथवा वक्ता कभी-कभाक ही व्यक्तिगत कथन लिखते हैं. गीतामें, परन्तु, यह वक्तव्य एकदम अर्जुनके लिए ही कहा गया है. जब कृष्ण ऐसा व्यक्तिगत कथन दे रहे हैं तो अर्जुनके लिए यह बात कॉलर् ऊंचे करने जैसी हो गयी होगी कि नहीं!

इससे थोड़ी उतरती कक्षाका एक और व्यक्तिगत कथन गीतामें भगवान्ने कहा है, जिसमें भगवान् कह रहे हैं कि "**विमृश्य एतद् अशेषेण यथा इच्छसि तथा कुरु**" (भग.गीता १८।६३). "मैंने तुझे सभी कुछ तो समझाया, अब तुझे जो करना है वह तू कर" परन्तु इसके बाद भगवान् इस अपने वक्तव्यका संशोधन कर रहे हैं कि "**सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्**", "**ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे अर्जुन! तिष्ठति भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया.**" (भग.गीता १८।६४,१८।६१) "सबसे गूढ़तम रहस्य तुझको समझा रहा हूं कि ईश्वर सबके भीतर बिराज रहा है और वह जो सबसे कराना चाह रहा है वह तो करवा ही रहा है. पर "भक्तोऽसि मे सखा च इति रहस्यं हि एतद् उत्तमम्" (भग.गीता ४।३) अर्थात् तू मेरा भक्त है और मेरा मित्र भी है. तो बात तो यहां युद्ध करना कि नहीं यह चल रही थी. इसमें यह मित्रताकी बात कहांसे आ टपकी? यह तो विषयान्तर हो गया. पर भगवान् जो कहना चाह रहे हैं वह समझो "**मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु मामेव एष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे**" (भग.गीता १८।६५) "तू मुझमें मन लगा, मेरा भक्त बन, मुझे नमस्कार कर." एक तरफ तो छूट दे रहे हैं कि तेरी जो इच्छा हो वह कर और थोड़ी देरमें यह क्या कह रहे हैं कि "नहीं तू तो मेरा अपना है इसलिए तुझे कुछ और बात समझा रहा हूं. किसी औरके लिए यह बात है ही नहीं. यह मेरे वचनको तू सत्य जान. मैं कोई झूठी प्रतिज्ञा नहीं कर रहा

हूं. तू मुझे प्राप्त कर लेगा'' ''**न मे भक्त: प्रणश्यति**''(भग.गीता ९।३१) ''अपने भक्तका विनाश मैं कभी होने नहीं देता'' यह बात समस्त भक्तोंके लिए कह कर अर्जुनपर लागू की है. देखो! कृष्ण अपने भक्तोंके बारेमें कितने चिन्तित हैं और वह भी एक युद्धक्षेत्रमें, जहां भक्तिका कोई प्रसंग ही नहीं है. प्रारम्भसे ही भगवान् अर्जुनको युद्ध करनेकी प्रेरणा दे रहे हैं पर इस सबके बीचमें यह भक्तिका प्रसंग कैसे उठ खड़ा हुआ है? इससे हम समझ सकते हैं कि यहां आ कर यह गीता 'भगवद्‌गीता' न रह कर 'अर्जुनमित्र-गीता' बन जा रही है. यहां भगवान् नहीं बोल रहे हैं, अर्जुनका मित्र बोल रहा है.

इससे हम समझ सकते हैं कि वर तो नारदजीने दिया था. उसको पूरा करना नारदजीका कर्तव्य था कि भगवान्‌का? पर कृष्णने साफ कहा है कि ''मेरे भक्तकी बात कभी मैं झूठ नहीं होने देता'' कोई बात नहीं, यदि नारदजीने वरदान दिया है, मैं उसे पूरा करूंगा.'' इस कारण भगवान् ऊलूखल घसीट कर वहां लाये ऐसा कह रहे हैं.

''**सा स्मृति: सर्वलोकप्रसिद्धा भवतु इति कृष्णस्वरूपं ज्ञातं निरूपयत:**'' नारदजीने वरदान दिया था कि ''मुक्त होनेपर तुम्हें पूर्वजन्मका स्मरण हो जायेगा'' यह सर्वलोकप्रसिद्ध हो यह इच्छा भगवान्‌की है, यमलार्जुनकी नहीं है. जैसा इनको कृष्णका स्वरूप समझाया गया था, उसका निरूपण इन्होंने प्रारम्भ किया क्योंकि ''**ज्ञानी प्रियतमो अतो मे**'' (भाग.पुरा.११।१९।३) इति वाक्यात्'' ''जो मुझे जानता है वह मुझे बहुत प्रिय है'' यह तो बहुत भयजनक कथन है. क्योंकि ''जो मुझे जानता नहीं वह मुझे प्रिय नहीं है'' ऐसी ध्वनि निकल रही है. पर भगवान्‌ने कह रखा है कि ''मुझे सभी प्रिय है''.

एक बार मैने यहां कक्षामें बुद्ध भगवान्का एक मुख दिखलाया था. उसकी एक विशेषता थी कि उसे जिस भी कोणसे देखो तो ऐसा लगता है कि वह आपको ही देख रहा है. एक ही साथ दो व्यक्ति अलग-अलग कोणसे भी देखें तो उन्हें वह अपनी तरफ ही देखता प्रतीत होगा. प्रत्येक चित्रकी अथवा मूर्तिकी अपनी गुण प्रकट करनेकी सामर्थ्य होती है. बड़ोदाके महलमें सयाजीरावकी एक पेंटिंग् ऐसी ही है कि उसे जिस ओरसे देखो तो वह उसी ओर देखती हुयी दिखलाई देती है.

भगवान्के वचन मोटे तौरपर इसी तरहके मूड्के रहते हैं कि आपको कह दिया कि "तुम्हारा हूं". तुम्हारे लिए वे तुम्हारे ही हैं पर दूसरोंको भी कह देते हैं कि "तुम्हारा हूं" और उनके लिए वे उनके भी हैं ही. किसी एकका हो कर दूसरेका न हो पाना यह लाचारी अपनी हो सकती है भगवान्की नहीं. "**ज्ञानी प्रियतमो अतो मे**" (भाग.पुरा.११।१९।३) ज्ञानीको कह दिया कि "तुम मुझे प्रिय हो" हमें लगेगा कि ज्ञानी ही प्रिय है पर यही बात वह अज्ञानीको भी कह देंगे. वह तो किसी पापीको भी कह देंगे क्योंकि वह सर्वस्वतन्त्र है **अन्यथा सर्वैव स्तुतिः विरुध्यते** ऐसा इस स्तोत्रका प्रयोजन यदि आप नहीं मानते हो तो फिर इस स्तुतिका कोई अभिप्राय रह ही नहीं जायेगा. अब हम मूल श्लोकपर आते हैं.

(कृष्णकी सर्वरूपता)

अवतरणिका :

तत्र प्रथमं पुरुषोत्तमो भवान् इति आहतुः :

श्लोक :

।। नलकूबरमणिग्रीवौ ऊचतुः ।।

कृष्ण! कृष्ण! महायोगिन्! त्वम् आद्यः पुरुषः परः ।।

व्यक्ताव्यक्तम् इदं विश्वं रूपं ते ब्रह्मणो विदुः॥२९॥

अनुवाद :

॥ नलकूबर-मणिग्रीव बोले ॥

ओ कृष्ण! ओ कृष्ण! ओ महायोगी! आप आद्य परम पुरुष हो॥

ओ विश्वरूप ब्रह्म! जगत्में अनुभूत होते व्यक्त या अव्यक्त दोनों रूपोंको धारण करनेवाले आप ही हो॥२९॥

अब इस स्तुतिमें सबसे पहेले भगवान् पुरुषोत्तम हैं ऐसा प्रतिपादित करते हैं.

पहले श्लोकमें नलकूबर-मणिग्रीवने भगवान्को 'पुरुषोत्तम' कहा है. उस पुरुषोत्तम कहनेमें क्या मापदण्ड उपयोगमें लिया है, पहला मापदण्ड कि "आप महायोगी हो" दूसरा मापदण्ड कि "आप मूलभूत हो, आद्य हो" और आद्य होनेपर भी प्रकृतिकी तरह नहीं क्योंकि प्रकृति चेतनारहित आद्य है. वैसे आप चेतनारहित आद्य नहीं हो कर, प्राथमिक चेतना हो. मानें मूलभूत तत्त्व हो, सच्चिदानन्द हो.

(आद्यः पुरुषः परः = सच्चिदानन्द)

'सत्-चिद्-आनन्द' मानें वह है, उसे अपने होनेका अहसास है और उस होनेके अहसासमें कोई सीमा नहीं है. वह अनन्त है. आनन्द है. जब भी सीमा बांधी जाती है तब दुःख प्रकट होता है. प्रत्येक दुःखका मूल, मानवकी सीमाबद्धता है. यदि देश-कालकी सीमाएं हट जायें तो दुःख ही नहीं रहेगा. सीमा कैसी? उदाहरणके लिए, आप मुझे कुछ अपशब्द कहें. तो मैं सोचूंगा कि "मैं इनको पढ़ा रहा हूँ तो भी यह मुझे अपशब्द बोल रहे हैं!" मैं अपनेमें तुम्हें नहीं देख सकता, इसी कारण वह अपशब्द मुझे लग रहे हैं. मेरी सॅल्फ्-अवेयरनेस्में तुम्हारी अवेयरनेस् यदि मुझे दिखलायी देती

हो ब्राह्मिक आयाम जैसी; किसी व्यक्तिविशेषके आयाममें नहीं, तो मुझे बुरा क्यों लगेगा. क्योंकि फिर तो तुम्हारे और मेरे बीचमें एकता है. उदाहरणके लिए मानो कि हमारा कोई परम मित्र हमको गाली दे तो क्या हम बुरा मानेंगे?

मैं जब बनारसमें पढ़ता था तो यह रहस्य मैंने वहां देखा. एक व्यक्ति इधरसे गाली देता हुआ जा रहा है और दूसरा उधरसे गाली देता हुआ आ रहा है. मैं वहां खड़ा हो जाता था कि अब दोनोंमें छुरा-चक्कू चलेंगे. पर दोनों पास आ कर गले मिल जाते थे. ऐसी-ऐसी गालियाँ कि हमको कान साफ करने पड़े. क्योंकि दो दोस्तोंके बीच थीं. इसलिए कोई बुरा नहीं मानता था. जब दो दोस्तोंको बुरा नहीं लगता तो दोस्तीसे आगे बढ़ कर जब अपनी सॅल्फ्-अवेयरनेसमें ब्राह्मिक अवेयरनेस् नज़र आती हो तो और उस ब्राह्मिक अवेयरनेस्में अपनी अवेयरनेस् दिखलाई देती हो तो बुरा लगनेका प्रश्न कैसे उठेगा?

जिसे गीतामें भगवान् एक सुन्दर वचनके द्वारा समझा रहे हैं कि **“यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं मयि पश्यति तस्य अहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति”** (भग.गीता ६।३०) “जो सबके भीतर मुझे देखता है और जो मुझमें सबको देखता है उसके लिए मैं कभी खतम नहीं होता”. क्योंकि घटनाएँ खतम होती है पर जो सर्वत्र भगवान्को देखता है और भगवान्में सबको देखता हे उसके लिए घटना खतम हो सकती है पर वह नहीं. क्योंकि हमारा होना एक देश-कालमें घटित होनेवाली घटना है पर भगवान्का होना देश-कालमें घटित होनेवाली घटना न होकर उस देश-कालमें केवल निजस्वरूपका उद्घाटन है. जैसे लहर किनारेपर आ कर समाप्त होनेसे सागर समाप्त नहीं हो जाता. वह तो लहराता रहता है. भगवान् कह रहे हैं कि “‘उसका मैं’ कभी खतम नहीं होता.” ध्यान दो शब्दपर कि

'उसका मैं' मानें वह भी रहता है और मैं भी रहता हूँ. न वह खत्म होता है और न मैं. **''आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति यो अर्जुन! सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः''**(भग.गीता ६।३२) इस प्रकार सर्वत्र दर्शन होता है. ''मैं तो हूँ ही'' पर कोई गाली दे अथवा स्तुति करे तो उसे उन दोनोंसे कोई प्रभाव नहीं पड़ता. बहुत कठिन है यह बात क्योंकि दैनिक दिनचर्यामें या व्यवहारमें ब्राह्मिक आयाम काम नहीं आता है. क्योंकि यदि तुम उसे अपने दैनिक व्यवहारमें लाओगे तो व्यवहार कर ही नहीं पाओगे. व्यवहारके लिए तुम्हारा स्वयंका आयाम ही काममें लगेगा. पर समझके लेवल् पर तुम्हें हमेशा आश्वस्त होना चाहिये कि तुम्हारी स्वयंके आयामकी कुछ भी कीमत नहीं है, तुम्हें ब्राह्मिक आयामके प्रति निश्चित होना पड़ेगा. जब हम रेलमें चढ़ रहे है तो उसमें हमारा ही निर्णय काममें आयगा कि कौन-सी ट्रेनूमें बैठेंगे. ट्रेन् हमारे कार्यक्रमके हिसाबसे नहीं चलेगी. वह तो वहीं जायगी जहाँ उसे जाना है. वहां अपना निर्णय काम नहीं आयगा बल्कि रेल्वेकी सिस्टम् काममें आयगी.

पचासके दशकमें एक मज़ाकिया गाना प्रचलित था ''*दो बोरी मटर खा गये बेदाना समझ कर. जालंधरपर उतर पड़े लुधियाना समझ कर*'' तुम कहीं भी उतर जाओ यह तो तुम्हारा निर्णय है. इसमें रेल क्या करेगी? चढ़ने-उतरनेका निर्णय आपको अपने आयामसे नियंत्रित करना चाहिये और सिस्टम् आपको निश्चित करना होगा.

इसलिए ब्राह्मिक आयाम समझनेके लिए है और व्यवहारके लिए नहीं. आपका अपना आयाम है व्यवहारार्थ है. कोई भी व्यवहार, बिना समझके अंधा होता है और कोई भी समझ, बिना व्यवहारके पंगु होती है. इसीको संस्कृतमें 'पंगु-अन्धन्याय' कहते है. 'पंगु-अन्धन्याय' एक न्याय है. अंधा चल सकता है पर उसे दिखाई नहीं देता, लंगड़ा अथवा पैर बिनाका मनुष्य देख सकता है पर चल नहीं

सकता. यदि दोनों एक-दूसरेको सहयोग दें तो दोनोंको जहाँ जाना है वहां जा सकते हैं. इसी तरह समझमें ब्राह्मिक आयामकी दृष्टि होनी चाहिये और व्यवहारमें अपना स्वयंका दृष्टिकोण होना चाहिये. यह 'पंगु-अन्धन्याय' है. इसी प्रकार पुरुष और प्रकृति में भी 'पंगु-अन्धन्याय' माननेमें आया है. प्रकृति देख नहीं सकती और पुरुष चल नहीं सकता. पुरुषको चलनेके लिए प्रकृति चाहिये और प्रकृतिको देखनेके लिए पुरुष चाहिये. दोनों जब एक-दूसरेके सहयोगी बने तो दोनों चल सकते हैं. सृष्टि प्रकट करनेकी क्रियामें, सृष्टिके पोषणकी क्रियामें, सृष्टिके लयकी क्रियामें.

('पुरुषोत्तम' प्रकृति-पुरुषसे पर)

इस श्लोकमें किन्तु "आद्यः पुरुषः परः" कहा है. क्योंकि पुरुष यदि 'पर' नहीं हो, तो यह प्रकृति पुरुषके साथ बंध जाती है. आज-कल जो कार चलाते हैं वे पहले सॅफ्टी-बॅल्ट् बांधते हैं. अब बताओ कि तुम कारसे बंधे हो कि कार तुमसे बंधी है! यदि तुम केवल ऐसा समझ रहे हो कि तुम कारसे बंधे हो तो वह केवल इसलिए क्योंकि तुम ऐसा सोच रहे हो कि यदि तुम उतरना चाहो तो तुममें वह शक्ति नहीं है कि कार तुम्हारे साथ घिसटती हुयी तुम्हारे पीछे-पीछे आ जायगी. पर मान लो कि कोई हल्की कार हो और वह तुम्हारे पीछे-पीछे आती हो बॅल्टके कारण, तो तुम्हें लगेगा कि कार तुमसे बंधी है. यह तो अपनी अशक्तिके कारण हमको ऐसा लगता है कि हम कारसे बंधे हैं. पर किसी भी स्थितिमें यह तो तय है कि दोनों एक-दूसरेसे बंधे हुये हैं, उसका नाम है 'दाम्पत्य'. कोई भी एक हाथसे कभी हस्तमिलाप नहीं होता है. जब भी हस्तमिलाप होता है तब दो हाथ बांधे जाते हैं. कोई मूर्ख पति यह समझे कि मैंने इस कन्याका हाथ पकड़ा है, अरे मूर्ख! यह क्यों नहीं कहता कि इसने भी तो तुम्हारा हाथ पकड़ा है.

मैं एक विवाह-उत्सवमें गया. वह लव्-मैरेज् थी. मुझे कहा गया कि हस्तमिलाप कराओ. मैंने कहा कि "यह तो पहलेसे ही लवमें हैं तो मेरे हस्तमिलाप करानेका औचित्य क्या है?" बोले कि "आप महाराज हो तो हस्तमिलाप तो करा ही दो." मैंने कहा "देखो हस्तमिलाप तो वह कराता है कि जिसने कन्यादानका संकल्प लिया हो. मैं तो ब्राह्मण हूँ, आशीर्वाद दे सकता हूँ कि दोनों सुखी जीवन व्यतीत करें" बोले कि "चलो जब हस्तमिलाप हो तब आप आशीर्वाद दे देना" मैं एक कौनेमें जा कर खड़ा हो गया. ध्यानमें रहे कि वह लव्-मैरेज् थी. वहाँ वह लड़केका हाथ कांप रहा था, लड़की हंस रही थी. मैंने सोचा कि अभीसे यह हाल है तो *"अल्ला जाने क्या होगा आगे!"* इसमें समझनेकी बात यह है कि जब भी हस्तमिलाप होता है तो एक हस्तसे मिलाप नहीं होता है. दोनोंके हाथ एक-दूसरेसे मिलते हैं, दोनों हाथ एक-दूसरेसे बंधते हैं. ऐसे ही प्रकृतिका हाथ पुरुषसे बंधा हुआ है और पुरुषका हाथ प्रकृतिसे बंधा हुआ है. पर कभी लड़कीका हाथ कांपता है तो कभी लड़केका! तो मिथ्याभिमान बंध जाता है कि मैंने हाथ पकड़ा है! उसी प्रकार यदि यहां ऐसा है तो भगवान्‌को 'आद्यः परः पुरुषः' न कह कर 'पुरुष' कहा होता. सांख्यमतमें मान्य अनेक पुरुषोंमेंसे भगवान् भी अन्यतम पुरुष होंगे ऐसा कोई न मान लें अतः भगवान्‌के साथ 'पर' विशेषण जोड़ा गया है. अर्थात् भगवान्‌को 'पुरुषोत्तम' कहना चाहते है.

(औपनिषदिक पुरुषोत्तमत्व)

'पुरुषोत्तम' उसे क्यों कहते हैं क्योंकि उसका हाथ कांपता नहीं है. पुरुषोत्तमका हाथ क्यों नहीं कांपता क्योंकि उसने अपने आपको ही दो भागोंमें विभक्त किया है. यह बात भी उपनिषद्‌में बहुत सुन्दर तरीकेसे समझायी गयी है कि "**सो अबिभेत् तस्माद् एकाकी बिभेति, सः ह अयम् ईक्षाञ्चक्रे यद् मद् अन्यद् न अस्ति**

कस्माद् नु बिभेमि इति, ततएव अस्य भयं वीयाय, कस्माद् हि अभेष्यत्? द्वितीयाद् वै भयं भवति, सः वै नैव रेमे तस्माद् एकाकी न रमते सः द्वितीयम् ऐच्छत्. स ह एतावान् आस, यथा स्त्रीपुमांसौ सम्परिष्वक्तौ सः इममेव आत्मानं द्वेधा अपातयत्, ततः पतिश्च पत्नी च अभवताम्'' (बृह.उप.१।४।३) वह अपने आपमें आनन्दित है, आत्माराम है. उस आनन्दके प्रकट करनेके लिए उसने सोचा कि दूसरा कोई होना चाहिये. पर जैसे ही सोचा कि दूसरा कोई होना चाहिये तो दूसरा भयका कारण बन गया. उसके बाद उसने विचार किया कि यदि यह दूसरा मेरे अलावा तो दूसरा है नहीं, तो मुझे भयका कारण क्या है? तो उसे आत्म-सन्तुष्टि हुयी कि मेरे सिवाय तो दूसरा कुछ है ही नहीं. अब यदि मुझे दूसरा चाहिये तो लाऊँ कहाँसे? उसके बाद वह दोमें विभक्त हुआ. अब यदि उसने अपने आपको दोमें विभक्त किया है तो भयका क्या कारण हो सकता है? अब दाम्पत्यमें बंधनेपर पर भी हाथ कांपेंगे नहीं.

यहाँ भयका कारण है कि हमें यह अवेयरनेस् नहीं है कि हम दोमें विभक्त हुये हैं. बाईबल, कुरान, अपने वेद-पुराण सभी ग्रन्थोंमें देख लो. अवेस्ता, जैन, बौद्ध मान्यताके बारेमें मुझे पूरी तरह निश्चय नहीं है फिरभी जैसे बाइबलमें आदमकी पसलीमेंसे ईव् पैदा की गयी. मतलब कि प्रारम्भमें तो वे दोनों एक ही थे. वही एक दोमें विभक्त हुए. हमको यह लगता है कि यह सब मिथ् है पर बॉयोलॉजिकल् सेलमें मेल्-फीमेल्का भेद नहीं है.

सॅल्युलार् लेवल्पर मेल्-फीमेल्का कोई भेद है ही नहीं पर जिस मुश्किल तरीकेसे इसकी संख्या उभर कर आती है वह देखने लायक चीज़ है. कोई एक सॅल् अपनी संरचनाको स्त्रीकी तरह उभारता है और कोई सॅल् पुरुषकी तरह. इस तरह सॅल् अपने आपको ही दो तरहके रोल्में विभक्त कर लेते हैं. इसी प्रकार स्त्री और

पुरुष कोई दो अलग इकाई नहीं है परन्तु एक ही इकाईके दो अलग चेहरे हैं. अपने यहां भी इस बातको देख सकते है कि त्रिमूर्तिमें एक चेहरा पार्वतीका है, एक शिवका है और तीसरा भैरवका है. मूर्ति एक है पर उसके चेहरे तीन है. यह इस बातका सूचक है कि मूल एक ही है पर एक खेल खेलनेके लिए, एक लीला करनेके लिए उसने दो रूप नहीं, अनेक रूप धारण किये हैं. मूल सिद्धान्तको हम सॅल्युलार् बॉयोलॉजीके आधारपर भी समझ सकते हैं, साइंस्से भी समझ सकते हैं, शास्त्रोंसे भी समझ सकते हैं और भी कई प्रकारसे समझ सकते हैं. जब वहां हमें कोई इन्कार नहीं है तो यहां भी नहीं होना चाहिये. इस बातको '**परः पुरुषः**' या '**पुरुषोत्तम**'शब्दसे कह रहे हैं.

(भगवद्गीतोक्त पुरुषोत्तमत्व)

'पुरुषोत्तम'का अर्थ गीताकी दृष्टिसे देखें. "**कृष्ण! कृष्ण! महायोगिन्! त्वम् आद्यः पुरुषः परः व्यक्ताव्यक्तम् इदं विश्वं रूपं ते ब्रह्मणो विदुः.**" इसमें पुरुषोत्तमता दिखलाई गयी थी. पुरुषोत्तमताका प्रसंग गीतामें इस प्रकारका है कि "**यस्मात् क्षरम् अतीतो अहम् अक्षरादपि च उत्तमः अतो अस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः**" (भग.गीता१५।१८) क्षर और अक्षर मानें जड़ और चेतन. समग्र सृष्टि सारी इसमें आ गयी क्षर और अक्षर कहते ही. भगवान् गीतामें यह भी कह रहे हैं कि "**मैं क्षरसे अतीत हूं और अक्षरसे भी उत्तम हूं. इसीलिए लोकवेदमें मैं पुरुषोत्तम हूं**"

अब एक बात ध्यानसे समझो कि अपने पुष्टिमार्गमें 'पुरुषोत्तम' शब्दके बारेमें बहुत सारी भ्रमणा लोगोंमें फैल रही है पर पुरुषोत्तमताका मूल सिद्धान्त गीतासे आया हुआ है. क्योंकि गीतामें पहली बार भगवान्ने इसको पृथक करके यह कहा कि एक क्षरपुरुष है, एक अक्षरपुरुष है. इस जगत्की जो संरचना है वह दो रूपमें गढ़ी गयी

है. कोई वस्तु यहां क्षर है, मानें खतम होनेवाली है और कुछ वस्तु यहां अक्षर है, मानें अविनाशी है. इसी बातको उपनिषद्में कैसे कहा गया है कि ब्रह्मके दो रूप है. **"मूर्तञ्चैव अमूर्तञ्च"** (बृह.उप.२।३।१) ब्रह्मका एक रूप मूर्त है. जैसे मेज कुर्सी ब्लॅक-बोर्ड मूर्त है. 'मूर्त' मानें जिसका रूप है. और दूसरा एक ब्रह्मका अमूर्त रूप है. अपनी भाषामें समझना हो तो हम यों समझ सकते हैं कि मोबाईल् फोन मूर्त है और नेटवर्क् अमूर्त है. दोनों मिल कर ही काम कर रहे हैं. **"मर्त्यञ्चैव अमृतञ्च"** (बृह.उप.२।३।१) 'मर्त्य' मानें मॉर्टल्, जो मर सकता है और इम्मॉर्टल् = अमर भी है. **"सच्च त्यच्च"** (बृह.उप.२।३।१) 'सत्' मानें प्रकट और 'त्यत्' मानें अप्रकट. ऐसे दो ब्रह्मके रूप हैं, जो बात उपनिषद्में कही गयी है **"द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तञ्चैव अमूर्तञ्च, मर्त्यञ्चैव अमृतञ्च स्थितञ्च यच्च सच्च त्यच्च"** (बृह.उप.२।३।१) **"अथात आदेशो 'न'इति 'न'इति"** (बृह.उप.२।३।६) यह जो दो रूप हैं, दो रूपोंको अनुलक्षित करके बादमें 'न' आदेश भी दिया गया है. देखो, यहां एक प्रकारका विरोधाभास है. ब्रह्मके ये दो रूप हैं और ब्रह्म यह नहीं है ऐसा साथमें कहा गया है.

(श्रीशंकराचार्यका "'न'इति"का अर्थ)

यह जो **"'न'इति"** कहनेमें आया है उसका शंकराचार्यने ऐसा अर्थ लिया कि जो भी कुछ मूर्त और अमूर्त, सत् और त्यत्, प्रकट और अप्रकट, जो भी कुछ दिखलाई दे रहा है ऐसी कोई भी वस्तु ब्रह्म हो नहीं सकती. उसके बाद समस्या यह खड़ी हो गयी कि फिर ब्रह्म क्या है? शंकराचार्यने स्वयं उसमें एक संशय उत्पन्न किया है कि प्रत्येक वस्तुका तुम निषेध करोगे तो अन्तमें शून्य आ जायगा. क्या उपनिषद् यह कहना चाह रहे हैं कि वह पूर्ण शून्य है! इस संशयके समाधानमें शंकराचार्य कहते हैं कि "न न, शून्य तो हो ही नहीं सकता. यह बात तर्कसंगत नहीं है.

क्योंकि कोई भी निषेध किसीके सन्दर्भमें होता है. पूरी तरहसे किसी वस्तुका निषेध या उस वस्तुको नकारना अतिशय असम्भव बात है'' ऐसा शंकराचार्यका कहना है. पूरी तरहसे नकारनेका अर्थ है कि किसी भी बातपर अपनी स्वीकृति नहीं देना. इसपर आगे शंकराचार्य कहते हैं कि पूर्ण अस्वीकृति अपने आपमें ही विरोधाभास है. क्योंकि नकार कौन रहा है, वह अपने आपको कैसे अस्वीकार कर सकता है? इस कारण पूर्ण अस्वीकृति असम्भव बात है. जब भी हम किसी बातको नकारते हैं तो वह किस प्रकार नकारते हैं, जैसे माइनस्‌की साइन्‌ हम कहां लगाते हैं कि जहां कोई फिगर हो. दो माइनस्‌ एक बराबर एक (२-१=१) अथवा दो माइनस्‌ दो बराबर ज़ीरो (२-२=०) ज़ीरो भी कब आ सकता है कि जहां दो हो जब. दोमेंसे दोको घटाओगे तब ही तो ज़ीरो आएगा. श्रीशंकराचार्य कहते हैं कि जहां कोई पॉज़िटीव्‌ फीगर्‌ न हो तब-तक उसके आगे माइनस्‌की साइन्‌ नहीं लगाई जा सकती. इस तरह पूर्ण अस्वीकृति सम्भव ही नहीं है. इसी कारण वे भगवान्‌ बुद्धके सिद्धान्तको नकार देते हैं.

भगवान्‌ बुद्ध कहते थे कि वास्तविकता पूर्ण अस्वीकृतिका एक गुणधर्म है. श्रीशंकराचार्य सही भी हो सकते हैं और गलत भी हो सकते हैं भगवान्‌ बुद्धके सिद्धान्तको अस्वीकार करनेमें. श्रीशंकराचार्य कहते हैं कि आप सभीको नहीं नकार सकते क्योंकि यदि कहीं द्विधाकरण है, मानें जैसे यह 'कुर्सी' और 'कुर्सी-नहीं' कहनेपर कुर्सी और कुर्सीके अतिरिक्त बाकी सब कुछ मानें ब्रह्माण्ड, सभी कुछ उसमें आ गया. यदि आपको डाइकोटोमी करनी है तो आप ऐसे ही कहेंगे व्हाईट्‌ और नॉट्‌-व्हाइट्‌. इस तथ्यमें आप दोनोंको ही नकार नहीं सकते. या तो व्हाईट होगा या व्हाईट्‌के अलावा होगा. उस व्हाईट्‌के अतिरिक्तमें सारा ब्रह्माण्ड आ जाता है. जैसे आप कहें कि ''यह वस्तु सफेद भी नहीं है और सफेदके अतिरिक्त

भी नहीं है.'' ऐसा कहना तो सम्भव ही नहीं है क्योंकि तर्कके अनुसार आप दोनों बातोंको नकार नहीं सकते. ऐसा सम्भव ही नहीं है. इसी तर्कको ले कर श्रीशंकराचार्य कहते हैं कि मूर्त और अमूर्त में डाइकोटोमी है. साकार और निराकार, मर्त्य और अमर्त्य में भी डाइकोटॉमी है.

सत् और त्यत् में ऊपरी तौरपर तो हमें डाइकोटॉमी नहीं दिखलाई देती है. क्योंकि यह दोनों टॅक्नीकल् टर्म् है और दोनों अलग-अलग इकाई है. 'सत्' मानें प्रकट और उसका विलोम है अप्रकट. यदि सत्को हम मॅनीफेस्टेड् मानें तो त्यत्का अर्थ अनमॅनीफेस्टेड् होगा. जैसे ही आप डाइकोटॉमीका प्रस्ताव रखते हो, तो दोनोंको साथमें नकारा नहीं जा सकता. ''अथात आदेशो 'न'इति 'न'इति''में जब यह बात नकारनेमें आती है कि न अमूर्त न मूर्त, न मर्त्य न अमर्त्य, न सत् न त्यत्, तो वहां तर्कशास्त्रके हिसाबसे विरोधाभास है. इस बातको श्रीशंकराचार्य एक समस्याके रूपमें वहां उठा रहे हैं. आगे वे कहते हैं कि इसी कारण बौद्ध-मत सही नहीं है. वे कहते हैं कि अन्तत: शेष क्या रहता है? शेष रहती है एक सत्यकी ऐसी स्थिति जो कि सभीको नकारती है. नकारनेवालेको नकारा नहीं जा सकता. कोई एक है जो इन सभी वस्तुओंको नकार रहा है, उसे नकारा नहीं जा सकता. यह रोल अदा कर रहा है तर्कदृष्टिसे उसे नकारा नहीं जा सकता. अपनी चेतनामें हमें सत्यका भास हो रहा है तो उपनिषद्ने यदि इन दोनों परिभाषाओंको नकारा गया है तो ब्रह्मको इस डाइकोटॉमीमें नहीं रखा जा सकता. लेकिन जिसको नकारा नहीं जा सकता वह है स्वयं नकारनेवाला. इसीलिए वह आगे कहते हैं कि ''अहं ब्रह्म अस्मि.'' मुझे ही यह एहसास हो रहा है कि कुछ मर्त्य है, कुछ अमर्त्य है, कुछ सत् है, कुछ त्यत् है, कुछ प्रकट है, कुछ अप्रकट है. मैं ही इस पूरी डाइकोटॉमीको नकार सकता हूँ पर मैं अपने आपको नहीं नकार

सकता. इसीलिये नकारनेवाला जो मैं हूँ, वह ब्रह्म है. यह उपनिषद्के उस वाक्यका अर्थ है.

(महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यका " 'न' इति "का अर्थ)

इस बारेमें महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य कहते हैं कि इस प्रस्तावमें कुछ गलती है "**अथात आदेशो 'न' इति 'न' इति**" यहां प्रत्येक शब्दकी पुनरावृत्ति की गयी है. जैसे मर्त्य-अमर्त्य, सत्-त्यत् और आप उन सभी डाइकोटॉमीपर नेति-नेति प्रयोग कर रहे हो! लेकिन शास्त्र स्वंय कह रहे हैं कि "**नहि एतस्माद् इति 'न' इति अन्यत् परम् अस्ति**" (बृह.उप.२।३।६) ब्रह्मको मूर्तता-अमूर्तता, मर्त्यता-अमर्त्यता, सत्-त्यद्में बंधा नहीं जा सकता क्योंकि ब्रह्म मूर्त-अमूर्त, मर्त्य-अमर्त्य, प्रकट-अप्रकट केवल इतना ही नहीं है पर इन दोनों डाइकोटॉमीसे आगे भी बहुत कुछ है.

ब्रह्म इस पूरे ब्रह्माण्डकी पूर्णतासे भी अधिक है ही, उपनिषद्का सिद्धान्त है. यह डाइकोटॉमी कि कुछ साकार है कुछ निराकार है. इन दोनों बातोंको तो नकारा नहीं जा सकता. पूर्ण ब्रह्माण्ड इन दोंनो बातोंके बीचमें आ जाता है. आप इस तर्ककी सुन्दरताको देखें कि जितनी भी सकारात्मक वस्तु हैं, वे सीमित हैं और जितनी भी नकारात्मक वस्तु हैं वे असीमित है. उदाहरणके लिए 'कुर्सी-है' और 'कुर्सी-नहीं'. आप 'कुर्सी'की परिभाषा अथवा विवरण कर सकते हैं पर 'कुर्सी-नहीं'में 'कुर्सीके अतिरिक्त'को शब्दोमें परिभाषित करना असम्भव है. इसी कारण नकारात्मक वस्तुएं असीमित है. जब हम कहते हैं कि "सीमित-असीमित" इसमें सभी कुछ आ गया.

इस उपनिषद्की व्याख्या कि "**सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः**" (गीतामाहा.४) सारे उपनिषद् गाय हैं और गीता दूध है. उपनिषदोंमें ब्रह्मके बारेमें कुल मिला कर बत्तीस विद्याऐं कही गयी है और

गीता उन सबका सार है. गीता क्या कहती है आप यहां देख सकते हैं कि "**द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरः च अक्षरएव च**" क्षर पुरुष मूर्त और सत् है और इसका अर्थ है कि अमूर्त अमर्त्य त्यत् अक्षर पुरुष है "**क्षरः सर्वाणि भूतानि**" (भग.गीता १५।१६) जो भी आप देख पा रहे हो, कल्पना कर पा रहे हो, जो प्रकट है, वह क्षर है और "**कूटस्थो 'अक्षरः' उच्यते**" (भग.गीता १५।१६) और जिस बातको आप प्रकट नहीं देख सकते अथवा जिसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते, वह अक्षर पुरुष है. एक प्रकारकी डाइकोटॉमी है क्षर-अक्षरके बीच. लेकिन ब्रह्मपर यह डाइकोटॉमीका तर्क लागू नहीं होता क्योंकि यह डाइकोटॉमी मनुष्यके मस्तिष्ककी उपज है और मनुष्यके मस्तिष्ककी कल्पना एक सीमा तक ही हो सकती है. मनुष्यके सीमित दिमागमें वह असीमितकी कल्पना भी नहीं हो सकती. यही बात गीताके इस वाक्यमें कही गयी है "**द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरः च अक्षरएव च क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थो 'अक्षरः' उच्यते**" "**यस्मात् क्षरम् अतीतो अहम् अक्षरादपि च उत्तमः अतो अस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तम.**" (भग.गीता १५।१६,१५।१८) दो पुरुष हैं क्षर और अक्षर, और मैं उन दोनोंसे उत्तम हूं. इसी कारण मैं पुरुषोत्तम हूं. यह तकनीकि अर्थ है 'पुरुषोत्तम'का.

बहुतसे वैष्णव इस झूठसे पीड़ित है कि हम वल्लभवंशज गोस्वामी पुरुषोत्तम हैं. आप स्वयं सोचिये कि क्या गोस्वामी क्षर-अक्षरसे परे हैं? पुरुषोत्तमका सही अर्थ तो गीता बता रही है.

अब यदि यह आपको समझ आ गया हो तो आपको पहले वाक्यका अभिप्राय समझ आ सकता है. नलकूबर-मणिग्रीवके पहले वाक्यके बारेमें महाप्रभुजी कह रहे हैं "**तत्र प्रथमं पुरुषोत्तम भवान् इति आह**" नलकूबर-मणिग्रीव कृष्णको 'पुरुषोत्तम' कह कर सम्बोधन कर रहे हैं. 'पुरुषोत्तम' सम्बोधनसे आप ऐसा मत सोचने लगना

कि पुरुषोत्तम वही है जो गिरिराज पर्वत धारण करता हो, रास करता हो, माखनकी चोरी करता हो, वह नटखटपना आवश्यक नहीं है. कृष्णको 'पुरुषोत्तम' इस अर्थमें कह रहे हैं "**यस्मात् क्षरम् अतीतो अहम् अक्षरादपि च उत्तमः अतो अस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः**" (भग.गीता १५।१८). निन्यानवे प्रतिशत पुष्टिमार्गीय वैष्णवोंको यह भ्रान्ति है कि वह जो नटखट है वही पुरुषोत्तम है. अरे! यह पुरुषोत्तमकी परिभाषा नहीं है. ऐसा तो कोई भी कर सकता है. मैं भी कर सकता हूं. इसमें क्या है? कोई भी नटखट क्रिया करके मैं यह दावा नहीं कर सकता हूं कि मैं पुरुषोत्तम हूं.

लोगोंको ऐसी भ्रमणा है कि कोई भी यदि कोई चमत्कार करे अथवा कोई शरारती काम करे तो वह पुरुषोत्तम है. हम किस प्रकारकी भ्रान्तिसे पीड़ित हैं! क्योंकि हम अपने महाप्रभुजीके गीता और उपनिषद् के सिद्धान्तके बारेमें नहीं जानते हैं. 'पुरुषोत्तम' एक तकनीकी शब्द है. इसी कारण उसकी परिभाषा आवश्यक है और वह परिभाषा गीतामें कही गयी है "**यस्मात् क्षरम् अतीतो अहम्**" और जब कृष्ण कह रहे हैं कि मैं पुरुषोत्तम हूं तो कृष्ण पुरुषोत्तम क्षर और अक्षर का कुलयोग ही नहीं है और भी बहुत कुछ है. क्षर और अक्षर उसका केवल एक छोटासा आयाम है. कुछ ऐसा अंश भी हो सकता है कि जो क्षर और अक्षर दोनों ही गुण प्रकट करता हो. हम उस ऐसे अंशके उदाहरण है. हमारी देह क्षर है जबकि हमारी आत्मा अक्षर है. लेकिन क्षर और अक्षर के योगसे ही पुरुषोत्तम सिद्ध नहीं होता है. इसलिए गीतामें यह भी कहा है कि "**परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् पुरुषं शाश्वतं दिव्यम् आदिदेवम् अजं विभुम्. आहुः त्वाम् ऋषयः सर्वे देवर्षिः नारदः तथा असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे**" (भग.गीता १०।१२-१३)

पहले श्लोकमें कृष्णकी पुरुषोत्तमता परब्रह्मता कही गयी है.

मुझे आशा है कि अब ये आपको समझ आ गया होगा.

अवतरणिका :

तत्र प्रथमं पुरुषोत्तमो भवान् इति आहतुः :

सुबोधिनी :

कृष्ण! कृष्ण! इति, आदरे वीप्सा. कृष्णः सदानन्दः, सएव कृष्णनामा च. उभयविधाज्ञाननिवृत्त्यर्थं वा तथा उक्तम्. आकृत्या चेष्टया च न आवयोः भ्रमः इति आहतुः महायोगिन् इति. लौकिकाअपि नानायोगचर्यायां प्रवृत्ताः हीनभावं न प्राप्नुवन्ति, कुतः पुनः निर्दोषपूर्णगुणविग्रहः? अतो नामरूपे वर्णनीये अर्थे न बाधके. आद्यः इति, मूलभूतत्वमेव महत्त्वं, सर्वैः हि स्वापेक्षया महत्त्वं ज्ञातव्यम् आद्यस्तु तथा. आद्यत्वं मतान्तरे अचेतनस्यापि सम्भवतीति तद्व्यावृत्त्यर्थम् आह पुरुषः इति. सांख्यतुल्यताम् आशंक्य आहतुः परः इति पुरुषोत्तमः इति अर्थः. निराकारपक्षनिवृत्त्यर्थं 'पुरुष'पदं, तस्मिन् पक्षे अयं विकृतो भवेदेव. परः कालादीनामपि नियन्ता.

तत्र प्रथमं पुरुषोत्तमो भवान् इति आहतुः 'कृष्ण! कृष्ण!'इति सबसे पहले वे 'कृष्ण' 'कृष्ण' ऐसा दो बार कह रहे हैं. ये कृष्णको व्यक्तिवाचक संज्ञासे सम्बोधित कर रहे हैं, ऐसा नहीं समझना चाहिये. ऐसा सम्बोधन कर कृष्णकी पुरुषोत्तमता, जिसकी परिभाषा गीतामें वर्णित है बताना चाह रहे हैं. किसी व्यक्तिवाचक संज्ञाको नहीं अपितु उस गीतोक्त पुरुषोत्तमके गुणोंका वर्णन करना चाह रहे हैं. **आदरे वीप्सा** 'वीप्सा' मानें जब किसी बातपर भार देना होता है तो उसे दो बार कहा जाता है. जैसे 'चलो चलो'. संस्कृतमें एक 'काकू' भी होता है, intonational tone कहा जाता है. ऐसी बात जो विशेष हो, जिसपर भार दिया जाना चाहिये उसे 'काकू' कहा जाता है. कई बार उपेक्षापर भार होता है, कई बार स्नेहपर भार होता

है, कई बार गाली देनेमें भी भार होता है. यहां आदरपर भार है. इस कारण 'कृष्ण' 'कृष्ण' दो बार कहनेमें आया है **कृष्णः सदानन्दः, सएव कृष्णनामा च. उभयविधाज्ञाननिवृत्त्यर्थं वा तथा उक्तम्.** कृष्णका etymological meaning देखें तो 'कृष्' मानें सत् और 'ण' मानें आनन्द होता है. इस प्रकार कृष्ण वह है जो कि सदानन्द है, ऐसा भी कहा जा सकता है. अब कृष्ण है पर सदानन्द नहीं है और सदानन्द है पर कृष्ण नहीं है, ऐसा ज्ञान अधूरा ज्ञान है. अर्थात् नाम और गुण में कोई भेद नहीं है. इस कारण ही उन्होंने वीप्सा की है. **आकृत्या चेष्टया च न आवयोः भ्रमः** 'तुम्हारी आकृति' मानें एक अबोध बालकके जैसी और 'तुम्हारी चेष्टा' मानें ऊलूखलसे यों बंधे हुए कि बंधनसे छूट नहीं पा रहा हो, ऐसा देख कर सभीको भ्रम तो होगा ही कि ये कृष्ण वास्तवमें कृष्ण है कि नहीं! **इति आहतुः 'महायोगिन्' इति. लौकिकाअपि नानायोगचर्यायां प्रवृत्ताः हीनभावं न प्राप्नुवन्ति, कुतः पुनः निर्दोषपूर्णगुणविग्रहः?** कहते हैं कि जिसे भ्रम होता है उसे होने दो पर हमें कोई भ्रम नहीं है. यह बात सूचित करनेके लिए 'महायोगी' कह रहे हैं. 'कृष्ण कृष्ण' कहनेके बाद उन्हें 'महायोगी' कहनेपर तो उनकी पदकी अवनति हो रही है, परन्तु ऐसा है नहीं. "'कृष्ण कृष्ण' होनेके बाद भी पुरुषोत्तम होनेपर भी साधारण पुरुषकी इतनी दुर्गति नहीं होती, जितनी तुम्हारी हो रही है. फिर भी आप तो महायोगी हो. सामान्य योगीको यह उचित नहीं है पर महायोगीके लिए यह उचित है".

योगी और महायोगी में अन्तर समझो. गीतामें कृष्णको बार-बार 'योगेश्वर' कहा है. भागवतमें उसे निरन्तर 'योगेश्वरेश्वर' कहा गया है. योगेश्वरोंका भी वह ईश्वर है. अर्थात् वह योगेश्वर नहीं, योगीश्वर है. 'योगेश्वर' मानें योगविद्याको भलीभांति जाननेवाला और 'योगीश्वर' मानें योगविद्याको भलीभांति जाननेवालोंका ईश्वर. इसीलिए भागवत निरन्तर उसे 'योगेश्वरेश्वर' कह रही है. उसीको वे यहां 'महायोगी'

कह कर सम्बोधित कर रहे हैं. **लौकिकाअपि नानायोगचर्यायां प्रवृत्ताः हीनभावं न प्राप्नुवन्ति** कोई लौकिक योगी भी हो और वह नित्य तुच्छ योगके द्वारा अपनी परिचर्या करता हो तो भी उसमें उसकी हीनता प्रकट नहीं होती. उदाहरणके लिए यदि योगी नग्न हो तो क्या वह भिखारी है, नहीं. यदि योगी भीख माँग रहा है तो क्या वह भूखा है, नहीं. अर्थात् जिस किसी योगीने यदि योग साध लिया हो और वह कोई निम्न स्तरका कार्य कर रहा हो तो वह योगेश्वर नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सकता. इसका कारण यह है कि किसी साधारण पुरुषके लिए अपनी क्षमतासे निम्न स्तरका कार्य उचित नहीं लगता है. पर जो योगेश्वर है उसके लिए यह कहना उचित नहीं है. जैसे राजसूय यज्ञमें कृष्णका पांडवोंके चरण धोनेमें उनके लिए कोई निम्न स्तरका कार्य नहीं था. उन्हें वह कार्य अपमानजनक नहीं लगा. क्योंकि ऐसा कार्य खराब उसे लगेगा जोकि साधारण प्रतिष्ठित व्यक्ति हो. पर कृष्ण तो ऐसा नहीं है.

आपने शायद नाम सुना होगा ऋतंभरादेवीका. वृन्दावनमें उनका बहुत बड़ा आश्रम है. कुछ समय पहले उनका बहुत प्रचार हुआ था. उनके गुरुजीने जंगलमें एक धर्म-संसद रखी. वहां जंगलमें किसी प्रकारके शौचालयकी व्यवस्था नहीं थी, इसलिए कुछ गढ्ढे कर दिये गये थे. वहां लगभग पांचसौ लोग उसमें भाग लेने आये थे. अब नित्य उनका उपयोग करनेपर भी सुबह वह गढ्ढे खाली मिलते थे. यह देख कर लोगोंको बड़ा आश्चर्य होता था. बादमें पता चला कि रातको उठ कर उनके गुरुजी वह गढ्ढे साफ कर देते थे. जो व्यक्ति सबको बुला कर इतना बड़ा आयोजन कर रहा हो वह व्यक्ति रातको यह कार्य करे, यह बात सबको अचंभित करनेवाली थी. सोची भी न जा सके ऐसी बात थी. सुबह उठ कर वही व्यक्ति सबको आशीर्वाद भी देता था. यह है योगेश्वर होनेके गुण. ऐसा काम करनेसे उसकी कोई अवनति नहीं है अपितु उनकी पदोन्नति

है. इस कारण ही वे कह रहे हैं कि यदि कृष्ण ऊलूखलसे बंधे भी हों किसी जानवरकी तरह, तो कृष्णकी यह कोई अवनति नहीं है. वह तो उनकी महानता है वे किसी हीनभावको प्राप्त नहीं हो रहे हैं. **कुतः पुनः निर्दोषपूर्णगुणविग्रहः?** जिसमें कोई दोष है ही नहीं; केवल गुण हैं, उसमें बंधनेके कारण हीनभाव कहांसे उत्पन्न होगा! ये किसी प्रकारका कोई यौगिक गुण ही है, जो वह यहां प्रकट कर रहा है.

अतो नामरूपे वर्णनीये अर्थे न बाधके इस कारण जो नाम-रूप यहां वर्णन करनेमें आ रहे हैं 'कृष्ण' कह कर अथवा 'महायोगी' कह कर, उनके अर्थमें कोई संशय उत्पन्न नहीं होता **आद्यः इति, मूलभूतत्वमेव महत्त्वं** तू आद्य है मानें मूलभूत तू ही है **सर्वैः हि स्वापेक्षया महत्त्वं ज्ञातव्यम् आद्यस्तु तथा** अब कह रहे हैं कि यदि कोई व्यक्ति महान् है तो वह किसीकी तुलनामें ही तो महान् होगा. जब-तक ये नहीं पता चलता कि किसकी तुलनामें वह महान् है तब-तक उसकी महत्ताका तो पता ही नहीं चलेगा. इसके उत्तरमें कहते हैं कि जिसका भी महत्त्व है वह कृष्णकी अपेक्षासे महत्त्व है. क्योंकि जब कृष्ण अपने ब्रह्मस्वरूपमें है तब तो वहां कोई और है ही नहीं. इसलिए यहां तुलनात्मकताकी दृष्टिसे महान् नहीं कहा जा रहा है. अपितु उसके आद्य होनेके कारण उसे 'महान्' कहा जा रहा है. महान् होनेका मापदण्ड यहांसे किया जायेगा, ऐसा कहना चाह रहे हैं **आद्यत्वं मतान्तरे अचेतनस्यापि सम्भवतीति तद्व्यावृत्त्यर्थम् आह 'पुरुषः' इति.**

अब प्रश्न यहां यह उठता है कि द्रव्य (matter) पहले था कि मन (mind)? जितने भी idealist philosopher हैं वह कहते हैं कि matter बादमें आया, मन पहलेसे था. मनको एक विचार आया द्रव्यका, वह विचार द्रव्य बन गया. Materialistic philosopher

कहते हैं कि ऐसा नहीं है Matter में कई प्रकारके संघात इस प्रकार हुए कि मनके जैसी शक्ति उनमें पैदा हो गयी. इस कारण द्रव्य आद्य है. इन दोनों वादोंके झगड़े यूरोपमें भी खूब चले और बुद्ध भगवान्के प्राकट्यके पश्चात् यहां भी खूब चले. अभी मैंने एक कक्षामें यह समझाया है कि अब साइंसने यह झगड़ा छोड़ दिया है. मॉडर्न philosophy यह बात नहीं मानती है. Whether mind is primordial or matter is primordial कौन आद्य है, matter or mind? क्योंकि प्रत्येक mind में matter के element दिखलायी दे रहे है और प्रत्येक matter में कोई mental element दिखलायी दे रहा है. ये झगड़ा अब उतना नहीं रहा है. फिर भी जो materialistic हैं जैसे कि कम्यूनिस्ट्, अभी भी ऐसा ही मानते हैं.

अभी हालहीमें जो बोज़ोन् मिला है उसका मूल नाम God particle न हो कर God-damn particle था. उस नामको छोटा करनेके लिए उसे कह दिया 'God particle'. जो नाम गालीके अर्थमें था, उसे दैविक बना दिया. ऐसा दैविक नाम रखनेके कारण जो आस्तिकवादी थे, उनको लगा कि "ओहो देखो, मिल गया God particle." अरे ऐसे कहीं God particle मिलता है लॅबमें! पर समझें नहीं तो क्या किया जाये? हर बातमें बस ताली बजाना शुरु कर देते हैं. अब इतनी बातपर कम्यूनिस्ट् कहां पीछे रहनेवाले थे! उन्होंने इतिहासकी किताब लिख डाली God-damn particle की. ये सारा पूंजीवादियोंका षडयन्त्र है कि Matter में God particle ढूंढो. इन लोगोंको यहां भी पूंजीवादियोंका षडयन्त्र दिखायी देने लगा. ये लोग कहते हैं कि मॅटर् तो आद्य है और गॉड् तो उसकी समझकी उत्पत्ति होनेके कारण बादमें आया. मॅटर्ने अपने आपको मानवीय चेतनाके रूपमें विकसित किया और उस डरपोक चेतनाने एक गॉड् होनेका विचार प्रस्तुत किया. भगवान् तो बहुत बादमें आया. इसलिए यह कहना कि कोई God particle नामकी वस्तु है, सर्वथा मिथ्या

है. बहुत ही दिलचस्प बात कही गयी है.

पर समझनेकी बात इसमें यह है कि जो नलकूबर-मणिग्रीव यहां कह रहे हैं कि न तो Matter आद्य है और न mind आद्य है. किसी भी मस्तिष्कका विश्लेषण करो तो वहां होते रासायनिक स्रावके रूपमें उसका विश्लेषण किया जा सकता है और किसी भी Matter का विश्लेषण करो तो उसका Mental concept में पूरा विश्लेषण किया जा सकता है. उदाहरणके लिए आपको थोड़ा कठिन तो लगेगा पर यदि आप idealist philosophy की तरफ ध्यान देंगे तो आपको अच्छा लगेगा. आप इस मेजको देखिये और बताइये कि इस मेजका mental existence है कि material existence है? आप सभीका उत्तर होगा material existence. पर idealistic philosophy के हिसाबसे यह सही नहीं है. वे कहते हैं कि क्योंकि आपका mind उस सूक्ष्म कणोंका अनुभव नहीं कर सकता जिनसे इस मेजका निर्माण किया गया है. आपमें इस समझकी कमीके कारण आपकी अज्ञानता प्राथमिक भूमिका निभा रही है, बजाय आपके ज्ञानके. आप इसको मेज इस कारण कह रहे हैं क्योंकि आपने इसका अनुमान नहीं किया है. यह तो आपके आनेसे पहले भी था और आपके जानेके बाद भी रहेगा. इसलिए आप कह रहे हो कि यह मेजका material existence है. पर इसके ऐसा न होनेका कारण समझो कि जिन अणुओंसे यह बना है, उनको तो आप देख नहीं पा रहे हो. क्योंकि आपके मस्तिष्कमें माइक्रोस्कोपिक् समझ तो है नहीं. यदि ऐसा होता तो यह मेज आपको अणुओंसे गठित यूनिवर्स् दिखलाई देता. ये नहीं दिखायी देता, इस कारण आपमें एक अज्ञान पैदा हो रहा है. जिसके कारण आप इसे मेज समझ रहे हो.

आपको लगेगा कि यह तो idealist की हठ है, जिसके कारण वह ऐसा साबित करना चाह रहे हैं. मैं आपसे एक प्रश्न

करता हूं. यह मेज ठोस है कि नहीं? आपको लगेगा कि यह ठोस है पर दीमकको तो यह ठोस नहीं लगेगा. एक्स-रेके लिए ध्वनिकी तरंगोके लिए भी यह ठोस नहीं है. आप इसके आर-पार नहीं देख सकते. इस कारण यह आपको ठोस लगती है. यहां आपके अज्ञानके कारण ही यह आपको ठोस लगती है. इसी प्रकार material existence और mental existence के बारेमें विचार बहुत पेचीदा विषय है. कौन इनमेंसे आद्य है, यह कहना बहुत कठिन है.

आद्यत्वं मतान्तरे अचेतनस्यापि सम्भवतीति तद्व्यावृत्त्यर्थम् आह 'पुरुषः' इति. वे कह रहे हैं कि आद्य होनेके विषयमें मतान्तर है. कोई matter को आद्य मान रहा है तो काई mindको आद्य मान रहा है. वह ऐसा न समझ लें इसलिए कह रहे हैं कि 'पुरुषः'matter में रही हुयी primordial consciousness चेतना तू है **सांख्यतुल्यताम् आशंक्य आहतुः 'परः' इति पुरुषोत्तमः इति अर्थः** पर अपनी चेतना अपने शरीरके matterमें ही तो घिरी हुयी है. ऐसा फिर कृष्णके साथ भी होगा. यह बात हम 'सांख्यतुल्य' गलत ना समझ जायें उसके लिए कह रहे हैं कि **"परः इति"** वह कोई साधारण व्यक्ति नहीं है पर है, 'परः पुरुषः' पुरुषोत्तम है. देखो, एक-एक विशेषणका महाप्रभुजी कितना विचार करते हैं!

निराकारपक्षनिवृत्त्यर्थं 'पुरुष'पदं जैसे शांकर कहते हैं कि कोई चेतना ऐसी भी तो हो सकती है कि जो निराकार हो, उसकी निवृत्तिके लिए कहते हैं कि वह 'पुरुष' है मानें साकार है. उसका अपना कोई आकार है. यह धर्मशास्त्रोंमें बहुत वादका विषय रहा है कि ईश्वर साकार है कि निराकार है?Whether God is person or imperson, anthropomorphic or non-anthropomorphic. इस्लाममें वह निराकार है, ईसाई धर्ममें वह तीन आकार लिए हुए है, शांकरोंमें

वह निराकार है, वैष्णव-शैव-शाक्त धर्मोंमें वह साकार है. महाप्रभुजीके मतमें वह साकार भी है और निराकार भी, उसमें दोनों गुण हैं. वह ऐसा निराकार नहीं है कि जिसका कोई व्यक्तित्व न हो और उसका व्यक्तित्व ऐसा नहीं है कि जो व्यापक न हो सकता हो. उसका उदाहरण वे देते हैं कि जैसे सूर्य एक गोला है पर उसका गुरुत्वाकर्षण अब्जों मील तक फैला रहता है. उस गुरुत्वाकर्षणमें उसकी व्यापकता है और उस गोलेमें उसका व्यक्तित्व है.

तस्मिन् पक्षे अयं विकृतो भवेदेव. परः कालादिनामपि नियन्ता यदि उसे निराकार चेतना मानो तो जो आकार कृष्णका दिखायी दे रहा है वह तो अविकारी नहीं हो सकता, विकारी ही होगा. जैसे हम जो सांस ले रहे हैं उसका इस वातावरणमें कोई आकार प्रकट नहीं हो रहा है. निराकार वायुकी सांस हम ले रहे हैं पर ठंडे प्रदेशोंमें यदि हम सांस रोक कर रखें, तो सांसकी वायुमें रही हुयी नमी जम कर हमारी मूछोंपर बरफका एक आकार ले लेती है. वही बाष्प निराकार भी है और आकार भी ले रही है. अन्तर केवल इतना ही है कि एक वातावरणमें वह निराकार है और दूसरे वातावरणमें वह आकार ले रही है. इसी तरह कृष्ण भी निराकार भी है और साकार भी है. दोनों रूप ले सकता है,

जैसे ज्ञानेश्वरी है गीतापर वैसे ही पण्डित वामनजीकी ‘यथार्थदीपिका’नामिका गीतापर एक पढ़ने योग्य टीका है. यहां महाराष्ट्रमें ज्ञानेश्वरी जितनी प्रचलित है उतनी यथार्थदीपिका नहीं है पर उसमें कई बातें हृदयस्पर्शी हैं. उसमें एक जगह वामनजीने कहा है *“घृत थीजले कि विथुरले पण घृतपण नाहीं मूकले तैसे परब्रह्म संचले श्रीकृष्ण”* घी पिघला हो अथवा जमा हुआ हो पर दोनों स्थितिमें वह घी तो रहेगा ही. वैसे ही परब्रह्म श्रीकृष्ण जब व्यापक बन जाता है तो वह परब्रह्म हो जाता है और परब्रह्म जब आकार

ले लेता है तो कृष्ण बन जाता है. इसमें यह बात समझनी चाहिये कि जो निराकार और साकार के विभाग हमने अपनी समझके लिए किये है. ये अच्छे हो सकते हैं. क्योंकि ये विरोधाभासी हैं पर ऐसे विरोध ब्रह्ममें नहीं हैं. इस कारण उसे विकृत माननेका कोई औचित्य नहीं है.

पर: कालादिनामपि नियन्ता वह विकृत हो कैसे सकता है? क्योंकि विकार तो कालके कारण आता है और ये तो कालका नियन्ता है. 'विकृत' मानें product और प्रकृति मानें substance जैसे दूध substance है और दही product है. कृष्ण तो कोई product है नहीं. ये तो substance है और जो विकृति हो रही है वह तो कालमें हो रही है, कृष्ण तो कालातीत है.

<u>सुबोधिनी</u> :

एवं भगवतो मूलरूपत्वं निरूप्य कार्यरूपाभावे मूलरूपत्वं न उपपद्यतइति कार्यस्य च अन्यथात्वे तस्य गौणत्वम् अविकृतत्वम् असंगित्वं च विरुध्यतइति कार्यरूपमपि त्वमेव इति आहतुः व्यक्ताव्यक्तम् इदम् इति. इदं सर्वमेव जगद् द्विरूपमेव भवति. कालेन अपरिगृहीतम् अव्यक्तं भवति. परिगृहीतं व्यक्तं भवति. आकाशपरमाण्वादीनामपि व्यक्तता इति केचित्. तदा सर्वमेव जगत् कालादितृणस्तम्बान्तं व्यक्तम् अव्यक्तं च भवति. अवयुत्या अनुवादो वा. उभयथापि इदं जगत् तवैव रूपम्. अत्र प्रमाणम् आहतुः ब्रह्मणो विदुः इति, ब्रह्मणो वेदाद्, ब्राह्मणाः इति वा. ते ब्रह्मणः इति वा. तदा सर्वाएव श्रुतयः प्रमाणम् इति उक्तम् भवति. रूपम् इति स्वरूपं निरूपकं वा.

एवं भगवतो मूलरूपत्वं निरूप्य कार्यरूपाभावे मूलरूपत्वं न उपपद्यतइति कार्यस्य च अन्यथात्वे तस्य गौणत्वम् अविकृतत्वम् असंगित्वं च विरुध्यतइति कार्यरूपमपि त्वमेव इति आहतुः ऐसे भगवान्‌का मूलरूप तो यहां बताया

पर मूल तो सापेक्ष शब्द है क्योंकि मूलका कोई थड़ होना चाहिये, कोई डाल पत्ता फल होना चाहिये, तभी तो वह 'मूल' कहलायेगा. वह किसका मूल है उसका अब निरूपण कर रहे हैं **व्यक्ताव्यक्तम् इदम् इति** चाहे तो व्यक्त (manifested) हो अथवा अव्यक्त (unmanifested) हो. जैसे बाष्प अपनी आंखके सामने व्यक्त नहीं है पर ठंडे प्रदेशमें जानेपर वही बाष्प बर्फके रूपमें हमें दिखायी देने लगती है. नई मशीनोंका आविष्कार हुआ है इनमें फेफड़ोंमें हवा भरे अथवा छूटे उसका फोटो लिया जा सकता है. मॅग्नेटिक् रेझोनेन्स्के द्वारा हमारी आंखके सामने जो हवा अव्यक्त है. वह उस मशीनके सामने व्यक्त है. इसलिए व्यक्त और अव्यक्त सापेक्ष शब्द हैं. वह कब और किसके लिए अव्यक्त है, कब और किसके लिए व्यक्त है. जैसे कोई यहांसे निकला हो तो उसकी गन्ध अपने लिए अव्यक्त है पर कई जानवरोंके लिए व्यक्त है. किसी भी अनुभवमें कुछ वस्तुएं अव्यक्त रहती हैं और वही वस्तुएं दूसरे समयके अनुभवमें व्यक्त हो सकती हैं. इसको temporal (कालिक) और empirical (आनुभविक) भी कहा जा सकता है. इससे सिद्ध होता है कि व्यक्त और अव्यक्त Absolute quality नहीं हैं relative quality हैं.

इसलिए यह निश्चित है कि जगत्में कोई वस्तु अव्यक्त है और कोई वस्तु व्यक्त, पर इन दोनोंमें पूर्ण प्रभेद मत मान लेना. हमको लगता है कि जो अव्यक्त है वह व्यक्त नहीं हो सकता और जो व्यक्त है वह अव्यक्त नहीं हो सकता, पर ऐसा है नहीं. इसको हमेशा temporal और empirical reference में लेना चाहिये. पूर्ण रूपमें कुछ भी व्यक्त अथवा अव्यक्त हो ही नहीं सकता. संक्षेपमें ये सारा जगत् व्यक्त-अव्यक्तसे गढ़ा हुआ है और वह दोनों तेरे ही रूप हैं. ऐसा वे कहना चाह रहे हैं.

'इदं' सर्वमेव जगद् द्विरूपमेव भवति. कालेन अपरिगृहीतम् अव्यक्तं भवति. परिगृहीतं व्यक्तं भवति. किसी कालमें कोई वस्तु व्यक्त हो जाती है और किसी कालमें वही वस्तु अव्यक्त हो जाती है. **आकाशपरमाण्वादीनामपि व्यक्तता इति केचित्** कुछ लोग ऐसा भी मानते हैं कि आकाश और परमाणुओं की भी व्यक्तता है. अर्थात् परमाणु और आकाश भी हमारे नहीं तो किसीके समक्ष अपनी व्यक्तता प्रकट कर भी देते हैं. **तदा सर्वमेव जगत् कालादितृणस्तम्बान्तं व्यक्तम् अव्यक्तं च भवति** इस कारण कालसे ले कर घासके तृण जितना पूरा जगत् व्यक्त और अव्यक्त दोनों है **अवयुत्या अनुवादो वा. उभयथापि इदं जगत् तवैव रूपम्** व्यक्त हो अथवा अव्यक्त पर अन्तमें तो है तेरा रूप ही. **अत्र प्रमाणम्** आहतुः **ब्रह्मणो विदुः इति, ब्रह्मणो वेदाद्, ब्रह्मणाः इति वा. ते ब्रह्मणः इति वा. तदा सर्वाएव श्रुतयः प्रमाणम् इति उक्तं भवति. रूपम् इति स्वरूपं निरूपकं वा** इस विषयमें प्रमाण दिखलाते हैं **'ब्रह्म'** शब्दका अर्थ वेद लेना अथवा उसे जाननेवाला ब्राह्मण लेना. अथवा तो "आप ब्रह्म हो" ऐसा ही कहना चाहते हैं. ऐसा कहे जानेपर सभी श्रुतिवचन प्रमाणतया प्रस्तावित हो सकते हैं. रूप यानि स्वरूप अथवा निरूपक. मानें "हम जो बात कह रहे हैं वह इस अर्थमें विश्वास करने योग्य है? क्योंकि वेद और वेद पढ़नेवाले ब्राह्मण तेरा उसी तरह वर्णन करते हैं कि व्यक्त अव्यक्त सभी तू ही है".

(श्लोक-२, मूलश्लोक-३०)
(आधिदैविक प्रकारसे भी कृष्णकी सर्वरूपता)

एवं सर्वरूपत्वं भगवतो निरूप्य आधिदैविकप्रकारेणापि सर्वरूपत्वम् आहतुः इस तरह मौलिक सर्वरूपताका वर्णन किया. अब आधिदैविक सर्वरूपताका वर्णन आ रहा है.

एवं सर्वरूपत्वं भगवतो निरूप्य आधिदैविकप्रकारेणापि सर्वरूपत्वम्. मूलमें दो रूप है मानें ज्ञान-ज्ञेय, भोक्ता-भोग्य, अर्थ-शब्द, पति-पत्नीके

रूपमें कहें, या प्रकृति-पुरुषके रूपमें कहें, जैसे भी कहें. जिसमेंसे यह अनेकता प्रकट हो रही है, वह सारी अनेकता यदि इन दो रूपोंसे प्रकट हो रही हैं, ये सब वे दो ही हैं. उनके बादमें आनेवाली सारी वस्तुएं वही हैं, यह कहनेमें अब कोई संशय रह नहीं गया. उदाहरणके लिए समझो कि जब कोई स्पर्म्-सेल् ओवम्में जाता है तो क्या उसमें आंख नाक कान दांत पैर ये सब होते हैं? कुछ भी नहीं होता पर विकसित होनेपर नाखून दांत नाक कान सभी अंग प्रकट हो जाते हैं. यहां तक कि हड्डी भी नहीं होती हैं. वह भी प्रकट हो जाती है. तो जो कुछ भी वहां हो रहा है वह सॅल्युलार् विकास है. क्या हम उसको इन्कार कर सकते हैं? यदि हम अपने शरीरके विकासकी ओर ही देखें तो ही हमें पता चलेगा कि हर अंगका अपना एक अलग गुण है. हड्डीका रक्तका मॉसका बालोंका इन सबके अलग-अलग गुण हैं. बाल और नाखूनों का गुण जड़ता लिये हुए हैं. काटें तो दु:खते नहीं है पर बढ़ते सचेतन तत्त्वकी तरह. आंख-नाक-कानमें कुछ थोड़ा भी चुभे तो दर्द होता है, पर इन्हें काटनेपर भी नहीं होता. एतावता क्या इन्हें स्पर्म-ऑवमूका विकासित रूप नहीं माननां? एक सेल्ने अपने आपको कितने अधिक रूपोंमें विभक्त किया है! बालोंके लेवल्तक यह विभाजन एकका है. यह समझ नहीं आता पर विकास हुआ कहांसे हैं, एक सेल्मेंसे हुआ है. उसी प्रकार जो प्रकृति और पुरुष यदि परमात्माके लिए हुए दो रूप हों तो प्रकृति-पुरुषके संयोगसे जो कुछ भी सृष्टिका विकास हुआ है वह सर्वरूप परमात्मा है.

और एक बात समझनी जरूरी है कि सर्वरूपताके अन्यथा व्याख्यानके बहुत सारे मॉडल् है. एक मॉडल् यह है कि सारी अनेकता एक अधिष्ठानके ऊपर एक भ्रमकी (इल्युज़न्की) तरह दिखलाई दे रही है. सचमें वह भगवद्रूप नहीं अत: भगवान् सर्वरूप नहीं है. सर्वरूपताका उसमें इल्युजन् हो रहा है. सर्वरूपताका दूसरा मॉडल्

यह है कि सचमें भगवान् सर्वरूप नहीं हुए हैं. सर्वके अन्दर रहनेके कारण हमको ऐसी भ्रमणा होती है कि वह सर्वरूप है.

पुराने जमानेके यूरोपमें एक मैज़िनो लाइन् थी. उसके ऊपर एक गढ़ था. वह गढ़ ईस्ट-यूरोप और वॅस्ट-यूरोप के बीचमें था. एक बार ऐसा हुआ कि प्लेगके कारण उस गढ़में रहनेवाले सारे सैनिक मारे गये. यह बात बाजूके देशको पता चली. तो उस प्रदेशके राजाने सोचा कि यह ठीक समय है उस गढ़को पराजित करनेका. उसे अपने अधिकारमें ले लेना चाहा. उस गढ़में एक सैनिक किसी प्रकार बच गया था. उसने सोचा कि "जब तक मैं जिंदा हूँ तब तक तो किसीको इस गढ़पर अधिकार नहीं करने दूँगा". उसने सारे मरे हुए सैनिकोकी बंदूक ले कर गढ़के चारों तरफके मोखलोंमें रख दी. जब दूसरे देशकी सेना वहां लड़ने पहुंची तो दौड़-दौड़ कर सब तरफसे उसने वे बंदूकें दागनी आरम्भ कर दी. बाहर जो सेना आयी थी उन्होंने सोचा कि प्लेगके पश्चात् भी अंदर न जाने कितने सैनिक बचे हुए हैं, जो अंदर सब ओरसे फाइरिंग् कर रहे हैं! उन्होंने सफेद झंडा लहरा दिया दिया. तब उस एकमात्र सैनिकने सुलहका संदेश भेजा कि "हमारी सेना यहांसे बाहर निकले और आप छेड़ो नहीं तो हमारी दोस्ती है." बाहरकी सेनाने भी "हाँ" कह दिया. मगर अन्दरसे तो केवल एक ही सैनिक निकला. बाहरवालोंको तो ऐसा ही लग रहा था कि न जाने कितने सैनिक निकलेंगे असलमें तो वह एक ही था. बाहरवालोंको तो पता ही नहीं चल सका कि अंदर कितने सैनिक हैं! एक सैनिकने एक हजार सैनिकोंके ऊपर विजय प्राप्त की. इसी प्रकार भगवान् भी एक ही है. फाइरिंग् करनेवाला जो अलग-अलग रूपोंको धारण कर फाइरिंग कर रहा है, अपनी एकताको छिपा कर. हमको लगता है कि यह सब काल कर्म स्वभाव प्रकृति पुरुष देव दानव मानव वनस्पति जलचर भूचर आदि पता नहीं कितने रूपोंसे वह एक अनेकताके साथ लड़ाई

कर रहा है! यूरोपके इतिहासका मैझिनो लाइनका प्रसंग बहुत रुचिकर है. सर्वेश्वरके भी अलग-अलग कई रूप क्यों नहीं हो सकते?

जैसे भगवान् गीतामें आज्ञा कर रहे हैं कि "यस्मात् क्षरम् अतीतो अहम्" (भग.गीता १५।१८). इस बातसे द्वैतवादीयोंके मनमें यह बात उठनी बहुत स्वाभाविक है कि "भगवान् इस ब्रह्माण्डसे ऊपर है." यह बात सभी सॅमेटिक् धर्मोंमें भी बहुत प्रचलित है फिर भी क्रिश्चिन् और इस्लाम में झगड़ा है. मुसलमान मानते हैं कि क्राइस्ट् चमत्कारी था. उसे पैगम्बर भी मानते हैं. क्रिश्चनोंके त्रिमूर्तिक सिद्धान्तको; होली फादर् होली सन् और होली घोस्ट्, इसमें होली सन्को मुसलमान नहीं मानते. उनका कहना है कि भगवान् धरतीपर नहीं आ सकता. क्रिश्चनोंका कहना है कि वह क्राइस्ट्के रूपमें क्यों नहीं आ सकता? बस, झगड़ेका मूल विषय यह है. बाकी तो सभी कुछ लक्षण है, पर बीमारी यह ही है. क्रिश्चनोंका कहना है कि क्राइस्ट् भगवान्के तीन पहलुका एक पहलु है. मुलसमानोंका कहना है कि जब तुम ऐसा कहते हो तो तुम भगवान्की गरिमाको नीचा दिखा रहे हो. इसलिए कुरानमें अल्लाह या मोहम्मदसाहब जिसने भी कही हो, पर एक ऐसा वाक्य है कि *"कुलहुवल्लाहु अहद्, अल्लाहुस्समद. लम् यलिद् व लम् युलद. व लम् यकुल्लहू कुफुअन अहद्?"* अल्लाह एक है और केवल वह ही है. न वह किसीका बेटा है और न उसका कोई बेटा है. देखो, सीधा क्रिश्चन सिद्धान्तपर प्रहार है. क्रिश्चन् कहते है कि क्राइस्ट् होली-सन् है और मुसलमान कहते है कि कुबुल रखो कि अल्लाह एक है और उसके दैवीपनमें किसीकी भी हिस्सेदारी नहीं हो सकती. आगे वह कहते है *"अउजू बिल्लाहि मिनिश् शैत्वानिर्रजिम्"* उस शैतानसे हमको बचाओ. बहुत ही विचित्र बात कहते हैं कि भगवान्ने इस जगत्की रचना की है पर वह इस जगत्में आ नहीं सकता. अतः जो ऐसे कुफ्रके लिये हमें बहकता हो ऐसे शैतानसे बचावो. वह केवल अपने मसीहा

या पैगम्बर भेज सकता है आ नहीं सकता. यहां इस मुद्देपर दोनों धर्मोंमें बहुत बड़े विवाद हो गये. वैसे देखें तो जो कुरानमें कहा है वह बाइबलमें कहा हुवा था जो बाइबलमें कहा है वह ही कुरानमें कहा है. कोई दूसरी बात नहीं कही गयी है. यह एक अलग बात है कि क्राइस्ट् अल्लाहका मॅसेंजर् था. झगड़ा इतना है कि तुम उसे भगवान्‌का बेटा कैसे कह सकते हो! न तो वह किसीकी औलाद है और न उसकी कोई औलाद है. उनका ऐसा सोचना है कि औलाद पैदा करनी यह तो मनुष्योंकी हैवानियतकी निशानी है. अल्लाह औलाद पैदा नहीं करता, केवल जगत् पैदा करता है. औलाद पैदा करे तो उस औलादमें उसके गुण तो आयेंगे ही. इसी कारण उन्हें यह मंजूर नहीं है. वे पुरुषोत्तम तो मान रहे हैं पर क्षर-अक्षरको भगवान्‌का हिस्सा माननेको तैयार नहीं हैं.

अर्थात् कुछ लोगोंके मतमें पुरुषोत्तमके होनेका सिद्धान्त तो मान्य हे पर क्षर-अक्षरमें वह विश्वास नहीं रखते. जैसे कि श्रीशंकराचार्यके लिए क्षर-अक्षर दोनों ही एक इल्युजन् (माया) है, पुरुषोत्तम उस मायासे ऊपर है. यहाँ श्रीवल्लभाचार्यका सिद्धान्त अपने आपमें एकदम अनूठा है. वे कहते हैं कि आप क्षर-अक्षरको जोड़ दो. उनके योगसे जो कुछ भी आयेगा वह पुरुषोत्तमका एक अंश होगा. पूर्ण होनेके हैसियतके कारण वह क्षर-अक्षरके योगसे कई गुना अधिक है. उस अर्थमें ब्रह्म पुरुषोत्तम है.

नलकूबर-मणिग्रीव क्या कहते हैं **सर्वरूपत्वं भगवतो निरूप्य.** हम उसको सर्वरूप मानते हैं. 'सर्व' मानें क्षर और अक्षर. 'सर्वरूप' मानें क्षर अक्षर उसीके लिए हुये दो रूप हैं. वह स्वयं, जिसे उपनिषद् कहता है कि "**द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तञ्चैव अमूर्तञ्च मर्त्यञ्च अमर्त्यञ्च...**" ब्रह्मके दो रूप हैं. मर्त्य-अमर्त्य, सत्-त्यत् इसको तुम क्षर-अक्षर भी कह सकते हो. इस प्रकारसे वह सर्वातीत भी

है और सर्वरूप भी है. अब जो सर्वातीत है वह सर्वरूप नहीं हो सकता और जो सर्वरूप है वह सर्वातीत नहीं हो सकता.

यहां तर्ककी दृष्टिसे एक विरोधाभास है. यह पुरुषोत्तमके साथ ही है ऐसा नहीं है. कोई भी अंश और अंशी का संबन्ध इसी प्रकारका होता है. आप अपनी सॅल्फ्-अवेयरनेस् (आत्म-चेतना)को अपने शरीरके हर अंगके रूपमें भी देख सकते हो और उसे सभी अंगो तक ही सीमित न रख कर, उससे कहीं अधिक भी देख सकते हो. क्योंकि अपनी सॅल्फ्-अवेयरनेस् अपनी सभी क्रियाओं, अपने सारे अंगोका प्रतिनिधित्व तो करती ही है पर उससे ऊपर उठ कर और भी कुछ है. जहाँ भी अंश और अंशी का संबन्ध दर्शाना होता है वहाँ यह मॉडल् ही काममें आता है. वह सर्वरूप भी है और सर्वातीत भी है. इस कारण **सर्वरूपत्वं भगवतो निरूप्य आधिदैविकप्रकारेणापि सर्वरूपत्वम्** यह आधिदैविक रूपसे सर्वरूप है. फिरसे कुछ विरोधाभास आ रहा है क्योंकि हर समय अपने मस्तिष्ककी जो आदत है वह ऐसी है कि यदि किसीने कह दिया कि पुरुषोत्तम सर्वरूप है तो सर्वरूपतासे हम समझते हैं कि क्षर और अक्षर सभी रूप पुरुषोत्तमके हैं. बात तो ठीक है पर क्षर-अक्षरकी जैसे फेसवॅल्यु है ऐसे ही कुछ ॲसेन्शियल्-वॅल्यु भी तो कुछ होगी. क्योंकि फेसवॅल्युपर क्षर-अक्षर क्या है यह एक पहलु, और उसकी ॲसेन्शियल्-वॅल्यु क्या है वह दूसरा पहलु. उसकी ॲसेन्शियल् वॅल्यु अपने सामने प्रकट नहीं होती है. एक उदाहरणसे आप इसको समझ पायेंगे. आपके मोबाईल्में नेटवर्क्का एक साईन् आता है. कभी वह अप है कभी डाऊन् है. पर क्या आप कह सकते है कि वह साइन् इंटनेरट है? वह तो केवल एक चिन्ह है जो कि आपका मोबाइल् दिखा रहा है. यह आवश्यक नहीं है कि वह ही नेटवर्क् हो. आप कोई दूसरी डिज़ाईन् मोबाईल्में डाल दो तो वह उस तरह दीखने लगेगा. ऐसे चिन्हका केवल होना नेटवर्क्के होनेका प्रमाण नहीं है.

वह तो उन चिन्होंसे ऊपर है. अपने आपको ऐसे चिन्होंके रूपमें प्रकट करनेपर भी नेटवर्क् उसीमें सीमित नहीं है. यह चिन्ह तो आपके मोबाईल्से भी बहुत छोटा है. असलमें तो वह तुम्हारे मोबाईल्में एक अन्तर्यामीकी तरह काम कर रहा है. एक अन्तर्यामीके रूपमें उसकी यह साइन् है. अब आपको यह भेद समझ आ गया होगा कि वर्ल्ड-वाइड्-इन्टरनेट् और आपके मोबाईल्में दिखनेवाले इन्टरनेट्में क्या भेद है! वह आपके मोबाईल्के एक छोटेसे कॉर्नर्में है, जो कि एक कंपन करता हुआ साइन् है. वह लगातार आपको यह एहसास कराता रहता है कि वह नेटवर्क मोबाईल्में है और अन्दरसे मोबाईल्को कंट्रोल् कर रहा है.

जो सर्वरूप होते हुए भी सर्वके अंदर एक नियन्त्रणकर्ताके रूपमें मौजूद हो, उसे अपने यहां 'अन्तर्यामी' कहा गया है. वह भी ब्रह्मका एक पहलु है अन्तर्यामी होनेका. ब्रह्मका पहलु परब्रह्मसे थोड़ा इस अर्थमें भिन्न है कि वह एक छोटे क्षेत्रमें काम कर रहा है. अपना ध्यान मोबाईल् नेटवर्क्पर तब ही जाता है कि जब मोबाईल् काम करना बंद कर देता है. तब हम ढूंढते हैं कि नेटवर्क् यहां नहीं मिल रहा है. इसी प्रकार प्रत्येक क्षर और अक्षर में जो अन्तर्यामी मौजूद है उसे कोई देखना नहीं चाहता. और देखना चाहें या न चाहें, नलकूबर-मणिग्रीव उसे देख रहे हैं. इसी कारण वे कह रहे हैं कि त्वम् एकः **सर्वभूतानां देहास्वात्मेन्द्रियेश्वरः. त्वमेव कालो भगवान् विष्णुर् अव्ययः ईश्वरः** प्रत्येक भूतमें देह आत्मा इन्द्रिय ईश्वर और कालरूप से तू ही एक अव्यय विष्णु काम कर रहा है. यह इन्होंने पुरुषोत्तम होते हुए भी एक उसका अन्तर्यामी होनेका स्वरूप समझाया.

वह सर्वरूप परमात्मा है यह बात दूसरे श्लोकमें समझा रहे हैं.

त्वम् एकः सर्वभूतानां देहास्वात्मेन्द्रियेश्वरः ॥
त्वमेव कालो भगवान् विष्णुर् अव्ययः ईश्वरः ॥३०॥

अनुवाद :

आप अकेले ही सभी प्राणिओंके देह निजात्मा इन्द्रिय और उनके ईश्वर भी हो॥

आप ही काल भगवान् विष्णु अव्यय ईश्वर भी हो॥३०॥

"सभी भूतोंकी देह भी तू है, प्राण भी तू है, आत्मा भी तू है, इन्द्रिय भी तू ही है और सभी भूतोंका ईश्वर भी तू ही है." "**त्वमेव कालो भगवान् विष्णुर् अव्ययः ईश्वरः**" आज हमको यह बात समझ नहीं आती कि जो एक सेल् विकास होनेपर इतना बड़ा रूप ले लेता है! इतने अधिक रूप नाक-कान-हाथ आदिके ले लेता है, इतने विकासके बाद भी हमको यह पता नहीं चलता कि इसमें कोई ईश्वर है कि नहीं. पर एक बात ध्यानसे समझो कि किसी भी एक सेल्को शरीरमेंसे ले कर वापस इन्-विट्रो-फर्टीलाइज् करें तो फिर रि-प्रोडक्शन् होता है कि नहीं? प्रत्येक सेल्में आगेकी वस्तुओंको नियन्त्रण करनेके लिए एक ईश्वर है कि नहीं? उसको नियन्त्रित करनेके गुण यदि उसमें नहीं है तो अपनी नाकमेंसे किसी दिन हाथीकी सूंड़ पैदा हो जानी चाहिये. सिरमेंसे सींग उग जाने चाहिये. क्यों नहीं उगते क्योंकि वह सेल् एक प्रोग्राम्के तहत अपने इस विकासको ईश्वरके रूपमें नियन्त्रित कर रहा है. उस सेल्में नियन्त्रण करनेकी शक्ति है. उसी प्रकार ईश्वर, देह भी है आत्मा भी है इन्द्रिय भी है. और इतना होनेपर भी उसकी ईश्वरता समाप्त नहीं हो जाती, जैसे सेल्की समाप्त नहीं होती. सेल् भी ईश्वरकी तरह कायम रहता है, पूरे सिस्टम्को नियन्त्रित करता है.

आजके ही अखबारमें छपा है कि अमिताभ बच्चनने अपने स्कूल समयके फोटोग्राफ् फेसबुकपर डाले हैं और उसने तीन फोटोमेंसे पूछा है कि इन तीनोंमें वह कौनसा है, यह बताओ. मैंने भी बहुत ध्यानसे देखा पर पता ही नहीं चलता है कि उसका फोटो कौनसा है. क्योंकि हालका उसका रूप और स्कूलके समयका रूपमें बहुत भेद आ गया है. आजके समयमें उसे पहचान पाना बहुत ही कठिन विषय है पर अमिताभको स्वयंको तो पता है कि मेरा कौनसा फोटो है. उसी प्रकार प्रत्येक सेल्को पता है कि वह कौन है, उसका मूलरूप क्या है. पर हमें पता नहीं चलता है कि पहले तो तुम ऐसे थे पर अब ऐसे कैसे हो गये हो!

एक महाराज जो मुझसे भी साइज़में दो गुने थे. थोड़े दिन बाद उन्हें देखा तो एकदम पतले हो गये. पता नहीं डाइटिंग की या क्या किया. एक बार एक विवाहमें मैंनें उन्हें देखा तो पहचान ही नहीं पाया. धीरे-धीरे मैंने साहस करके उनसे पूछा कि "आप कौन?" उन्होंने अपना नाम बताया. मैंने उनसे कहा कि "आज आप, आप जैसे दिखाई नहीं दे रहे हो." उन्होंने हंस कर कहा कि "अच्छा बताओ कि मैं किसके जैसा दिख रहा हूँ?" मैंने कहा कि "अभी तो बताना कठिन है कि आप किसके जैसे दिख रहे हो." क्योंकि एक समय ऐसा था कि मैं उनके पास बैठूं तो उनके मुटापेके कारण छिप जाता था दिखाई ही नहीं देता. इतने बदलावके बाद भी वह स्वयं तो अपने आपको पहचान पा रहे थे. ऐसे ही किसी सेल्को पूछो कि "तुम तो ऐसे नहीं दिख रहे" वह पूछेगा "फिर कैसा दिख रहा हूँ, क्या तुम्हारे पिताके समान!" इसी प्रकार यदि भगवान्‌को हम पूछें कि "आप हिरण्यकशिपु जैसे तो नहीं लग रहे हो, हिरण्याक्ष जैसे तो नहीं लग रहे हो!" भगवान् कहेंगे कि "अच्छा तो कैसा लगता हूँ. कौन हिरण्यकशिपु बना कौन रावण बना?" भगवान् भी यही कहेंगे. इसी प्रकार हम

उसको पहचानना भूल जाते हैं पर वह स्वयंको पहचानना कभी नहीं भूलता. वह प्रत्येक इकाईमें अपने आपको पहचान सकता है. क्योंकि वह ईश्वर है. वह ही विकासके प्रत्येक प्रोग्राम्को नियन्त्रित करता है.

<u>सुबोधिनी</u> :

त्वम् एक: इति, तत्तदाधिदैविकानां भेदो भविष्यति इति आशंक्य आहतुः एक: इति. देवादीनाम् उत्तमत्वात् तदाधिदैविकत्वम् अस्तु, कृमिकीटाधिदैविकत्वन्तु न भविष्यति इति आशंक्य आहतुः सर्वभूतानाम् इति. आब्रह्मतृणस्तम्बान्तजातिभेदानां देहा: असव: प्राणा: आत्मा अन्तःकरणम् इन्द्रियाणि ईश्वरो जीव:, स्वात्मा जीवो वा. 'इन्द्रिय'पदेन प्राणा: इन्द्रियाणि अन्तःकरणं च. ईश्वर: अन्तर्यामी, आधिभौतिकादीनाम् ईश्वरो वा, देहद्वयसहितजीवस्य वा. नियामकत्वपक्षे भिन्नतया कालादीनामपि तथात्वम् इति कालादिरूपताम् आहतुः त्वमेव काल: इति. कालो भगवच्चेष्टा इति केचिद्, वस्तुतस्तु त्वमेव काल:. तत्र हेतुम् आहतुः भगवान् इति. ऐश्वर्यं सर्वस्यापि कालकृतमेवेति कालएव ईश्वर:; तथा बलमपि; तारुण्यएव बलं, तपोयोगादिभिरपि कालपुष्टैरेव बलं सिध्यति. यशोऽपि कालएव, नहि सर्वदा कस्यचिद् यशो भवति. एवम् अन्येऽपि गुणा:, कालान्वयव्यतिरेकात्. कालएव षड्गुणहेतुरिति गम्यते. ननु कालस्तु विष्ण्वात्मको, योहि व्यापको भवति स कलयति, नहि यो यं व्याप्तुं न शक्नोति स कलयति, अतो विष्णुरेव कालो न अन्य: इति आशंक्य आहतुः विष्णु: इति. त्वमेव विष्णु: आधिदैविक: कालो, यज्ञरूपो वा, पालको वा सत्त्वात्मक:. तस्य भिन्नत्वे भगवत: तदधीनत्वं स्यात्. अव्ययो अक्षरमपि त्वमेव, अन्यथा भगवत: समवायित्वं न स्यात्. अक्षरमेव हि समवायिकारणं, प्रकृतिपुरुषोपादानत्वात्. "सर्वं समाप्नोषि ततो असि सर्वम्" (भग.गीता ११।४०) इति सर्वत्वम् अन्यथापि उपपद्यते. वस्तुन: परिच्छेदकत्वं न सर्ववादिसम्प्रतिपन्नम्. अतो अक्षरो भगवानेव ईश्वररूपमपि अन्तर्यामीरूपं भिन्नरूपं वा अधिकारित्वेन निर्दिष्टं, यस्य

असाधारणो धर्मः ऐश्वर्यं भवति.

अब बता रहे हैं कि वह अपने आधिदैविक रूपमें भी सर्वरूप है. वह इस प्रकार कि **तत्तदाधिदैविकानां भेदो भविष्यति इति आशंक्य आहुः एकः इति.** क्योंकि प्रत्येक वस्तुके अपने यहां आधिदैविकरूप पृथक्-पृथक् कहे हैं. जैसे कि जो गंगा नदीकी अधिदेवी है वह गंगाकी है, यमुनाकी नहीं है. जो यमुना नदीकी अधिदेवी है वह यमुनाकी है, गंगाकी नहीं है. पृथ्वी देवीकी जो अधिदेवी है वह आकाशकी नहीं है और जो आकाशका अधिदेव है वह पृथ्वीका नहीं है. जैसे कामका देव कामदेव है पर उसमें रति नहीं है. और रतिकी देवी रति है. रति कामदेवकी पत्नी है रति है पर उसमें काम नहीं है. इस अर्थमें प्रत्येकके देवता अलग-अलग हैं. इसपर कहते हैं कि "ना ना, ऐसा नहीं है ये सभी देव-देवियोंके जो प्रभेद हैं अर्थात् भौतिक अथवा दैविक (physical or divine) उसको चलानेवाली जो दैविक शक्ति है उसका रूप अलग है अथवा नहीं है?" तो कहते हैं कि **देवादीनाम् उत्तमत्वात् तदाधिदैविकत्वम् अस्तु, कृमिकीटाधिदैविकत्वन्तु न भविष्यति इति आशंक्य आहुः सर्वभूतानाम् इति.** उनकी(कृमिकीटकादि) ओरसे देखो तो वे सब अलग-अलग रूप हैं पर तेरे(भगवान्) दृष्टिकोणसे देखो तो वे तेरे ही तो रूप हैं. अर्थात् ब्रह्मकी दृष्टिसे देखें तो ब्रह्मा विष्णु महेश अलग अलग नहीं हैं, ब्रह्मके ही रूप हैं और एक ही हैं. और हमारे ॲन्गल्से देखें तो वे तीन अलग-अलग देवता हैं. वे तीन हैं पर वस्तुतः तेरे ही रूप हैं. शहरमें खड़े हो कर देखें तो सब गलियां अलग-अलग हैं पर ऊपरसे देखें तो शहर एक ही लगता है. वेदमें इसी कारण बहुत सुन्दर कहा है "**सर्वे होतारो सर्वे देवाः यत्र एकनीडं भवन्ति**" सारे देवपूजक और सारे देवता जिस एक घोंसलेमें समा जाते हों ऐसा घोंसला तू है. अपने अहंकारकी दृष्टिसे अपने हाथ पांव सिर एक ही शरीर है पर हाथ-पांवकी दृष्टिसे हाथ,

पैर नहीं है और पैर, हाथ नहीं है. पांवसे हम चल सकते हैं पर खा नहीं सकते. हाथसे हम खा सकते हैं पर चल नहीं सकते. हर अंग अलग है पर अहंकारकी दृष्टिसे ये सब एक ही शरीरके हिस्से हैं. **कृमिकीटाधिदैविकत्वन्तु न भविष्यति** सारे देवता उत्तमकोटिकी योनिके हैं. उनका तू (भगवान्) आधिदैविक रूप हो तो कोई बात नहीं पर क्या कृमिओं या कीड़ों का भी आधिदैविक रूप वह कैसे हो सकता है? अरे, आप भगवान्‌की स्तुति कर रहे हो कि उसे गाली दे रहे हो? उसका समाधान है कि निन्दा अथवा स्तुति एक आंशिक दृष्टि है. ब्राह्मिक दृष्टिसे ये दोनों एक ही है. अपनी दृष्टिसे ये दो अलग हैं पर वहां जा कर ये एक हो जाती हैं.

ब्रह्मका एक रूप है कि अनेक, यह किस ॲन्गल्‌से देख रहे हैं इसपर निर्भर है. ब्राह्मिक दृष्टिसे देखें तो सब एक है और अंश दृष्टिसे देखें तो सब अलग-अलग हैं. आप दोनोंको बराबर नहीं कह सकते. अगर ऐसा न होता तो कल तो पड़ौसीके मकानको भी मैं अपना ही कहने लगूंगा क्योंकि ऊपरसे सब एक ही तो दिखता है! इसी कारण कह रहे हैं कि "यह बात सच है कि कीड़ेमें तेरा आधिदैविक रूप नहीं है पर यह बात मनुष्यके दृष्टिकोणसे सही है. क्योंकि यह प्रश्न भी तो मानवीय बुद्धि ही उठा रही है. यदि कीड़ेसे यही बात पूछेंगे तो वह यह माननेको तैयार नहीं होगा कि मनुष्यमें भगवान्‌का आधिदैविक रूप बिराज रहा है क्योंकि वह तो उनको बड़ी निर्दयतासे मार डालता है" दोनों अपनी बातपर सही हैं पर ब्राह्मिक दृष्टिकोणसे दोनों गलत हैं. सभी घटनाओंके पीछे केवल उसीकी दैवी शक्ति काम कर रही है.

आब्रह्मतृणस्तम्बान्तजातिभेदानां ब्रह्माजीसे ले कर तृण पर्यंत सभीका अधिदेव वही है. **देहाः असवः प्राणाः आत्मा अन्तःकरणम् इन्द्रियाणि ईश्वरो जीवः, स्वात्मा जीवो वा. 'इन्द्रिय'पदेन प्राणाः इन्द्रियाणि**

अन्त:करणं च. देह आत्मा प्राण अन्त:करण और इन्द्रिय का ईश्वर तू ही है **ईश्वर: अन्तर्यामी, आधिभौतिकादीनाम् ईश्वरो वा, देहद्वयसहितजीवस्य वा. नियामकत्वपक्षे भिन्नतया कालादीनामपि तथात्वम् इति कालादिरूपताम् आहतु: त्वमेव काल: इति.** अन्तर्यामी, आधिभौतिक वस्तुओंका ईश्वर, देह और जीव का ईश्वर भी तू ही है. अब यदि उसे नियामक शक्ति मानो तो तो काल ही तो सबका नियामक है. तो क्या आप यह कह रहे हैं कि वह काल है? उसके उत्तरमें कहते हैं कि **कालो भगवच्चेष्टा इति केचिद्, वस्तुतस्तु त्वमेव काल:. तत्र हेतुम् आहतु: भगवान् इति.** आप भगवान्को केवल काल कह कर उसकी व्याख्या नहीं कर सकते. काल भगवान्का एक पहलु अवश्य है, भगवान् कालका पहलु नहीं है. काल भगवान्की चेष्टा है. **ऐश्वर्यं सर्वस्यापि कालकृतमेवेति कालएव ईश्वर:** काल कहनेके बाद भी वे उन्हें 'भगवान्' कह रहे हैं. ऐसा इस कारण क्योंकि हम लोगोंके जितने भी ऐश्वर्य होते हैं वे किसी कालमें ही होते हैं. जैसे मोदी जब-तक जीता नहीं था तब-तक राहुलका ऐश्वर्य था. अब मोदी जीत गया तो राहुलको काँग्रेसी भी चुपचाप 'पप्पु' कह रहे हैं. कहां गया वह ऐश्वर्य! एक कालमें राहुल पप्पू हो जाता है और दूसरे कालमें पप्पू राहुल हो जाता है.

अत: अपना ऐश्वर्य कालकृत है. मानें काल ही अपने ऐश्वर्यका नियामक है. **तथा बलमपि; तारुण्यएव बलं, तपोयोगादिभिरपि कालपुष्टैरेव बलं सिध्यति. यशोऽपि कालएव, नहि सर्वदा कस्यचिद् यशो भवति. एवम् अन्येऽपि गुणा:, कालान्वयव्यतिरेकात्. कालएव षड्गुणहेतुरिति गम्यते.** अपना बल और तारुण्य भी कालके ही अधीन है. मुझे अच्छी तरह याद है कि जब मैं बीस सालका था तो पुस्तकोंसे भरा हुआ पूरा पिटारा जमीनसे उठा कर अकेला अलमारीपर रख देता था. अब पानीकी बाल्टी उठाता हूं तो कमरमें दर्द होने लगता है. कहां गया वह बल! बल कालकृत है, यश भी कालकृत

है क्योंकि वह भी किसी कालमें ही होता है. उसके बाद वह समाप्त हो जाता है. दूसरे भी गुण, वीर्य श्री ज्ञान वैराग्य, सभी अपनेमें कालकृत हैं. भगवान्‌में कालके नियामक ये गुण हैं. यह बात भगवान्‌को कालसे पृथक् करती है.

ननु कालस्तु विष्ण्वात्मको, योहि व्यापको भवति स कलयति कालको विष्णुरूप भी कहा गया है. हम वैष्णव हैं, इस कारण कालको अपने यहां विष्णुरूप माना है. शैव मतमें कालको शिवरूप माना गया है. अब काल शिवरूप है कि विष्णुरूप है, यह तो देखनेवालेकी दृष्टिपर निर्भर है. जो भी हो पर इनमें एक बात कॉमन् है, 'काल' मानें कलनम्. कालके द्वारा किसी भी वस्तुकी परिगणना की जा सकती है. एक दो तीन यह जो कलन है वह जिससे भी संभव हो पाता हो उसे 'काल' कहते हैं. अब आकलन कौन किसका कर सकता है? हमसे अति सूक्ष्म वस्तुका आकलन नहीं कर सकते. उसी प्रकार हमसे अत्यधिक व्यापक वस्तुका आकलन भी हम नहीं कर सकते. जैसे कोई पूछे कि पृथ्वीपर कितने अणु हैं, तो हमारे लिए यह आकलन संभव नहीं है. इसी प्रकार कोई पूछे कि आकाशका माप कितना, तो हम बता नहीं पायेंगे. जिसका आकलन करना हो वह वस्तु मध्यम मापकी होनी चाहिये, तभी आकलन संभव है. जैसे रुपयेका आकलन हम कर सकते हैं क्योंकि अपने मापमें रुपया मध्यम परिमाणका है. **अतो विष्णुरेव कालो न अन्यः** अब पूछते हैं कि "तो क्या काल विष्णु है?" इसका उत्तर देते हैं कि "नहीं, काल विष्णु नहीं है. अपितु विष्णु काल है." हम विष्णुका अर्थ केवल चारभुजाधारी, जिसने शंख चक्र गदा पद्म धारण कर रखा है, ऐसा समझते हैं. जबकि संस्कृतमें 'विष्णु'का अर्थ है सर्व-व्यापक. जैसे जो सहन करता हो वह सहिष्णु. जो कुछ कर सकता हो वह करिष्णु. यह 'णु' लगा है वह स्वभावका द्योतक है. जिस भी क्रियाके आगे आप 'णु' लगायेंगे, वह उसका

स्वभावके अर्थमें हो जाता है. जैसे जीतनेके स्वभाववाला व्यक्ति 'जीष्णु' कहा जायेगा. इसी तरह जिसका स्वभाव व्यापक होनेका हो वह विष्णु. क्योंकि विष्णु सर्व-व्यापक है. इसी कारण वह काल भी है.

इति आशंक्य आहतुः विष्णुः इति. त्वमेव विष्णुः आधिदैविकः कालो, यज्ञरूपो वा, पालको वा सत्त्वात्मकः. तस्य भिन्नत्वे भगवतः तदधीनत्वं स्याद्, अन्यथा भगवतः समवायित्वं न स्यात्. अक्षरमेव हि समवायिकारणं, प्रकृतिपुरुषोपादानत्वात्. काल यदि विष्णुसे भिन्न हो तो भगवान् भी कालके अधीन हो जायेंगे. पर काल तो भगवान्की चेष्टा है. 'चेष्टा' मानें प्रयास. भगवान्का प्रयास हमारे लिए काल बन जाता है. उदा. किसीको मारनेसे पहले हम अपना हाथ उठाते हैं बोलनेसे पहले अपना मुंह खोलते हैं ये सब चेष्टाके रूप हैं. कोई भगवान्की क्रिया नहीं है अपितु प्रयास है. **अव्ययो** अक्षरमपि त्वमेव, 'व्यय' मानें क्षीण होना. 'अव्यय' मानें जो कभी क्षीण ना हो. ऐसा अक्षर भी वह ही है **अन्यथा भगवतः समवायित्वं न स्यात्. अक्षरमेव हि समवायिकारणं, प्रकृतिपुरुषोपादानत्वात्.** पूरे जगत्का समवायी कारण मानें ठोस कारण अक्षरब्रह्म है. इसको ठोस अथवा मूल कारण इसलिए कहा गया है, जैसे गहना बनानेमें सोनेका रूप नहीं रहता पर सोना तो रहता ही है. सोना अव्यय रह जाता है. इसी प्रकार जब अक्षरमेंसे जगत् बनता है तो उसका रूप वह नहीं रहता पर अक्षर तो शेष रह ही जाता है. अक्षरका व्यय नहीं होता. इसी कारण इसे 'अक्षर' कहा गया है. स्वर्णधातुसे गहने बनते-बिगड़ते रहेंगे व्यय होता रहेगा पर सोना अव्यय रहेगा. भगवान् यदि अव्यय ना हों तो वह कभी मूल कारण हो नहीं सकते. इसलिए प्रकृति और पुरुष के उपादान कारण होनेसे अक्षरब्रह्म समवायी कारण है. जिस बातको गीतामें भी कहा गया है **"सर्वं समाप्नोषि ततो असि सर्वः"** (भग.गीता ११।४०) तू सभीके भीतर व्यापता है,

सभीका आधार है, इस कारण सर्व है. **इति सर्वत्वम् अन्यथापि उपपद्यते. वस्तुनः परिच्छेदकत्वं न सर्ववादिसम्प्रतिपन्नम्. अतो अक्षरो भगवानेव** व्यापकके दो अर्थ होते हैं. जैसे यहां रखी सारी वस्तुएं व्यापक नहीं हैं क्योंकि यह वस्तु यदि यहां है तो वहां नहीं है. 'व्यापक'का एक अर्थ है कि जो सभीको समाहित कर ले और दूसरे किसीसे जिसका कोई परिच्छेद न हो मानें जिसकी कोई सीमा ना बांधी जा सकती हो, वह भी 'व्यापक' ही कहलाता है. पर यह दूसरी परिभाषा ठीकसे सोची समझी नहीं लगती क्योंकि ऐसा कई बार होता है कि सीमा न होना उस वस्तुके असीमित होनेको तो दर्शाता है परन्तु उसके अलावा भी कुछ व्यापक हो सकता है. उदाहरणके लिए पृथ्वीके वातावरणमें आठ-दस लेयर् हैं. वे एक-दूसरेसे भिन्न हैं पर उनकी कोई निश्चित विभाजनकी रेखा नहीं है. इसी प्रकार सागर भी अलग-अलग है पर उनके विभाजनकी कोई निश्चित रेखा नहीं है. परिच्छेदक नहीं होनेपर भी यह अलग तो है ही. इस कारण अपरिच्छेदक होनेसे सर्व-व्यापी मानना यह बात ठीक नहीं है. जहां भी आकृति न दिखलायी दे उसे व्यापक मानना ठीक बात नहीं है. **ईश्वररूपमपि अन्तर्यामीरूपं भिन्नरूपं वा अधिकारित्वेन निर्दिष्टं, यस्य असाधारणो धर्मः ऐश्वर्यं भवति.** इस तरह अक्षर भी भगवान् है ईश्वर भी भगवान् है और अन्तर्यामी भी भगवान् ही है. ये सभी उसीके अलग-अलग रूप हैं. कहनेका अर्थ है कि कृष्ण ही अक्षर है, ब्रह्म है, ईश्वर है, अन्तर्यामी है, परमात्मा है, भगवान् है.

(प्रश्नोत्तर)

प्रश्न : *.*.*

उत्तर : सबसे पूर्व तो वेदोंमें कहे गयेकी प्रामाणिकताके बारेमें ही प्रश्नवाचक चिन्ह यूरोपीय चिन्तकोंने लगाया है. जो कि बाहरके देशोंके हैं. जैन-बौद्ध भारतके ही हैं. परन्तु हम कह रहे हैं कि

ऋषियोंने यह वेद किसी प्रमाणको प्रस्तुत करनेके लिए नहीं कहे हैं, अपितु जो भी उनको अनुभव हुआ वह कह दिया. उनकी यह अनुभूति हमारे बौद्धिक विचारोंसे अधिक बड़ी थी. अनुभूति एक अलग वस्तु है. अनुभूति किसी अन्त:प्रज्ञाके कारण हो सकती है, उसके पीछे बौद्धिक विचारधारा भी हो सकती है, किसी संवेदनशीलताके कारण भी हो सकती है. यह भाव अथवा अनुभूति का आयाम बौद्धिक विचारधारासे बहुत बड़ा है. मुझे कुछ अनुभूति हो सकती है पर यदि आप मुझे उसको बुद्धिके बलपर तर्कसंगत प्रस्तुत करनेके लिए कहेंगे तो यह बहुत कठिन हो जायगा. हमारा ऐसा मानना है कि वेद किसीके द्वारा लिखे गये नहीं है बल्कि ऋषियोंको कुछ अनुभूति हुयी और उस अनुभूतिको उन्होंने शब्दोंमें प्रकट किया. हो सकता है कि उस अनुभूतिको शब्दोंमें प्रकट करनेमें कुछ कमी रह गयी हो. जैसे हम कहें कि चीनी मीठी होती है और गुड़ भी मीठा होता है. पर हम अच्छी तरहसे जानते हैं कि चीनी और गुड़ का स्वाद भिन्न होता है. हमें उनके भिन्न होनेकी अनुभूति तो होती है पर उसे कह पानेको हमारे शब्द नहीं होते. इसी प्रकार हम ऐसा नहीं सोचते कि वेद किसी बौद्धिक विचारकी उत्पत्ति है और न ही अबौद्धिक विचारकी उत्पत्ति है. यह तो एक पारलौकिक तर्कातीत अनुभूति है. इसी कारण यदि हमें पुरुषोत्तमका अर्थग्रहण करना है तो हम ऐसा कर नहीं सकेंगे. पर यदि कोई इसका दृष्टान्त हमको देना है तो हम उसे क्षर और अक्षर का योग कह सकते हैं. उदाहरणके लिए यदि मैं आपसे पूछूं कि आप ट्रिलियन् तक गिनो तो वह बहुत अधिक समय लेगा. आप गिनना शुरु करें तो यह हो तो सकता ही है. आप थक जायेंगे तो आप कहेंगे कि अब आगे नहीं गिना जाता. पर क्या आपके रुक जानेसे गिनती खत्म हो जाती है? गिनती तो चालू ही रहती है. आप कहोगे कि “भई, यहां-तक मैंने गिना अब इसके आगे है तो सही पर गिनना मेरी अशक्ति है.” मैंने एक गज़ल बांची थी. *दिलकी गहराईओंमें*

कौन कभी जाता है, आदमी बाहरी पहचान तक ही जाता है, कितना पहचाने किसीको कैसे पहचाने, हद्दे पहचानकी सफरमें थक भी जाता है.

किसीको पहचाननेकी अपनी बुद्धिकी सीमा है. उस सीमा तक ही हम पहचान सकते हैं. उसके आगे तो थक कर हम कह ही देते हैं कि "छोड़ो, वह जैसा है, जितना समझा है, उतना ही ठीक है. अब इसके आगे समझ कर करना क्या है?" अभी कोई मुझे कहता था कि मॅट्रिमोनियल् देख कर लड़का-लड़कीने आपसमें एक-दूसरेको पसंद किया. उसके बाद उन्होंने संबन्ध जोड़नेकी बात शुरु करी. दोनोंने एक-दूसरेकी पढ़ाईके बारेमें, आर्थिक स्थितिके बारेमें पूछा. इसके बाद दोनोंने एक-दूसरेकी भविष्यकी महत्त्वाकांक्षाओंके बारेमें जानकारी प्राप्त की. आगे किस तरह जीना है यह भी पता लगा लिया. सभीमें सकारात्मक उत्तर मिले. अन्तमें लड़कीने पूछा कि तुम्हारे घरमें कचरेके डिब्बे कितने हैं? लड़केने उत्तर दिया कि वे तो बेसिन्के नीचे सभी जगह रखे हैं. लड़कीने कहा "नहीं यह नहीं, तुम्हारे साथ माता-पिता भाई-बहन कौन-कौन रहता है?" लड़केने कहा "मुझे तुझसे विवाह नहीं करना." देखो सभी कुछ जाननेके बाद भी कोई किसीको कैसे पहचाने? एक सीमाके बाद पहचाननेमें आदमी थक जाता है.

इस कारण अनन्तको हम गिन नहीं सकते, इसलिए हम सोचें कि अनन्त कुछ है ही नहीं, पर अनन्त कोई ऐसा विषय नहीं है कि जिसकी परिभाषा हम अपनी बुद्धिके बलपर दे पाये. जहां भी हमारी बुद्धिके तर्क समाप्त होंगे वहांसे ही अनन्तकी परिभाषा शुरु होगी. इसी तरह पुरुषोत्तमका जो अर्थ हम गीतामें समझ रहे हैं उसी प्रकारके पुरुषोत्तम यहां कहनेमें आया है. यह कोई नटखटपनेकी अथवा चमत्कारीपनेसे होनेवाली पुरुषोत्तमता नहीं है. पुरुषोत्तमको किसी

सीमित और असीमित को जोड़ कर ही केवल समझना उचित नहीं है. ब्रह्म तो बुद्धिके विचारसे और हमें हुए अनुभवसे भी परे है.

(श्लोक-३, मूलश्लोक-३१)

(आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक पहलुओंमें सर्वरूपता)

अवतरणिका :

एवम् आधिदैविककालादिरूपत्वं निरूप्य आध्यात्मिकत्वम् आधिभौतिकत्वं च निरूपयितुं मध्यमभावं निरूपयति :

इस प्रकार आपही आधिदैविक कालादिरूप हो इसका वर्णन कर आध्यात्मिक और आधिभौतिक भी आपही हो. इसका निम्न श्लोकसे वर्णन करते हैं.

इसके पहलेके श्लोकोंमें भगवान्‌की आधिदैविकताका वर्णन किया गया मूलरूप प्रकारसे. अब मध्यरूप प्रकारसे उनके आध्यात्मिक और आधिभौतिक स्वरूपोंका निरूपण करते हैं. इसीके सन्दर्भमें महत्‌तत्त्वका भी निरूपण किया जायेगा.

अब तीसरे श्लोकमें **एवम् आधिदैविककालादिरूपत्वं निरूप्य आध्यात्मिकत्वम् आधिभौतिकत्वं च निरूपयितुं मध्यमभावं निरूपयति** यह जो दूसरा पक्ष है उसे भगवान्‌ने गीतामें बहुत सुन्दर प्रकारसे खोला है "**ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे अर्जुन! तिष्ठति, भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया. तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत! तत्प्रसादात् परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्**" (भग.गीता १८।६१-६२) यह ईश्वर प्रत्येक वस्तुमें अन्तरतम अर्थात् हृदयके भीतर बस रहा है और नियन्त्रण कर रहा है. सभी भूतोंको प्रेरणा वही देता है.

जैसे इंटरनेट् ऑन् है तो मोबाईल्‌को प्रोत्साहित करता है और

डाउन् है तो सभी कुछ समाप्त. फिर चाहे आप बॅट्री चार्ज् करें, सिम्-कार्ड बदलें पर यदि नेटवर्क् नहीं है तो सभी कुछ डाउन्. इसीलिए "**तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत!**" तू उसकी शरणमें जा "**तत्प्रसादात् परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्**" उसका प्रसाद = कृपा जब मिलेगा तभी शान्ति मिलेगी. कृष्ण स्वयं पुरुषोत्तम होते हुए भी अर्जुनको यह कह रहे हैं कि तेरे भीतर जो परमात्मा बिराज रहा है उसकी शरण तू ले. तो ही तुझे शान्ति मिलेगी. उसकी शरण तू लेगा तो तुझे जो भी अभिमान है कि जो हो रहा है वह तू कर रहा है, वह तेरा अभिमान भाग जायगा और तुझे ऐसा अनुभव होगा कि "मैं नहीं कर रहा हूँ, कोई मुझसे करवा रहा है." किसी छोटे बच्चेको तो यही लगेगा कि यह तो मेरे मोबाईल्का माहात्म्य है कि मैं सारे विश्वमें कहीं भी बात कर सकता हूँ. पर जो इंटरनेट्की शरणमें जाय तो उसको समझ आयगा कि मोबाईल्का माहात्म्य नहीं है, नेटवर्क्का माहात्म्य है. कोई एक लाख रूपयेका भी यदि मोबाईल् ले और उसमें इंटरनेट् न हो तो वह मोबाईल् बेकार है. हाँ, स्विच्से मोबाइल् ऑन्-ऑफ होता है पर सन्देश नेटवर्क्के सहारे जाते हैं. इसीलिए भगवान् कहते हैं कि "**ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे अर्जुन! तिष्ठति, भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया. तमेव शरणं गच्छ**" उसकी शरणमें जायगा तो तेरा सारा अहंकार चूर हो जायेगा और तू अपने अहंकारको सही प्रकारसे देखना शुरु कर सकेगा.

इसे समझनेके लिए आप एक मॉडल्को समझें. कभी-कभी मैं कोई शास्त्रवचन बोलता हूँ, कभी शेर बोलता हूँ, कभी चुटकुला बोलता हूँ, मुझे इसका अहंकार हो सकता है और आपको इस बातसे दैन्य प्रकट हो सकता है कि कितना अधिक श्यामबाबाको याद है! यह बहुत स्वाभाविक बात है. क्योंकि अपनी आत्मचेतनाका स्वभाव ही इस प्रकारका है. पर आयोडीन्की मात्रा थोड़ी कम हो

जाय तो सारी याददाश्त नदारद हो जायेगी. यह तो मेरे शरीरमें आयोडीन्की मात्रा बोल रही है. इसी कारण मुझे सब याद आ जा रहा है. यह माहात्म्य आयोडीनका कि मेरी याददाश्तका? यहां तो आयोडीन् काम कर रहा है अन्तर्यामीकी तरह. अब बताओ कि अहंकार हम किस बातका करें अथवा आप दैन्य किस बातका करो! पर अपने व्यवहारमें अहंकार और दैन्य एक बहोत ही सुखद और रोचक वस्तु है कि मैं अहंकार करूँ और आप दैन्य प्रकट करें. पर दैन्य भी गलत है और अहंकार भी गलत है. यह माहात्म्य तो आयोडीन्का है.

आधिदैविक कालरूपता इसके पहले श्लोकमें आयी. उसमें अन्तर्यामी नियन्त्रणकर्ता होनेका रोल् समझाया. अब जो अंदर है बाहर नहीं हो सकता. क्योंकि हमारे तर्क हमेशा ऐसे ही चलते है. पर बरसातमें जो घोंघा होता है उसके अंदर जीव होता है और बाहर सैल होता है. बाहर कितना कठोर है और भीतर कितना नरम है! यह विरुद्धधर्माश्रयता तर्कसे परे है. क्योंकि तर्कशास्त्र कहता है कि जो कठोर है वह नरम नहीं हो सकता. इसलिए नरम और कठोर ब्रह्मके गुण साथमें नहीं हो सकते. तर्कोंके आधारपर भगवान् बुद्ध और श्रीशंकराचार्य इसी प्रकार कहते हैं. श्रीवल्लभाचार्य इस बारेमें कहते हैं कि "नहीं, मैंने समझा है, जाना है कि ब्रह्म कठोर भी है, मृदु भी है". रामचन्द्रजीके लिए एक बहुत सुन्दर बात कही जाती है *"वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुम् अर्हति"* (उत्त.रामच.द्वि.खं.७) हीरेसे भी कठोर है और फूलसे भी अधिक कोमल रामचन्द्रजीका स्वभाव है. ऐसेको कौन जान सकता है! हम अपने मापदण्डसे उसे देखने जायेंगे तो यही कहेंगे कि दोनों गुण एकसाथ हो नहीं सकते. क्योंकि अपने संज्ञानकी जो सीमा है वह लगातार हमको यही समझाती है कि यह गुण एक-दूसरेके विरोधी है, पर जो पूर्ण है, उसमें कठोरता और मृदुलता

एक-दूसरेके विरोधी नहीं है. बिल्कुल वैसे ही कि जैसे पृथ्वीके ऊपर बकरी और बाघ साथ रहते हैं. कोई हमसे पूछे कि बाघ क्या खाता है तो हम कहेंगे कि बकरी. तर्कशास्त्री कहेंगे कि यदि बाघ जी रहा है तो बकरी जी नहीं सकती और यदि बकरी जीती होगी तो बाघ भूखसे मर जायगा. पर पृथ्वीकी हकीकत जो जानता है उसे पता है कि पृथ्वी इतनी बड़ी है कि वहां दोनों रह सकते हैं. पृथ्वीने अपने सन्तुलनको इस प्रकार बना कर रखा है कि बकरी खाये जानेके बावजूद बकरी पृथ्वीपर बची रहती है और बाघ भी जीवित रहते हैं. यहां बिल्ली भी जीती है और चूहे भी जीते हैं. देव भी जीते हैं और असुर भी जीते हैं. दोनों एक-दूसरेको मारते हैं पर जीते तो दोनों ही हैं. अंधेरा और प्रकाश साथ यहां रह रहे हैं!

श्रीशंकराचार्यने अपने भाष्यकी बहुत सुन्दर भूमिका बांधी कि प्रकाश और अंधकार कभी साथ नहीं रह सकते. अरे! पर दियाके तले अंधेरा होता है कि नहीं! और साइंसने तो वहां-तक प्रयोग करके दिखलाया है कि दो लाईट्-रेज् एक-दूसरेको क्रॉस् कर जाती है, तो कभी अंधेरा उत्पन्न करती है. क्योंकि दोनोंके फोटोन्स् एक-दूसरेको कॅन्सल् कर देते हैं और फिर अंधेरा उत्पन्न हो जाता है. दोनों प्रकाशकी किरणोंको जोड़ कर दुगना होना चाहिये कि अंधेरा होना चाहिये? अपने तर्क अपनी बुद्धिके लिए ठीक है क्योंकि अपनी बुद्धि उसी प्रकार कार्य करती है पर अपनी बुद्धि कभी भी उस पूर्णताका मापदण्ड नहीं बन सकती. अपनी बुद्धिके द्वारा हम कभी भी सम्पूर्ण सत्यको जान नहीं पाते.

''यस्मात् क्षरम् अतीतो अहम् अक्षरादपि च उत्तमः अतो अस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः'' (भग.गीता १५।१८) इसी कारण वह बाहर भी है. यदि मैं इस कमरेमें बाहर चला जाऊं तो अंदर

नहीं हो सकता. अंदर आ जाऊँ तो बाहर नहीं हो सकता. या तो अंदर हो सकता है अथवा बाहर हो सकता है तर्कशास्त्रके हिसाबसे. दोनों जगह एक ही समयमें नहीं हो सकता पर बड़े ऑफिस्में एक ही व्यक्ति सी.सी.टी.वी कॅमरा और मॉनिटर् बिठा कर, कई जगह हो सकता है. वह सबको देख भी सकता है, सबके साथ बात भी कर सकता है. अब बताओ तर्कका क्या हुआ?

मैं तीन-चार साल पहले देहली गया था. उस दिन वहां तकरीबन छब्बीस हजार शादीयां थीं. मैंनें पूछा "इतने सारे पुरोहित कहांसे आये?" किसीने मुझे बताया कि "कई स्थानोंपर पुरोहित मोबाईल्पर शादी करवा रहे हैं" अपने पास उपकरण हो तो सभी कुछ संभव है. अपने पास उपकरण नहीं है इस कारण हमको लगता है कि जो भीतर है वह बाहर नहीं है, जो बाहर है वह भीतर नहीं है. उपकरण हो तो हम एक ही वस्तुके विरोधाभासी गुणको ठीक प्रकारसे देख पायेंगे. कई लोगोंकी यह समस्या है कि "भगवान् यदि तुम्हारी प्रार्थना एक मन्दिरमें सुन रहे हैं तो दूसरे मन्दिरमें प्रार्थना करनेवालें तो समय बरबाद कर रहे हैं" अपने साथ ऐसे ही तो होता है कि एक ऑफिस्की समस्या यदि हम सुलझाने गये हैं तो दूसरे ऑफिस्के लोग हमारे आनेकी राह देख रहे होते हैं. पर वह समस्या भगवान्के साथ नहीं है. भगवान् तो एक ही समय, सभी मन्दिरोंमें हो सकता हैं.

यह समस्या तो हम पुष्टिमार्गीयोंके साथ भी बड़ी भारी है. हम समझते है कि भगवान् केवल हवेलीमें ही है घरमें नहीं है. तुम घरमें सेवा करो तो वह तो तुम्हारे घरमें ही हाजिर है. यदि वह हवेली तक ही सीमित हो तो उसके पास भी वह उपकरण नहीं है और फिर वह भगवान् है ही नहीं. भगवान् इतना दुर्बल नहीं है, सर्वशक्तिमान है. तुम उसको जहां भज रहे हो वहां वह

मौजूद है. इसीलिए नारदजीको भगवान्‌ने कहा कि "**न अहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च, मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद!.**" (पद्म.पुरा.उ.९२।२१) **न मैं** वैकुण्ठमें रहता हूँ, न योगियोंके हृदयमें रहता हूँ, जहाँ भी मेरा भक्त मेरा गान करता है, मैं वहां रहता हूँ. यदि सोलह हजार भक्त भगवान्‌का एक साथ भजन कर रहे हों, तो भगवान् अपने आपको सोलह हजार रूपोंमें विभक्त कर सकते हैं क्योंकि उनके पास वह उपकरण है. हम हमेशा अपने मापदण्डसे उसे तोलते हैं.

श्लोक :

त्वं महान् प्रकृतिः सूक्ष्मा रजःसत्त्वतमोमयी।।
त्वमेव पुरुषो अध्यक्षः सर्वक्षेत्रविकारवित्।।३१।।

अनुवाद :

आप महत् तत्त्व, रजोगुण सत्त्वगुण और तमोगुण रूपा सूक्ष्मा प्रकृति भी आप ही हो।।
सभी क्षेत्रोंके ज्ञाता और अध्यक्ष ऐसे पुरुष भी आप ही हो।।३१।।

जैसे मैंने कई बार पहले भी आपको बताया है कि साधारणतया यूरोपियन धर्म, यूरोपीय दर्शन और यूरोपियन विज्ञान आजतक भी इसी असमंजसमें उलझा हुआ है कि mind मूलतत्त्व है matter superficial है, अथवा matter मूलतत्त्व है mind superficial है अथवा mind और matter दोनों मूलतत्त्व हैं, पर हैं एक-दूसरेसे अलग. अब जा कर वे लोग कुछ ऐसा सोचने लगे हैं कि mind एक प्रकारका matter है और matter एक प्रकारका mental है.

अपने यहां भागवतमें गीतामें कई जगह कहा गया है कि

दोनों एक ही तत्त्वके दो पहलु हैं. जब अर्जुनने गीतामें भगवान्से पूछा कि "क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ क्या है?" 'क्षेत्र' मानें object और 'क्षेत्रज्ञ' मानें subject. भगवान्ने बहुत सुन्दर उत्तर दिया कि "**क्षेत्र-क्षेत्रज्ञयोर् ज्ञानं यत् तज् ज्ञानं मतं मम**" (भग.गीता १३।२) क्षेत्रको क्षेत्र समझो, यह क्षेत्रज्ञ नहीं है और क्षेत्रज्ञको क्षेत्रज्ञ समझो, यह क्षेत्र नहीं है. मानें subject को subject समझो, वह object नहीं है और objectको object समझो वह subject नहीं है. पर मुझे यदि समझोगे तो subject और object दोनों समझमें आ जायेंगे. क्योंकि मैंने ही यह दोनों रूप लिये हैं. "**इदं शरीरं कौन्तेय! 'क्षेत्रम्'इति अभिधीयते, एतद् यो वेत्ति तं प्राहुः 'क्षेत्रज्ञः' इति तद्विदः**" (भग.गीता १३।१) भगवान् कह रहे हैं कि इस शरीरको तुम क्षेत्र समझो और जो भी इसको जानता है उसे 'क्षेत्रज्ञ' कहा जाता है.

'क्षेत्र' शब्द यहां मूलतः धरतीके अर्थमें आया है. अन्ततः जब आप अपने शरीरके बारेमें समझने लगते हैं तो आप अपने शरीरके चारों ओरके वातावरणके बारेमें भी समझने लगते हैं. इतना ही नहीं, पूरे ब्रह्माण्डके बारेमें भी समझने लगते हैं. सारी बातका केन्द्रबिन्दु केवल दो वस्तुओंपर अटक जाता है. एक self awareness (आत्म-ज्ञान) और awarenss of universe (ब्रह्माण्डका ज्ञान). अब यह समीकरण कुछ इस प्रकारका हो गया कि क्षेत्र = universe और क्षेत्रज्ञ = self awareness. लेकिन इसका प्रारंभ अपने शरीरसे ही होता है. अपने चारों ओरके वातावरणको हम तब-तक नहीं जान सकते, जब-तक हम अपने शरीरको भली प्रकार न जान लें. और इस ब्रह्माण्डको हम तब-तक नहीं जान सकते जब-तक हम अपने चारों ओरके वातावरणको ना जान जायें. क्योंकि ब्रह्माण्ड अपने वातावरणका ही तो विस्तार है और अपना वातावरण अपने शरीरका ही विस्तार है. जब भी हम अपने शरीरको उसके चारों ओरके वातावरणके बिना देखेंगे, तो वह वैचारिक वास्तविकता तो हो सकती है परन्तु

वह धरातलसे जुड़ी वास्तविकता नहीं होगी. शरीर कभी भी अपने वातावरणके बिना हो नहीं सकता. जैसे सूर्यके वातावरणमें अपना शरीर नहीं रह सकता. अपने शरीरके लिए पृथ्वीका वातावरण ही चाहिये. इस तरह वातावरणका एक प्रकारसे घनीभूत होना ही शरीर है. जैसे वातावरणमें जो नमी है वह घनीभूत होती है तो बादल बनते हैं और जब बिखर जाता है तो वातावरण बन जाता है. शरीर तभी तक शरीर है जब उसके चारों ओर कोई वातावरण हो और उसी वातावरणका विस्तार यह ब्रह्माण्ड है. अब क्रम इस प्रकार बना. पहले self awareness मानें आत्मज्ञान अथवा क्षेत्रज्ञ, अर्थात् शरीरको जाननेवाला. उसके बाद शरीर, उसके चारों ओरका वातावरण 'ब्रह्माण्ड' मानें क्षेत्र. इसे यों भी कह सकते हैं कि objective field और subject.

अब इसमें एक ऐसी विषमता उभर कर आती है कि जो क्षेत्रज्ञ है वह क्षेत्र नहीं है और जो क्षेत्र है वह क्षेत्रज्ञ नहीं है. पर यही तो जगत्की सुन्दरता है कि वातावरणमें रही हुयी नमी, घनीभूत हो कर बादल बन जाती है. पर वातावरण हमको बादल जैसा दिखायी नहीं देता और बादल वातावरण जैसा दिखायी नहीं देता. इसीमें तो उसका सौंदर्य छुपा है. इनमें रहे हुए तादात्म्यको यदि हम अनुभव करने लगें तो बहुत सारी समस्याएं हमारी दूर हो जायें. इसका अनुभव ना करनेके कारण ही बहुत सारी समस्याएं खड़ी हो जाती हैं. क्योंकि फिर तो ऐसे प्रश्न उपस्थित होंगे कि ऊपर पानी भरने गया कौन? फिर बरसा कैसे? एक नहीं पचास मुद्दे उसमें खड़े होंगे. पर एक बार हमने बादल और वातावरण की ईकाईके पहलुओंको यदि ठीक समझा तो बहुत सारी समस्याओंका समाधान हमें मिल जाता है. ठीक उसी प्रकार इस शरीर और उसके चारों ओरके वातावरणके बारेमें यदि ठीकसे हम समझेंगे कि शरीर ही वातावरणका घनीभूत रूप है और वातावरण ही शरीरका

फैला हुआ रूप है, तो कई समस्याओंका समाधान हमें मिल जायेगा. इसका सौंदर्य इस बातमें रहा हुआ है कि वातावरणका हिस्सा होते हुए भी हम अपने आपको इस वातावरणसे पृथक समझते हैं यह ही एक self awareness की सुन्दरता है.

एक बहुत प्रसिद्ध बायोलॉजिस्ट् कुछ दिन पहले यहां मुम्बई आया था. वह कह रहा था कि "एक जीवित कोशिका बनानी हमारे लिए बहुत आसान है पर एक बात अभी संभव नहीं है कि एक कोशिका (mono-cell) जिसमें self awareness हो, वह कैसे बनानी?" वह कहते हैं कि "matter में से living cell पैदा किया जा सकता है. पर ऐसी cell; जो कि self aware भी हो और जो अपने चारों ओरके वातावरणके बारेमें भी aware हो, बनाना कठिन है." प्रकृतिका यह सौंदर्य कि 'क्षेत्र' मानें surrounding और 'क्षेत्रज्ञ' मानें self awareness or knower जो कि अपने चारों ओरके वातावरणके बारेमें भी aware है. दोनों एक दूसरेसे अलग दिखलायी देते हैं पर यदि हमें उस पूर्णताका ज्ञान है तो ही हम इस प्रकृतिके रहस्यको जान पायेंगे. "**क्षेत्र-क्षेत्रज्ञयोर् ज्ञानं यत् तज् ज्ञानं मतं मम**" आप केवल यदि अपनेको ही जान पाये अथवा केवल अपने चारों ओरके वातावरणको ही जान पाये तो आप मुझे नहीं जान पाओगे. मानें पूर्णताको पहचान नहीं पाओगे. मुझे अर्थात् पूर्णताको समझनेके लिए आपको दोनोंका ज्ञान आवश्यक है. यह एक ऐसा वाक्य है जो आधुनिक विज्ञानके लिए दिशा देनेका काम करता है. अब विज्ञानने इस दिशामें काम करना प्रारम्भ किया है पर अभी बहुत आगे जाना है. हम कभी भी इस दुविधामें नहीं रहते कि mind मूल है कि matter मूल है! हमारी समझ तो ऐसी है कि इन दोनोंका एक मूलतत्त्व जो दोनों बना है. कहनेके लिए यह "**क्षेत्र-क्षेत्रज्ञयोर् ज्ञानं यत् तज् ज्ञानं मतं मम**" बहुत साधारण वाक्य है पर इसके पीछे रहा हुआ दर्शन और विज्ञान

बहुत गहरायी लिए हुए है.

इसी बातको भागवत कैसे बताता है वह देखे. क्योंकि महाप्रभुजीका बहुत साफ मत है कि **"तद्विस्तारो भागवतम्"** गीताका ही विस्तार भागवत है. जो बात गीतामें कही गयी है उसीका भागवतमें तीनरूपसे विस्तार किया गया है. कभी दार्शनिक विधि द्वारा, कभी कहानीके रूपमें, कभी स्तुतिके रूपमें. गीताके बहुत सारे सिद्धान्त भागवतमें विस्तृत रूपमें कहे गये हैं. यह महाप्रभुजीका मत है.

त्वं महान् प्रकृतिः सूक्ष्मा रजःसत्त्वतमोमयी, त्वमेव पुरुषो अध्यक्षः सर्वक्षेत्रविकारवित्. गीतामें भगवान्ने संक्षेपमें यह बात कही है कि **"इदं शरीरं कौन्तेय! 'क्षेत्रम्'इति अभिधीयते, एतद् यो वेत्ति तं प्राहुः 'क्षेत्रज्ञः' इति तद्विदः"** इस शरीरको तू क्षेत्र समझ और जो इस शरीरको जानता है उसे क्षेत्रज्ञ. और भागवतमें इस स्तुतिके द्वारा इसका किस प्रकार विस्तार हुआ है. सूक्ष्म प्रकृति सत्त्व-रज-तमोमयी और 'महत्तत्त्व' मानें चित्त, अर्थात् अपना unconscious mind और जिससे यह पैदा हुआ. ऐसी त्रिगुणात्मक प्रकृति और इसमें फंसी हुयी आत्मचेतना और उसका 'अध्यक्ष' पुरुष मानें अधि-अक्ष=जो आंखसे दीख रहा है, उसे देखनेवाला. जैसे 'प्रत्यक्ष' मानें जो आंखके सामने हो वह. 'अधि' शब्दका संस्कृतमें अर्थ है कि जो ऊपर-भीतर व्याप्त हो. 'पुरुष' मानें जो पुरमें रहता हो अथवा किसी स्थानपर रहता हो. इस त्रिगुणात्मिका शरीरमें अथवा क्षेत्रमें जो चेतना रह रही है वह अपनी इन्द्रियोंको supervise कर रही है और अपने चारों ओरके वातावरणको भी supervise कर रही है वह 'पुरुषो अध्यक्षः' कहलाता है. अभी अन्तर्यामीकी बात नहीं आयी है. दोनोंको मिश्रित करें तो अन्तर्यामी बनेगा. अभी तो यहां क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ की ही बात चल रही है.

अब एक 'क्षेत्र' मानें field दूसरा क्षेत्रज्ञ मानें knower जो कि field नहीं जो अपने आपको क्षेत्रसे अलग मानता है. तीसरा पुरुष जो इन दोनोंको देख रहा है. चौथे भगवान् जो क्षेत्र क्षेत्रज्ञ और चेतना सभी कुछ बने हैं. इसीसे कहते हैं कि **त्वमेव पुरुषो अध्यक्षः सर्वक्षेत्रविकारवित्** सारा क्षेत्र और उस क्षेत्रमें आते विकार मानें fluctuations उन सभीका ज्ञाता भी तू ही है. अर्थात् तू ही क्षेत्र है व्यापक और सूक्ष्म. तू ही पुरुष है, तू ही क्षेत्रका उनके विकारोंका अध्यक्ष भी है. अब यदि इस अर्थमें गीताके इस वाक्यको देखोगे कि "**इदं शरीरं कौन्तेय! 'क्षेत्रम्' इति अभिधीयते, एतद् यो वेत्ति तं प्राहुः 'क्षेत्रज्ञः' इति तद्विदः**" इस सिद्धान्तका यहां किस प्रकार विस्तार हुआ है यह समझ आयेगा! भागवतका सौंदर्य यह है कि गीताके दो श्लोकोंका विस्तार यहां एक श्लोकमें किया गया है. कम शब्दोंमें अत्यधिक विस्तार यह गीताका ही विस्तार है. यह संकेत इस शब्दसे मिलता है **सर्वक्षेत्रविकारवित्** जो गीता क्षेत्र क्षेत्रज्ञ दोनोंके परिज्ञाताके बारेमें कह रही है.

<u>सुबोधिनी</u> :

त्वं महान् इति, सर्वस्यापि जगतो अंकुरभूतो महान्. तस्यापि क्षेत्ररूपं प्रकृतिः. तस्याअपि कार्योत्पत्तिसाधारणरूपं योनिवद् या प्रकृतिः सा सूक्ष्मा. तस्याअपि मूलभूता गुणाः, तन्मयी आधिदैविकी प्रकृतिः गुणाः च त्वमेव. एवं पञ्चरूपत्वम् उक्तम्. एवं योनिरूपत्वम् उक्त्वा बीजरूपत्वम् आहतुः त्वमेव पुरुषः इति, तस्याः प्रकृतेः पुरुषः तस्याः तावत्त्वसम्पादकः. अध्यक्षः साक्षी, साक्षिरूपं भिन्नम् इति सिद्धान्तः. क्षेत्रज्ञः च तथा क्षेत्राभिमानी जीवः, सोऽपि क्षेत्रज्ञो भवति; क्षेत्रं जानातीति व्युत्पत्त्या यः क्षेत्रज्ञः स मुख्यो भवान्. एतावता यत्रैव प्रमाणप्रवृत्तिः केनापि प्रकारेण तदेव भवान् इति उक्तं भवति.

सर्वस्यापि जगतो अंकुरभूतो महान्. 'महान्' मानें जो unconscious

mind (सुषुप्ति-अवस्थाक चित्त) है वह हमारे समग्र वैयक्तिक जगत्का अंकुरभूत है. उसकी समष्टि महत् तत्त्व भी बाह्यविषयविहीन चेतना है जाग्रदवस्थाकी तुलनामें सुषुप्त है. जबसे फ्रॉइड्ने कहा कि माइन्ड्के तीन प्रकारके functions होते हैं, Conscious subconscious and unconscious. उसके बाद लोग कहने लगे कि "ओ हो!, कितनी बड़ी साइंस्ने रिसर्च की है!" हम तो कहते ही थे कि जो महान् है मानें अपना unconscious mind वह अंकुरभूत है क्योंकि मूलरूपसे सत्त्व रज तम वाली त्रिगुणात्मक प्रकृतिका सबसे पहला रूपान्तरण है. ऐसा रूपान्तरण कि जिसमें चेतनाको अपनेमें कैद कर सके, जैसे लोहेके गोलेको आगमें डालो तो वह आगको अपने अंदर ले कर स्वयं गर्म हो जाता है. जैसे हीटर्का तार बिजलीके प्रवाहको अपनेमें ले कर दूसरी वस्तुओंको जलानेकी या गर्म करनेकी सामर्थ्यवाला बन जाता है, ठीक उसी प्रकार प्रकृतिका पहला रूपान्तरण महत्तत्त्व है. जिसके द्वारा चेतनाको अपने अंदर कैद करके उसको अग्नि प्रदान करनेका सामर्थ्यशाली बनाती है. तभी तो चेतना क्रियाशील हो पायेगी. जब-तक अग्नि नहीं होगी तब-तक आगेकी क्रिया किस प्रकार चलेगी! इसी कारण इसे अंकुरभूत कहा है. जैसे तांबेका अथवा किसी धातुका तार ही बिजलीको आगे भेजनेकी सामर्थ्य रखता है, उसी प्रकार चेतनाको क्रियाशील बनानेके लिए प्रकृतिका पहला रूपान्तरण महत्तत्त्वके रूपमें हुआ. मानें प्रकृति उस unconscious mind को अपनेमें कैद करके उसे क्रियाशील होनेकी सामर्थ्य प्रदान करती है, उसे Conscious बनाता है Now it becomes capable of allowing the current of consciousness to go through it but it is still not aware of the external stimulli.

इस कारण ही कहा गया है कि अपनी सुषुप्तावस्थाके चित्तका जाग्रत अवस्थामें हमें भान नहीं होता कि अपने भीतर कोई चित्त जैसी वस्तु है. क्योंकि जागते समय अपना मन अहंकार और बुद्धि काम

कर रही होती है. 'मन' मानें यदि मैं कुछ कह रहा हूं और आप ध्यान दे पा रहे हो तो आपका मन मेरे कहनेमें है. इसके साथ यदि आपको यह भान भी है कि आप ही सुन रहे हो तो यहां आपका अहंकार काम कर रहा है. यदि मेरी बात सुनते-सुनते आपको अपने होनेका अहसास ही नहीं रहा, तो आपका अहंकार खंडित हो गया. और क्या सुन रहे हो इसका विश्लेषण भी कर पा रहे हो तो आपकी बुद्धि काम कर रही है. जाग्रत अवस्थामें तो ये तीन ही काम कर रहे हैं. चित्तकी बात तो तब सुनी जायेगी जब ये तीनों शान्त होंगे. ये तीनों इतने व्यस्त रखते हैं कि चित्तकी ध्वनि तो हमें सुनायी ही नहीं देती.

ऐसी शान्ति हमको केवल सोनेके समय ही मिलती है, तभी चित्तकी आवाज़ हमको सुनायी देती है. उस समय ही चित्तमें भरा हुआ स्वप्नके रूपमें बाहर आता है. इसीलिए चित्तको 'सुषुप्तिसाक्षी' कहा गया है. नींदमें ही चित्तको अपनी बात कहनेका अवसर मिलता है. अहंकार बोल रहा है मानें self awareness. मन बोल रहा है मानें awareness of the external world और इनके बीचमें झूलती हुयी बुद्धि. अब इसके बीचमें चित्तकी आवाज़को सुननेका अवसर कहां है! जब सो जाते हैं तब ही चित्त अपनी बात कहना प्रारम्भ करता है, यह सिद्धान्त है.

यह पहला स्टेप् है कि प्रकृतिके संसर्गमें आ कर हमारा unconscious mind consciousness को कैद करता है. सर्वस्यापि जगतो अंकुरभूतो महान्. सारे जगत्का 'अंकुरभूत' मानें महत् तत्त्व ब्लू-प्रिंट् है. गीतामें भी भगवान् कहते हैं कि "मम योनिः महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधामि अहं, सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत!" (भग.गीता १४।३) यहां भगवान् महत्को 'ब्रह्म' कह रहे हैं. "इस महत्को योनिकी तरह समझो. जब मैं अपनी चेतनाका शुक्राणु उस डिम्भाणुमें प्रविष्ट

करवाता हूं, तब सृष्टि उत्पन्न होती है'' इसीको आधार मान कर महाप्रभुजी जगत्का अंकुर महत्को कह रहे हैं. महत् पहला बीज है Seed-like matter में Consciousness का. **तस्यापि क्षेत्ररूपं प्रकृतिः** इस महत्के चारों ओर तो प्रकृति है जो कि सत्त्व-रज-तमोमयी है. **तस्याअपि कार्योत्पत्तिसाधारणरूपं योनिवद् या प्रकृतिः सा सूक्ष्मा. तस्याअपि मूलभूता** गुणाः. जैसी प्रकृति है वह सूक्ष्म है. **तस्याअपि मूलभूता गुणाः.** प्रकृति इन तीनों गुणोंको सन्तुलित रखती अवस्था है. ये तीनों गुण आये कहांसे? **ब्रह्म सच्चिदानन्दसे** है. महाप्रभुजी यह बताते हैं कि सत्मेंसे सत्त्वगुण चिद्मेंसे रजोगुण और चेतना और आनन्द मेंसे तमोगुण आये हैं. ये सारे गुण भगवान्से ही प्रकट हुए हैं. तीनों गुण एक प्रकृतिके रूपमें सन्तुलित थे. इस सन्तुलनमें चेतनाके कारण थोड़ी हल-चल आनेसे सत्त्वकी प्रधानता हुयी जो कि जड़रूप सृष्टि है. इसीके साथ इस सत्में चित्के कारण चेतनाको कैन्द्र करनेकी सामर्थ्य आयी. जिसको 'महद्ब्रह्म' कहा गया. यदि यह प्रधानता रज अथवा तम की आती तो यह स्थिति नहीं होती.

'तम'का अर्थ समझो. यह एक ऐसी अवस्था है कि जिसको अंग्रेजीमें inertia अथवा निष्क्रियता कहते है. किसी भी प्रकारकी क्रियाशीलता नहीं. रज एक ऐसी अवस्था है जो कि agile है चञ्चल है, सत् ऐसी अवस्था है जो कि sensitive है, संवेदनशील है. उदाहरणके लिए यदि हम मोमबत्ती जलायें तो लौ एकदम सीधी जलती है पर थोड़ा भी हवाका झोंका आया तो agile हो जाती है. वही हवाका झोंका यदि तेज आ जाये तो बुझ जाती है. inertia stage में पहुंच जाती है. एक ही वस्तु तीन तरहसे व्यवहार कर रही है. ऐसे ही हरेक जड़ वस्तुका का तीन तरहका व्यवहार है. इसी प्रकार अपना भी तीन तरहका व्यवहार है. जब हम बहुत agile होते हैं तो insensitive अथवा असंवेदनशील हो जाते हैं. एक

आदमीको एक साथ दस काम सौंप दो तो या तो वह उत्तेजनामें सब गड़बड़ कर देगा (रजोगुण) अथवा कोई भी काम करेगा ही नहीं तमोगुण.

वही आदमी चित्तकी सात्त्विक अवस्थामें धीरे-धीरे सब काम कर लेगा. बालकोंमें भी ये ही तीन अवस्थाएं साफ दिखलायी देती हैं. अपनी बुद्धिकी क्रियाओंमें भी ये तीनों अवस्था दिखायी देती हैं. हरेक matter में भी यही तीनों अवस्था दिखायी देती हैं. सरोवरमें भरा हुआ पानी एकदम सात्त्विक अवस्थामें होता है. जैसे ही कोई तूफान आया वह एकदम चञ्चल हो जाता है. फिर कोई भी आये उसे डुबो देता है. गर्मीमें वह जल inertia में चला जाता है. सारे पंचतत्त्वोंमें ये तीनों अवस्थाएं देखी जा सकती हैं. यह अवस्थाको चित्तकी सात्त्विक अवस्था कहा जाता है. क्योंकि यहां सत्गुणकी प्रधानता है. इससे आप समझ सकते हैं कि हरेक वस्तु कैसे तीनों प्रकारसे व्यवहार कर रही है!

(प्रश्नोत्तर)

प्रश्न : आपने समझाया कि भगवान् सच्चिदानन्द हैं. उनमेंसे तीन गुण सत्त्व-रज-तम किस प्रकार प्रकट हुए?

उत्तर : गुणका अर्थ हम क्वॉलिटी समझते हैं पर ऐसा है नहीं. संस्कृतमें 'गुण'का अर्थ होता है धागा सूत डोरा. सच्चिदानन्द रूपी भगवान्मेंसे तीन रेशे या सूत सत्त्व-रज-तमके रूपमें व्युच्चरित होते हैं. यह कण रूपसे नहीं प्रकट होती. सूत या डोरा होनेके कारण एक-दूसरेसे गुंथ जाते हैं. जैसे लड़कियोंकी चोटी गूंथी जाती है उसी प्रकार यह चोटी कई प्रकारसे गूंथी जा सकती है क्योंकि यह बाल भी डोरेकी तरह हैं. डोरेका रूप होनेसे इनको कोई भी रूप दिया जा सकता है. यदि कणके रूपमें होते तो इतने विकल्प नहीं हो सकते थे. कपासका भी कपड़ा नहीं बन सकता जब-तक

हम उसको डोरेके रूपमें उसका रूपान्तरण नहीं कर देते.

प्रश्न : आपने कहा कि ब्रह्ममेंसे जीव अथवा गुण व्युच्चरित हुए. वे कहां हुए क्योंकि ब्रह्मके बाहर तो कुछ हो ही नहीं सकता.

उत्तर : सही बात है व्युच्चरित हो कर वे रहे तो ब्रह्ममें ही. जैसे बादल वातावरणसे अलग हो कर भी वातावरणमें ही तो रहता है. उसका एक अलग रूप होता है. वातावरणसे अलग होनेके कारण ही उसका एक अलग रूप दिखलायी देता है. वह चलता भी है. उसके चारों ओरका वातावरण नहीं चलता, स्थिर रहता है. बस उसी प्रकार जीवका भी व्युच्चरण समझना चाहिये.

प्रश्न : जब जीव ब्रह्मसे अलग हुआ तो वे अलग-अलग गुण; सात्त्विक राजस तामस, किस प्रकार हुआ ?

उत्तर : ये गुण जीवके नहीं हैं. जीव तो चेतना है, जो गुणरहित है. सच्चिदानन्दमें से तीनों गुण अलग हुए. पहले कणके रूपमें, फिर उनका रूपान्तरण हुआ डोरेके रूपमें. जीव डोरेके रूपमें नहीं है. जब वे तीनों डोरेके रूपमें आये तो उनमें गुण प्रकट हुए. अब ये एक-दूसरेके साथ बुने जा सकें ऐसे हो गये. जब सन्तुलित प्रकारमें हैं तो वह 'प्रकृति' कहलाती है और जैसे ही सन्तुलन बिगड़ा तो जगत् प्रकट हो गया. तभी इसमें इतनी विषमताएं प्रकट हुयीं. जब सत्त्वका अनुपात अधिक होता है तो वह चित्त बनता है, रजका अनुपात अधिक होता है तो वह सदा चञ्चल मन बनता है, तमका अनुपात अधिक होता है तो वह अहंकार बनता है. बुद्धि तीनोंका रंग लिए होती है. मनके साथ यदि वह बैठे तो चञ्चलता ग्रहण कर लेती है और अहंकारके साथ यदि बैठे तो निष्क्रिय हो जाती है. चित्तके साथ बैठे तो स्वस्थ हो जाती है. संस्कृतमें एक श्लोक है "*मनांसि यत्र गच्छन्ति तत्र गच्छन्ति वानराः शास्त्राणि यत्र गच्छन्ति तत्र गच्छन्ति वै नराः.*" मन जहां जाये उसके पीछे जो जाये उसका नाम 'वानर' और जो बुद्धिके

पीछे चले वह 'मनुष्य' कहलाता है.

अब कहते हैं कि **तस्याअपि कार्योत्पत्तिसाधारणरूपं योनिवद् या प्रकृतिः सा सूक्ष्मा.** तस्याअपि मूलभूता **गुणाः, तन्मयी आधिदैविकी प्रकृतिः गुणाः च त्वमेव. एवं पञ्चरूपत्वम् उक्तम्. एवं योनिरूपत्वम् उक्त्वा बीजरूपत्वम् आहतुः त्वमेव पुरुषः इति, क्षेत्रज्ञः च तथा क्षेत्राभिमानी जीवः, सोऽपि क्षेत्रज्ञो भवति; क्षेत्रं जानातीति व्युत्पत्त्या यः क्षेत्रज्ञः स मुख्यो भवान्. एतावता यत्रैव प्रमाणप्रवृत्तिः केनापि प्रकारेण तदेव भवान् इति उक्तं भवति.** योनि मानें गर्भद्वार और बीज मानें शुक्राणु. **तस्याः प्रकृतेः पुरुषः तस्याः तावत्त्वसम्पादकः. अध्यक्षः साक्षी, साक्षिरूपं भिन्नम् इति सिद्धान्तः.** 'साक्षी'का अर्थ आज हम witness कहते हैं. संस्कृतमें जिसकी आंख साथ हो, जो यह दावा कर सके कि "मैंने आंखसे देखा है" वह 'साक्षी' कहलाता है. **क्षेत्रज्ञः च तथा क्षेत्राभिमानी जीवः, सोऽपि क्षेत्रज्ञो भवति; क्षेत्रं जानातीति व्युत्पत्त्या यः क्षेत्रज्ञः स मुख्यो भवान्.** क्षेत्रको जाननेवाला क्षेत्रज्ञ. साधारण तौरपर हम कितने क्षेत्रोंको जानते हैं? अपनी जितनी रेंज होगी उतना ही तो. पर तू सारे क्षेत्रोंको और क्षेत्रज्ञोंको जानता है इतना ही नहीं एक ही कालमें वे तेरे समक्ष हैं. हमारी यह सीमा है कि हम सभी क्षेत्रोंको ना तो जानते हैं और ना देख पाते हैं. और कालकी सीमा तो हमारे साथ बंधी ही है.

शब्दशः सानुवाद यह है "उस महत् तत्त्वरूप कार्यकी उत्पत्तिके लिये योनिरूप जो सूक्ष्म प्रकृति जिसके मूलमें रहे तीन गुणोंके रूप रहे हुवे हैं ऐसी त्रिगुणमयी प्रकृति जो आधिदैविकी होती है वह प्रकृति स्वयं भगवान्का एक रूप है. यों पांचों के पांच रूपोंमें प्रतिपादित करके अर्थात् उन रूपोंको योनिरूप कह कर उस योनिमें बीजरूपेण भी भगवान्को प्रतिपादित करते हैं आप ही पुरुष भी हो. अर्थात् प्रकृतिके पुरुष, यानि प्रकृतिको इतने सारे रूप धारण

करानेवाले. 'अध्यक्ष' यानि साक्षी, सिद्धान्ततः साक्षिरूप भिन्न होता है. और क्षेत्रज्ञ यानि क्षेत्राभिमानी जीव, क्योंकि वह जीव भी क्षेत्रज्ञ बन जाता है; क्षेत्रको जाननेवाला ऐसी व्युत्पत्तिके आधारपर जो क्षेत्रज्ञ होता है ऐसे मुख्य तो भगवान् स्वयं हैं. एतावता सिद्ध होता है कि प्रमाणसिद्ध जो कुछ वस्तु हो वह तो खुद भगवान् ही हैं."

नील् आर्मस्ट्रोंग् जब चंद्रमापर हो कर आया तो उसका एक इंटरव्यू छपा था. उससे पूछा गया कि "आपको वहांके वातावरणमें कैसा अनुभव हुआ." उसने बहुत रोचक उत्तर दिया "मुझे वहांका क्षितिज बहुत विचित्र लगा." ऐसा उसने इस कारण कहा क्योंकि पृथ्वीपर एक व्यक्तिकी क्षितिज देखनेकी जो सीमा है, चंद्रमाके छोटे आकारका होनेके कारण वह भी छोटी हो जाती है. इस कारण पृथ्वी बहुत बड़ी लगती थी. इसी प्रकार ब्राह्मिक दृष्टि होनेसे सारी वस्तुएं बहुत छोटी दिखलायी देती हैं. छोटे क्षितिजमें छोटी वस्तु भी बहुत बड़ी लगती है. इसीलिए कह रहे हैं कि क्षेत्रं जानातीति व्युत्पत्त्या यः क्षेत्रज्ञः स मुख्यो भवान्. हम भी क्षेत्रज्ञ हैं और वह भी क्षेत्रज्ञ है, पर अपने देखनेके क्षितिजकी सीमा बहुत छोटी है और उसकी बहुत बड़ी. वस्तु वह कि वही है पर देखनेवालेकी दृष्टिका अनुपात बदल जाता है. अपने लिए क्षेत्र बहुत बड़ा है पर उसके लिए वही क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ छोटे-छोटे हैं. **एतावता यत्रैव प्रमाणप्रवृत्तिः केनापि प्रकारेण तदेव भवान् इति उक्तम् भवति.** अन्तमें कहना चाह रहे हैं कि अपने ज्ञानका कोई भी विभाग जिस प्रकार भी काम कर रहा हो पर उसकी सामर्थ्य तो केवल भगवान् है भगवान् है और भगवान् ही है. हममें ज्ञान कई प्रकारसे आता है, इन्द्रियोंसे अन्तःकरणसे और भी कई प्रकारसे. पर उसका क्षेत्र केवल भगवान् ही है. भागवतमें एक श्लोक आता है "**मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यते अन्यैरपि इन्द्रियैः अहमेव न मत्तो अन्यद् इति बुध्यध्वम् अञ्जसा**" (भाग.पुरा.११।१३।२४) "मनसे वाणीसे आंखसे और दूसरी

इन्द्रियोंसे जो भी कुछ गृहीत हो रहा है वह केवल मैं हूं और दूसरा कोई नहीं है. इतना तू बुद्धिसे संक्षेपमें समझ ले" यही बात नलकूबर-मणिग्रीव भी यहां कह रहे हैं कि observer of field और observable field क्षेत्र क्षेत्रज्ञ और इन दोनोंको जाननेवाला सभी कुछ तू ही है. संक्षेपमें कहनेका अर्थ यह है कि जिस आधिदैविकका निरूपण पहले श्लोकोंमें किया. उनका आध्यात्मिक पुरुषरूप और आधिभौतिक प्रकृतिरूप भी तू ही है.

(श्लोक-४, मूलश्लोक-३२)

(कृष्णकी प्रत्यक्षग्राह्यताका निराकरण)

अवतरणिका :

तत्प्रमाणं श्रुतिरेव, नतु प्रत्यक्षमिति अलौकिकत्वसम्पादनार्थं भगवतः प्रत्यक्षग्राह्यत्वं निराकरोति :

तत्प्रमाणं श्रुतिरेव, नतु प्रत्यक्षमिति अलौकिकत्वसम्पादनार्थं भगवतः **प्रत्यक्षग्राह्यत्वं निराकरोति** भगवान्‌का जो कॅरेक्टर् है वह सचमें आंखसे अथवा तर्कसे समझ आये ऐसा है नहीं. **अलौकिकत्वसम्पादनार्थं** भगवान् जो प्रत्यक्षसे गृहीत हो रहे हैं उसमें तुम्हें घृणाका भाव नहीं आना चाहिये. अलौकिक सम्पादनके लिए कह रहे हैं. यहां एक बड़ा प्रश्न खड़ा होता है कि **तत्प्रमाणं**. उसकी विरुद्धधर्माश्रयताका प्रमाण. प्रात्यक्षिक तर्कके दायरेमें कैद रहनेपर विरुद्धधर्माश्रयी स्वरूप समझमें नहीं आ सकता. इसी कारण श्रुति प्रमाण है. **तत्प्रमाणं श्रुतिरेव, नतु प्रत्यक्षमिति अलौकिकत्वसम्पादनार्थं** भगवतः **प्रत्यक्षग्राह्यत्वं निराकरोति** अब श्रुतिको 'श्रुति' किस कारणसे कहा जाता है? वह इस कारण नहीं कि श्रुतियोंका अर्थ ऋषियोंने विचार कर लिखा अथवा ऋषियोंने देख कर लिखा है. ऋषि भी परब्रह्मके पुरुषोत्तमवाले पक्षको देख नहीं सकते है. ऋषियोंको लोकोत्तर दृष्टिवाले कहा जाता है. जो दृष्टि अपने पास नहीं है जो दृष्टि उनके पास है. ऋषियोंने पुरुषोत्तमको

नहीं देखा अपितु ऋषियोंने पुरुषोत्तमका वर्णन करनेवाली श्रुतियोंको सुना है, तब उनको ऐसा अनुभव हुआ कि तत्त्व ऐसा होना चाहिये. इसलिए उन्होंने कुछ विचार करके नहीं लिखा है. वह उनकी बौद्धिक तार्किकतासे लिया हुआ निर्णय नहीं है अपितु यह एक पारलौकिक पराबौद्धिक अनुभव है. ऐसा लोकमें भी होता है.

एक किशनगढ़का किस्सा आपको सुनाता हूँ. वहां सब पत्थरके मकान हैं और छत भी पत्थरकी ही होती है. दूसरी मंज़िलके हमारे कमरेके नीचे पत्थरकी एक मोटी पटिया थी, उसमें अच्छाखासा क्रॅक् आ गया. लोगोंको यह लगता था कि यह कभी भी गिर सकती है. मैं यहां बम्बईसे कई विशेषज्ञोंको ले कर वहां गया. उन्होंने कहा कि "इसे तो तोड़नेके अलावा कोई चारा नहीं है." वे सारे इंजिनियरिंग् पढ़े हुए थे. मुझे लगा कि यह तो बहुत बड़ा काम हो जायगा. मैंने वहांके एक लोकल् आदमीको बुलवाया. उसने कहा कि "यह तो बहुत छोटी समस्या है" मैंने कहा "इस पत्थरपर रूम्का लोड है, तो यह कैसे छोटी समस्या है!" उसने कहा "आप कहें तो मैं अभी इसे बदल दूँ. ऐसा तो मैं कई जगह कर चुका हूँ" अब मुझे न तो इन्जीनियरिंग्का ज्ञान और न इसकी मिस्त्रीगिरीका ज्ञान. बस इतना ही समझ आ रहा था कि यह क्रेक् है तो कभी भी गिर सकती है. मैंने उन दोनों कि एक मीटिंग् करवानेकी सोची. मिस्त्री बोला कि "महाराज यह सब क्या कह रहे हैं, मुझे समझ नहीं आता और मैं क्या कह रहा हूँ, ये नहीं समझ सकते. मैं तो इतना जानता हूँ कि ऐसे कई घर मैंने रिपेयर् किये है. आप कहें तो मैं कर दूँ." यहांवाले सिविल् इन्जीनियर् बोले कि "महाराज! यह गांवके अनपढ़ लोग है. आप इनकी बातोंमें न आयें. ऐसा न हो कि बादमें पछताना पड़े" मैंने उससे पूछा कि "भई! ये इतने पढ़े हुए हैं, तो इनकी बात सुन तो ले" उसने गामठीभाषामें कहा "महाराज जो ऑपरेशन् करता है वही इंजेक्शन्

लगाता है. या तो आप इनसे कहो या मुझसे कहो'' अब जब वह इतने विश्वाससे बोला तो मुझे भी लगा कि बातमें कुछ दम है. वह बोला कि आपको यदि भय लग रहा है तो मैं ऊपरवाले रूमकी फर्शपर कांच चिपका देता हूँ. यदि उसमें क्रेक् आयी तो ही तो फर्श गिरेगी. यदि उसे कुछ नहीं होगा तो भयकी क्या आवश्यकता है! उसने वहांसे पूरा पत्थर निकाल कर नया पत्थर घुसा दिया. उन लोगोंके पास ऐसी समझ है कि वे ये सब कर सकते हैं. इंजीनियरींग्में ऐसा कुछ पढ़ाते ही नहीं हैं तो उन्हें पता भी नहीं चलता, उनका क्या दोष है? ऐसा पाठ उन्हें पढ़ाया ही नहीं जाता. अभी तक उस मकानको कुछ नहीं हुआ है. जैसेका तैसा है. केवल छब्बीस बरसके अकेले लड़केने पूरा पत्थर बदल दिया, कंधेपर रख कर और टूटा हुआ बाहर भी फेंक आया.

ऐसे ऋषि-मुनियोंने भी श्रुतियोंको सुना और सुन कर गांवके लोगोंकी तरह देखा. जो कि हमारे बुद्धिजीवी नहीं देख पाये. वह तो वैसे ही भयभीत करते रहते हैं कि वह ऐसा नहीं है, वैसा नहीं है. ऋषियोंने उसे समझा है, जाना है, अनुभव किया है. इसी कारण उन्हें 'श्रुति' कहते हैं. प्रत्यक्षसे कई बार पता नहीं चलता. प्रत्यक्षसे तो मुझे भी लग रहा था कि जिसके ऊपर पूरा कमरा खड़ा है वह पत्थर कैसे बदला जा सकता है! उसे निकालनेपर पूरा कमरा ही नीचे आ जायगा. तार्किक दृष्टिसे तो यह बात ठीक ही थी. उसके करनेके पश्चात् मुझे लगा कि यह तो बहुत आसान है. बस बात क्लिक् होनी चाहिये. कोलम्बस्के बारेमें भी ऐसी ही एक प्रचलित कथा है. पोपके अनुसार यह पृथ्वी सपाट थी, गोल नहीं. स्पेन् और पुर्तगाल् दोनों क्रिश्चियन देश पोपकी चापलूसी करते थे कि आप हमें अधिकार दो कि हम सारे देश जीतें और वहां इसाई धर्मका प्रचार करें. पोपके पास उस समय पृथ्वीका जो नक्शा था उसपर उसने एक रेखा खींची और कहा कि इस रेखाके पूर्वमें

पुर्तगाल्को जाना है और पश्चिममें स्पेन्को. कोलम्बस् बहुत चतुर था. उसे तुरंत क्लिक् हो गया कि पोपको यह पता नहीं है कि पृथ्वी कैसी है. उसने स्पेनकी रानीको चाबी भरी कि आप मुझे खलासी और पोत दो मैं पश्चिमकी ओर जा कर पूर्व दिशाको जीत कर आ जाऊँगा. इसलिए पुर्तगाल यहां भारतकी ओर आया और स्पेन् अमेरिकाकी तरफ गया. गोवा दमन वगैरह पुर्तगालने जीत रखे थे. स्पेन् यहां नहीं आ पाया क्योंकि पोपकी इस ओर आनेकी मनाही थी. कोलम्बस्ने स्पेनकी रानीको कहा तो उसने सारी व्यवस्था कर दी. उस बेचारेसे एक गलती हो गयी कि वह अमेरिकाको भारत समझ बैठा. वहांके लोगोंको उसने रेड-इंडियन् कहा. वापस आया तो अमेरिकाके तोते-जानवर लेके आया. पोपको भी उसका साहस देख कर भय उत्पन्न हुआ कि कहीं मेरी बात मिथ्या सिद्ध न हो जाय! इसलिए उसने उसका बहुत विरोध किया. उसके साथ जो सैनिक थे उनको भी पोपने डरा दिया कि तुम समुद्रमें जाते हो तो वहां, जहां समुद्रका अन्त आ जायगा तो तुम नीचे गिर जाओगे. सैनिक भी डर गये कि यह दुःसाहस करना चाहिये कि नहीं? कोलम्बस्ने एक चालाकी की. शोर्ट-कट लेनेके लिए वह सीधा पश्चिमकी ओर न जा कर उत्तरकी तरफ गया. नॉर्थमें जानेपर उसका दिशायंत्र बंद हो गया. जो मुर्गा वह ले गया था उसने चार बजे कुकडूकूं की पर वहाँ सवेरा तो हुआ ही नहीं. तो पता नहीं उसे क्या हुआ, उसने समुद्रमें कूद कर आत्महत्या कर ली. उसके सैनिकोंने सोचा कि यह तो मुर्गा भी समझता था कि इस काममें खतरा है और यह कोलम्बस् नहीं समझ रहा. यह सोच कर वे उसकी हत्या करने गये. कोलम्बस्ने उनसे कहा कि "थोड़ी धीरज रखो" पर सैनिक मानें ही नहीं. तभी सामनेसे एक पक्षी उड़ता हुआ आया. उसे देख कर कोलम्बस्ने उन्हें समझाया कि यह पक्षी कोई नीचेसे थोड़े ही आ रहा है! वहां कोई न कोई धरती होनी चाहिये. तब सैनिकोंको थोड़ा समझ आया और वे अमेरिकामें

लॅन्ड् कर गयें. वहांसे वह बहुत सारे सेम्पल् ले कर आया. पादरीने कहा "इसमें तुमने कौन-सी बड़ी बात की? पृथ्वी सपाट थी इसीलिए तो वहां जा सके तुम." पोपको समझ नहीं आ रहा है पर कोलम्बस्को तो पृथ्वीके आकारके बारेमें पूरी समझ है.

इसी तरह हमको अपनी बुद्धिसे कई बात समझमें नहीं आती पर ऋषियोंको कोलम्बस्की तरह ब्रह्म दिखलाई दिया, अनुभवमें आया और इसी बातके प्रमाण उन्होंने शास्त्रोंमें दिये हैं. कोलम्बस्की बात पादरीने भी तो स्वीकार की ही थी. इसीलिए नलकूबर-मणिग्रीव कह रहे हैं कि **तत्प्रमाणं श्रुतिरेव, नतु प्रत्यक्षमिति अलौकिकत्वसम्पादनार्थं भगवतः प्रत्यक्षग्राह्यत्वं निराकरोति** भगवान्के दो रूप हुए, एक, ब्रह्मका प्रत्यक्षग्राह्यरूप मानें जो हमको यहां दिखलाई दे रहा है. हम सब ब्रह्मके प्रत्यक्षग्राह्यरूप है. दूसरा ब्रह्मका श्रुतिग्राह्यरूप, जो हमको दिखता नहीं है परन्तु श्रुतिद्रष्टाओंको कोलम्बस्की तरह क्लिक् हुआ है. पहला लौकिक है और दूसरा अलौकिक है. 'अलौकिक' मानें लोकमें ऐसा अनुभव हमको नहीं होता है, इस अर्थमें अलौकिक. पर जैसे ही लौकिक और अलौकिक कहा तुरंत हमारा मस्तिष्क उसकी डाइकोटॉमी प्रारम्भ कर देता है. 'अलौकिक' शब्द कहते ही हमारे चेहरेके भाव बदल जाते है, हृदयकी गरिमा बदल जाती है. हमारा लौकिकके प्रति छुआछूतका भाव है और अलौकिकसे एकदम प्रभावित होनेका जो भाव है, वह तब-तक है जब-तक हमें ब्रह्मज्ञान नहीं है. यदि ब्रह्मज्ञान हो तो इस प्रकारकी सोच हमें होती ही नहीं.

एक बहनने मुझे एक बार एक बहुत मजेदार बात कही कि "बाबा आप हर प्रवचनमें शेरो-शायरी कहते हो. मैं तो जब कॉलेजमें थी, जवान थी तब मुझे शेरो-शायरीका शौक था. अब तो मुझे अलौकिक भगवत्सेवामें ही रुचि है." मैंने कहा कि "बात तो तुम्हारी सच्ची है पर एक बात समझाओ कि भगवान् जो तुम्हारे यहां

बिराज रहे हैं उसका स्वरूप लौकिक है कि अलौकिक?" वह बोली "वह तो अलौकिक है." मैंने कहा कि "वह स्वरूप बना तो इसी लौकिक पदार्थसे है तो लौकिक हुआ. यदि लौकिक पदार्थ तांबा पीतल पत्थर से बने स्वरूपमें तुम्हें अलौकिकता दिखलाई देती है, तो शेरो-शायरीमें तुम्हें अलौकिकता दिखलाई क्यों नहीं देती? तुमने अपनी यंग्-एज्की अवस्थामें शेरो-शायरी छोड़ दी क्योंकि तुम्हें लौकिकतापर घिन आ गयी.

पर यदि तुम उसी शेरो-शायरीमें एक समानान्तर ब्रह्मका पहलु ढूंढ सको तो वह शेर लौकिक होते हुए भी अलौकिक हो गया और ब्रह्मके बारेमें भी यदि तुम कोई लौकिकता ढूँढ रहे हो तो ब्रह्म भी लौकिक हो जायगा." इसका मूल कारण क्या, गुंसाईजीने इस बारेमें एक बहुत सुन्दर बात कही है. जब लौकिक कामनासे हम भगवान्का भजन करते हैं तो कृष्णका स्वरूप, कृष्णकी सेवा तो वही है पर पुरुषोत्तम कृष्ण वहां नहीं है. जैसे लौकिक कामना मानें "मेरा व्यापार चल जाय, मैं परीक्षामें पास हो जाऊँ, मेरे लड़केकी अथवा लड़कीकी शादी हो जाय, ऐसी कामनासे जब तुम किसीको भज रहे हो तो वह लौकिक मूर्ति ही है, पुरुषोत्तम नहीं है. और लौकिक विषयको भी यदि जैसे अन्ततः जिस स्वरूपको हम पधरा रहे हैं वह या तो धातुका पत्थरका कागजका चित्र होगा, उसे भी यदि अलौकिक भक्तिभावसे भजेंगे तो वह अलौकिक हो जायगा. क्योंकि भगवान् आज्ञा कर रहे हैं कि "**यद्-यद् धिया त उरुगाय विभावयन्ति, तत्तद् वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय**" (भाग.पुरा. ३।९।११) "**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तान् तथैव भजामि अहम्**" (भग.गीता ४।११) "अलौकिक भावसे यदि तुम मुझे भज रहे हो तो लौकिकमें मेरी अलौकिकता प्रकट हो सकती है." अपने यहां ऐसा कोई सिद्धान्त नहीं है कि भगवान्का इस लोकमें प्रवेश वर्जित हो वो आ-जा नहीं सकता, क्योंकि इस समस्त ब्रह्माण्डकी बुनियादी आधार वह

है. लौकिक प्रत्यक्षमें जो घृणाका भाव है और अलौकिकसे श्रुतिज्ञानसे जो प्रभावित होनेका भाव है, उन दोनोंका समीकरण तुम्हें समझना चाहिये.

वह किस प्रकार समझमें आयेगा, उपनिषद्में उसके लिए एक बहुत सुन्दर व्यवस्था बतायी गयी है. "**यत् चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति तदेव त्वं ब्रह्म विद्धि न इदं यद् इदम् उपासते**" "**यद् मनसा न मनुते येन आहुः मनो मतं, तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि न इदं यद् इदम् उपासते**" (केनोप.१।६,१।५) आंखसे तुम जिसको देख नहीं सकते पर आंख जिसके कारण देख रही है, उसे तुम ब्रह्म मानो. मनसे जिसका तुम विचार नहीं कर सकते पर मन जिसके कारण विचार कर पाता है, उसे तुम ब्रह्म मानो. वाणीसे जिसे तुम बोल नहीं सकते परन्तु वाणी जिसके कारण बोलनेके लिए समर्थ हो रही है, उसे तुम ब्रह्म समझो. "**यद् वाचा अनभ्युदितं येन वाक् अभ्युद्यते.**" (केनोप.१।४) लौकिकके साथ अलौकिकका समीकरण समझानेका यह उपनिषद्का प्रयास है. यह समझानेकी एक अद्भुत प्रक्रिया है कि जो लौकिक प्रत्यक्ष है और जो अपनी इन्द्रियोंसे हो रहा है और उन इन्द्रियोंसे गृहीत होते वह विषय कदाचिद् वह ब्रह्म तुम्हें गृहीत न भी होता हो पर थोड़ी शान्तिसे विचार करो कि किस शक्तिके कारण यह लौकिक तुम्हें प्रत्यक्ष हो रहा है! किस व्यवस्थाके कारण तुम्हें प्रत्यक्ष हो रहा है! उसे यदि ब्रह्मकी तरह जानोगे तो लौकिकके प्रति घृणाका भाव मिट जायगा और तुरंत ही तुम्हें लीलाभाव प्रकट होगा. जो आंखसे दिखलाई नहीं देता वह आंखकी देखनेकी शक्तिमें छिपा बैठा है. इसी कारण वह नहीं दिखलाई देता है.

गुरु गोरखनाथकी वार्तामें एक बहुत सुन्दर प्रसंग आता है. वह किसी गांवमें गये तो वहां किसीने उन्हें हीरा भेंट रख दिया. वह जन साधारणके सामने भेंट धरा इसलिए किसीका मन चल

गया कि "यह तो अच्छा है" वह गुरुके साथ लग गया और कहा कि "मैं आपका आजसे चेला हूं." गुरु गोरखनाथ समझ गये कि अवश्य ही इसमें कुछ ठीक नहीं है. उन्होंने कहा "चल तू मेरे साथ-साथ रह." तीन दिन वह उनके साथ रहा. फिर थक कर उसने कहा "गुरुजी! थक गया ढूँढ-ढूंढ कर, आपने वह हीरा छुपाया कहां?" गुरुजी बोले "तेरी झोलीमें" तू मेरी झोलीमें उसे ढूँढ रहा था." मुझे पता था कि मेरा शिष्य बननेका तेरा हेतु क्या है. तू मेरी झोली मानें हवेलीमें ढूंढ रहा है पर वह तो तेरी झोली मानें तेरे घरमें ही छुपा है. "**गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः**" (भ.व.२) उसको तू देख नहीं रहा है. कई बार क्या होता है कि जो वस्तु जहां छिपी है वहां हम उसे नहीं ढूंढते हैं. इधर-उधर भटकते हैं. मूल बात यह है कि लौकिक प्रत्यक्षमें हमें ब्रह्म दिखलायी नहीं देता पर वह छुपा है. जहांसे तुम उसे देख रहे हो लौकिक बातमें तुम्हें ब्रह्म दिखलायी ही नहीं देता पर वह छुपा है आपकी आंख कान नाक हृदय के अंदर. अपनी सारी चतुराई गुरु गोरखनाथके शिष्यकी तरह ही है.

उस घृणाको हटानेके लिए महाप्रभुजी कह रहे हैं कि **ननु प्रत्यक्षमिति अलौकिकत्वसम्पादनार्थं भगवतः प्रत्यक्षग्राह्यत्वं निराकरोति** भगवान् प्रत्यक्षसे गृहीत नहीं होते हैं क्योंकि भगवान्की लौकिक रूप लेनेके पश्चात् भी अलौकिकता मिटती नहीं है. वह अलौकिकता कहां छुपी हैं? जहांसे तुम्हें लौकिकता गृहीत हो रही है, उसके पीछे. इसलिए वह तुम्हें बाहर दिखलायी नहीं देता. इसको उपनिषद् बहुत सुन्दर तरीकेसे समझाता है "**कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानम् ऐक्षद् आवृत्तचक्षुः अमृतत्वम् इच्छन्**" (कठोप.२।१।१) कोई एकमें ही इतना धीरज होता है कि जो आंख बंद करके किसी समय भीतरकी तरफ झांकता है कि यह दिखाई कहांसे दे रहा है, वह तो मैं देखूं. यह सुनाई कहांसे दे रहा है, उसे तो मैं सुनूं. मैं बोल

कहांसे रहा हूं, उसे बोल कर तो देखूं.

"**पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयंभूः तस्मात् पराक् पश्यति न अन्तरात्मन्, कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानम् ऐक्षद् आवृत्तचक्षुः अमृतत्वम् इच्छन्**" (कठोप.२।१।१) परमात्माने अपनी इन्द्रियोंके प्रवाहको बाहरकी ओर मोड़ दिया है "**तस्मात् पराक् पश्यति**" इसलिए सब कुछ बाहरका ही दिखलाई देता है, भीतरका कुछ दिखलाई नहीं देता. "**कश्चिद् धीरः**" किसीमें ही इतनी धीरज होती है कि वह अंदरकी ओर झांकना चाहता है कि अंदर क्या है. ऐसा करनेसे अंदरके बहुत सारे अनुभव उसे होते हैं और उसे ही अमृतत्त्व प्राप्त होता है. यह ब्रह्मको समझनेकी एक व्यवस्था है. इस व्यवस्थापर महाप्रभुजी कह रहे हैं कि जो प्रत्यक्षसे ग्रहण हो रहा है, इस कारण तुम उसके प्रति घृणा मत जाग्रत करो. एक बार ऐसी सोच जाग्रत करो कि प्रत्यक्ष जिससे दिखलायी दे रहा है, वह क्या है. उसके बाद तुम्हें ब्रह्मभाव जगेगा कि अंदर तो ब्रह्म है जो मुझे आंखोंसे यह दुनिया दिखा रहा है.

यदि वह भगवान् दुनिया दिखला रहा है तो तुम्हें दुनियाके प्रति एक अहोभाव होना चाहिये, न कि घृणाका भाव. सेवा किसकी, धातु पत्थर कागज की अथवा परब्रह्मकी? यदि परमात्माकी ही सेवा करनी है तो वह तो बाहर भी है, अंदर भी है और कण-कणमें व्याप्त है. जो कण-कणमें व्याप्त है उसे किसी भी स्थानपर हम अस्वीकार नहीं कर सकते. ऐसा अपने मस्तिष्कमें भरा जाना चाहिए. ऐसा यदि हो तो ही महाप्रभुजी कह रहे हैं कि तब ही तुम्हें भजनका सेवाका लाभ मिलेगा.

यदि तुम्हारा विचार ऐसा हो कि वह तो केवल हवेलियोंमें ही कैद है. अपने यहां तो आचार-विचार भी नहीं है, शान्ति नहीं

है टी.वी चलता रहता है. तो बताओ कि हवेलीमें टी.वी नहीं चलता क्या? हम महाराजोंके पास तो तुमसे भी बेहतर टी.वी होते है क्योंकि हमको तो वह मुफ्तमें मिलते है. तुम्हें तो कमा कर लाने पड़ते हैं. यह व्यवस्था ऐसी है कि सब कुछ बाहरी दुनिया दिखानेके लिए ही बनाया गया है. इसलिए बाहर ही सभी कुछ दिखलाई देता है, कुनवारा छप्पन-भोग मनोरथ हिंडोला. इन सबसे घरमें विराजते ठाकुरजीका वॉल्टेज् कम हो जाता है. अपने इन्द्रियोंके व्यापारका सेट्-अप् ही इस प्रकारका है.

नलकूबर-मणिग्रीव जो संक्षेपमें कहना चाह रहे हैं, वह यह है कि प्रकृति पुरुष महान् आदि सब आप ही हैं. इसका प्रमाण श्रुति है, ना कि प्रत्यक्षप्रमाण. क्योंकि आप अलौकिक हैं और अलौकिकका ज्ञान प्रत्यक्षसे नहीं हो सकता. भगवान् बेचारेकी बड़ी दयनीय स्थिति है. नहीं दिखता इसीलिए सुरक्षित है. एक बार सामने आ जाये तो यह मनुष्य इतना खतरनाक प्राणी है कि उसे बेच ही दे.

गोकुलमें नंदालय बनाया है, उसमें एक पालना बनाया है, उसमें भगवान् झूलते हैं, उसकी न्योछावर दोसौ रुपये! मेरे एक दोस्त हैं उस्ताद अब्दुल हलीम जाफरखां. एक दिन वे मुझसे बोले "श्याम भैया हम आपके कृष्णको पलना झुला कर आये हैं." मैंने पूछा "खां साहब! कैसे झुलाने दिया आपको?" बोले "बस दोसौ रुपये लिये और झुलाने दिया." फिर मैंने पूछताछ की तो पता लगा. वहां एक नंदालय बनाया है, वहां यह कौभांड चल रहा है. अब यदि भगवान् साक्षात् हाथमें आ जाये तो रेट् तो और बढ़ जायेगा. दो-सौके दो लाख कर देंगे. हाथमें नहीं है तब भी इतना बेचा जा रहा है. हाथमें आ गया तो पता नहीं क्या कर देंगे! मनुष्य सचमुच बहुत खूंखार है. मूर्ख इतने हैं कि कहते हैं "यहां भगवान्ने पूतनाको मारा था. यहां यदि तुम रजमें लोटोगे

तो पूतनाकी तरह तुम्हारा भी उद्धार हो जायेगा." अरे क्या हम भगवान्‌को विष पिलाना चाहते हैं पूतनाकी तरह? भगवान्‌को क्या हम मारने आये हैं, कैसे-कैसे नाटक हम लोग करते हैं भगवान्‌के नामपर. हकीकतमें तो जो दोसौ रूपयोंकी लालचमें पलना झूलते भगवान्‌को बेचता हो वह खुद पूतना है. इसीलिए कह रहा हूं कि वह तब-तक सुरक्षित है जब-तक गृहीत नहीं हो रहा. गृहीत हो गया तो पता नहीं क्या कर देंगे उसका. **अलौकिकत्वसम्पादनार्थं भगवतः प्रत्यक्षग्राह्यत्वं निराकरोति** भगवान् अलौकिक होनेके कारण प्रत्यक्षसे गृहीत नहीं होते.

श्लोक :

गृह्यमाणैस् त्वम् अग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर् गुणैः ।।
कोनु इह अर्हति विज्ञातुं प्राक् सिद्धं गुणसंवृतः ।।३२।।

अनुवाद :

प्रकृतिके विकारोंके गुण जो प्रत्यक्षग्राह्य होते हैं उनके प्रत्यक्षमें भगवान् खुद गृहीत या अनुभूत होते नहीं हैं।।

अतः ऐसे प्राकृत गुणोंसे ढंके हुवे और उन प्राकृत गुणोंसे पूर्वसिद्ध भगवान्‌को कौन भलीभांति जान सकता है? ।।३२।।

गृह्यमाणैस् त्वम् अग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर् गुणैः, कोनु इह अर्हति विज्ञातुं प्राक् सिद्धं गुणसंवृतः प्रकृतिके गुणोंके जो विकार हैं सत्त्व रज तम वो ही गृहित हो रहे हैं. जिसने भी कोई रूप धारण किया है उसमें यह गुणविकार प्रवेश कर गये हैं जैसे घोंघा अपने खोलमें छिप जाता है उसके बाद घोंघा दिखलायी नहीं देता केवल ऊपरी खोल दिखाई देता है. इसी प्रकार प्रकृतिकी कई वस्तुएं

हमको इन्द्रियोंसे दिखलायी देती है, कानसे सुनाई देती है, आंखसे दिखलाई देती है, त्वचासे स्पर्शकी जाती है पर अन्दर रहनेवाला जो परमात्मा है उसका अनुभव हमें नहीं होता. अपनी इन्द्रियोंके बहिर्मुख होनेके कारण. पर भगवान् अपने गुणोंमें ही छिपे हुए हैं. प्रकृतिके गुण कोई भगवान्के अवगुण नहीं है. भगवान्ने स्वयं ही ऐसे गुण प्रकट किये हैं कि वे गुणोंमें ही छुप जाते हैं.

जैसे वह 'पा' पिक्चर् बनी थी कि जिसमें अमिताभ बच्चन खुदके मेकअपमें छुप गया था. उसका मेकअप् उसकी अद्भुत प्रतिभाकी निशानी है. वह कोई उसका अवगुण नहीं है. बेटा बाप बन गया और बाप बेटा बन गया. अपने बेटेका बेटा बनना अमिताभकी प्रतिभाकी निशानी है. पर हमें लगता है कि "लम् यलिद व लम् यूलद" बाप बेटा कैसे हो सकता है? बेटा मानना उसकी तौहीन करने जैसा है. अरे! यह उसकी एक्टिंगकी प्रतिभाकी निशानी है कि बेटा बाप बन गया और बाप बेटा बन गया. हम उसके कार्योंको उसकी एक्टिंगकी प्रतिभाके रूपमें देखेंगे तो ही हमें इस लीलाका आनन्द आ सकेगा. यह ब्रह्मकी कैसी प्रतिभा है कि जो उसके द्वारा उत्पन्न गुण हैं उन्हींमें वह छिप गया है. प्रत्यक्षके बारेमें जो लौकिकताके प्रति अपना घृणाका भाव होता है उसे निकाल कर तुम उसीमें पुरुषोत्तमताका भाव जाग्रत करो तो सारी वस्तु तुम्हें समझमें आ सकेगी. इसीलिये इरानी सूफी कवि कहता है *खुदरा नुमाई व नुमाई हमाजा* वह खुदको नुमाया नहीं करता है जो सब जगह नुमाया हो रहा है.

इसी कारण भागवतमें नलकूबर-मणिग्रीव कह रहे हैं कि **गृह्यमाणैस् त्वम् अग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर् गुणैः** जो वस्तु प्रत्यक्षके द्वारा ग्राह्य हो रही है और जो त्रिगुणात्मकता प्रकृतिके विकारसे ग्राह्य हो रही है उससे तेरे गुण ही गृहीत होते हैं. क्योंकि तू इन गुणोंमें ही

छिपा हुआ है. पर उसके गुणोंको कैसे पहचानना इनकी निशानी एक ही है कि जिस आंखसे तुझे देखना चाहता हे तू उस आंखके अंदर ही बसा है. जिस कानसे तुझे सुनना चाहता है उस कानमें ही तू बसा है. जो हीरा अपने अंदर ही छुपा है उसे बाहर ढूंढनेसे क्या लाभ यह बात कहना चाह रहे हैं. मेरी अपेक्षा यह है कि आप स्वयं इसका अध्ययन करें मैं आपको एक सामान्य रूपसे समझा रहा हूं. इसके बाद आता है "कथं निस्तार" इसका निस्तार हम देखेंगे कि जो छिप गया है उसे किस प्रकार ढूंढना? ढूंढना हमें है, दाव अपने ऊपर है. छोटे बच्चे भी आंख मिचौलीके खेलमें यही करते हैं कि कई बार वह ढूँढनेवालेके पीछे ही छुप जाते हैं. ब्रह्म भी ऐसी ही चतुराई कर रहा है. वह ही प्रकृतिका गुण बना है और इस प्रकृतिके गुण जब गृहीत हो रहे हों उसमें गायब दीखता है. तुझे कौन जान सकता है क्योंकि गुणरूप प्रकट होनेसे पहले तू था और उसके बाद जब अपनेमेंसे तूने यह गुण प्रकट किये तो उसके परदेमें ही तू छुप गया. गुण तो गृहीत होते हैं पर ब्रह्म गृहीत नहीं होता.

जब भी कोई शुक्राणु गर्भमें प्रवेश होता है तो ना उसके कोई हड्डी होती है ना कोई इन्द्रिय और ना कोई हृदय अथवा किडनी होती है. केवल एक सूक्ष्म कणकी तरह होता है. जीवन जीनेके यह सारे साधन उसके भीतर ही विकसित होते हैं. इस शरीरमें जो हमारे जीनेका साधन हैं बस वही नहीं दिखायी देता शेष सब कुछ दिखायी देता है. गृह्यमाणैस् त्वम् अग्राह्यो जो कुछ गृहीत हो रहा है उसमें बस तू ही गृहीत नहीं होता. सांस लेता हुआ मनुष्य दिखलाई देता है पर फेफड़े दिखलाई नहीं देते हैं जीता हुआ मनुष्य दिखायी देता है पर धड़कता हुआ दिल दिखलाई नहीं देता इसी प्रकार यह जो भी कुछ ग्रहण हो रहा है वह तेरे कारण ही तो गृहीत हो रहा है पर इसमें तू दिखलाई नहीं दे रहा.

"प्राक् सिद्धं गुणसंवृतः" गुणसे ढका हुआ पहलेसे ही सिद्ध था उसके बाद तू गुणोंसे ढक गया.

सुबोधिनी :

गृह्यमाणैः इति, गृह्यमाणैः घटपटादिभिः कृत्वा त्वम् अग्राह्यः तद्रूपोऽपि तैः गृहीतैः न गृहीतो भवसि. नवा तैः सह, तेषां धर्माणां त्वदाश्रयाणां धर्म्याश्रयसहभाननियमात्. तत्र हेतुः विकारैः इति, विकारे हि प्रकृतिः न प्रतीयते, यथा सन्निपाते. तत्र प्राकृतः तिरोभवति. स्वप्रकाशमेव हि जडैः सह भासते यथा ज्ञानं विषयैः, तथा भगवानपि विषयान् प्रकाशयन् विषयैः सह कुतो न भासते इति चेत् तत्र आहतुः प्राकृतैः इति, प्रकृतिर्हि जडा पुरुषाच्छादिका, प्रकृतौ प्रविष्टं पुरुषं न प्रकाशयति. तथा प्राकृतैरपि तत्र स्थितो भगवान् आच्छाद्यतइति न भगवान् गृह्यते. ज्ञानन्तु अन्यनिष्ठम्. ननु पुरुषो भगवान् प्रकृतिं स्त्रियम् उपमर्द्य कथं न प्रकाशते इति आशंक्य आहतुः गुणैः इति, गुणाहि बन्धकाः रञ्जकाः च. अतः प्रकृतौ प्रविष्टः तद्गुणानुरक्तः तद्गुणैः वशीक्रियते इति तैः सह न प्रकाशते.

गृह्यमाणैः घटपटादिभिः कृत्वा त्वम् अग्राह्यः तद्रूपोऽपि तैः गृहीतैः न गृहीतो भवसि. घटपट रूप मानें घड़ा अथवा कपड़ा हो सारे रूप उसीने धारण किये हैं पर उसमें ही तू छिप गया है दिखलाई नहीं देता. **नवा तैः सह, तेषां धर्माणां त्वदाश्रयाणां धर्म्याश्रयसहभाननियमात्. तत्र हेतुः** अब जबकि तू गृहीत नहीं होता तो उन वस्तुओंके धर्म तो दिखलाई दे रहे हैं पर तेरे धर्म अविनाशी अविकारी अनादि लीलात्मक होनेके दिखायी नहीं देते. घड़ेके गुण पानी भरनेका बजानेका आदि तो दिखायी देते हैं पर तेरे गुण तो तब दिखायी देंगे जब तू इनमें दिखायी देगा. इसका हेतु क्या है **विकारैः इति, विकारे हि प्रकृतिः न प्रतीयते** एक बार तुम्हारी दृष्टि विकारमें अटकी फिर तुमको प्रकृति दीखनी बंद हो जाती है. जैसे

एक बार स्क्रीन्पर सीन् प्रोजेक्ट् हुआ तो स्क्रीन् दीखना बंद हो जाता है सीन् दीखता है.

इसी प्रकार तेरे जो गुण हैं वह दिखायी देने बंद हो जाते हैं. स्क्रीन्पर सारे रंग दिखायी देते हैं उसमें गहरायी दिखायी देती है उसमें सीन् चलता हुआ भी दिखायी देता है जबकि वहां ऐसा कुछ है नहीं. विकारके सारे गुण दिखायी देते हैं पर तेरे जो गुण हैं स्क्रीन् होनेके वह दिखायी नहीं देते **यथा सन्निपाते.** 'सन्निपात' आयुर्वेदका शब्द है. अपने अंदर वात पित्त कफ, सत्त्व-रज-तमकी जैसी तीन प्रकृति हैं. वात पित्त कफ से गढ़ा हुआ शरीर जब सन्तुलित हो कर चलें तो कोई तकलीफ नहीं होती. पर एक बार असन्तुलित अथवा सन्निपात होनेपर यह तीनों दिखायी नहीं देते केवल रोग दिखायी देता है. किसी एकके अनुपातमें नहीं रहनेसे कोई न कोई रोग हो ही जाता है. **तत्र प्राकृतः तिरोभवति. स्वप्रकाशमेव हि जडैः सह भासते यथा ज्ञानं विषयैः** सन्निपात यदि हो जाये तो सारी तकलीफ प्रारम्भ हो जाती हैं अपने सन्दर्भमें, पर गुणोंके सन्दर्भमें कहें तो गुण प्रबल हो गये और लक्षण गौण हो गये ऐसा कहा जायेगा. मानें शरीरके संदर्भमें इसे जानेकी अवस्था कही जायेगी. जीवनके संदर्भमें सन्निपात नहीं हुआ है इसे जीवित अवस्था कही जायेगी. ऐसा होनेपर अपनी प्राकृत अवस्था तिरोहित हो जाती है. चेतना स्वप्रकाशित है. जड़को प्रकाशित करने के लिए हमें चेतनाका प्रकाश self awarenss चाहिये. (self awarenss means a unique type of awareness for which subject and object both are self. How do you define the awareness of say sofa set? Sofa set is an object for you and you are subject for you But when subject and object both are self then it is known as self awareness.) अपनी आंखसे जब हम अपनीही आंखको कांचमें देखते हैं तो जो देख रहा है और जो दीख रहा है वह एक

ही है ऐसा अहसास self awarenss है. इसलिए ऐसा कहा जाता है कि अपने किसी कोमल अंगको कोई छूए तो गुलगुली मचती है पर यदि उसी अंगको हम ही छूऐं तो ऐसा नहीं होता क्योंकि यहां subject और object एक ही हैं.

तथा भगवानपि विषयान् प्रकाशयन् विषयैः सह कुतो न भासते इति भगवान् ही जब विषयका प्रकाशन करते हैं क्योंकि उन्हीके कारण हमें अपनी आत्मचेतनाका अहसास हो रहा है और विषयके प्रकाशनके लिए हमें अपनी आत्मचेतनाको खोना नहीं पड़ता तो जगत्‌को प्रकाशित करनेमें तुम क्यों छुप रहे हो तुम्हें प्रकट रहना चाहिये. **तत्र आहतुः प्राकृतैः इति, प्रकृतिर्हि जडा पुरुषाच्छादिका, प्रकृतौ प्रविष्टं पुरुषं न प्रकाशयति. तथा प्राकृतैरपि तत्र स्थितो भगवान् आच्छाद्यतइति न भगवान् गृह्यते.** प्रकृति जड़ है और जब पुरुष उसमें प्रवेश करता है तो उससे आच्छादित हो कर उसका भी प्रकाशन होता नहीं है. प्रकृतिमें यदि प्रविष्ट ना हुआ होता तो किञ्चित प्रकाशन संभव होता पर ऐसा नहीं है. अब केवल प्रकृति ही प्रकाशित हो रही है. जैसे तुम्हारी self awareness ऐसी हो कि जिसमें देह कोई काम ना करता हो, जीभ ना बोलती हो, कान ना सुनता हो, कोई भी अंग काम ना करता हो तो क्या आप कह सकते हो की मेरी ऐसी आत्मचेतना है? जब भी आप कहते हो कि "मुझे ज्ञान है कि मैं कौन हूं कहां हूं" इसका अर्थ है कि आपके सारी कर्मेन्द्रियां सारी ज्ञानेन्द्रियां, आपकी इच्छा अनुसार काम कर रही हैं. उन्हींके सन्दर्भमें ही तो आप कह सकोगे कि आप आत्मचेतन हो पर यह शुद्ध आत्मचेतना तो नहीं है. इसका अर्थ है कि हमको जब शुद्ध आत्मचेतनाका ही अनुभव नहीं हो रहा है तो भगवान्‌की awarenessका अनुभव कहांसे होगा! इस शरीरसे हम कहते अवश्य हैं कि हम self-aware हैं पर वह pure self-awareness नहीं है. वह हमारे शरीरके साथ मिश्रित हो गयी है. **तथा प्राकृतैरपि**

तत्र स्थितो भगवान् आच्छाद्यतइति न भगवान् गृह्यते. भगवान् अपने ही आवरणसे आच्छादित हो जाते हैं. इसी कारण भगवान् गृहीत नहीं होते हैं.

यहां उदाहरण नहीं दिया है पर एकादश स्कन्धमें एक उदाहरण दिया है कि जो भी बादल बनते हैं वह सूर्यकी गर्मीके कारण नमी ऊपर जाती है और उसीसे बादल बनते हैं. और सूर्यको ही ढकते हैं. सूर्यसे बने हुए बादल जिस प्रकार सूर्यको ढक देते हैं उसी प्रकार भगवान्से बने हुए प्रकृतिके गुण भगवान्को ढंक देते हैं. एक सौन्दर्य और छुपा है इसमें कि बादल सूर्यके कारण ही दीख रहे हैं. सूर्य ना हो तो बादल दीखने भी बंद हो जायें. **ज्ञानन्तु अन्यनिष्ठम्** भगवान्का गुणरूप ज्ञान हो तब तो भगवान् गृहीत हो पाते. जीवात्मामें तो ब्राह्मिक चेतना और प्राकृत गुणोंके परस्पर संयोगके कारण जो ज्ञान प्रकट होता है वह अन्यनिष्ठ अर्थात् भगवान्के द्वारा लिये गये अन्यान्य जीवात्माओंमें निष्ठ है. **ननु पुरुषो भगवान् प्रकृतिं स्त्रियम् उपमर्द्य कथं न प्रकाशते इति आशंक्य** आहतुः यदि ऐसा है तो भगवान् तो पुरुषकी तरह है और प्रकृति स्त्रीकी तरह. अतः पुरुष तो स्त्रीसे बलवान होनेके कारण प्रकृतिपर काबू पा कर प्रकाशित होना ही चाहिये. प्रकृति कैसे आपको वशमें कर पायी कि आप दिखायी नहीं देते! **गुणैः इति, गुणाहि बन्धकाः रञ्जकाः च** गुण अर्थात् धागा या डोरा डोरेसे मनुष्य बंध जाता है. डोरेके द्वारा रंगा भी जा सकता है. अब बंध गया है और रंगा भी गया है तो उसे भगवान् कैसे दिखलायी देगा? जैसे पगड़ीको आंख तक बांध दो तो आंख ढक भी जाती है और रंग भी जाती है और माथेका आंखका जो मूल रंग है दिखायी नहीं देता ठीक उसी प्रकार यह भी है. अतः **प्रकृतौ प्रविष्टः तद्गुणानुरक्तः तद्गुणैः वशीक्रियते इति तैः सह न प्रकाशते.** इसी तरह प्रकृतिमें प्रविष्ट और उसके गुणोंसे अनुरक्त होनेके कारण भगवान् भी उन गुणोंके वशमें

हो जाते हैं. इस कारण प्रकाशित नहीं होते हैं. 'अनुरक्त'का बोलचालकी भाषामें अर्थ होता है आसक्त. पर इसका एक सूक्ष्म अर्थ और भी है कि जो वस्तु हमें अच्छी लगती हो उसके रंगमें रंगा जाना. तो भगवान् भी प्रकृतिके रंगमें रंगा जाते हैं.

सुबोधिनी :

ननु गुणाः साम्प्रतमेव जाताः, भगवांस्तु मूलभूतइति गुणक्षोभात् पूर्वमेव ज्ञात्वा उत्तरत्रापि तदनुवृत्तिः कथं न क्रियते? इति आशंक्य तत् परिहरन्तौ भगवान् तथैव करोति इत्यत्र हेतुं वदन्तौ तादृशस्य भक्तिमार्गप्रवर्तकत्वम् आहतुः को नु इह अर्हति इति. इह अस्मिन् संसारे, नु इति वितर्के; पश्चाद् उद्भूतः को वा प्राक् सिद्धं गुणक्षोभात् पूर्वस्थितं विज्ञातुम् इदमित्थतया द्रष्टुम् अर्हति! अपितु न कोऽपि. ननु अयमपि आत्मत्वाद् न इदानीं सिद्धः कुतो न अर्हति? इति चेत् तत्र आहतुः गुणसंवृतः इति, गुणैः वेष्टितः. गुणाहि पूर्वबुद्धिं दूरीकृत्य स्वरूपमपि आवृतवन्तः, अतो ज्ञातृज्ञेययोः आवरणाद् न ज्ञानं सम्भवति.

ननु गुणाः साम्प्रतमेव जाताः, भगवांस्तु मूलभूतइति शंका करते हैं कि "गुण तो बादमें आये भगवान् तो उससे पहलेसे थे!" **गुणक्षोभात् पूर्वमेव ज्ञात्वा उत्तरत्रापि तदनुवृत्तिः कथं न क्रियते? इति आशंक्य** यह पहलेसे जानते तो चाहे रंगा हुआ क्यों ना हो पर उसे पहचान तो सकते थे. नाटकमें अपना कोई पहचानका पात्र हो तो चाहे वह मेकअप् किया हो तो भी उसे पहचान तो सकते ही हैं उस तरहसे हम तुझे भी पहचान लेते. अब उसके समाधानमें कहते हैं **तत् परिहरन्तौ भगवान् तथैव करोति इत्यत्र हेतुं वदन्तौ तादृशस्य भक्तिमार्गप्रवर्तकत्वम् आहतुः** कोई भी नाटकका पात्र जो मेकअप् करके आया है वह कोई अपने होनेका संकेत दे तो ही तो हम उसे पहचान सकेंगे. ऐसा ना होनेपर अच्छे पात्रका केवल मेकअप् दिखलाई देता है. उसका चरित्र दिखलाई देता है पर वह व्यक्ति

दिखलाई नहीं देता. कहते हैं कि भगवान् ऐसा क्यों करते हैं अर्थात् क्यों अपने मेकअप्में छुप जाते हैं. इसके उत्तरमें कहते हैं कि भक्तिमार्गका प्रवर्तन इसी प्रकार हो सकता है. भक्तिमार्ग टिका ही इसपर है कि वह थोड़ा प्रकट है और थोड़ा अप्रकट. यह केवल ठाकुरजीके ही बारेमें सत्य है ऐसा नहीं है विवाहमें भी लड़का अथवा लड़की एक दूसरेके बारेमें यदि पूरा जान लें तो विवाह ही नहीं होगा और दोनों एक दूसरेके बारेमें कुछ भी ना जाने तो भी विवाह नहीं होगा. थोड़ी जानकारी मिले और थोड़ी ना मिले तो ही सुखसे विवाह हो सकता है. भक्तिमार्गकि लिए भी यही आवश्यकता है कि भगवान् थोड़े प्रकट रहें और थोड़े अप्रकट **को नु इह अर्हति इति. इह अस्मिन् संसारे, नु इति वितर्के; पश्चाद् उद्भूतः को वा प्राक् सिद्धं गुणक्षोभात् पूर्वस्थितं विज्ञातुम् इदमित्थतया द्रष्टुम् अर्हति!** अब भगवान्ने जब यह प्रक्रिया लीलाकी चुनी तो अब हम सब जीव आपको कहां खोजने जायें. पहले आप क्या थे यह तो हम देख नहीं सके तो हमें कैसे ज्ञात होगा कि आप पहले क्या थे! जितना हमें पता चल रहा है वह यह है कि जो आपका अभी रूप है.

बहुत पहले एक पिक्चर् गुड्डी नामकी आयी थी. उसमें लड़कीको एक हीरोकी फिल्म देख कर, उसकी लड़ाईके सीन् देख कर, उससे प्रेम हो जाता है. पर जब उसे उस हीरोकी असली जिंदगीके बारेमें पता चलता है जिसमें असलमें वह बहुत कमजोर होता है तो उसका मोह भंग हो पाता है. यहां भी यही प्रश्न खड़ा किया गया है कि आप यह लीलात्मक रूप दिखा रहे हो पर आप असलमें हो कैसे यह हम किस प्रकार समझ सकते हैं. **अपितु न कोऽपि. ननु अयमपि आत्मत्वाद् न इदानीं सिद्धः कुतो न अर्हति? इति चेत्** उसके उत्तरमें कहते हैं कि भगवान् चाहे कुछ भी हो पर यह तो पता है कि वह अपनी आत्माकी आत्मा है तो उस रूपको

तो उसे हमारे समक्ष प्रकट करना चाहिये तो कहते हैं कि **तत्र आहतुः गुणसंवृतः इति, गुणैः वेष्टितः. गुणाहि पूर्वबुद्धिं दूरीकृत्य स्वरूपमपि आवृतवन्तः, अतो ज्ञातृज्ञेययोः आवरणाद् न ज्ञानं सम्भवति.** गुणसे वेष्टित होनेके कारण गुण पूर्वबुद्धिको दूर कर देते हैं और स्वरूपको भी आवृत कर लेते हैं. इस प्रकार ज्ञाता और ज्ञेय दोनों गुण रूपी आवरणसे ढके होनेके कारण वह दिखलायी नहीं देते. इस प्रकार खुदके गुणोंसे भगवान् बंध गये हैं किसी औरने नहीं बांधा है, स्वयंही बंध गये हैं और दिखने बंद हो गये हैं.

(सिंहावलोकन मूलश्लोक २९-३२)

(कारिका : "मूलरूपो भवान्..."और प्रथमश्लोक : कृष्ण!...")

हम पहले मूलरूप मध्यरूप सृष्टिरूप और चौथा अवताररूप यों ब्रह्मके इन पहलुओंपर विचार करेंगे. पिछली बार मैंने आपको समझानेका प्रयास किया था कि पुरुषोत्तम किस प्रकार उपनिषदुसे निकला हुआ सिद्धान्त है. लोगोंको यह भ्रान्त धारणा है कि पुरुषोत्तम बौद्धोंसे आया हुआ सिद्धान्त है. इस शब्दका प्रयोग, बौद्धोंने पहले किया या हमने किया, यह मुद्दा नहीं है. मुद्दा यह है कि पुरुषोत्तमके अर्थरूपमें बौद्धके बहुत पहले उपनिषदूने कह दिया था. जिन लोगोंको ऐसा सोच है कि गीता महाभारतमें थी ही नहीं, बादमें कही गयी है और बुद्धधर्मका सिद्धान्त ले कर हमने बादमें महाभारतमें डाल दी है. उन लोगोंको ऐसा लगता है कि 'पुरुषोत्तम' शब्द बुद्ध भगवान्के बारेमें पहले प्रयुक्त है. क्योंकि यह शब्द कहीं भी वेद-उपनिषद्में कहीं भी नहीं आया. बुद्धके सिद्धान्तमें 'पुरुषोत्तम' शब्द कई बार प्रयोगमें आया है. इसलिए हमने यह शब्द वहांसे लिया है.

पर पुरुषोत्तमका अर्थ क्या है यह मुख्य मुद्दा है और उस शब्दका अर्थ हमने क्या देखा "**यस्मात् क्षरम् अतीतो अहम् अक्षरादपि च उत्तमो अतो अस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः**" (भग.गीता १५।१८)

क्षरसे मैं अतीत हूं और अक्षरसे उत्तम हूं. क्षरसे अतीत और अक्षरसे उत्तम होनेके बाद भी क्षर और अक्षर दोनों मेरे ही रूप है. यह बात उपनिषद्ने हमें किस प्रकार समझायी है यह हमने पिछली बार विस्तारसे देखा.

आज हम उन चार श्लोकोंका सिंहावलोकन करेंगे. मैं आपको टॅक्स्ट् नहीं पढ़ाऊँगा क्योंकि मेरी यह धारणा है कि आप सब टॅक्स्ट् तो पढ़ कर ही आते होंगे. मेरी यह अपेक्षा भी है कि टॅक्स्ट्में जो भी आपको परेशानी है वह आप मुझसे पूछो. मैं केवल उसके पीछे रहा हुआ सिद्धान्त ही पढ़ाता हूँ. यह मत समझना कि सिद्धान्त पढ़ा रहा हूँ इसलिए टॅक्स्ट् पढ़ा नहीं रहा हूँ. टॅक्स्ट् ही सैद्धान्तिक रूपसे पढ़ा रहा हूँ. इन चार श्लोकोंको अभी भी विस्तारसे हमें समझना बाकी है.

मेरे पहले अथवा दूसरे लॅक्चर्में मैंने आपको यह बात समझायी थी कि ब्रह्म एक कॅटेगोरिकल् टर्म् है, रिलेटिव् टर्म् (सापेक्ष शब्द) नहीं है. 'कॅटेगोरिकल्' मानें एब्सोल्यूट्. जैसे मनुष्य किसीके रिलेशन्में मनुष्य नहीं होता है. स्वयं ही इसका अर्थ शब्दसे ही मालूम होता है. पर काका-भतीजा पिता-पुत्र ये सब किसीके रिलेशन्में ही होते हैं. ये सब एब्सोल्यूट् टर्म् न हो कर, रिलेटिव् टर्म् हैं. परमात्मा रिलेटिव् टर्म् है. किसी आत्माके रिलेशन्में ही कोई परमात्मा हो सकता है. किसी मिनिस्टर्के रिलेशन्में ही कोई प्राइम्-मिनिस्टर् हो सकता है. ब्रह्म होना रिलेटिव् टर्म् नहीं है. भगवान् होना भी ॲब्सोल्यूट् टर्म् नहीं है क्योंकि 'भज्' धातुसे भगवान् बना है. जिसका भजन हो रहा है वे भगवान्. जो भजन कर रहा है वह भक्त. 'भज्' धातुकी क्रिया एक तरफ उसको भगवान् बना रही है और दूसरी तरफ व्यक्तिको भक्त बना रही है. इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि ब्रह्म कभी भी कृत्रिम नहीं हो सकता पर भगवान् कृत्रिम

(आर्टिफिशियल्) हो सकता है. यह शब्द मैं निन्दाके अर्थमें नहीं कह रहा हूँ. यह इस अर्थमें कह रहा हूँ कि पत्थर या हीरा जैसे प्राकृतिक होता है. कोई कारीगर उस पर कोई कारीगरी करे तो वह एक मूर्ति अथवा नग का निर्माण होता है तब वह कृत्रिम होता है. इसी प्रकार जब कोई भक्त भजन करता है तो ही वह ब्रह्म अथवा परमात्मा, भगवान् बनता है. भजन नहीं करे तो अपने आप तो कोई मूर्ति भगवान् नहीं बन पाती.

विद्वान् मनुष्य विद्वान् कब होता है जब उसने विद्यार्जन किया हो. व्यक्ति बुद्धिमान् तब ही होता है कि जब उसमें बुद्धि हो. बुद्धि नहीं है तो वह बुद्धिमान् नहीं बन सकता. जैसे भैंसको कितना भी पढ़ाओ पर वह भैंस ही रहती है. बुद्धिमान् विद्वान् और अध्यापक होना यह तीनों अलग बात है. प्रत्येक अध्यापक बुद्धिमान् अथवा विद्वान् हो यह भी आवश्यक नहीं है. व्यक्ति 'अध्यापक' तब ही कहलाता है कि जब वह अध्यापन करता है. अध्यापन करनेके लिए कोई अध्ययन करनेवाला तो होना चाहिये. इसी प्रकार चाहे कोई कितना भी बड़ा क्यों न हो पर यदि कोई उसका भक्त नहीं है तो वह भगवान् नहीं कहला सकता.

इसी प्रकार कृष्णके बारेमें महाप्रभुजी कह रहे हैं कि ब्रह्म परमात्मा भगवान् अपनी अखण्डताको निभाते हुवे जब जगत्में प्रकट होता है तब उसे 'श्रीकृष्ण' कहते है. "**सएव परमकाष्ठापन्नः कदाचिद् जगदुद्धार्थम् अखण्डः पूर्णएव प्रादुर्भूतः सन् 'कृष्णः'इति उच्यते.**" (त.दी.नि.१।१) इससे हम समझ सकते हैं कि जो चौथी कॅटेगरी अपने यहां आ रही है यह जगत्में प्रकट हुए ब्रह्मकी कॅटेगरी है. यहां कृष्णका ब्रह्म होना ॲब्सोल्यूट् बात है. कृष्णका परमात्मा होना किसी आत्माके रिलेशन्में बात आ रही है. कृष्णका भगवान् होना कृष्णके किसी भक्तके भक्तिमयी क्रिया द्वारा हो रहा है. कोई कृष्णका

भक्त न हो तो कृष्ण भगवान् नहीं हो सकता. पर श्रीकृष्णका कृष्ण होना यह ब्रह्म परमात्मा भगवान् होनेके कारण नहीं है अपितु ब्रह्म अपनी सारी शक्तियोंको निभाते हुवे जगत्में प्रकट होता है वह कृष्ण है. यों एक ही तत्त्वके चार पहलु हैं. इन चार पहलुओंमें जो श्रीकृष्ण या गीता जिसे 'पुरुषोत्तम' कह रही है वह पुरुषोत्तम इस अर्थमें है.

सभी आजके वैष्णवोके मस्तिष्कमें यह भूसा भर गया है कि जो उद्दण्डताके अथवा चमत्कारके काम करे तो उसे पुरुषोत्तम समझना चाहिये. अरे! पुरुषोत्तमता इससे नहीं आती. वह आती है क्षरसे अतीत और अक्षरसे उत्तम होनेसे. अतीतता और उत्तमता ऐसी नहीं है कि जो क्षर और अक्षर से अलग हो पर क्षर और अक्षर जिसके अंश हो.

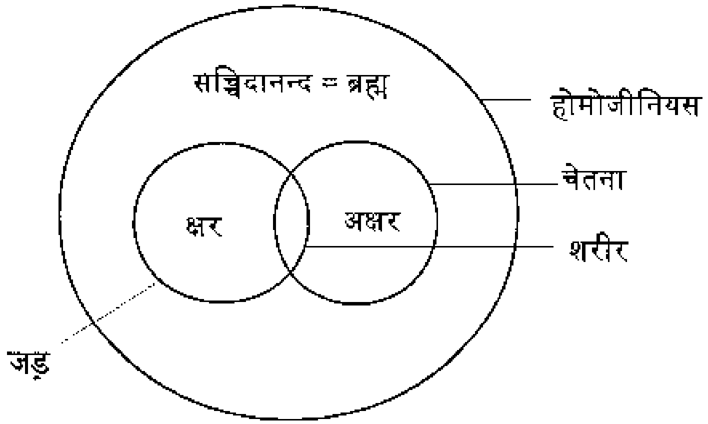

ग्राफीकली यदि हमको इसे समझना है तो एक बड़ा वृत्त ब्रह्मका बनाओ. उसके अंदर दो वृत्त क्षर और अक्षर के बनायें. क्षर और अक्षर के कुछ अंश एक-दूसरेको ओवर्-लेप् करते हुए हों. इसमें एक समझनेकी बात यह है कि ब्रह्मका कॅरेक्टर होमोजीनियस् है. इस होमोजीनियस् कॅरेक्टर्को उपनिषद्में इस प्रकार कहा गया है, "**कृत्स्नः प्रज्ञानघनएव अयम् आत्मा**" (बृह.उप.४।२।१३) उपनिषद्ने सैंधा नमकका उदाहरण दिया है कि सैंधा नमकसे कोई आकार यदि बनाएं तो उसका कोई भी अंग सैंधा नमकका होगा. उसका कोई भी अंग-प्रत्यंग ऐसा नहीं होगा कि जिसमें सैंधा नमक न हो. उसीको अंग्रेजीमें 'होमोजीनियस् कॅरेक्टर्' कहा जाता है. वह एक 'कृत्स्नः प्रज्ञानघन' है मानें होमोजीनियस् है. सभी ठिकाने एक जैसा ही है. जो भी कुछ तत्त्व उसमें है वह विभागोमें बंटा नहीं है, एक ही प्रकारका है. सूर्य भी ऐसा ही है. वह प्लाज़्मिक् फॉर्ममें होनेके कारण पूर्णरूपसे होमोजीनियस् है. पृथ्वीका उदाहरण लें. पृथ्वी सॉलिड् है, लिक्विड् है, गैस भी है, अग्नि भी है. चारों तत्त्व अलग-अलग प्रकट हो गये हैं. सूर्यके पिंडमें ये चारों तत्त्व अलग नहीं है. वहाँ कुछ भी सॉलिड् लिक्विड् गैस अग्नि नहीं है. सब कुछ प्लाज़्मिक् फॉर्ममें है. सारे तत्त्व उसमें होमोजीनियस् कॅरेक्टर् हैं. उसमेंसे अलग होनेके बाद भी पृथ्वीमें भीतर अभी भी अग्नि है. बाहर कुछ पपड़ी जम गयी है चायके प्यालेमें भरी चायके ऊपर जैसी जम जाती है. हम जिस ठोस पृथ्वीपर घूम रहे हैं, बिल्डिंग् बना रहे हैं, वह केवल चायकी मलाईकी तरह है.

हमारे सारे नृत्य-नाटक इस मलाईके लिए ही हो रहे हैं. यदि यह ऊपरकी परत हट जाय तो चायकी मलाईपर बैठी मक्खीकी तरह हम डूब जायेंगे. समझनेकी बात इसमें यह है कि किसी भी होमोजीनियस् वस्तु तत्त्वविभागोंमें नहीं बंटी होती. पर पृथ्वी सूर्यसे अलग हुयी है. उसके ऊपर ठोस पपड़ी है, भीतर लावारस है.

ऊपर पानीके रूपमें समुद्र और नदी है. यहां हवाका वातावरण है. इसमें अग्नि भी प्रकट होती है. यह चारों तत्त्व यहां अलग-अलग प्रकट हो गये हैं. सूर्यमें यह चारों तत्त्व अलग-अलग न हो कर एक ही है, होमोजीनियस् है. इससे हमें यह समझ लेना है कि होमोजीनियस् तत्त्वसे अलग-अलग तत्त्व (मल्टीप्लीसिटी) किस प्रकार प्रकट होती है! इसीसे आपको आगेका श्लोक समझमें आएगा.

मानो कि हमने एक होमोजीनियस् एक तत्त्व उत्पन्न किया. उसमें हमने सारे रंग प्रयोग कर दिये. अब होगा क्या कि जो भी रंग हमने अलग-अलग प्रयोगमें लिए, वह यहां तीन रूपमें दिखलाई दे रहे हैं. यहां देखो यह एक रंग हो गया है होमोजीनियस् और यहां यह सब अलग-अलग दिख रहे हैं. सोर्स एक होमोजीनियस्में है. उसी प्रकार होमोजीनियस् सच्चिदानन्द ब्रह्ममेंसे सत् चित् और आनन्द अलग होते हैं. जैसे इसी चित्रमें देखो कि जैसे नीले रंगको हम आनन्द मान लें. सत्को हम पीला रंग मान लें और चित्को हम लाल रंग मान लें. यदि इन तीनों रंगोको हम इकट्ठा भी कर दें तो भी यह विभागोंमें ही दिखलाई देगा क्योंकि यह सब तत्त्वसे अलग हो गये हैं. इस कारण इनके अलग-अलग विभाग बन गये. अब इन विभागोंमें इनका तात्त्विक होमोजीनियस् कॅरेक्टर् छुप जाता है. ठीक उसी प्रकार, पृथ्वीमें वह प्लाज़्मिक् नेचर् था. पृथ्वीमें ठोस तरल और गैस के रूपमें अलग-अलग विभाजित हो गया है. इन सबमें सूर्यका प्लाज़्मिक् नेचर् अब प्रकट नहीं है. उसी प्रकार इन पदार्थोंके अलग होनेपर होमोजीनियस् प्लाज़्मिक् फॉर्म्का तत्त्व ढक गया.

इसका भागवत एक बहुत सुन्दर उदाहरण दिया है. जितने बद्दल हैं वे सूर्यकी रश्मिके कारण भापके रूपमें परिवर्तित होते हैं और वह ही बद्दल रूप लेनेके बाद सूर्यको ढंक देते हैं. इस बातका

सौन्दर्य देखो कि यदि वे सूर्यके प्रकाशको पूरी तरह ढंक दें, तो फिर वे स्वयं भी दिखलाई नहीं देंगे. इस कारण कुछ प्रकाश वे अपनेमेंसे आने देते हैं और कुछ प्रकाश उनसे ढंक जाता है. इसी कारण वे अपना रूप प्रकट कर पाते हैं. बद्दलका और सूर्यका आपसमें रिश्ता कैसा है? वे सूर्यसे पैदा हो रहे हैं, सूर्यको ढंक भी रहे हैं और सूर्यके कारण प्रकाशित भी हो रहे हैं. सृष्टिका कॅरेक्टर् भी इसी प्रकारका है.

मूलमेंसे सब कुछ पैदा हुआ है. वह मूलरूपको ढंक भी रहा है. यदि वह सब कुछ ढंक दे तो वह स्वयं भी दिखलायी नहीं देगा. इसलिए वह किसी न किसी रूपमें मूलरूपको प्रकट भी कर देता है. यह जो प्रकृति है बादलके जैसी, वह ही ब्रह्मकी और उसके विभिन्न नाम रूप कर्म की है. इसलिए क्षर और अक्षर जो पुरुषोत्तममें प्रकट हुए हैं वे पुरुषोत्तमसे प्रकट हुये हैं. इतना ही नहीं क्षर और अक्षर से वह पुरुषोत्तम ढंक भी गया है, मानें उनमें छुप भी गया है. छिपनेपर भी वह सम्पूर्णरूपमें नहीं छिप गया है किसी न किसी रूपमें पुरुषोत्तमका प्रकाशन क्षर-अक्षरके प्रकाशनरूपमें हो रहा है.

ऐसे उनके अनेक रिश्ते हैं. इन सम्बन्धोको जब हम समझमें लायेंगे तो ही हमको वह मॉडल् समझमें आयगा कि नलकूबर-मणिग्रीव भगवान्‌की किस प्रकारकी स्तुति कर रहे हैं! पहले श्लोकमें उन्होंने यह स्तुति की कि आप मूलरूप हो. 'मूलरूप' मानें आप उस सूर्यके प्लाज़्मिक् फॉर्मकी तरह हो. उसके बाद उसमेंसे सब कुछ प्रकट हुआ, मूलरूप नाम-रूप-कर्म. इनके प्रकट होनेके पश्चात् ऐसा हुआ कि वह मूलरूप ढंक गया. ढंका भी इस प्रकार नहीं कि सब कुछ दिखलाई देना ही बंद हो जाय. किसी प्रकारसे कुछ ढंका है और कुछ चमक भी रहा है. वह चमक रहा है उसीके

कारण यह सब नाम-रूप-कर्मोके प्रकार हम देख पा रहे हैं. बादल दिखलाई दे रहे हैं उसका कारण सूर्य है. सूर्य छिप रहा है उसका कारण बादल है. बादल उत्पन्न हो रहे हैं उसका कारण भी सूर्य है. यह बहोत विचित्र प्रकार है. यह विचित्रता इस सृष्टिकी यदि आपको समझ आये तो इस नलकूबर-मणिग्रीवके द्वारा कहे हुय यह श्लोकमें भगवान्का क्या स्वरूप है, यह समझ आयगा. मानें मूलरूप मध्यरूप और सृष्टिरूप भगवान्का आपसी सम्बन्ध क्या है? नारदजीने ही तो नलकूबर-मणिग्रीवको वरदान दिया था कि तुम्हारा उद्धार कृष्ण ही करेंगे और जब वे उद्धार करेंगे तो तुम्हारी सारी स्मृति वापस आ जायगी. इसी कारण उन्हें सब कुछ याद आ गया. नहीं तो कृष्णको देख कर तो सृष्टिका इतना कठिन और विचित्ररूप तो किसीको समझ नहीं आ पायेगा.

'क्षेत्र' शब्दका अपभ्रंश गुजरातीमें खेतर है और हिन्दीमें खेत है. कुछ क्षेत्र है, कोई उसमें बीज है, कोई उसमें कृषक है, इन सब मिलके एक सृष्टिरूप पाक बन रहा है. यह इन तीनके संगमसे होता है. क्षर, क्षेत्र बन रहा है मानें अक्षर बीज बन रहा है और पुरुषोत्तम कृषक बन रहा है. वह क्षरमें अक्षरका बीज रोप कर फसल उगाता है. किसी दृष्टिकोणसे वह अक्षर है और किसी दृष्टिकोणसे वह क्षर है. जैसे जो हम बीज बो रहे हैं उससे जो फसल पैदा हो रही है वह थोडी जमीनका कॅरेक्टर लिये होती है, थोड़ी बीजका अपना कॅरेक्टर् भी लेती है. आपको मालूम होगा कि गुजरातमें पॉल्यूशन् न हो इसके लिए वहां लोगोंने बहुत हल्ला मचाया. वहां सभी कारखानेके मालिकोंने अपना पॉल्यूटड् पानी जमीनमें कुँआ खोद कर उसमें डालना शुरु कर दिया. अब उससे जो घास उगी उसमें वह विष आ गया. उस घासको खा कर जब पशु-पक्षी मरने लगे, तब लोगोंको पता चला. उस घासने वहांकी जमीनका और विषलिप्त पानीका दोनोंका कॅरेक्टर् ग्रहण कर लिया. इसी प्रकार

हम सबमें क्षर और अक्षर दोनोंका कॅरेक्टर् आया है. किसी रूपमें हम क्षर है और किसी रूपमें अक्षर है. क्योंकि क्षरमें अक्षरका बीज रोपा गया है और यह सब करनेवाला पुरुषोत्तम है.

इसे सृष्टिके मॅटाफर् समझना चाहिये. मनमेंसे यह भ्रान्ति निकाल दो कि जो नटखट है और विचित्र लीला कर रहा है वह पुरुषोत्तम है. यह तो अपने पुष्टिमार्गीय वैष्णवोंके द्वारा गढ़ी हुयी भ्रमणा है. "**यस्मात् क्षरम् अतीतो अहम् अक्षरादपि च उत्तमः**" जो उपनिषद्का मूल सिद्धान्त था वह ही पुरुषोत्तमके रूपमें कहनेमें आया है. एक मूलरूप पुरुषोत्तमका दूसरा सृष्टिरूप. एक सृष्टिके अंदर रहा हुआ रूप और दूसरा प्रकटरूप. इतने विभाग अभी तक हमने देखे. अब आज नया रूप देखें.

मूलरूप भगवान् सर्वरूप बन रहे हैं. सर्वरूप होनेपर भी आधिदैविक रूपमें भी वह सर्वरूप है. मानें बाहरसे ही वह हरेक रूप धारण करता है इतना ही नहीं, भीतर भी वह इनर कंट्रोलरके रूपमें बिराजमान रहता है. जैसे वृक्षोंमें पृथ्वीका और बीजका कॅरेक्टर आया है.

(सिंहावलोकन-मूलश्लोक-३२)

इसके बाद पीछेके श्लोकमें जो बात थी वह यह थी कि "**गृह्यमाणैस् त्वम् अग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर् गुणैः कोनु इह अर्हति विज्ञातुं प्राक् सिद्धं गुणसंवृतः**" सृष्टिरूप प्रकट हुये भगवान्का सृष्टिरूप देख सकते हैं पर उनके सृष्टारूपको देख नहीं सकते. भगवान्के बारेमें जब यह पूछनेमें आता है कि भगवान् तुम्हें दिखलाई देता है कि नहीं? तब हम क्या कहेंगे कि इस प्रश्नके विभाग करने पड़ेंगे. सृष्टिरूप भगवान् दिखलाई दे रहा है पर सृष्टारूप भगवान् नहीं दिखाई दे रहा.

मोहम्मद साहबने कुरान शरीफमें एक बहोत सुन्दर बात कही है. क्योंकि मोज़िस् बहुत चमत्कार दिखलाता था, उसके बाद क्राइस्टने भी बहुत चमत्कार दिखलाये. मौहम्मद साहब कहते थे कि मैं तो तीसरा पैगम्बर हूँ. सभी लोग उनको ताना मारते कि यदि तुम अल्लाहके तीसरे पैगम्बर हो तो कोई चमत्कार क्यों नहीं दिखाते. मौहम्मद साहबको तलवार चलानी आती थी पर कोई चमत्कार दिखलाना नहीं आता था. इससे वह परेशान रहते थे. पर उनके सामने जब भी कोई समस्या आती थी तो सीधे अल्लाहको उस समस्याका समाधान देनेके लिए बोलते और अल्लाह उनको समाधान दे भी देता. वह तुरंत उसे कुरानकी आयतके रूपमें प्रकट कर देते. अब जब यह चमत्कार न दिखा पानेकी बात अल्लाहसे उन्होंने की तो अल्लाहने कहा "कह दो इन मूर्खोंसे कि जब मोज़िस् या जीसस् ने चमत्कार दिखाये तो क्या उन्होंने उन्हें माना? जब तुमने उनको नहीं माना तो मैं क्यों चमत्कार दिखलाऊँ." यह सब कुरानमें उन्होंने लिखा है. इसके बाद एक और हिस्सा कुरानमें कहा गया है कि "तुमको सचमें यदि चमत्कार देखना है तो ये चांद और सूरज उग रहे हैं, यह क्या चमत्कारसे कम है! ऋतुओंके चक्र चल रहे हैं ये क्या कोई छोटे चमत्कार हैं! क्या इन चमत्कारोंसे यदि अल्लाह समझ नहीं आ रहा है तो मौहम्मदके चमत्कारसे तुम्हें कैसे समझ आ जायगा! इसलिए तुम इस तरहका प्रश्न पूछनेवाले मूर्ख हो. मौहम्मदके पार्टमें कोई खामी नहीं है कि वह चमत्कार नहीं दिखा सकता है. देखो! कितना बुद्धिशाली उत्तर है. चमत्कार है अथवा नहीं है यह प्रॉब्लमॅटिक् इश्यु है क्योंकि हमको चमत्कार वही लगता है जो कि बुद्धिके द्वारा समझ नहीं आता. जो बुद्धिसे समझमें आ जाय वह तो चमत्कार लगता ही नहीं है.

ऐसा कहा जाता है कि सबसे पहले जब डच लोग दक्षिण एशियाके बोर्नियो टापूपर पहुंचे, जोकि इन्डोनेशियाके पास है. वहांके

लोगोंने ऐसे गोरे रंगके लोग कभी देखे नहीं थे, न ही वहांके आदिवासियोंने इतनी बड़ी नाव देखी थी. आदिवासियोंकी एक धारणा थी कि देवता पश्चिम दिशासे आयेंगे और अचानक यह लोग पश्चिम दिशासे वहां पहुंच गये. उन्हें लगा कि यह सब देवता यहां आ गये हैं एक चमत्कारकी तरह. जैसे ही उनकी नाव वहां पहुँची तो सारे आदिवासियोंने समर्पण कर दिया कि देवता आ गये. अब डच लोगोंने सोचा कि ये तो समर्पित हो गये हैं, तो इनसे दोस्ती करनी चाहिये. उन्होंने उन आदिवासियोंको नावपर बुलाया. नावपर चढ़नेके बाद आदिवासियोंने पहली बार वहां दर्पण देखा. दर्पणमें अपना प्रतिबिंब देखनेके बाद वे तो पागल हो गयें. वे सब इसे एक महान चमत्कार समझ बैठे कि स्वयंको देख पाना भी संभव है. उन्होंने ऐसा तब-तक देखा नहीं था. दिन तो इस हंगामेमें बीत गया. रातको एक युवानने सोचा कि इस दर्पणको चुरा लेना चाहिये. वहां तो पहरा था. जब वह चुरा रहा था तो एक डच अफसरने उसे रोका तो आपाधापीमें उस युवानने उस डचको चक्कू मार दिया. मार कर देखा और अपने लोगोंको आ कर कहा कि ये तो सब मनुष्य हैं. यह सुनते ही उन आदिवासियोंने वहां आ कर सबको मार दिया. जब-तक उन्हें देवता समझ रहे थे, तब-तक चमत्कार था. जैसे ही मनुष्य होनेकी पोल खुली, सबको मार दिया. चमत्कारके साथ ऐसा ही है. जब-तक बुद्धि समझ नहीं पाती तब-तक वह चमत्कार है. जैसे ही समझ आया वह चमत्कार नहीं रहता.

ऐसे ही तिरुपतिमें एक साधु बाबा अपने पैर छुआ कर लोगोंके रोग दूर करता था. एक भक्त आ कर उनके दोनों पैर काट कर ले गया. पुलिसने पूछा कि ‘‘पैर किसने काटे’’ बाबा बोले कि ‘‘इतनी भीड़ थी, पता ही नहीं चला कि कौन काट कर ले गया. अक्सर चमत्कारकी यही समस्या है.

अपने यहां इसीलिए ब्रह्ममेंसे वह कैसे परमात्मा हुआ, परमात्मामेंसे कैसे भगवान् बने और भगवान्मेंसे कैसे वे कृष्ण बनते हैं. यह प्रश्न कोई चमत्कारका नहीं, एक प्रक्रिया है. जो कि मैं आपको समझाना चाह रहा हूँ. समझोगे तो तुम्हें चमत्कार नहीं दिखेगा. नहीं तो यह चमत्कार जाननेके बाद जब तुम्हें ज्ञात होगा कि यह चमत्कार नहीं है तो फिर तुम उसका मर्डर् ही कर दोगे.

ब्राह्मिक होमोजीनियस् तत्त्वमेंसे ही परमात्मा भगवान् कृष्ण बने हैं. हम भी इसी प्रकारकी प्रक्रियासे उत्पन्न हुए हैं. हमारा सॅल् भी होमोजीनियस् होता है परन्तु जब स्पर्म माँके गर्भमें जाता है तो वही क्षेत्र और बीज का मॉडल् अपना लेता है. थोड़े गुण माँके और थोड़े गुण पिताके इसमें आ जाते हैं. दोनोंका एक नये तरीकेका समीकरण प्रकट हो जाता है. इसके बाद इसमेंसे विलुप्त क्या हो रहा है? जिन दोनोंसे यह स्पर्म और ओवेरी के गुण प्रकट होते हैं वे विलुप्त हो जाते हैं. सोर्स् गायब हो जाता है और नयी एक वस्तु प्रकट हो जाती है. उसमें यदि हम माँ और बाप को ढूंढेंगे तो वे नहीं मिलेंगे पर उसमें माँ और बाप दोनों छुपे हुए है. हम इन्कार नहीं कर सकते कि किसी भी सन्ततिके स्वरूपमें अथवा व्यवहारमें उसके माँ-बाप नहीं है. क्षेत्र और बीज के ॲन्गल्से देखेंगे तो उसमें माँ-बाप छुपे हुए हैं.

वस्तुत: उसी प्रकार इस मॉडल्को समझना चाहिये. कितना पड़ा कि जो वह होमोजीनियस् सॅल् था, वह स्वयं विभक्त हुआ. विभक्त हो कर वह स्वयं बीज बना, स्वयं क्षेत्र बना और स्वयं किसान बना **"क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत! क्षेत्र-क्षेत्रज्ञयो: ज्ञानं यत् तज् ज्ञानं मतं मम."** (भग.गीता१३।२) इसलिए ये तीनों रूप स्वयं ही लेता है. इस कारण ही हम उसको 'अभिन्ननिमित्तोपादान' कहते हैं. 'उपादान' मानें जिसमें सृष्टि उत्पन्न होती हो. 'निमित्त'

मानें जिसके कारण उत्पन्न होती हो. इन दोनोंके मिले-जुले बलसे उत्पन्न हो रही है. जैसे घासका उपादान भूमि, गहनेका उपादान कारण सोना और सोनी उसका निमित्तकारण. उसमें स्वयं ब्रह्म छिप जा रहा है. क्योंकि दोनोंके मेलसे रूप प्रकट हुआ बिल्कुल एक नया रूप है. इस कारण उसका मूलरूप उसमें छुप गया है. किसी दूसरेसे नहीं ढंका गया अपितु अपने गुणमें ही वह छुप गया है, जैसे बादलसे सूर्य ढंक जाता है.

अविकृतपरिणामवादमें तो केवल यही कहा जाता है कि परिणामरूपमें प्रकट होनेके बाद भी उसके मूल स्वरूपमें विकार नहीं आता है. यहाँ इश्यु यह नहीं है कि वह अविकृत है अथवा विकृत है. यहाँ इश्यु यह है कि वह जिस रूपमें परिणत हुआ है उस स्वरूपमें उसका मूल स्वरूप अनुभवमें नहीं आता. नहीं अनुभवमें आता इस कारण वह विकृतपरिणाम लगता है. सन्ततिमें क्या माता-पिताका मूलरूप दिखलायी दे रहा है? नहीं! एतवता सन्ततिमें माता-पिताका रूप नहीं है ऐसा तो हम नहीं कह सकते. कोई गुण माँसे तो कोई गुण पितासे आया है. उसका रूप तो मां-बापके गुणोंके परम्युटेशन्-कॉम्बीनेशनका परिणाम ही तो है. विकृत और अविकृत का सारा मसला यह है कि वह वापस उस रूपमें परिवर्तित हो सकता है अथवा नहीं. पुनः परिणत हो सकता हो तो अविकृत है और नहीं हो सके तो विकृत है. जैसे दूधसे दही बनता है पर दहीसे दूध नहीं बन सकता. इसलिए वह विकृतपरिणाम है. सोनेमेंसे गहना बन सकता है और गहनेमेंसे वापस सोना बन सकता है. यह अविकृतपरिणाम हुआ. यहाँ जगत् ब्रह्ममेंसे उत्पन्न हुआ तो वह ऊपरी तौरपर ब्रह्मरूपमें दिखलाई नहीं देता पर जब ब्रह्ममें लीन होगा तो फिर ब्रह्मात्मक हो जायगा. इसलिए यह अविकृतपरिणाम है. इस कारण ब्रह्मकी परिभाषामें यह कहनेमें आया है कि जिसमेंसे जगत् उत्पन्न हुआ, जिसमें वह स्थित है और जिसमें वह लीन

होगा उसका नाम 'ब्रह्म'. जैसे घास, मिट्टीमेंसे उत्पन्न हो रही है, उसी मिट्टीमें वह स्थित है और वह मिट्टी ही बन जानेवाली है. अब घासमें मिट्टी तो दिखलाई नहीं दे रही है. जैसे सोनेसे बने गहनेमें सोना दिखलाई दे रहा है ऐसे गुण घासमें नहीं दिखलाई देते. मिट्टी जड़ है पर घास तो जीवित है. जड़में जीव उत्पन्न हो रहा है इसका अनुभव तो नहीं होता पर होता तो है. इसका निश्चय उसी प्रकार किया जा सकता है कि जब वह सूख कर वापस मिट्टी बन जाती है. इसी कारण वह अविकृतपरिणाम है. पर यदि घासको देखते ही कोई कहे कि इसे मिट्टी मानों, तो ऐसा मानना समझना बहुत ही कठिन है पर अनुभव करना और अधिक कठिन है.

थोड़ा और समझें इस विषयको. हममेंसे हमारे केश-नाखून उत्पन्न हुए. अब केशमें अपने जीवित होनेके गुण है. यदि वह है तो उन्हें काटनेपर दुःख क्यों नहीं होता? उस जीवने वह गुण प्रकट किये कि जिससे जीवित होते हुए भी उसके कटनेपर हमें दुःख नहीं होता. वहीं जीव जो आंख बना है उसमें थोड़ा भी कंकड़ जाये तो बहुत दुःख होता है. जो छोटा बालक होता है उसकी पैरके नीचेकी चमड़ी कितनी कोमल होती है! पर जैसे ही वह चलना प्रारम्भ करता है तो वह चमड़ी कड़क होनी शुरु होती है. कभी ऐसा भी होता है कि यदि थोड़ी चमड़ी छील भी लो तो पता नहीं चलता. ऐसा नहीं है कि वहां चेतना नहीं है. यदि ऐसा होता तो कटनेके बाद उगनी नहीं चाहिये. वापस उग रही है तो इसका अर्थ यह है कि वहां चेतना तो है पर संवेदना तिरोहित हो गयी है. ऐसे ही जड़ वस्तु जो उत्पन्न हुयी है उसमें ब्राह्मिक चेतना तिरोहित हो गयी है. तिरोहित हो गयी है इस कारण अनुभवमें नहीं आती. अनुभवमें नहीं आती तो वह है नहीं ऐसा मानना वैचारिक भ्रान्ति है. जैसे अपनी चेतना केश-नखमें तिरोहित

हो गयी है, थोड़ी पीछे चली गयी है. जैसे युद्धमें सेना कभी पीछे हो जाती है. पीछे हुयी इसका अर्थ यह नहीं है कि हार गयी है अथवा मर गयी है. पर उस मोर्चेपर लड़ नहीं रही है, कहीं और लड़ रही है. ऐसे ही चेतना कभी विषयकी अग्रिम पंक्तिमें लड़ रही होती है और कभी पीछे चली जाती है.

जब हिटलरने रशियापर आक्रमण किया तब उसके सारे कमान्डरोने 'ना' कहा. रशियाकी इतनी लंबी सीमा है. उसपर छोटासा जर्मनी कहां-तक युद्ध कर पायगा, ऐसा उनको संशय था. हिटलरने कहा "क्यों नहीं कर सकता." जर्मनके बहुतसे युवाओंको उसने अपनी सेनामें भर्ती कर लिया. रशियाकी पूरी सीमा देखी. उसने अपनी सेनाको लड़नेके लिए खड़ा कर दिया. रशिया उस समय युद्धके लिए तैयार नहीं था. उन्होंने कहा कि "कोई बात नहीं पीछे हट जाओ" वे युद्ध करते जाते और थोड़े पीछे हटते जाते. रशियन् बर्फ पड़नेकी राह देख रहे थे. उन्हें पता था कि सारी सीमापर सैनिक तो जर्मनीने खड़े कर दिये है पर पीछेसे और सैनिक कहाँसे आयेंगे? जब बर्फ पड़ी तो फिर आगे आ कर उन्होंने जर्मन सैनिकोंपर हमला बोल दिया. जर्मन आर्मी उस समय बुरी तरह हार गयी थी. सचमें जर्मनीको हरानेमें अमेरिकाका उतना बड़ा रोल नहीं है कि जितना रशियाका.

ऐसे ही जब चेतना पीछे चली जाती है तो हम यह समझ लें कि वह हार गयी है. ऐसा समझना एकदम गलत है. न चेतना हारी है, न मरी है. लड़नेके लिए थोड़ी पीछे चली जाती है. यह तो युद्धकी कूटनीतिपर निर्भर है कि कब पीछे जाना है और कब आगे आ कर लड़ना है. जैसे हम ट्रेन्में बैठे हों तो हमको लगता है कि हम स्थिर हैं पर सचमें तो ट्रेन्की स्पीड़ हमारेमें होती ही है यह अनुभव कब होता है कि जब हम ट्रेनसे कूदें

और स्थिर मुद्रामें ही खड़े हो जायें तो गिर पड़ेंगे. थोड़ा दौड़ें और धीरे-धीरे रुकें तो नहीं गिरेंगे. इसी प्रकार चेतना भी जड़में होती है पर वह कभी अनुभवमें आती है, कभी नहीं. हमको पता कब चलता है कि जब हम उसको उस प्रकारसे टॅकल् करते हैं.

जब प्रभुने सृष्टि काल-कर्म-स्वभावसे उत्पन्न की, उनमें इन सारी शक्तियोंके गुण मध्यसृष्टि तक दिखलायी देते हैं. पर वे सारे गुण उसके हैं, यह अनुभव हमें नहीं होता है. जैसे ट्रेनसे कूदते समय हमें यह अनुभव नहीं हो पाता कि हममें ट्रेन्की स्पीड् मौजूद है. सृष्टिके रूपमें जितने सारे गुण हैं जो कि प्रभुने नाम-रूप-कर्मके रूपमें प्रकट किये हैं, वे उन्हीं नाम-रूप-कर्ममें ढंक जाते हैं. यह बात इस श्लोकमें कही गयी **गृह्यमाणै: त्वम् अग्राह्यो विकारै: प्राकृतै: गुणै:**. ब्रह्ममें सत्-चित्-आनन्द है. वह प्रकृतिके विकारके गुण बने. सत् सत्त्वगुण, चित् रजोगुण, आनन्द तमोगुण बना. इस विभाजनके कारण सारे गुण होमोजीनियस् कॅरेक्टर्के न हो कर, अलग-अलग प्रकृतिके हो गये. इस विभाजनके कारण सच्चिदानन्द ब्रह्मका अनुभव हमें हो नहीं होता, मानें ग्रहण नहीं हो पाता. ब्रह्म अग्राह्य ही रह जाता है.

हमेशा आपको इसे एनेलाइज् करके देखना होगा कि सृष्टिरूपमें यह ग्राह्य होनेपर भी सृष्टारूपमें ग्राह्य नहीं है. बिल्कुल उसी तरह जैसे कि सन्तति माता-पिताके रूपमें अग्राह्य है पर माता-पिता सन्ततिके रूपमें ग्राह्य है. जब भी हम सन्ततिको देख रहे हैं तो माता-पिताके ही किसी रूपको देख रहे हैं. पर उस सन्ततिमें माता-पिता गृहीत नहीं होते.

यह सारी बातें क्यों कह रहे हैं इसका मूल मुद्दा समझो. सबसे पहला मुद्दा यह खड़ा होता है कि भगवान् अल्लाह गॉड्

यदि है तो दिखलाई क्यों नहीं देते? यह प्रश्न अपने यहां ही है ऐसा नहीं है. हर जगह यही सवाल खड़ा हुआ है. कोई इसका कारण शैतान समझते हैं, कोई इसका कारण कर्मकी वासना समझते हैं. जैन ऐसा ही समझते हैं कि अपने दुष्कर्मोंके कारण परमात्मा हमें दिखलाई नहीं देता. ईसाई और मुसलमान ऐसा समझते हैं कि शैतानने हमें विपरीत भरमा दिया है, इस कारण भगवान् हमें दिखलाई नहीं देता. मौहम्मद साहबने जो कहा कि ''इतना सब देखनेके बाद भी तुम्हें यदि अल्लाह नहीं दिखलाई देता तो मैं क्यों चमत्कार दिखलाऊं.'' पर वे यही समझते हैं कि शैतानने ही इन्हें भ्रमित किया है. श्रीशंकराचार्य यह कहते हैं कि अज्ञानके कारण भगवान् नहीं दिखलाई देते. उनका मॉडल् बहुत सुन्दर है. यदि तुम्हें किसी थियेटर्में पिक्चर् देखने जाना हो तो यदि थियेटरमें अन्धकार न हो तो प्रोजेक्शन् होगा ही नहीं. यदि स्क्रीन्को अन्धकारसे ढंके नहीं तो उसपर अच्छा प्रोजेक्शन् नहीं होगा. इसी प्रकार अपने अज्ञानसे तुम ब्रह्मको ढंकोगे नहीं तो सृष्टि तुम्हें दिखलाई ही नहीं देगी. सृष्टि इसी कारण दिखलाई दे रही है क्योंकि ब्रह्म दिखलाई देना बंद हो गया है. यदि स्क्रीन्पर प्रोजेक्शन् साफ देखना है तो पहले उसे अन्धकारसे ढंकना पड़ेगा. यह मॉडल् श्रीशंकराचार्यने प्रपोज़् किया. वहाँ अन्धकार एक फिनोमिना है.

अन्धकार कहो, अविद्या कहो, माया कहो, शैतान कहो, कर्मवासना कहो अथवा बुद्धकी अहन्ता-ममता कहो. बुद्धके यहाँ अहन्ता-ममताका सिद्धान्त है कि परम-तत्त्व केवल आपको आपकी अहन्ता-ममताके कारण दिखलाई नहीं देता है. ''आत्मग्रहो महामोहो'', तुम्हारे अंदर अहंकार इतना भर गया है कि तुम्हें तुम ही दिखाई दे रहे हो, दूसरा कुछ दिखलाई नहीं दे रहा. तुम यदि ऐसा विचार करो कि ''मैं नहीं हूं.'' सब कुछ तुम्हें दिखलाई देने लगेगा.

अपने यहां इनमेंसे एक भी मॉडल् स्वीकार करनेमें नहीं आया. अपने यहां भागवतके अनुसार जो मॉडल् स्वीकारा गया है वह यह कि भगवान् सूर्यरूप होनेसे अपने आपको ढंकनेके लिए आप ही बादल बनते हैं और उन भाप रूपी बादलोंको प्रकाशित भी वही करते हैं. अर्थात् प्रत्येक लेवल्पर सूर्य ही काम कर रहा है. इसीको यदि बायोलॉजिकल् मॉडल्से समझना है तो हम देख सकते हैं कि स्नेल् अपनी शॅल्में छिपी रहती है, शॅल्की उत्पत्ति भी उसी स्नेल्के कारण होती है. कहीं बाहरसे आया हुआ पदार्थ नहीं है. जितने भी पक्षी है वे अपने पंखोसे अपने आपको ढंक लेते हैं. एक मनुष्य ही है जो कि नंगा है, बाकी सबको कपड़े प्रकृतिने दिये हैं. हर पशुके पास भी अपने रोंगटेकी खालके कपड़े हैं. इसी प्रकार भगवान् भी अपनेसे उत्पन्न शॅल्में ढंके हुए रहते हैं.

लॉजिकली इस बातको प्रूव् नहीं कर सकते क्योंकि यदि कोई वस्तु किसीसे आच्छादित है तो वह स्वयं नहीं है और स्वयं है तो वह अपने आपको आच्छादित नहीं कर सकता. यह लॉजिक्, लोग प्रयोगमें लाते हैं क्योंकि यदि ब्रह्म ढंक गया है तो जिससे ढंका गया हे वह वस्तु ब्रह्म नहीं हो सकती. जैसे कि अन्धकार प्रोजेक्शन् नहीं हो सकता. यदि अन्धकार है तो ही प्रोजेक्शन् हो पायेगा. इस द्वैतको मान कर ही वे लोग चल रहे हैं. अपने यहां भागवतका मॉडल् है कि जिससे ढंका गया है वह भी वही है. जो ढंका गया है वह भी वही है. वह अपने ही साथ यह छिपने प्रकट होनेका खेल खेल रहा है. सारा जगत् अपने यहां ब्रह्मकी एक ऐसी लीला है कि स्वयं ही छिपा हुआ है, स्वयं ही खोज रहा है. वह अपने आपमें ही छिपा है और स्वयंमें ही स्वयंको ढूंढ़ रहा है. सृष्टिको परब्रह्मका हम खेल मानतें हैं. यह अपना मॉडल् है. इसमें कोई शैतान नहीं है, कोई अविद्या नहीं है, कोई कर्मवासना नहीं है, कोई अहंता-ममता नहीं है. यह ब्रह्मका एक

छिपने प्रकट होनेका खेल है. वह ही इस श्लोकके द्वारा समझाना चाह रहे है कि **गृह्यमाणैः त्वम् अग्राह्यो विकारैः प्राकृतैः** .

जैसे मॅटर् भी भगवान् है, ॲनर्जी भी भगवान् है, पर एनर्जी मॅटर्में छिपी होती है पर दिखलाई नहीं देती है. आज-तक साइंटिस्ट् यह नहीं ढूंढ पाये कि ॲनर्जीमें मॅटर् कैसे छिपी है? थियोरिटकली हाइपोथेसिस् है कि ॲनर्जीमें मॅटर छिपा हुआ है, मॅटर्में एनर्जी छिपी है. दोनोंमें भगवान् छिपे हैं. यदि छिपे न हो तो फिर समझमें आ जाएगा. समझ नहीं आ रहा क्योंकि वे छिपे हैं.

तुम कुर्सीपर बैठे हो, सांइटिस्ट् कहते हैं कि तुम्हारा ढांचा इलॅक्ट्रॉन् प्रोटॉन् न्यूट्रॉन् से है. और कुर्सी भी इन्हीं सब कुछसे बनी है. अब यदि कुर्सी और तुम एक-दूसरेके संपर्कमें आये तो तुम कुर्सी बन जाओगे और कुर्सी तुम बन जायगी. इसलिए यह दोंनो एक-दूसरेके संपर्कमें आ ही नहीं सकते. अब हम उनको कहे कि तुम तो कुर्सीपर बैठे हो. संपर्कमें आये बिना बैठ कैसे सकते? पर वे कहते हैं कि इलॅक्ट्रॉन् न्यूट्रॉन् प्रोटॉन् एक-दूसरेके संपर्कमें नहीं आते हैं. ब्रह्मका जगत्रूप हमको प्रत्यक्ष गृहीत होता है पर जगत्की ब्रह्मता हमको प्रत्यक्ष गृहीत नहीं होती है.

कोई पूछे कि “ब्रह्म तुम्हें गृहीत होता है कि नहीं?” हम कहेंगे कि “ब्रह्म एक हिस्सेमें जगद्रूपमें गृहीत हो रहा है पर जगत् ब्रह्मके हिस्सेके रूपमें गृहीत नहीं हो रहा है” यह वस्तु हमको समझनी चाहिये. जैसे हम सब ऑक्सीजन् कार्बन् इन सभी तत्त्वोंसे गढ़े हुए हैं पर आपमेंसे कितनोंको यह अनुभव है कि आप ऑक्सीजन् हो कि कार्बन् हो? किसीको पता नहीं चलता है क्योंकि सभी कुछ ढंका हुआ है. जिस वस्तुसे हम गढ़े गये हैं उस रूपमें वह वस्तु हमें गृहीत होती है, पर तत्त्व गृहीत नहीं

होता. बाहर यदि ऑक्सीजन् ढूंढने जायें तो सिलिन्डर्के रूपमें हमें मिलती ही है. अपने अन्दर गृहीत नहीं होता है. इसी बातको कबीर बहुत सुन्दर कहता है कि *"पानी बिच मीन पियासी मोहे सुन-सुन आवे हांसी."* मछली पानीमें रह कर प्यासी है. वह प्यासी रह कैसे सकती है? यह सुन कर मुझे हंसी आ रही है. इसी प्रकारका स्वरूप सृष्टिका है.

प्रकृतौ प्रविष्टं पुरुषं न प्रकाशयति. तथा प्राकृतैरपि तत्र स्थितो भगवान् आच्छाद्यतइति न भगवान् गृह्यते. ज्ञानन्तु अन्यनिष्ठम्. ज्ञानकी बात तो बहोत आगेकी है पर जिसको मैं 'मैं' कह रहा हूँ वह 'मैं' कौन है? 'मैं' मानें मेरी चेतना या मेरा शरीर. यदि मेरा शरीर ही 'मैं' हूँ, तो मुर्देको भी 'मैं' होना चाहिये, ऐसा नहीं है. और यदि चेतना ही 'मैं' है तो ऐसी चेतना कहाँ है जो कि शरीरमें नहीं है. ज्ञान किसमें है? हम यदि इसका ठीकसे विचार करें तो ज्ञान न तो पुरुषमें और न प्रकृतिमें है. अपना ज्ञान किस फॉर्मेट्का ज्ञान है, जैसे कि किसी वस्तुको दस व्यक्ति उठा रहे हों तो कौनसा व्यक्ति वस्तु उठा रहा है? यह हम नहीं कह पायेंगे. ऐसे ही अपनी चेतना शरीर मन बुद्धि अहंकार सभी कुछ मिल कर ज्ञान प्रकट हो रहा है. वह ज्ञान न तो पुरुष निष्ठ है न वह प्रकृति निष्ठ है.

अब यदि दोनोंमें नहीं है तो हम क्या यह कहेंगे कि न तो पुरुषमें ज्ञान है, न चेतनामें ज्ञान है. ऐसा भी नहीं है. इसीको 'पन्वन्ध'न्याय कहा जाता है. दोनोंमें मिल-जुल कर ज्ञान है. पंगु मनुष्य चल नहीं सकता, अन्धा व्यक्ति देख नहीं सकता. पर दोनों यदि एक-दूसरेका सहारा लें तो चलनेकी क्रिया कर सकेंगे. उसके भरोसे यह और इसके भरोसे वह.

ऐसे ही चेतना शरीरके बिना कुछ जान नहीं सकती और इन्द्रियोंसे गढ़ा हुआ यह शरीर चेतनाके बिना कुछ जान नहीं सकता है. दोनों एक-दूसरेसे मिल कर काम करें तो जान सकते हैं. जैसे यह माइक् है, हम बोल रहे हैं वह सुन पा रहा है कि नहीं? यदि सुन पा रहा है, तो बिजलीके बिना भी इसको सुनना चाहिये और बिजली क्या स्वतंत्ररूपसे माइकके बिना सुन पायगी? नहीं. इसलिए सुननेवाला कौन है? न तो अकेली बिजली और न ही माइक्. दोनों एक-दूसरेसे मिल कर सुननेकी प्रक्रिया पूरी कर रहे हैं. इसी प्रकार जो ज्ञानकी क्रिया उत्पन्न हो रही है वह न शरीरमें उत्पन्न हो रही है और न चेतनामें. इन दोनोंके मेल-जोलसे ज्ञानकी क्रिया उत्पन्न हो रही है. इसी बातको समझनेके लिए गीतामें भगवान् एक बहुत सुन्दर बात कहते हैं "**अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधं, विविधाश्च पृथक् चेष्टाः दैवं चैव अत्र पञ्चमं...तत्र एवं सति कर्तारम् आत्मानं केवलं तु यः, पश्यति अकृतबुद्धित्वाद् न सः पश्यति दुर्मतिः**" (भग.गीता १८।१४,१६) **अधिष्ठानं** = शरीर **कर्ता** = जीवात्मा **करणं च** = ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय मन अन्तःकरण. **विविधाश्च पृथक् चेष्टाः** = बाहरकी जो शक्तियाँ अपनेमें काम कर रही है. **दैवं चैव अत्र पञ्चमं** = जो देव कार्य कर रहे हैं. यह पांचो मिल कर काम करनेके जिम्मेदार है. कोई यह सोचे कि मैं अकेला काम कर रहा हूँ, यह सर्वथा भ्रान्ति है. इनमेंसे कोई भी एक वस्तु अकेली तो कुछ नहीं कर सकती. खिचड़ी बनानेके लिए दाल चावल पानी अग्नि सभी चाहिये. इनमेंसे कोई एक वस्तु यदि यह अहंकार करे कि मैं खिचड़ी हूँ, तो यह भ्रान्ति ही है. ऐसे ही अपना ज्ञान ऊपर कहे तत्त्वनूसे ही प्रकट हो रहा है और ज्ञानका मूल उत्पत्तिस्थान है वह तो इस ज्ञानके दायरेमें आता ही नहीं है.

मैंने अपने पिछले प्रवचनमें यह बात बताई थी कि गुरु गोरखनाथको हीरा भेंट आया. एक चेलेका उसपर मन विचलित हो गया. रोज

रातको उस हीरेको ढूंढने वह गोरखनाथजीकी कुटियामें जाता और सभी जगह उसे ढूँढता पर उसे वह हीरा मिला नहीं. आखिर थक कर उसने गोरखनाथजीसे ही पूछा कि "आपने वह हीरा कहां छुपाया है?" गोरखनाथजीने कहा "तुम्हारे झोलेमें. मुझे खबर थी कि तेरा उसपर मन आ चुका है और तू उसे अवश्य चुरायेगा. इसलिए मैंने वह तेरे ही झोलेमें छुपा दिया. मुझे पता था कि तू उसे सब जगह ढूँढेगा पर अपने झोलेमें नहीं ढूंढेगा." इसी प्रकार भगवान् कहां छुपा है वह हम सब जगह ढूँढ रहे हैं, सिवाय अपने अंदर. इसलिए उपनिषद्में कहा है कि "**तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि न इदं यद् इदम् उपासते**", "**यद् वाचा अनभ्युदितं येन वाक् अभ्युद्यते**" (केनोप.१।५,१।४) जिसको वाणीसे बोला नहीं जा सकता पर वाणी जिसके कारण बोल रही है वह 'ब्रह्म' है. जिसको आंखसे देखा नहीं जा सकता पर आंख जिसके कारण देख रही है वह 'ब्रह्म' है. जिसको कानसे सुना नहीं जा सकता पर जिसके कारण कान सुन रहा है वह 'ब्रह्म' है. मानें वह भीतर ही छुप गया है और हम उसे बाहर ढूँढ रहे हैं. तो वह मिलेगा कहाँसे? यदि मिल जाय तो भीतर छिपा हुआ नहीं कहलायेगा. अपने ही ज्ञानसे वह आच्छादित हो गया है. अपने ज्ञानका स्वरूप ही ऐसा है कि वह उसको आच्छादित कर देता है.

साइंसमें इसके बारेमें एक बहुत अच्छी बात कहनेमें आयी है. इलेक्ट्रॉन् प्रोटॉन् न्यूट्रॉन् का स्ट्रक्चर् इतना कोमल है कि उसे यदि देखें भी तो वह परेशान हो जाता है. जो तुम्हें दिखलाई दे रहा है वह तो डिस्टर्ब्ड् (अस्त-व्यस्त) स्ट्रक्चर् दिखलाई दे रहा है. मूल नहीं दिखलाई दे. और देखे बिना यह पता नहीं चल सकता कि इलेक्ट्रॉन् प्रोटॉन् न्यूट्रॉन का स्ट्रक्चर् किस प्रकारका है.

(श्लोक-५, मूलश्लोक ३३)
(ऐसी स्थितिमें छुटकारा कैसे होगा ?)

अवतरणिका :

तर्हि कथं निस्तारः ? इति चेत् तत्र आहतुः :

यदि ऐसा ही भगवान्का स्वरूप हो तो भगवान्का ज्ञान हो ही नहीं सकेगा. यदि भगवान्का ज्ञान ही नहीं हुआ तो जीवका निस्तार अथवा मुक्ति किस प्रकार होगी इस शंकाका निवारण अग्रिम श्लोकसे करते हैं.

श्लोक :

तस्मै तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे॥
आत्मद्योतैः गुणैश् छन्नमहिम्ने धीमहि नमः ॥३३॥

अनुवाद :

सभीके विधाता ऐसे आप भगवान् वासुदेवको ॥
जो खुदके कारण अनुभूत होते गुणोंसे अपनी महिमाको ढंकनेवाले ब्रह्म हों उन्हें नमस्कार! ॥३३॥

भगवते आप भगवान् हो **वासुदेवाय** वासुदेव हो. वासुदेवका अर्थ भागवतमें बहोत अच्छा किया है. जो अपना चित्त है वह वसुदेव है. 'चित्त' मानें सॅन्सिटीविटी. अपना अहंकार संकर्षण है, बुद्धि प्रद्युम्न है, मन अनिरुद्ध है. अहंकार = सॅल्फ्-अवेयरनेस्. सॅन्सिटीविटी होगी तभी सॅल्फ्-अवेयरनेस् होगी. यदि सॅन्सिटीविटी ही नहीं है तो अहंकार जागेगा कैसे?

'प्रद्युम्न'का अर्थ है कि जो सब वस्तुओंका प्रकाशन करता हो. यह केवल सॅल्फ्-अवेयरनेस् नहीं है अपितु सभीको प्रकाशित

करती है, इस अर्थमें बुद्धि प्रद्युम्न है. जैसे सूर्यको भी हम प्रद्युम्न कह सकते हैं. 'अनिरुद्ध' अर्थात् मन. सॅन्सिटीविटी, सॅल्फ्-अवेयरनेस् और सब वस्तुओंकी अवेयरनेस्, इन तीनोंको जो कंट्रोल करता हे वह मन मानें अनिरुद्ध मानें जिसका कोई निरोध नहीं कर सकता. निरुद्ध हो जाय तो मन नहीं कहलायगा और अनिरुद्ध हो तो वह 'मन' कहलायेगा. जिस समय वह कंट्रोल्में आ गया तो वह मन नहीं रह जायगा. जहाँ तक वह कंट्रोल्में नहीं है, वहां-तक ही वह मन है. इस प्रकार हम भगवान्के मिनी-स्केल् है. अपना मॅगा-स्केल् भगवान् है. अपने भीतर भी वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध हैं जो इस प्रकार काम कर रहे हैं!

चित्तमें भगवान् प्रकट होते हैं. भगवान् वासुदेव हैं क्योंकि हमारे भीतरकी सॅन्सिटीविटी चित्त है. हमारे यहां एक कहावत है "*बीन बजाओ भैंसको तो भैंस खड़ी बगुराय.*" भैंसके आगे यदि बीणा बजायेंगे तो भैंसको बीणाके स्वरोंकी सॅन्सिटीविटी तो होगी नहीं इसलिए वह जुगाली करती रहेगी. मूल मुद्देकी बात यह है कि वासुदेव समझमें तभी आयेगा जब कि हममें सॅन्सिटिवीटी हो. वासुदेवके पिता वसुदेवके यहां कृष्णका जन्म हुआ. उसके खुलासेमें महाप्रभुजी सुबोधिनीमें कहते हैं कि वासुदेव शुद्ध सत्त्वात्मक चित्तरूप है. इसीलिए इनके यहां कृष्णका जन्म हुआ. क्योंकि वे कृष्णके बारेमें अवेयर हुये. हम यदि भैंसकी तरह अन्-अवेयर् रहेंगे तो कृष्णका जन्म कहांसे होगा? सॅन्सिटिवीटीके बाद सॅल्फ्-अवेयरनेस् होनी चाहिये. उसके बाद दूसरी वस्तुके बारेमें अवेयरनेस् होनी चाहिये. दूसरी वस्तुकी अवेयरनेस् मानें माहात्म्यज्ञान. 'सॅल्फ्-अवेयरनेस्' मानें सुदृढः सर्वतोऽधिकः स्नेहः. माहात्म्यज्ञान और सुदृढ सर्वतोधिक स्नेह के बीचमें यदि मन तुम्हारा डोल रहा है तो अनिरुद्ध मानें भक्ति प्रकट हो गयी. यदि किसी एक ठिकानेपर मन स्थित हो गया मानें माहात्म्यज्ञानपर स्थित हो गया तो भी भक्ति प्रकट नहीं हो सकेगी. क्योंकि वह तुम्हें

अपना माहात्म्य ही दिखलायगा, कृष्ण नहीं दिखलाई देगा. यदि स्नेहमें ही स्थित हो गया तो माहात्म्य नहीं जान पाओगे. तब तुम समझोगे कि कोई नटखट है, उसका नाम 'कृष्ण' है.

मेरी एक परिचित कलाकार है. उसने मुझसे एक दिन पूछा कि "आप किसके भक्त हो?" मैंने कहा "हम कृष्णके भक्त हैं." उसने कहा "मुझे भी कृष्ण ही अच्छा लगता है, राम नहीं क्योंकि राम तो एक सीताको भी नहीं संभाल पाया. पर कृष्णको देखो, कितनी लड़कियोंके साथ फिरता है!" मैंने मनमें कहा "तुम्हारा दिमाग किसी और कृष्णमें फंस गया है. मुझे कृष्ण इसलिए नहीं अच्छा लगता क्योंकि वह इतनी लड़कियोंके साथ फिरता है. मुझे वह किसी दूसरे कारणसे ही अच्छा लगता है". कृष्णको चाहती तो है वह भी बहुत है पर माहात्म्यज्ञानके कारण नहीं अपितु किसी दूसरे ही कारणसे. ऐसा स्नेह भक्ति नहीं कहलायेगा. स्नेह भक्ति तभी कहलायगा जब अपना अनिरुद्ध रूपी मन उसके स्नेह और उसके माहात्म्यके बीच पँडुलमकी तरह डोलने लगेगा. यदि माहात्म्यज्ञानमें स्थित हो गया तो हम ब्रह्मज्ञानी बन जायेंगे और यदि स्नेहमें फंस गया तो वह मेरी परिचित कलाकारकी तरह हो जायगा.

चेन्नाईकी एक प्रोफेसर् है. एक वर्ल्ड-कॉन्फरेन्स् हुयी थी वहाँ मिली थी. खूब मोटी मेरेसे लंबी और काले रंगकी, थ्री-टियर्का तो तिलक लगाती थी. मैं वहां खड़ा था कि अचानक वह मेरे पास आ कर बोली "गोस्वामीजी! मुझे आपसे अकेलेमें कुछ बात करनी है". मुझे लगा कि आज कोई आफत आयी. वह बोली "मुझे तुम्हारी पुष्टिभक्ति बहुत रुचिकर लगती है पर मेरी एक प्रोब्लेम् है कि मुझे तुम्हारा कृष्ण नहीं अच्छा लगता है". मैंने पूछा "ऐसा क्यों?" तो बोली "कृष्णके पास पहलेसे ही सोलह हजार रानी हैं, उसमें मेरी क्या कीमत! राम भी नहीं अच्छा लगता क्योंकि

वह तो एक सीता भी नहीं संभाल सका. मुझे शिव अच्छा लगता है और उनकी मैं पुष्टिभक्ति करना चाहती हूँ. क्या मैं उनकी पुष्टिभक्ति कर सकती हूँ आप मुझे बताओ". मैंने उससे कहा "पुष्टिभक्तिमें तो हम बहुत कुछ करते हैं. कृष्णको पालना झुलाते हैं, आप शिवको पालना झुला पायेंगी?" वह बोली "यही तो मुझे आपसे समझना है" मैनें कहा "आप एक काम करो आप फुरसतसे मुझे कभी मिलो, अभी मैं आपके प्रश्नका संतोषजनक उत्तर नहीं दे पाऊँगा". ऐसे कई व्यक्ति होते हैं जिन्हें पुष्टिभक्ति अच्छी लगती है पर कृष्ण अच्छा नहीं लगता. किसीको कृष्ण अच्छा लगता है पर पुष्टिभक्ति अच्छी नहीं लगती.

पर पुष्टिभक्तिका अपना पॅकेज् बहुत सन्तुलित और कोमल है. इसमें वासुदेव है, संकर्षण है, प्रद्युम्न है और अनिरुद्ध भी है. मानें सॅन्सिटीविटी है, सॅल्फ्-अवेयरनेस् है, दूसरोंकी अवेयरनेस् है और इनके बीच दोलायमान मन भी है. इन सबको मिला कर पुष्टिभक्तिका एक पॅकेज् बनता है. इस पॅकेज्को इसी रूपमें लें तभी भक्तिका सुन्दर चित्र उभर कर आयगा. यदि कोई एक वस्तु इसमेंसे उठा लें और कहें कि हमें भक्ति करनी है तो वह एक विकराल या बीभत्स रूप लिए हुए बन जायेगा.

इसीलिए कहते हैं कि **आत्मद्योतै: गुणैश् छन्नमहिम्ने धीमहि नम:** भगवान् वासुदेव हैं. मानें यदि तुममें सॅन्सिटीविटी हो तो ही वे तुम्हारे सामने प्रकट होंगे और उसके स्वयंके गुणोंसे जो प्रकाश हो रहा है, जैसे कि सूर्यप्रकाशसे बद्दल बन रहे हैं और प्रकाशित भी हो रहे हैं. उन्हीं बादलोंसे वह ढंका हुवा भी है. ऐसी अद्भुत लीला यदि सूर्य कर रहा है अथवा कृष्ण कर रहा है. उस कृष्णकी भक्तिमें लुका-छिपी खेलका भाव आ रहा है. वे स्वयं ही छिप गये हैं और अपने ही एक दूसरे रूपसे स्वयंको ही खोज रहे

हैं. इस खेलके रूपमें सृष्टिकी उत्पत्ति स्थिति और विलय को स्वीकारने यदि हमारा मस्तिष्क तैयार हो तो ही हम कृष्णको रॅलिश् कर पायेंगे. यदि उस लीलाको स्वीकारने हमारा मस्तिष्क तैयार न हो तो हम कृष्णको रॅलिश् नहीं कर पायेंगे.

आत्मप्रकाशित गुणोंके कारण भगवान् अप्रकट है. हमने देखा कि सूर्य और बद्दल का जैसा सम्बन्ध है उसी प्रकारका सम्बन्ध भगवान् और उनके गुणों के बीच है. जिन गुणोंके द्वारा भगवान् सृष्टिकी रचना कर रहे हैं; इस सृष्टिरचनामें भगवान्ने जिन गुणोंको सक्रिय किया, उन गुणोंके कारण भगवान् ढंक जाते हैं. और ढंके जानेके बाद भी वे गुण भगवान्के कारण ही अनुभवमें आते हैं, उनके बिना यह गुण किसी भी भांति अनुभवमें आ नहीं सकते. यह बात इस श्लोकमें समझायी गयी है.

शहरोंमें अक्सर बड़े-बड़े साइनबोर्डमें अक्षरोंके पीछे ट्यूब्-लाइट्‌ जुड़ी होती है. आगे अपारदर्शी अपारदर्शी अक्षरोंमें विज्ञापन लिखा होता है. इसके कारण वह लाइट्‌ दिखनी बंद हो जाती है. पर अक्षरके बाजूसे जो लाइट्‌ निकलती है उसके कारण अक्षर गहरे रंगका दिखायी देने लगता है. वह दिख रहा है लाइट्‌के कारण ही, पर लाइट्‌को वही ढंक रहा होता है. एक प्रकार नीओन् लाइट्‌के भी अक्षर बना कर साइनबोर्ड बनानेका प्रकार है. उसकी अपेक्षा इसमें अधिक सुन्दरता है. बस उसी प्रकारके सौंदर्यका वर्णन यहां कृष्णका कर रहे हैं.

इससे पहले जो दो श्लोकोंमें आया कि **गृह्यमाणैस् त्वम् अग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर् गुणैः** विकाररूप प्राकृत गुण गृहीत होनेके कारण तू उनसे ढंक जाता है. इसलिए तुझे कौन जान सकता है! अब जाना ही नहीं जा सकता तो करना क्या? स्तुति किस प्रकार की जा

सकेगी? यह जो समस्या खड़ी हुयी उसका समाधान कर रहे हैं कि "जाना नहीं जा सकता, यह बात तो जानी जा सकती है". यदि यह जान जायें कि यह वस्तु जानी नहीं जा सकती तो उस वस्तुका ज्ञान बहुत रोमांच उत्पन्न करता है. कोई वस्तु 'इस प्रकार' जानी जा सकती है, उसका ज्ञान इतना अधिक रोमांच उत्पन्न नहीं करता. एक जादूगरके जादूके रहस्यको हम जान लें तो क्या जादू रह पायेगा. कुछ पता ही न चलता हो कि कर क्या रहा है तभी जादुका आनन्द आयेगा. कोई भी कलाकार अपने चरित्र अथवा अनुभव को किस प्रकार व्यक्त कर रहा है, यह यदि हम जान जायेंगे तो उसका आनन्द समाप्त हो जायेगा. थोड़ा वह अज्ञात रहेगा तभी हमें उसके अनुभवका आनन्द आयेगा. यह बात कही गयी है **आत्मद्योतैः गुणैश् छन्नमहिम्ने धीमहि नमः** द्वारा. मेकअपकी सुन्दरता ही इसमें है कि वह अभिनेताको पूरी तरह ढंक कर चरित्रको उभारता है. किसी भी चरित्रका आनन्द तब कुछ और ही होता है. जबकि उसमें रहा हुआ अभिनेता गायब हो जाये, इसी रोमांचका वर्णन यहां कर रहे हैं. "तेरी महिमा तेरे गुणोंसे ढंकी हुयी है और वे गुण तेरे कारण ही प्रकाशित हैं."

तस्मै तुभ्यम् इति. यहाँ एक विवादका विषय दिख रहा है. जैसे 'तस्मै' हम कहें तो उसका अर्थ होता है 'वे'. अंग्रेजीमें This अथवा That कहनेका यह प्रयोग है. हिंदीमें भी 'यह' और 'वह' दो प्रयोगमें आते हैं. पर संस्कृतमें चार प्रयोग हैं. 'इदम्', 'एतत्', 'अदस्', 'तत्'. "[1] **इदमस्तु सन्निकृष्टे, समीपतरवर्ति च** [2] **एतदो रूपम्,** [3] **अदसस्तु विप्रकृष्टे** [4] **"तद्' इति परोक्षे विजानीयात्"**.

१.इदम् = जो सामने होता है उसे 'इदम्' कहा जाता है.

२.एतत् = इदम् और अपने बीच जो होता है उसे 'एतत्' कहते हैं. जैसे आपको यह ब्लॅक-बोर्ड दिखलाई दे रहा है तो ब्लॅक्-बोर्डके लिए 'इदम्' प्रयोगमें आएगा. अब आपके और ब्लॅक-बोर्डके बीचमें

मैं खड़ा हूँ, तो मेरे लिए 'एतत्' शब्दका प्रयोग होगा. समीपतर जो होता है उसे 'एतत्' कहा जाता है. 'एतत्'का पुल्लिंग 'एषः' और स्त्रीलिंग 'एषा' होगा.

३.अदस् = मानें दिख रहा है पर दूर है. जब किसी वस्तुकी दूरी दिखानी हो तो उसके लिए 'अदस्' शब्दका प्रयोग होता है

४.तत् = जो वस्तु दीख नहीं रही है और उसके बारेमें यदि हम बात करनी हो तो उसके लिए 'तत्' शब्दका प्रयोग होता है.

मैं और जो मुझे सामने दिखाई दे रहा है वह इदम्, जो बिलकुल करीब दिखाई देता हो वह एतत्, जो बहुत दूर दिखाई देता हो वह अदस् और जो दिखाई नहीं देता हो वह तत्, इन सबके लिए संस्कृतमें अलग-अलग शब्द हैं.

'तत्'का प्रयोग इसीके लिए किया जाता है कि जिसका अनुभव हमें नहीं हो रहा है. यहाँ 'तस्मै' शब्दका प्रयोग किया है मानें 'तत्'का प्रयोग भगवान्के लिए किया है. भगवान् तो उनके सामने है. समस्या समझनेकी कोशिश करो कि भगवान्, यमलार्जुनके सामने हैं. भगवान्को 'तस्मै'से संबोधित कर रहे हैं. महाप्रभुजीका इसके बारेमें जो कहना है वह महाप्रभुजीको ही सूझ सकता है दूसरे किसीको सूझा नहीं है. जो 'तत्'का अभिप्राय महाप्रभुजीने माना है उसका यहां थोड़ा विवेचन करेंगे. 'तत्' = जो वस्तु परोक्ष हो उसके लिए प्रयोगमें आता है. यहाँ तो भगवान् दिख रहे हैं तो उन्हें 'तत्' क्यों कह रहे हैं? 'तु' किसे कहा जाता है, जो सामने हो.'ते' उसे कहा जाता है जो परोक्ष हो.

किसी भी धार्मिक ग्रन्थमें; चाहे वह कुरान हो या बाइबल, जैन हो या बौद्ध धर्मके ग्रन्थ हों, जहाँ भी भगवान्की बात आती

है तो उसके लिए यह दोनों पॅरामीटर् उपयोगमें आते हैं. उसे ‘वह’ और ‘तू’ भी कहा जाता है. यह अपने दिमागकी वस्तु-स्थितिका संकेत है कि यद्यपि भगवान् हमें दिखता नहीं है तो भी भगवान् हमारे सामने हैं. भगवान् हमारे सामने नहीं है पर हम भगवान्के सामने हैं. यह प्रकार प्रत्येक धर्मग्रन्थमें हमें देखनेको मिलता है. हम उसे नहीं देख सकते पर वह हमें देख सकता है. यदि भगवान् हमें नहीं दिखता तो वह हमारे सामने किस प्रकार हो सकता है और हम यदि आमने-सामने हैं तो फिर वह हमें क्यों नहीं दिखता! भगवान्में यह दोनों गुण होनेके कारण वह परोक्ष भी है और अपरोक्ष भी है. ऐसा फिल्मी गानोंमें भी मिलता है कि *तू है बेवफा*... अब प्रेमी सामने तो है नहीं तो ‘तू’के स्थानपर ‘वह’का प्रयोग होना चाहिये था. पर वहाँ तो कॅमरेके एड्जेस्टमॅन्ट्से वह दोनों तरफका दिखा सकते है. पर अपने और भगवान्के साथ तो यह सम्भव नहीं है. यदि उपकरणोंके साथ यह फिल्ममें सम्भव है तो भगवान्के साथ जो कि सर्वव्यापी है उसके लिए भी ‘वह’ और ‘तू’ दोनों प्रयोग किये जा सकते हैं. भगवान्के साथ मोनोलॉग्के फॉर्म्में भी डायलॉग् होते है. इसी प्रकार डायलॉग भी मोनोलॉग्के फॉर्म्में हो सकते है. ऐसा फिल्म् नाटक कविता में देख सकते हैं. वहाँ हमें यह समस्या नहीं सताती है. क्योंकि उसको हम उस रूपमें लेनेके लिए तैयार ही होते हैं.

जब यह भगवान्के साथ अपना व्यवहार होता है तो हमें लगता है कि ‘‘ओह! वह तो यहाँ है नहीं, तो बात तुम किसके साथ कर रहे हो. यदि कोई हीरो अथवा हिरोइन दूर रह कर भी एक-दूसरेसे डायलॉगके रूपमें गाना गा रहे हैं, तो क्या हम उनको पागल कहेंगे? पर यदि कोई भगवान्के साथ ऐसे बात करता हो तो हमें लगेगा कि उसने कुछ नशा किया है. हमें लगेगा कि अपनी प्रार्थना तक तो ठीक है पर भगवान् क्या कह रहे

हैं वह तुझे किस प्रकार सुनाई दे रहा है! हमें यह भी लगता है कि वैसे तो भगवान् सर्वव्यापी है पर इस तरह किसीके साथ बात वह नहीं कर सकता. ऐसी श्रद्धा और अंधश्रद्धा का मॅनेजमॅन्ट् कोई कॅमरा तो कर नहीं सकता. इसलिए उस मॅनेजमॅन्ट्को करनेके लिए फिलोसॉफी बीचमें आती है.

भगवान् यदि परोक्ष हों तो उसके बारेमें हम कुछ कह नहीं सकते. यदि भगवान् अपरोक्ष हो तो हमें उनके हाज़िर होनेका अनुभव होना चाहिये. महाप्रभुजी कह रहे हैं कि **केवलं तस्मै सर्वदुर्ज्ञेयाय** '**तस्मै**' कहनेसे उसकी दुर्ज्ञेयता बतायी है. जिस वस्तुको हम जान नहीं सकते हैं वह दुर्ज्ञेय है. भगवान्में दुर्ज्ञेयता है और '**तुभ्यं**' कह रहे हैं, तो यमलार्जुनका कुछ विनोद प्रकट हो रहा है कि दुर्ज्ञेय होनेके बावजूद आप सामने प्रकट हो, दीख रहे हो पर आपको जाना नहीं जा सकता. जाननेके बाद भी आपको देखा नहीं जा सकता. यह जो मॉडल् है कि जिसको जाना जा सकता है पर देखा नहीं जा सकता, उसके लिए 'तस्मै' और 'तुभ्यं' यह शब्दप्रयोग किये जा सकते हैं.

जैसे कि इस जगत्को देखा तो जा सकता है पर ऐसा दावा कोई नहीं कर सकता कि इस जगत्को मैं जान गया हूं. कितने समयसे हरेक वस्तु ऊपरसे नीचे गिरती ही थी कि क्यों वस्तुएं पृथ्वीकी ओर गिरती है जान तो न्यूटन जैसा साइंटिस्ट् ही पाया. इसी प्रकार हम जगत्को देख सकते हैं पर जान नहीं सकते. बोलचालकी भाषामें हम देखनेकी क्रियाको जाननेकी क्रियाका पर्याय मान लेते हैं. पर दार्शनिक दृष्टिसे दिखाई देनेपर यदि वस्तुका ज्ञान होता हो तो जैसे अंग्रेजीमें एक कहावत है कि All that glitters is not gold देखनेपर तो सोना जैसा ही दिखलाई देता है पर सोना ही हो ऐसा तो हम कह नहीं सकते. इसी प्रकार जाननेके लिए उसके कुछ

और पॅरामीटर्स होते हैं. इसी प्रकार भगवान् दुर्ज्ञेय है और दुर्ज्ञेय होनेके बावजूद उसे देखा जा सकता है. जब वह लीला-विनोद करनेके लिए प्रकट हो तब, नहीं तो दिखना भी कठिन है.

जैसे 'ओह माई गॉड्' फिल्मूमें स्वयं ही उस व्यापारीके यहाँ प्रकट हो गया. उसमें व्यापारी कहता है कि "तेरी बंसी, तेरी धोती कहाँ है?" मानें जानना तो कठिन है ही. उस फिल्ममें भी व्यापारीने भगवान्को पहली बार देखनेपर एक स्टंटमॅन् माना. कुछ देर बाद उसे भगवान् एक बोरिंग् अध्यापक लगा, जो कि गीता भागवत कुरान की बात कर रहा है. भगवान् उसे अपनी हकीकत कई प्रकारसे बताना चाह रहे हैं. पर वह जाननेके लिए तैयार ही नहीं है, उसे जानना कठिन है. आखिरमें भगवान् उसे कुछ देते हैं और वह उसे पूजामें रख लेना चाहता है. भगवान् ही उसे टोकते हैं कि "यह तू क्या कर रहा है, फेंक उसे". अभी मुझे कोई बता रहा था कि "ओह माई गॉड्" पिक्चर छूटते ही सब लोग बाजूकी हवेलीमें दर्शन करने गये. पिक्चर देखते हैं पर जान नहीं पातें. पिक्चरकी भी प्रशंसा कर रहे हैं और साथमें हवेलीमें दर्शन करने भी जा रहे हैं. गालिबका एक बहुत मजेदार शेर है *"कहाँ मयखानेका दरवाज़ा 'गालिब' और कहाँ वाइज़, पर इतना जानते हैं कल वो जाता था के हम निकले."* जब फिल्म हम देख कर भी नहीं समझ सकतें तो भगवान्को देख कर भी किस प्रकार जाना जा सकता है.

यही बात महाप्रभुजी यहाँ कह रहे हैं कि भगवान्को हम देख सकते हैं पर देखनेके बावजूद उसे जान नहीं सकतें. यदि सचमें जान भी पायें तो, दूसरे मतोंमें जो कुछ भी कहा गया हो पर अपनी भागवत और उपनिषद्के मतानुसार यदि हम जगत्को देख रहे हैं, तो भगवान्को ही तो देख रहे हैं. भगवान्को जगद्रूपमें

देखनेके बाद भी जगत्की भगवद्रूपता जान नहीं सकते, यह जो विरोधाभास है वह विरोधाभास यहाँ प्रकट हो रहा है 'तस्मै' और 'तुभ्यम्'से.

यहाँ महाप्रभुजी एक और विषय उठा रहे हैं. उपनिषद् एक बात कही है, जिसका भक्तिमार्गी तो नहीं पर ज्ञानमार्गी बहुत ढ़ोल पीटते हैं. वे कहते हैं कि **"तमेव विदित्वा अतिमृत्युम् एति न अन्यः पन्थाः विद्यते अयनाय."** (श्वेता.उप.३।८) भगवान्को जाने बिना किसीको मोक्ष मिल नहीं सकता और मुक्तिका कोई मार्ग नहीं है. यहाँ जो मुद्दा है वह यह है कि भगवान्को जाननेसे मुक्ति मिलती है कि भगवान्को देखनेसे? यह फिलॉसोफिकल् नहीं है, थियोलॉजीकल् मुद्दा है. मोटे तौरपर तुम्हें ऐसे वचन व मान्यता मिलेगी कि भगवान्का साक्षात्कार हो तो जीव मुक्त हो जाता है. हम ऐसा कहते भी हैं कि "उसे तो भगवत्साक्षात्कार हो गया था. इसलिए वह मुक्त हो गया." इस आधारपर एक ऐसा सिद्धान्त है कि भगवान्को जानो अथवा नहीं जानो पर देखनेसे ही मुक्ति मिल सकती है. यदि भगवान्को देखनेसे ही मुक्ति मिलती हो और भगवान् ही जगद्रूपमें प्रकट हुए हों, तो जो कुछ भी हम देख रहे हैं वह भगवान्को ही तो देख रहे हैं! फिर तो जगत्को देखनेसे भी मुक्ति मिलनी चाहिये. अब हमें पक्ष उल्टा करना पड़ेगा कि देखनेसे नहीं, जाननेसे मुक्ति मिलती है. उपरोक्त वचनमें यह कहनेमें आया है कि उसे जानो तो ही तुम्हें मुक्ति मिल सकती है. मानें उसे यदि तुमने देखा भी है पर जाना नहीं है तो मुक्ति नहीं मिल सकती. इस वाक्यमें भक्तिमार्ग और ज्ञानमार्ग का झगड़ा है.

ज्ञानमार्गी इसका यह अर्थ निकालते हैं कि भजनेसे मुक्ति नहीं मिलती क्योंकि उसकी सेवासे तुम उसे जान नहीं सकते. शांकर मतवाले तो यहां-तक कहते हैं कि अधिकसे अधिक भक्तिसे तुम्हें

एक ही लाभ होगा कि तुम्हारा मन दूसरे विषयोंसे अलग हो जायगा और तुम्हारे मनको उसे जाननेकी चाहना होगी. पर मुक्ति तो तुम्हें उसे जाननेसे मिलेगी, भजनेसे नहीं.

भक्तिमार्गी पक्ष यह है कि 'एव'कार 'तम्'के बाद रखा है. अर्थात् जाननेसे ही नहीं, केवल उसको ही जाननेसे मुक्ति मिलती है. यह इस वाक्यका अर्थ है. तुम इसका अर्थ गलत कर रहे हो. इसलिए 'एवकार'को तुम भक्तिको नीचा दिखानेके लिए नहीं प्रयोगमें ला सकते. केवल जाननेसे ही यदि मुक्ति मिलती तो तुम स्वयंको जानोगे; किस-किसको जानोगे, पर जाननेसे मुक्ति नहीं मिलती है. यदि मुक्ति मिलेगी तो केवल भगवान्को ही जाननेसे मुक्ति मिल सकती है. इसलिए इस वाक्यमें भार ज्ञानपर न हो कर विषयपर है. किस विषयका ज्ञान हम अर्जित करें कि हमें मुक्ति मिले. इस बातका यहां विवेचन है. जाननेसे मुक्ति मिलती है ऐसा गलत अर्थ मत निकालो. यह वाक्य भक्तिमार्गको कैंसल् नहीं कर रहा है.

एक और बात कि "उसको जाननेसे ही मुक्ति मिलेगी" यह पूर्ण सत्य नहीं है. क्योंकि उसका कोई प्रकार भी होना चाहिये. उस प्रकार ही यदि उसे जानो तो ही तुमको मुक्ति मिल सकती है. यदि उसे किसी और प्रकारसे तुम जान रहे हो तो तुम्हें मुक्ति नहीं मिल सकती. हम केवल 'ओह माई गॉड'का ही उदाहरण लें. भगवान् वहाँ प्रारम्भमें यह दावा कर रहे हैं कि मैं जिसके सामने प्रकट होना चाहता हूँ, वही मुझे देख सकता है. सब मुझे नहीं देख सकते. हीरो अपने सहयोगीको बुला कर पूछता है कि "तुझे यहाँ कोई दिख रहा है." वह बोलता है 'हाँ'. भगवान्का वह दावा यहाँ झूठा पड़ गया. इतना ही नहीं कोर्टमें जब वह जाता है तो भगवान् भी वहाँ जाते हैं. उनके बाजुमें बैठा व्यक्ति पूछता

है “आप कौन?” वे बोलते हैं ‘भगवान्’. वह भी जवाब देता है ‘मैं भी अमिताभ बच्चन हूं’ उसको भी तो दिखलाई दे ही रहे हैं भगवान्. अब यदि भगवत्साक्षात्कारसे मुक्ति होती हो तो उन सभीकी होनी चाहिये थी. पर उन्होंने भगवान्को देखा पर जाना नहीं. बतानेके बाद भी लोगोंने उनकी हंसी उड़ाई. असली मुद्दा दिखलाई देनेका नहीं है, जाननेका नहीं है, पर एक प्रकार यहां अपेक्षित है कि यदि तुम जानोगे तो ही तुमको मुक्ति मिलेगी. अब प्रकारका जब प्रश्न आता है तो किस प्रकार जानें कि मुक्ति हो. भगवान्के विषयमें यह इश्यु इतना नाजूक हो जाता है कि जैसे हम यह समझते हैं कि भगवान्का साक्षात्कार हो गया और मुक्ति हो गयी अथवा भगवान्को जान गये तो मुक्ति हो गयी. यह तो केवल चमत्कारिक कथाओं तक ही सीमित है.

वह तो ‘ओह माई गॉड्’में भी दिखलाया है कि उसने भगवान्से बात करते पीठ मोड़ी और वापस मुड़ा तो भगवान् नदारद. ऐसे ही तुम कह रहे हो कि मैं श्रीनाथजी गया था, वहाँ रास्ता भटक गया और अचानक श्रीनाथजीने एक बालकके रूपमें आ कर मुझे रास्ता दिखा दिया. पीछे मुड़ कर देखा तो बालक दिखलाई नहीं दिया. कुछ लोग तो पीछे मुड़ कर खाईमें भी गिर जाते हैं. फिर गिर कर वे नरकमें जाते हैं कि मुक्त होते हैं, क्या पता? उस बालकके रूपमें तुमने श्रीनाथजीको देखा, फिर तुम पहचान भी गये पर तुम्हें मुक्ति मिली कि नहीं, यह बात रह ही गयी. ऐसी अनेक चमत्कारिक कथाएं पढनेको मिलेगी.

जो बात उनमें नहीं मिलती है वह यह है कि उसे जाननेसे मुक्ति मिलती है अथवा देखनेसे मुक्ति मिलती है अथवा कोई विशेष प्रकारसे जाननेसे मुक्ति मिलती है अथवा भजनेसे मुक्ति मिलती है अथवा जैसे पांडुरंग शास्त्री कहते थे कि उसे भजनेसे मुक्ति नहीं

मिलती, यह तो निष्काम कर्म करनेसे मुक्ति मिलती है. किस चीजसे मुक्ति मिलती है यह तो एक विचार्य विषय हो गया. इससे भी बड़ी एक और समस्या है कि हम कुछ साधन करें तो मुक्ति होगी अथवा वह देगा तो मुक्ति होगी. मानें मुक्तिपर उसकी मोनोपॉली है कि हम भी दावा कर सकते हैं कि तुमने जो कहा था, हमने किया. अब मुझे मुक्ति दो. जैसे कि परीक्षामें पेपर् लिखा और हमने चॅक् भी करवा लिया. जो लिखा वह सही है तो हम दावा कर सकते हैं कि फेल् कैसे हो गये, पास् होना चाहिये था. अपने दावेसे मुक्ति मिलती है कि उसके देनेसे मुक्ति मिलती है!

जहाँ देव या भगवान् एक पार्टीकी तरह इनवॉल्व् है वहाँ यह समस्या तो है ही. यह अपनी ही केवल बात नहीं है. यही बात अल्लाहके आराधकके साथ है कि जो भी फल उनके इस्लाममें मिल रहा है वह अपने दावेके कारण मिल रहा है कि उसकी मर्जीसे मिल रहा है? इरानमें एक सूफी हुआ है. उसने एक बहुत सुन्दर बात कही है. *मन बन्दे आसीयम रजा-ए-तु कुजास्त. तारीक दिलम नूरे-रजा-ए-तू कुजास्त. मारा अगर तू बहिश्त ब ताअत बख्शी ई मुज्द बुवद लुत्के-अताई तु कुजास्त* मैं तो दुष्ट अज्ञानी जीव हूँ पर तूने मेरी दुष्टता या अज्ञानता के लिए अपनी रजामंदी स्वीकृति क्यों दी? यदि तू सबका मालिक हो तो कोई भी पिता अपने पुत्रके अज्ञानी होनेकी स्वीकृति तो नहीं देता. स्कूल भेजता है, पढ़ाता है, पुत्रका अज्ञान मिटानेके लिए सभी कुछ करता है. आगे कहता है कि मेरे हृदयमें बहुत अंधकार है पर वह अंधकार भरा रहे, ऐसी स्वीकृति तूने क्यों दी? तूने वहां उजाला क्यों नहीं किया? अभी तक मालिक मैं हूँ कि तू है. अब तू कहता है कि मैं मुक्तिके लायक नहीं हूँ क्योंकि मैंने पाप बहुत किये हैं और मैं जब-तक पाप नहीं छोडूँगा, तब-तक तू मुझे बहिश्त नहीं देगा तो मैं अपने दावेसे लूँगा इसमें तेरी कृपाका क्या रोल रहेगा?

इस समस्याकी गहराईमें जब हम जायेंगे कि जीवकी मुक्ति कैसे हो? उसे देखनेसे कि उसे जाननेसे कि उसे एक विशेष प्रकारसे जाननेसे कि अपनी साधनासे कि उसके वचनोंसे जैसे गीताके प्रचारसे चाहे वह मुझे स्वयं समझ आती हो अथवा नहीं. तू कैसे मिलेगा इस बातका ठीकसे पता कैसे चले? यह समस्या इतनी फिलॉसॉफीके लिए गंभीर नहीं है जितनी थियोलॉजीके लिए है.

पहले थियोलॉजी और रिलीजन् के भेदको हम समझें. जिसको हम 'देव' कहते हैं, उस शब्दको लेटिनमें 'थियोस्' कहा जाता है. रिलीज़न् थियोलॉजीकल् भी हो सकता है और नॉन्-थियोलॉजीकल् भी हो सकता है. रिलिजन् किसी देवके लिए भी हो सकता है और स्वतन्त्र भी हो सकता है. यहाँ यह समझना आवश्यक है कि गॉड् और देव ये दो अलग फिनोमिना है. 'थियोलॉजी' मानें देवोंके रूप, ज्ञान और कर्म के बारेमें जिस शास्त्रसे जानकारी मिलती हो ऐसा शास्त्र. क्रिश्चयन् लोगोंने देवोंके लिए एक शब्द गढ़ा है 'डेमी गॉड्'. यह शब्द केवल उन देवोंको अपमानित करनेके लिए ही बनाया है क्योंकि वे एकमें ही विश्वास करते हैं. हालांकि यह शब्द उन देवोंको नीचा दिखानेके लिए है परन्तु यह कुछ न कुछ उन देवोंके बारेमें विचार तो प्रस्तुत करता ही है. देव, ईश्वर भी हो सकता है और डेमी-गॉड् भी हो सकता है. जैसे हम हनुमानजीको गरुड़जीको देव मानते हैं. वे लोग कहते हैं कि यह सब गॉड् नहीं हैं, डेमी गॉड् हैं. भगवान्के लिए उनके यहाँ 'गॉड्' शब्द है और देवके लिए 'डेमी गॉड्' शब्द है. इस प्रकार थियोलॉजी एक ऐसा शास्त्र हे जो कि देव अथवा डेमी गॉड्के बारेमें जानकारी देता हो. रिलीजन्के लिए देवोंका होना आवश्यक नहीं है. फिलॉसॉफीके लिए गॉड् अथवा ईश्वर का होना आवश्यक वस्तु नहीं है. फिलॉसॉफीकली हम 'गॉड्' कॉन्सेप्ट्पर अपने विचार अवश्य प्रस्तुत कर सकते हैं परन्तु प्राय: जब भी देवोंके विषयमें बात करनी हो तो पश्चिमी

फिलॉसॉफर् हमेशा यह ही कहते हैं कि ‘‘यह मेरा विषय नहीं है. यह तो थियोलॉजीका विषय है’’. इस प्रकार ‘देव’ फिलॉसॉफीका नहीं अपितु थियोलॉजीका विषय कहा जाता है.

थियोलॉजी = देवशास्त्र. फिलॉसॉफी = तत्त्वशास्त्र. फिलॉसॉफीमें भगवान्का भी एक तत्त्वके रूपमें विचार किया जाता है. तत्त्वका भगवान्के रूपमें विचार नहीं किया जाता है. इन दोनों बातोंमें बहुत अन्तर आ जाता है. जैसे सोनीकी दुकानमें गहनोंमें सोनेकी मात्राका मापदण्ड तत्त्वरूपमें किया जाता है पर उनकी डिज़ाइन्को एक कलाकृति होनेसे मापा नहीं जाता. यदि गहनेको सोनेकी कीमतमें खरीदने जायें तो गहना नहीं मिलेगा क्योंकि उसमें गहनेकी घडाईकी कीमत भी तो जुड़ जाती है. समझो कि किसीको गहनेका शौक नहीं है, केवल सोनेका ही शौक है. तो वह गहने तो इकट्ठे कर ही सकता है. जब वह ऐसा करता है तो उसके मनमें उन गहनोंकी डिज़ाईन्की कीमत नहीं है, पर सोनेकी है. इसी कारणसे साऊथ् अमेरिकाकी ‘माया’ नामकी संस्कृतिसे शुरुआतमें यूरोपमें लाये सभी गहनोंको गला कर सोनेमें परिवर्तित कर दिया था. उनके लिए उस पदार्थमें केवल सोनेकी ही कीमत थी, उसकी डिज़ाईन्की नहीं. यह ‘तत्त्वशास्त्र’ है. उसके बाद जब लोगोंको इतिहासके बारेमें पता चला तो वह यह जान गये कि उन गहनोंकी एन्टीक् वॅल्यु सोनेसे भी डेढ़ गुनी हो गयी है, तो वह माथा पीट कर रोने लगे. सोनेके गहनेकी एक एन्टीक् वॅल्यु अलग है और उसमें रहे हुए सोनेकी वॅल्यु अलग है. इसी प्रकार तत्त्वकी एक डिवाइन् वॅल्यु अलग होती है और डिवाइन् पदार्थकी तत्त्विक वॅल्यु अलग होती है.

मेरा एक दोस्त; जो कि मुसलमान है, बहोत अच्छा सितार बजाता है. उसके पड़ौसमें पारसन बाई रहती थी. मेरा मित्र सारे दिन सितार बजाता था और लोगोंको सिखाता था. उस पारसनको

उससे बहुत परेशानी थी. वह कहती थी कि "सारा दिन क्या टूँ-टूँ करता है, पता नहीं कुछ कमाई भी करता है कि नहीं?" किसीने उससे कहा कि "अरे एक बार प्रोग्राममें बजानेके उसे दो हजार मिलते हैं." यह सुन कर तो वह चौंक गयी. उस सितारवादकके पास जा कर बोली "अरे आप तो बहुत अच्छा बजाते हो. आपको एक बार बजानेके दो हजार मिलते हैं, यह मुझे पता ही नहीं था." जो उसको टूँ-टूँ लगता था वह ही अब उसे अच्छा लगने लगा. अब देखो, उसी ध्वनिकी डिस्टर्बिंग् वॅल्यु और फाइनेंसियल् वॅल्यु अलग-अलग हो गयी.

इसी प्रकार गॉड्की भी कोई तात्त्विक वॅल्यु हो सकती है और फिलोसॉफीकी भी कोई डिवाइन् वॅल्यु हो सकती है. हमें इन दोनों वॅल्युको एक-दूसरेके साथ मिक्स-अप् नहीं करना चाहिये. इसी प्रकार गॉड्की कोई थियोलॉजीकल् वॅल्यु अलग होती है और थियोलॉजीकी डिवाईन् वॅल्यु अलग होती है. आप यदि शब्दोंकी यात्राके बारेमें जानेंगे तो ही आपको इसका आनन्द आयेगा. 'डिवाइन्' शब्द 'दिव्' धातुसे बना है, जो कि देवसे बना है. 'थियोस्' ग्रीक शब्द है और 'डिवाइन्' लॅटिन् शब्द है. संस्कृतमें 'देवस्' शब्द है. लेटिनमें 'दियॉस्' शब्द है और ग्रीकमें 'थियॉस्' शब्द है. इन सब शब्दोंका एक ही अर्थ है. जैसे ही हम 'डिवाईन्' कहते हैं तो वहाँ उसकी कीमत बढ़ जाती है. पर जैसे ही 'थियोलॉजी' कहते हैं, सब नाक-भौं सिकोड़ लेते हैं. अर्थ जबकि एक ही है!

किसीने बॉम्बे यूनिवर्सिटीमें महाप्रभुजीपर पी.एच.डी की है. उसने यह लिखा है कि श्रीवल्लभाचार्यके विचारोंमें थियोलॉजी अधिक प्रकट होती है, फिलोसॉफी नहीं. अरे, पहले शब्दोंका भेद तो समझो! अपने यहाँ देवशास्त्र और तत्त्वशास्त्र ऐसे दो भेद किये गये हैं. तत्त्वशास्त्रको 'दर्शन' कहा गया है. इसके साथ यह भी कहा गया

है कि दर्शन ब्रह्मदर्शन भी हो सकता है और अब्रह्मदर्शन भी. इसलिए ब्रह्मका देवके रूपमें दर्शन और देवका ब्रह्मरूपमें दर्शन, मनुष्यका देवरूपमें दर्शन और देवका मनुष्यरूपमें दर्शन, यह सब बातें थियोलॉजीकली समस्या लिये हुए हैं.

अब नलकूबर-मणिग्रीव जिसे 'तू' और 'वह' कह रहे हैं. वह मनुष्यमें देवको देख रहे हैं अथवा देवमें मनुष्यको देख रहे हैं अथवा ब्रह्ममें देव और मनुष्य दोनोंको देख रहे हैं? समस्या क्या है उसे ठीकसे समझो. अपने पास कितनी सम्भावनाएं हैं. उन्हें कृष्ण दिखलाई दे रहा है, वे उसे जान पाये हैं कि नहीं? उसकी स्तुति इस बातकी साक्षी है. वह जैसा दिखलाई दे रहा है वैसा उसका वर्णन नहीं कर रहे हैं, कुछ और ही उसका वर्णन कर रहे हैं. अब अपने सामने समस्या यह है कि फिर नलकूबर-मणिग्रीव यमलार्जुन कृष्णको जान कर देख रहे हैं. वे ब्रह्मको कृष्णरूपमें देख रहे हैं कि कृष्णको ब्रह्मरूपमें जान रहे हैं? यहाँ सब्जॅक्ट् और प्रॅडिकेट् में क्या भेद है? कौन क्या है? यदि ब्रह्मके ॲन्गल्से देखें तो ब्रह्म सब्जॅक्ट् है और कृष्ण प्रॅडिकेट् है और यदि कृष्णके ॲन्गल्से देखें तो कृष्ण सब्जॅक्ट् है और ब्रह्म प्रॅडिकेट् है. इसका निष्कर्ष हम निकालेंगे कि कृष्ण ही ब्रह्म है. अभी और इसपर विचार करें, जो नलकूबर-मणिग्रीवको दीख रहा है वह कृष्ण है और उसमें वे ब्रह्मका दर्शन कर रहे हैं. जो दीख रहा है उसके बारेमें अपनी जानकारी दे रहे हैं. स्तुतिके द्वारा यदि ब्रह्मको कृष्ण मान रहे हैं, तो ब्रह्मके बारेमें जो जानते हैं उसका दर्शन कृष्णमें कर रहे हैं.

जिसे जानते थे उसीको देख रहे हैं, यह तो विस्मयबोधक वाक्य हो जायगा. दूसरा, जो देख रहे हैं उसके बारेमें जानकारी है और वह बता रहे है. आपको लगता होगा कि यह बिल्कुल

सेन्सलेस् बात है, पर यदि इसका भेद समझना हो तो आपको एक उदाहरण देता हूं : “घोड़ा एक जानवर है” और “जानवर घोड़ा है” इन दोनों विधानोंमें एक सॅन्सिबल् स्टेटमॅन्ट् और दूसरा सॅन्सलेस् लगता हैं. पर इनमें दोनोंमेंसे किसी भी एक तरहकी हमारी understanding पैदा कैसे होती है उसका विचार करें. पहले हम कुछ perceive यानि कि आँखसे देखते हैं. बादमें उसकी impression, memoryमें retain हो जाती है. रिटेइन्ड् हुवा हो Then afterword if same type of perceptive stimulation occurs then we recognise that stimuli as per retention. This is a one order of knowledge. Perception → retention → restimulation → memory → recognition.

Other order of knowledge, the perception may or may not be there but we do recognise the type of understanding, means repeated experience makes us recognise. मानें बार-बार एक ही घटनाके प्रत्यक्ष होनेपर अपनी पहचान करनेकी सामर्थ्य अपने आप आ जाती है.

एक व्यक्ति जो गंजा था विग पहन कर मेरे पास आया तो मैं उसे पहचान ही नहीं पाया. ऐसा नहीं था कि मैं बिल्कुल ही नहीं पहचान पाया पर कुछ संशय तो मनमें था ही. अचानक बाल आ जानेके कारण जिस रूपमें मैंने उनकी पहचान अपनी याददाश्तमें संजोयी थी, उसमें वह फिट् नहीं हो रही थी. गड़बड़ीमें मैं पूछ बैठा “आप आप ही हो न?” वह बोला “मैं यदि मैं न होऊं और क्या होऊंगा?” तो संशय तो होना ही था. वहाँ पहचान पानेकी सामर्थ्य थोड़ा-बहोत तो तो काम कर ही रही है पर पूर्णतया नहीं. यह बिल्कुल वैसा ही है जैसे कि की-बोर्ड या टाईप् राइटर् पर अंगुलियां अपने आप पहचान कर चलती रहती हैं. हमें कभी भी ‘की’को देखनेकी आवश्यकता नहीं होती. इसका अर्थ यह नहीं

है कि हमारी पहचान पानेकी शक्ति अनावश्यक हो गयी है या हमारी आँखोंका रोल वहां समाप्त हो गया. अभ्यासके कारण अंगुली आँखोंका रोल अदा कर पहचान रही है.

समझो कि कम्प्यूटरमें कोई खराबी आ गयी है और जो अक्षर हम एक 'की'से लिखना चाह रहे हैं, उसकी बजाय कोई दूसरा ही आने लगे तो हमें झटका लगेगा कि ऐसा कैसे हुवा! उस समय हम अंगुलीपर विश्वास न करके, आँखसे वॅरीफाई करना चाहेंगे. ज्ञान प्राप्त करनेकी यही प्रक्रिया है.

अब हो सकता है, नलकूबर-मणिग्रीव विष्णुके बारेमें जानते होंगे पर हो सकता है कि शायद ब्रह्मके बारेमें उन्हें जानकारी नहीं हो. यह भी तो एक सम्भावना है नारदजीके इस वचनसे कि "विष्णुका अवतार तुम्हारा उद्धार करेगा" इस वचनको प्रमाण मान कर "इस कृष्णने हमारा उद्धार किया है", इस कारणसे उन्हें ज्ञात हुआ कि यह विष्णुके अवतार है और उन्हें पहचाननेका यही कारण था. यदि नारदके कहनेपर ही वह पहचान पाये हों तो वह पहचान तो केवल विष्णुके बारेमें ही होती. दूसरी सम्भावना ये कि चाहे आप विष्णुरूपमें दिखलाई नहीं दे रहे हो फिर भी आप ब्रह्म ही हो. ये सारे पहलु नलकूबर-मणिग्रीव वर्णित कर रहे हैं. कृष्ण अपने आपको वैसा प्रस्तुत करना चाह रहे हों. उस प्रकार नारदका इतना रोल् तो अवश्य है कि जो प्रकट हुआ है वह कोई एक्स्ट्रा ऑर्डिनरी फिनोमिना है. पर ऐसी कौनसी अद्भुत बात है कृष्णके व्यक्तित्वमें कि केवल कृष्ण ही उजागर कर सकता है. क्योंकि यह गुण कृष्णके द्वारा ही उजागर है तो उन्होंने इस कृष्णको देखा और अपने पूर्वानुमतमें जिस ब्रह्मकी उन्होंने परिकल्पना की थी उसका विचार किया और निर्णय लिया कि यह वही ब्रह्म है. लेकिन वह वर्णन तो कृष्णका थियोलॉजीके हिसाबसे नहीं बल्कि फिलॉसॉफीके हिसाबसे कर रहे हैं.

वह वर्णन उनकी स्मृतिके हिसाबसे नहीं है और नही ऐसा रहस्योद्घाटन कोई उनकी तार्किक बुद्धिकी उपज है. पर इसका कारण है कि कृष्णको अपने रहस्यको उनके सामने उजागर करना ही है. जैसा उनकी आंखके समक्ष कृष्ण अपने गुण प्रकट कर रहे हैं ऐसे उनकी बुद्धिमें नहीं कर रहे हैं. दोनों रहस्य, दो रूपोंमें, एक आंखके समक्ष और एक बुद्धिके समक्ष कृष्ण प्रस्तुत कर रहे हैं.

<u>सुबोधिनी</u> :

तस्मै तुभ्यम् इति, केवलं तस्मै सर्वदुर्ज्ञेयाय तुभ्यं नानाविनोदयुक्ताय नमः. ननु "तमेव विदित्वा अतिमृत्युम् एति" (श्वेता.उप.३।८) इति श्रुतेः कथं भगवदज्ञाने निस्तारः? इति चेत् तत्र आहतुः भगवते इति, भगवज्ज्ञानगुणेन भगवज्ज्ञानम्. अज्ञातोऽपि प्रमेयबलेन निस्तारयतीति भक्तिः तत्र प्रयोजिका. "यस्य अमतं तस्य मतं, मतं यस्य न वेद सो, अविज्ञातं विजानतां विज्ञातम् अविजानताम्" (केनोप.२।३) इति श्रुत्या अज्ञातएव ज्ञातो भवति. अतो भगवान् ईश्वरः केन ज्ञातुं शक्यः! किञ्च प्रमाणबलेन अज्ञातोऽपि स्वतो ज्ञातुं शक्यो, यतो अयं वासुदेवः वसुदेवे शुद्धे सत्त्वे आविर्भवतीति. आविर्भूतस्तु सर्वैरेव ज्ञातुं शक्यः. ननु एतदेव सर्वं कुतो भवेत्— साधनपरता, साधनोत्पत्तिः, सत्त्वशुद्धेः आविर्भावः इति? तत्र आहतुः वेधसः इति, सहि सर्वं विदधाति, अन्यथा तेन कृतः तन्मार्गो व्यर्थः स्यात्. धीमहि नमः इति वा. हृदये प्रत्यक्षे भगवति तत्पादयोः शिरः स्थापयित्वा मनसा यद् नमनं तत् सोपस्करं धीमहि इति अर्थः.

अब समझ और आंख में जो असमन्वय हमें दिखलाई दे रहा है कि कोई लाचार शिशु जो कि ऊलूखलसे बंधा है, वह घिसट रहा है और जिसके दैविक दीखने जैसा कुछ नहीं. पर साथ-साथ वे यह भी जानते हैं कि इसीने हमारा उद्धार किया है. यह कोई केवल असाधारण बालक ही नहीं है बल्कि एक ऐसा फिनोमिना

है, जो मूलतत्त्व है. “**तमेव विदित्वा**” कह कर वे इस बातको सूचित कर रहे हैं कि जो कुछ हम कह रहे हैं वह इस तत्त्वको जान कर कह रहे हैं. “**न अन्य: पन्था: विद्यते अयनाय**” वे उस तत्त्वको समझ पाये इसलिए उनकी मुक्ति हो रही है. देखनेके कारण नहीं; क्योंकि कृष्णको देख तो सभी रहे थे पर कोई बिरला ही समझ पाया था. प्रत्येक व्यक्तिके लिए उसे जानना भी इतना आसान नहीं है. इसी कारण महाप्रभुजी यहाँ कह रहे हैं कि **केवलं तस्मै सर्वदुर्ज्ञेयाय तुभ्यं नानाविनोदयुक्ताय.** दुर्ज्ञेय होनेपर वह कैसे कैसे विनोद कर सकता है और यदि विनोद करना समझमें आ पाता हो तो फिर दुर्ज्ञेय कहाँ रहा? समझनेकी बात है कि यही तो उसका विनोद है.

मैने पहले भी आपको एक सूफी संत जो कि दाराशिकोका गुरु था उसकी बात बताई थी. उसने एक बहुत सुंदर बात कही है. *मशहूर शुदि दिलरुबाई हमाजा, बेमिस्ल शुदि आशनाई हमाजा, मारा तुरा ई तोर हरकस् बीनम्, खुदरा न नुमाई व नुमाई हमाजा.* वह भगवान्‌को कह रहा है कि तेरी सबसे मीठी बात मुझे यह लगती है कि तू स्वयंको प्रकट तो नहीं करता पर जगत्‌में तू सर्वत्र प्रकट है. यह बिल्कुल उसी प्रकारका मॉडल् है, जैसे नेटवर्क् प्रकट नहीं है पर हर मोबाईल्‌में वह प्रकट है. तेरी दिलरुबाई कैसी है कि तू दीखनेपर ही नहीं बिना दीखे भी तू दिलरुबा लगता है अपने बारेमें सब कुछ समझा रहा है फिर भी समझ नहीं आ रहा.

इसी प्रकार महाप्रभुजी इस बातको यहाँ समझा रहे हैं कि **भगवज्ज्ञानगुणेन भगवज्ज्ञानम्.** यदि इतना हम समझ पाये तो यह बात भी समझमें आ जायगी कि भगवान्‌को हम अपने ज्ञानसे नहीं जान सकते. भगवान्‌का ज्ञान यदि भगवान् ही हमारी बुद्धिमें डाउनलोड्

करें तो हम भी उनको जान पायेंगे. जैसे हम चिप् मोबाईल्में डालें तो वह मोबाईल् तुरंत नेटवर्क् पकड़ने लगता है. यदि चिप् नहीं डालें तो कितना भी मोबाईल्को बॅट्रीसे चार्ज करते रहें पर वह नेटवर्क् नहीं पकड़ पायेगा. ऐसे ही भगवद्ज्ञानसे ही भगवान्को जाना जा सकता है. मानवबुद्धिसे भगवान्को नहीं जान सकते क्योंकि वह *खुदरा न नुमाई व नुमाई हमाज़ा* है. जो बात अर्जुनको भी भगवान्ने कही है कि "**नतु मां शक्यसे द्रष्टुम् अनेनैव स्वचक्षुषा दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगम् ऐश्वरम्**" (भग.गीता ११।८) "मैं तुझे आंख दे रहा हूँ, तू अच्छी तरहसे मुझे देख कि मैं कैसा हूँ." क्या अर्जुनने कृष्णको देखा नहीं था? गीताके ग्यारहवें अध्यायमें विराटस्वरूपका यदि कोई सौंदर्य है तो वह यह है कि अर्जुनने कृष्णको देखा है, जाना है और उसने इस प्रकरणसे भी स्तुतिमें करी है कि "तुम परब्रह्म हो, परमधाम हो, शाश्वत पुरुष हो, मुझे इस बातमें कोई संशय नहीं है. मैं इस हकीकतको स्वीकारता हूँ, पर ऐसा तेरा रूप कभी देखा नहीं. क्या तू मुझे अपना वह रूप दिखला सकता है!" उसके बाद कृष्णने उसे दिव्यचक्षु प्रदान कर विराट्रूप दरसाया. याद रहे कि कृष्ण अर्जुनके साले हैं. सालेके रूपमें, एक दोस्तके रूपमें, तो कृष्णको अच्छी तरहसे जानता है और उसने देखा भी था. उसकी बात यहाँ नहीं है. अर्जुन जो यहाँ पूछ रहा है कि "सब यह कह रहे हैं कि तू ब्रह्म है परमात्मा है, इस बातको झूठ नहीं मानता सत्य माननेके बावजूद उस प्रकारका होना मुझे अनुभवमें नहीं आ रहा है. क्या तू मुझे ऐसा अनुभव दे सकता है?" तब भगवान्ने उसे दिव्यचक्षु प्रदान किये.

विराटता देखनेके लिए या तो दिव्यदृष्टि होनी चाहिये अथवा विराटयोगके अन्तमें भगवान् कहते हैं कि "**न अहं वेदैः न तपसा न दानेन न च इज्यया, शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवान् असि मां यथा. भक्त्या तु अनन्यया शक्य अहम् एवंविधो अर्जुन! ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन**

प्रवेष्टुं च परन्तप!" (भग.गीता ११।५३-५४) वेदसे या ज्ञानसे या तपसे मेरे ऐसे रूप देखा नहीं जा सकता. जैसा रूप मैंने तुझे दिखाया है; यदि तेरी अनन्यभक्ति मुझमें हो तो, तू मुझे इस रूपमें जान भी सकता है, देख सकता है और इतना ही नहीं, तू मेरे इस रूपके भीतर प्रवेश भी कर सकता है. यहाँ उस रूपको देखनेके दो विकल्प हो गये. पहला या तो वह दिव्यदृष्टि दे अपनी ओरसे और दूसरा कि यदि हमें उसके प्रति अनन्यभक्ति हो. अर्थात् यदि अनन्य भक्ति हो तो हम उसे जिस रूपमें देख रहे हैं, वह तो देख ही रहे होंगे पर उसके दूसरे पहलुओंको भी हम जान पायेंगे, उन पहलुओंको देख भी सकेंगे.

मेरा प्रश्न था कि अर्जुनको मिली हुयी दिव्यदृष्टि और उसकी उस बारेमें समझ और यहाँ यमलार्जुनकी स्तुतिमें कुछ सामंजस्य तुम्हें दिखलाई दे रहा है कि नहीं? यह तो यहाँ साफ ही है कि यमलार्जुनको भगवान्ने दिव्यदृष्टि नहीं दी है. यमलार्जुन यहाँ भगवान्को एक लाचार बालककी तरह ही देख रहे हैं. फिर भी वे उनको उसी प्रकार जान रहे हैं कि जिस प्रकार अर्जुन उन्हें जानता था पर उस पहलुको वे जान भी रहे और मान भी रहे हैं. अब प्रश्न है कि यदि वे जान भी रहे हैं और मान भी रहे हैं तो अर्जुनके केसमें और इनके केसमें भेद है कि समानता है? भेद यह है कि वहाँ अर्जुनको वे सब रूप उसे प्रदान की गयी दिव्यदृष्टिसे दिखलायी दे रहें हैं और यहाँ यमलार्जुनको दिव्यदृष्टि नहीं प्रदान की है अपितु कृष्णको देखनेके बाद उनमें कृष्णके प्रति भक्तिका झरना फूट पड़ा है. उस अनन्य भक्तिके कारण ही वे कृष्णको इस प्रकार जान पाये हैं.

कभी ऐसा होता है कि हम गहनोंमें उसकी कलाका आनन्द लेते हैं और कभी उसमें रहे हुए सोनेका आनन्द लेते हैं. अब

ब्रह्मके किसी एक पहलुका आनन्द ले पा रहे हैं या नहीं, यह बात अपने हाथमें यदि होती तो किसी भी रूपमें दिखलाई देनेपर सकल रूपोंका आनन्द ले पाना शक्य बन जाता! ब्रह्म तो तुम्हारे सामने आनेके बाद भी यह बात अपने हाथमें ही रखता है कि किस पहलुका आनन्द कोई ले पाये. जैसे घरमें आयी हुयी दुल्हनका आनन्द कई लोग न ले कर, उसके द्वारा बनाए खानेका ही केवल आनन्द लेते हैं. कुछ लोग नयी दुल्हनके सौन्दर्यका आनन्द ले पाते हैं, तो दूसरे उसकी शालीनताका, तीसरे घरके लोग उसकी बनायी स्वादिष्ट रसोईका. लड़की तो एक ही है पर उसके किस पहलुका आनन्द तुम ले पा रहे हो यह उस दुल्हनके हाथमें नहीं है और न ही पतिके हाथमें है. पत्नी मेरी संपत्तिका आनन्द ले रही है, मेरे घरका आनन्द ले रही है अथवा मेरा आनन्द ले रही है, यह सारा खेल अपने हाथमें नहीं होता है.

भगवान् तुम्हारे सामने सर्वरूपमें प्रकट हो भी जाय पर उसमेंसे तुम किस चीजका आनन्द ले पाओगे, यह निर्णय वही लेता है. जैसे हम जुहू-चौपाटीपर घूमने जायें, तो कोई भेलपुरीका आनन्द लेता है. कोई पॉकिट् मारनेका आनन्द लेता है. कोई अपने साथीसे मिलनेका आनन्द लेता है. कोई केवल व्यायाम करनेका आनन्द लेता है. कौनसी वृत्ति काम करती है, समुद्रका उसमें कुछ भी रोल् नहीं है. वह तो खुला है कि आओ और मेरे जिस रूपका आनन्द लेना हो लो. कृष्ण भी खुला है पर अन्तर इतना है कि उस खेलमें तुम उसके कौनसे रूपका आनन्द ले पाओगे यह उसके हाथमें है. समुद्रके किस रूपका आनन्द ले रहे हो यह उसने तुम्हें खुली छूट दी है पर कृष्ण एक ऐसा फिनोमिना है कि वह समुद्रकी तरह पॅसिव् नहीं है, ॲक्टिव् है. वह तुम्हारे सामने खुला है पर तुम उसके उसी रूपका आनन्द ले पाओगे, जिस रूपमें वह तुम्हें आनन्द प्रदान करना चाहता है.

नारदजीने जो वरदान दिया था वह झूठा नहीं है. और भगवान् गीतामें कहते हैं कि मेरा भक्त कभी झूठ नहीं बोलता है. "**कौन्तेय! प्रतिजानिहि न मे भक्तः प्रणश्यति**" (भग.गीता ९।३१) मैं कभी भी प्रतिज्ञा लूँ तो झूठी हो सकती है क्योंकि मेरा स्वभाव ही ऐसा है. पर मेरे भक्तकी प्रतिज्ञा मैं कभी झूठी नहीं होने दूँगा. नारदजीकी प्रतिज्ञा मुझे झूठी नहीं करनी है इस कारण मैं स्वयं ही प्रकट हो गया हूँ और तुम्हें अपने मूलस्वरूपका आनन्द लेने दे रहा हूँ. ब्रह्म स्वयं प्रकट हुआ है मुक्त करनेके लिए. "मैं इसी रूपमें तुम्हें आनन्द प्रदान करनेके लिए प्रकट हुआ हूँ."

इसी कारण महाप्रभुजी कहते हैं कि यमलार्जुन संशयमें हैं कि ब्रह्मको यदि बंधे होनेकी लीला करनी है तो उनका यहाँ रहना ठीक है कि नहीं! "क्योंकि आप हमको अपने ब्रह्मरूपलीलाका आनन्द प्रदान करना चाह रहे हैं और आप स्वयं ऊलूखल लीला कर रहे हैं. तो क्या हमारा यहाँ रहना उचित है?" वे ऐसा पूछ रहे हैं "हमें तो यह पता था कि हमें मुक्त करने कोई आयेगा पर ऐसा आयेगा यह तो हमें स्वप्नमें भी नहीं पता था. यह रूप तो आप हमारे सामने प्रकट कर रहे हों. आपने यह तो कहा ही नहीं है कि आप एक बालकके रूपमें भी हमको आनन्द देना चाह रहे हो! यदि आप इस रूपमें हमें आनन्द देना नहीं चाह रहे हो तो हमें अनुमति दें कि हम स्वधाम जायें" इस कारण कृष्ण इनके सामने जैसा अपना रहस्य खोलना चाह रहे हैं उस रूपकी वे स्तुति कर रहे हैं. इसके आगेके श्लोकमें इसका कारण कहा है.

केवलं तस्मै सर्वदुर्ज्ञेयाय तुभ्यं नानाविनोदयुक्ताय नमः. जिसे कोई जान ना सके ऐसा दुर्ज्ञेय और नाना प्रकारसे विनोदयुक्त मानें विभिन्न प्रकारसे लीला करनेमें सक्षम, ऐसा तू है. उसे हम नमन

करते हैं. ननु "तमेव विदित्वा अतिमृत्युम् एति" (श्वेता.उप.३।८) इति श्रुतेः कथं भगवदज्ञाने निस्तारः? वेद तो ऐसा कहते हैं कि जीवको यदि मृत्युके उस पार जाना है तो भगवान्‌को जाननेके अलावा उसके पास कोई दूसरा उपाय ही नहीं है. और आप कह रहे हो कि उसे कोई जान ही नहीं सकता. इसका अर्थ तो यह हुआ कि आप जो कह रहे हैं वह निराशावादी उपदेश है. क्योंकि इसके अनुसार तो हम मुक्त हो ही नहीं पायेंगे.

इति चेत् तत्र आहतुः भगवते इति, भगवज्ज्ञानगुणेन भगवज्ज्ञानम्. यह पंक्ति थोड़ी टेढ़ी है. इसे ठीकसे समझो. हमें होनेवाला भगवान्‌का अज्ञान, हमारे अपने अज्ञानसे नहीं उसीकी सामर्थ्यके कारण होता है जो उसने हमारे अंदर अंकुरित की है. उसी प्रकार भगवान्‌का ज्ञान भी हमारा ज्ञान नहीं किन्तु उसीके द्वारा रोपित अंकुरित हुवा बीज है. भगवान्‌के बारेमें हम अज्ञानी हो ही नहीं सकते हैं. आपको एक उदाहरण देता हूं. आप किसी ऐसी वस्तुका नाम ले कर दिखाओ कि जिसको जानते न हो. जिस भी वस्तुके बारेमें आप कहोगे कि "मुझे इसका ज्ञान नहीं है." पर कुछ तो ज्ञान आपको उसके बारेमें है ही. नहीं तो आप उस बारेमें बोल ही कैसे रहे हो! उसी प्रकार भगवान्‌को हम नहीं जानते, इस बातका श्रेय अथवा अश्रेय हमें नहीं है भगवान्‌को है. सभी कुछ भगवान् है पर वस्तुओंको हम भगवान्‌की तरह नहीं जान सकते. यह अपनी कमी नहीं है. वस्तु हमें अपना भगवद्रूप दिखा नहीं पा रही है. जैसे कोई जादूगर हमें अपना जादू दिखाता है. हम यह तो समझते हैं कि कुछ हो रहा है पर ठीकसे जान नहीं पाते कि कैसे हो रहा है! अब यह जादूगरके ऊपर ही तो है कि वह हमारे सामने उस जादूके कितने राज़ खोलता है और कितने छुपाता है! यह भाव जब अपनमें जागे तो ही हम इस जगत्‌को सही प्रकारसे जान सकेंगे. ऐसा नहीं होगा तो या तो हम आत्मग्लानिके शिकार हो जायेंगे

अथवा अपने अहंकारके. यह दोनों स्थितियां हमारे आत्मोत्थानके लिए घातक हैं. हमें अकारण ही क्यों आत्मग्लानि होनी चाहिये और ऐसा हममें क्या है कि जिसके कारण अहंकार कर पायें. हर वस्तुको हमें सहजतासे लेते आना चाहिये. यह बिल्कुल वैसा ही है कि जैसे जादूके खेलमें दर्शकोंकी मनोदशा होती है. आप यह जिद करो कि इस जादूका भेद हमको खोल कर बताओ. कौनसा जादूगर यह बतायेगा? चलो बता भी दे तो उसके बाद आपका उस जादूके प्रति आकर्षण समाप्त हो जायेगा. जो देखा है उसका आनन्द तो जायेगा ही पर आगे देखनेका आनन्द भी चला जायेगा. यदि वह भेद पता नहीं है तो आनन्द आयेगा कि ऐसा जादू हमने देखा था.

इसीके समाधानके लिए अब आगे कहते हैं कि **भगवज्ज्ञानगुणेन भगवज्ज्ञानं** ज्ञान रूपी भगवान्का गुण है, उससे ही भगवान्का ज्ञान होता है. क्योंकि **"यस्य अमतं तस्य मतं, मतं यस्य न वेद सो, अविज्ञातं विजानतां विज्ञातम् अविजानताम्"** (केनोप.२।३) जो ऐसा कहता है कि "मैं ठीकसे समझा नहीं" वह थोड़ा समझ सकता है. जो ऐसा कहता है कि "मैं सब समझ गया" वह कुछ भी नहीं समझा. यह बात केवल भगवान्के ही बारेमें सही नहीं है, अपितु किसी भी ज्ञानकी शाखाके बारेमें यही बात है. आप कोई भी विषयको थोड़ा जब जानने लगते हैं, तभी आपको पता चलता है कि उसके बारेमें आप कितना कम जानते हैं. मैं अपनी एक रोचक बात बताता हूं. ब्राह्मी-लिपि जो आजसे हजार साल पहले प्रयोगमें आती थी तो मुझे लगा कि मुझे सीखनी चाहिये. किसी स्कूलमें तो मैं कभी गया नहीं. मैंने उसके सारे फोटो एकत्रित किये. समझ तो कुछ आता नहीं था, इसलिए मैंने उस लिपिको कॉपी करना प्रारम्भ किया और उसके सारे अक्षर अपने मस्तिष्कमें बैठा लिये. अब स्थिति यह है कि उसके सारे अक्षर मैं पढ़ सकता

हूं पर क्या लिखा है यह नहीं बता सकता. अरबी भी बस मुझे इतनी ही आती है क्योंकि मेरा उद्देश्य लिपि सीखना था, भाषा नहीं. इसीके विपरीत एक बात और, हर वर्ष मुझे कलकत्ता जाना पड़ता था किसी न किसी कार्यवश. जहां मैं रहता था और जहां मेरा प्रवचन होता था, उस रास्तेको तय करनेमें मुझे एक घंटा लगता था. जाते-जाते दुकानोंके जितने भी साईनबोर्ड आते उनको पढ़ता जाता था. धीरे-धीरे मैं बंगाली भाषा पढ़ने लगा पर लिख नहीं पाता. इससे समझ सकते हैं कि अपनी जो ग्रहण करनेकी शक्ति है वह कितनी क्षीण है!

अपने ज्ञानकी सीमा इतनी ही है, जितना इसको प्रोग्राम् किया गया है. उतनी ही सीमा तक आपको दृष्टि दे सकती है उसके आगे तो वह मूर्खकी तरह व्यवहार करती है **भगवज्ज्ञानगुणेन भगवज्ज्ञानम्. अज्ञातोऽपि प्रमेयबलेन निस्तारयतीति भक्तिः तत्र प्रयोजिका.** अर्थात् भगवान्का जो ज्ञान रूपी गुण है उसके कारण कदाचित् आप नहीं भी जान पाये हों पर वह आपके साथ ऐसा व्यवहार कर सकता है कि जैसे आप जानते हो और फिर वह आपका निस्तार भक्तिसे कर सकता है. जैसे अपन् संगीतमें सात स्वर मानते हैं. इसी तरह पर्शियन् लोग संगीतमें बारह स्वर मानते हैं. सात मानो कि बारह. उनकी 'श्रुति' मानें माइक्रो-नोट्स् बाइस होती हैं. अर्थात् 'सा' और 'रे' के बीच चार माइक्रो-नोट्स हैं. जब हम 'सा'को ही नहीं पहचान सकते तो इन माइक्रो-नोट्स्को कहांसे सुन पायेंगे? जब हम हार्मोनियमसे सीखते हैं तो उसमें तो माइक्रो-नोट्स् निकलते ही नहीं हैं क्योंकि वह 'की' ही वहां दी नहीं गयी है. तार वाद्योंमें यह सुविधा है. इसी कारण जो हार्मोनियमसे सीखते हैं वह शास्त्रीय संगीतकी बारीकियां सीख नहीं सकते. इसके बावजूद बड़े-बड़े कलाकार यह मानते हैं कि छोटे कस्बोंके लोक-गायकोंके गलेमें वह बात होती है. माइक्रो-नोट्स् वह आसानीसे निकाल सकते है. वह हार्मोनियमसे

नहीं सीखते, नही 'सा रे ग म'. सीखे बिना भी माइक्रो-नोट्स् निकलती हैं. और उनको वहांके लोग जो सुनते हैं, उन्हें वह सुनायी भी देते हैं. हमें माइक्रो-नोट्स् सुनायी भी नहीं देते और न हम उन्हें गा सकते हैं. इस तरह न तो हम अपने ज्ञानसे उन स्वरोंको जान पाते हैं और न अपने अज्ञानसे उन्हें समझ पाते हैं. अपना ज्ञान हार्मोनियमके ज्ञानसे है और अज्ञान भी हार्मोनियमके अज्ञानसे है. वही बात नलकूबर-मणिग्रीव कह रहे हैं भगवान्‌के बारेमें.

किञ्च प्रमाणबलेन अज्ञातोऽपि स्वतो ज्ञातुं शक्यो, यतो अयं वासुदेवः वसुदेवे शुद्धे सत्त्वे आविर्भवतीति. आविर्भूतस्तु सर्वैरेव ज्ञातुं शक्यः. यह अज्ञात ही ज्ञात हो रहा है. लॉजिकली देखें तो जो ज्ञात है वह अज्ञात नहीं हो सकता और जो अज्ञात है वह ज्ञात नहीं हो सकता. पर कई बातें दैनिक व्यवहारमें ऐसी देखी जा सकती हैं कि जो अज्ञात हो कर ही ज्ञात है और इसी प्रकार इसका उल्टा भी होता है. **यतो अयं वासुदेवः वसुदेवे शुद्धे सत्त्वे आविर्भवतीति. आविर्भूतस्तु सर्वैरेव ज्ञातुं शक्यः.** भगवान्‌को 'वासुदेव' कहते हैं. 'वासुदेव'का अर्थ है कि जो वसुदेवसे प्रकट हो वह. कृष्ण-लीलामें तो वसुदेव कृष्णके पिताका नाम है. पर तात्त्विक दृष्टिसे (metaphysically) 'वसुदेव'का अर्थ है शुद्ध सत्त्व अर्थात् जिसमें कोई विकार उत्पन्न न हुआ हो. जैसे दूधसे दही बनना, एक प्रकारसे विकार आना है. कभी रूपमें, कभी गन्धमें, कभी स्वादमें, कई प्रकारसे यह सम्भव है. कोई भी शुद्ध-सत्त्व हो उसमें किसी न किसी कारण, कोई न कोई विकार आता ही है. साइंस्‌में ऐसा कहा जाता है कि इलॅक्ट्रोन्‌को हम देखने जायें तो देखनेके कारण उसका आकार बदल जाता है. जो हमें दिखलायी दे रहा है वह उसका विकृतरूप है, मूलरूप नहीं है. वह इतना नाज़ुक होता है! यह कहा गया है कि विकाररहित शुद्ध-सत्त्वमेंसे ही भगवान् प्रकट होते हैं. अपनी आंख तो सृष्टिके विकारसे बनी है. हम यदि उसे देखने जायेंगे तो उसका

विकृतरूप ही दिखलायी देगा. इसका उदाहरण यदि आपको देखना हो तो आप कॅलिडोस्कोप्में देख सकते हो. आप उसकी कोई डिज़ाइन् देख रहे होते हैं और किसी औरको वही डिज़ाइन् दिखाना चाहें तो वह इतनी देरमें बदल जाती है. अपने यहां फलोंमें केला और फूलोंमें हारसिंगार, ऐसे ही नाज़ुक हैं. उन्हें ज़रासा संवारने जाओ तो काले पड़ जाते हैं. जहां इतनी नाज़ुक कोई बात हो तो उसे न समझनेमें ही समझदारी है. यही बात यहां कह रहे हैं कि **यतो अयं वासुदेवः वसुदेवे शुद्धे सत्त्वे आविर्भवतीति. आविर्भूतस्तु सर्वैरेव ज्ञातुं शक्यः.** जब वह शुद्ध सत्त्वमें स्वयं आविर्भूत होता है तभी उसे हम जान सकते हैं. जो शुद्ध सत्त्वमें आविर्भूत हो रहा है उसे जाननेका तो हमारे पास कोई उपाय ही नहीं है.

(प्रश्नोत्तर)

प्रश्न : यहां प्रमेयबल और प्रमाणबल के बारेमें कुछ कहा है, वह क्या है?

उत्तर : यहां इस कमरेमें जो भी कुछ पड़ा है; जैसे मेज-कुर्सी आदि, वो आपको दिखायी कैसे दे रहे हैं? उनके ऊपर प्रकाशकी किरण पड़ रही हैं, जो परावर्तित हो कर आपकी आंखके रेटिनापर पड़ रही हैं. दिखनेका सिद्धान्त यही हुआ कि कोई भी सतह जिससे प्रकाश परावर्तित हो कर आपकी आंखमें जा रहा है, वही सतह हमें दिखलाई देगी. पर बीचका स्पेस् हम कैसे देख पा रहे हैं, उससे तो प्रकाश परावर्तित हो ही नहीं रहा है पर वह हमें दीख तो रहा है! दीख नहीं रहा तो भी उसे महसूस तो हम कर ही सकते हैं. स्पेस् दीखनेके सिद्धान्तसे नहीं दीखता पर अपने ही सिद्धान्तसे दिखायी देता है. दूसरी सभी वस्तुएं हमें प्रकाशके परावर्तनके सिद्धान्तसे ही दिखायी देती हैं.

यह स्पेस् हमें प्रमेयबलसे दीख रहा है, नकि प्रमाणबलसे.

ऐसी बहुतसी वस्तुएं हैं जिन्हें हम प्रमेयबलसे ही समझ पाते हैं और बहुतसी ऐसी वस्तुएं भी हैं जो प्रमाणबलसे ही समझ आती हैं. जो प्रमाणबलसे समझ आती हैं उनका अपने पास पूरा लेखा-जोखा होता है कि हमने यह पुरुषार्थ किया तो उसका फल हमें ऐसा प्राप्त हुआ अथवा हमें यह समझ आया. पर कई वस्तुएं ऐसी भी होती हैं जिसके लिए हम कोई पुरुषार्थ नहीं करते और हमें लगता भी नहीं कि हमने उसे पाने अथवा समझने के लिए कुछ भी नहीं किया फिर भी वस्तु हमें प्राप्त हो जाती है अथवा समझ आ जाती है. यह है प्रमेयबल. साइंस् इसीको 'इन्ट्यूशन्' कहता है. अपने यहां 'अंत:स्फुरणा' कह सकते हैं. कुछ लोग इसे 'sixth sense' भी कहते हैं. ऐसा दावा किया जाता है कि कोई आपको घूर रहा है, आप देखें नहीं तो भी आपको महसूस होता है. यह क्या है? ऐसी कोई शक्ति कि जिसके द्वारा हमें कुछ समझनेके लिए किसी इन्द्रियकी आवश्यकता नहीं हो. वह वस्तु या अनुभव स्वयं अपने आपको उजागर करता है. उसे 'प्रमेयबल' कहलाता है.

ननु एतदेव सर्वं कुतो भवेत्—साधनपरता, साधनोत्पत्तिः, सत्त्वशुद्धेः आविर्भावः इति? अब यदि यही भगवान्के दिखलाई देनेका सिद्धान्त हो तो फिर हमको साधना करनी चाहिये. उन साधनोंद्वारा हमारा चित्त शुद्ध-सत्त्वात्मक रूपमें प्रकट हो पायेगा. तभी वहां भगवान्का आविर्भाव होगा. फिर आप इस सारी प्रक्रियाका वर्णन क्यों कर रहे हैं? **तत्र आहतुः वेधसः इति, सहि सर्वं विदधाति,** जब उसे प्रकट होना हो तो वह साधन भी प्रकट करता है. साधन-परता भी उत्पन्न करता है. साधन प्रकट करके सत्त्वको भी शुद्ध करता है और आविर्भूत हो कर दर्शन भी देता है.

मोहम्मद बेगड़ा और उदयपुरके राणा का युद्ध हुआ. उस युद्धमें राणाने बेगड़ाके हाथपर ऐसा वार किया कि उसके हाथसे तलवार

छूट गयी. जब वह उसे मारने गया तो बेगड़ाने कहा "तलवार छूट गयी अब तू मुझे क्या मारता है? यह तो कोई वीरता नहीं है!" राणाने उसे दूसरी तलवार दे दी और कहा "चल युद्ध कर." ऐसी हिम्मत होनी चाहिये. लड़नेका साधन भी दे रहा है और लड़ भी रहा है. पर उसके बाद राणा हार गया. तब मोहम्मद बेगड़ाने दया नहीं करी. अपने राणापनेके अहंकारमें युद्ध हारना मंजूर किया. ऐसे घोटाले हो जाते हैं कभी.

पर भगवान्‌के सन्दर्भमें ऐसा हो नहीं सकता. भगवान्‌को जिस समय आपसे कोई कार्य करवाना हो और आपके पास कोई साधन नहीं है तो वह साधन भी दे देते हैं, साधनको करनेका कौशल भी देते हैं और उस साधनका फल भी देते हैं. उसका एक मजेदार उदाहरण साठ सत्तरके दशकमें भारतमें अनाजकी बहुत कमी आ गयी थी. अमेरिकासे गेहूं इम्पोर्ट करना पड़ता था. पूरा पानीका जहाज गेहूं भर कर अमेरिकासे भारतके लिए रवाना हुआ. अपने यहां उसे उतारनेकी सुविधा भी नहीं थी. अमेरिकाकी पार्लियामॅन्ट्‌में यह चर्चा हुयी कि "उतारनेके लिए भारतको मजदूर भी भेजो" मानें कई बार अपने पास साधन भी होते हैं तो भी अपनको उन्हें संभालनेकी हिम्मत नहीं होती और कई बार साधन नहीं होता तो साधन भी मिल जाता है. उसे करनेकी सामर्थ्य भी कोई दे देता है और उसका फल भी दे देता है. भगवान्‌को इसमें किसी प्रकारकी पीड़ा नहीं है. यह बात वे यहां कहना चाह रहे हैं **सहि सर्वं विदधाति, अन्यथा तेन कृतः तन्मार्गो व्यर्थः स्यात्.** भगवान्‌ने जो विभिन्न प्रकारके मार्ग बनाये कि किसीको कृपासे मिलेगा, किसीको साधनसे मिलेगा, किसीको दुष्ट साधनसे मिलेगा, किसीको निःसाधनसे मिलेगा. भगवान्‌ने मार्गोंकी विषमताएं उत्पन्न की हैं यह सब अपने ऊपर लागू होती हैं, भगवान्‌पर नहीं. तुम निःसाधन हो तो तुम्हें साधन भी देगा, उस साधनको करनेकी सामर्थ्य भी देगा और उसका फल भी देगा.

तुम दुष्ट साधन हो तो तुम्हें अपना वह रूप भी देगा कि जिस पर तुम अपने सारे साधन अपना सको. **धीमहि नमः इति वा. हृदये प्रत्यक्षे भगवति तत्पादयोः शिरः स्थापयित्वा मनसा यत् नमनं तत् सोपस्करं धीमहि इति अर्थः. 'नमो धीमही'.** 'धीमही' एक विकल्प पाठ है. किसी पुस्तकमें **'ब्रह्मणे नमः'** पाठ है. **नमो धीमही इति वा. 'धीमही'**का अर्थ है कि ध्यान कर रहे हैं. 'नमः' मानें नमन कर रहे हैं. महाप्रभुजी ऐसा पाठान्तर करना चाह रहे हैं कि **आत्मद्योतैः गुणैश् छन्नमहिम्ने नमो धीमही** यदि ऐसा पाठ लें तो उसका अर्थ होगा **हृदये प्रत्यक्षे वा** ध्यान धरना चाहिये, या तो हृदयमें अथवा प्रत्यक्ष प्रभु प्रकट हों उनका. और प्रत्यक्षमें यदि भगवान् प्रकट हो जायें तो उनके चरणमें शिर स्थापन करके ध्यान करना चहिये.

इससे पहले इसका क्रम समझ लेना आवश्यक है. नमस्कार करके ध्यान धरना अथवा ध्यान धरके नमस्कार करना, दोनों प्रकार ही सम्भव हैं. नमस्कार करके ध्यान धरनेमें प्रभुके चरणमें पहले शिर झुकाना फिर मनसे उसका ध्यान धरना. क्योंकि सिर झुकानेसे दर्शन तो बंद हो जायेंगे. यह एक प्रक्रिया है. दूसरा है ध्यानपूर्वक नमस्कार. पहली प्रक्रियामें अपनी शारीरिक और मानसिक क्रियाका समन्वय होता है. क्योंकि पहले हमने उसे आंखसे देखा, मानें ज्ञान हुआ. उसके बाद शरीरको झुका कर नमन किया, मानें क्रिया हुयी. फिर मनसे ध्यान किया. यदि वस्तु दीख रही है तब उसका ध्यान किया जायेगा तो वह 'एकाग्रता' कहलायेगी. वस्तु यदि दीख नहीं रही है और तब ध्यान किया जाय तो उसका अर्थ होगा कि जो आपने उसकी छबि देखी है, उसको आप मनमें दोबारा उभार रहे हैं.

ध्यानकी दोनों प्रक्रिया हो सकती हैं, Meditation और concentration. Both are different functions of mind. Meditaion

means reproduction of the object which you have seen; and, concentration means looking intensely at the object which is being seen by you. इसीलिए यहां कह रहे हैं **नमो धीमही** नमन करके ध्यान किया.

<u>सुबोधिनी</u> :

अतः अन्तःकरणप्रत्यक्षएव भगवान् न बहिःप्रत्यक्षविषयः. तर्हि बहिः न अस्ति इत्येव मन्तव्यं, तत्र आहतुः आत्मद्यौतैः गुणैः छन्नमहिम्ने इति, आत्मना स्वेनैव द्यौतो येषाम्. गुणाअपि भगवतैव प्रकाश्यन्ते यथा सूर्येण मेघाः. तएव तस्य आवरकाः भवन्ति. नहि गाढान्धकारे निशायां मेघाः दृश्यन्ते. एवं सर्वैरेव विषयैः आत्मनैव प्रकाशितैः छन्नो महिमा यस्य. अतो न प्रकाशते, वस्तुतस्तु वर्ततएव सर्वत्र. अन्तर्बहिःस्थितौ हेतुम् आहतुः ब्रह्मणः इति, ''बृहत्त्वाद् बृंहणत्वाद् ब्रह्म'' (द्र.वि.पु.१।१२।-५५); अतः सर्वत्रैव वर्तसे परम् अन्तरेव प्रकाशसे न बहिः इति.

अतः अन्तःकरणप्रत्यक्षएव भगवान् न बहिःप्रत्यक्षविषयः. उस समय भगवान् अंतःकरणमें प्रत्यक्ष होते हैं, बाहर नहीं.

मेरा एक जानकार था. उसे भ्रम था अथवा क्या था, मुझे पता नहीं. पर उसे ऐसा लगता था कि जितने भी गोस्वामी हैं वह सब मेरे भतीजे हैं. हर किसीको वह यही कहता था कि ''चाहे सारे गोस्वामी मानें अथवा नहीं मानें पर हैं सब मेरे भतीजे.'' मैंने उससे हंसीमें एक दिन पूछा कि ''यदि सारे गोस्वामी आपके भतीजे हैं तो आप उनको नमस्कार क्यों करते हैं?'' वह बोला ''सच कहूं तो गांवमें किसीको बुरा नहीं लगे इसलिए मैं नमस्कार करता हूं, पर मनमें मेरे आशीर्वादका भाव ही रहता है.'' सचमें अद्भुत व्यक्तित्व था. **अतः अन्तःकरणप्रत्यक्षएव भगवान् न बहिःप्रत्यक्षविषयः.** इसी तरह सभी गोस्वामियोंका काकापना वह बाहरसे नहीं दिखाता था, पर अन्तःकरणसे सबको आशीर्वाद देता ही रहता था. **तर्हि बहिः न अस्ति इत्येव मन्तव्यं,** अब बाहर जो प्रत्यक्ष नहीं हो रहा

है, तो बाहर है ही नहीं ऐसा क्यों नहीं मान लेना चाहिये? इसके उत्तरमें कहते हैं **तत्र आहतुः आत्मद्यौतैः गुणैः छन्नमहिम्ने इति,** ऐसा नहीं है. वह स्वयंका आत्मद्योतक जो गुण है उसमें ढक गया है. जिसका उदाहरण मैंने आपको सूर्य और बादल के रूपमें दिया. **आत्मना स्वेनैव द्यौतो येषाम्. गुणाअपि भगवतैव प्रकाश्यन्ते यथा सूर्येण मेघाः. तएव तस्य आवरकाः भवन्ति.** जैसे सूर्यसे मेघ प्रकाशित भी होता है और उसे ढक भी लेता है **नहि गाढान्धकारे निशायां मेघाः दृश्यन्ते.** जैसे गहन अंधकारमें मेघ दिखायी नहीं देते, ठीक उसी प्रकार. ऐसे ही भगवान्के सारे गुण भगवान्से प्रकट हुए हैं, भगवान्को ढंक रहे हैं और भगवान्के कारण ही दिखलाई भी दे रहे हैं. **एवं सर्वैरेव विषयैः आत्मनैव प्रकाशितैः छन्नो महिमा यस्य. अतो न प्रकाशते,** उसी प्रकार जितनेभी संसारके विषय हैं वे भगवान्से उत्पन्न हैं, भगवान्से प्रकाशित हैं और उन विषयोंसे ही भगवान् ढंके जा रहे हैं. यही उनकी महिमा है. **वस्तुतस्तु वर्ततएव सर्वत्र. अन्तर्बहिःस्थितौ हेतुम् आहतुः ब्रह्मणः इति,** इस कारण अंदर है तो बाहर नहीं हो सकता और बाहर है तो अंदर नहीं हो सकता, यह विभाग ब्रह्ममें नहीं हो सकता. क्योंकि ब्रह्म बाहर होते हुए भी अंदर है और अंदर होते हुए बाहर भी है. जैसे मोबाइल्का नेटवर्क मोबाइल्के अंदर भी है और बाहर भी. वह बाहर ही रहे और मोबाइलके अंदर न प्रविष्ट हो तो मोबाइल् काम ही नहीं करेगा. और अंदर ही हो, बाहर नहीं हो तो भी मोबाइल् काम नहीं करेगा. ऐसे ब्रह्म विषयके भीतर भी है और बाहर भी है. बाहर है पर दिखता नहीं है क्योंकि जिसके भीतर है उससे वह ढंका गया है. महाप्रभुजी एक अलग प्रकारकी दृष्टि यहां ब्रह्मके विषयमें देना चाहते हैं. उसको देखनेकी और न देख पानेकी. **"बृहत्त्वाद् बृंहणत्वाद् ब्रह्म" (द्र.वि.पु.१।१२।५५); अतः सर्वत्रैव वर्तसे परम् अन्तरेव प्रकाशसे न बहिः इति.** ब्रह्म सर्वत्र होनेपर भी तुम्हारे अंदर ही उसका प्रकाश होता है बाहर नहीं.

(श्लोक-६, मूलश्लोक-३४)

(भगवद्वतारोंके बहि:दर्शनका प्रकार)

अवतरणिका :

तर्हि कथम् अवताराद् बहि:प्रकाशरूपो भगवान् भवति? इति तत्र आहतुः :

अब शंका करते हैं कि जब भगवान् अवतीर्ण होते हैं तो बाहर क्यों प्रकाशित होते हैं? यदि भगवान्का यही गुण है कि वह अन्तरमें ही प्रकाशित होते हैं तो अवतारकालमें भगवान् क्यों बाहर प्रकाशित होते हैं, यह बतानेके लिए कहते हैं.

श्लोक :

यस्य अवताराः ज्ञायन्ते शरीरेषु अशरीरिणः ॥
तैस्तैर् अतुल्यातिशयैः वीर्यैः देहिषु असंगतैः ॥३४॥

अनुवाद :

अशरीरी भगवान्के अवतार जो शरीरोंके साथ अनुभूत होते हैं॥
वे किसी भी देहधारीके साथ संगत न होते ऐसे अतुलनीय निरतिशय सामर्थ्यवाले होते हैं॥३४॥

यहां एक प्रश्न उठता है कि जब भगवान् अवतीर्ण हों तब तो भगवान्को देखा जा सकता है. फिर तो राम वराह वामन बुद्ध आदि अवतारोंको मायिक मान लेना चाहिये क्योंकि वे तो प्रकट होते नहीं, छिपे हैं अपने गुणोंसे. यदि माया न हो तो यह मानना पड़ेगा कि भगवान् अपने मौलिक रूपमें भी अनुभूत हो सकते हैं. यहां नलकूबर-मणिग्रीव एक बहुत सुन्दर बात कहते हैं कि जो भगवान् शरीरके साथ अवतीर्ण हो रहे हैं वे अशरीरी हैं. यह तो एक

विरोधाभास हो गया. यदि शरीरमें अवतार लेनेवाले अशरीरी हैं तो उसका अशरीरीपन शरीरमें अवतार लेनेसे कैंसल् होना चाहिये था.

पुराने ज़मानेमें एक रामपुर स्टेट् थी, पूरी मुसलमान स्टेट थी. वहांसे कुरानका बहुत सुन्दर हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुआ. जिस मौलवीने उसका अनुवाद किया था, उसने उसकी भूमिकामें एक बहुत मज़ेदार बात लिखी कि अल्लाहने सत्तर हजार पैगम्बर दुनियाके उद्धारके लिए भेजे. इनमें राम और कृष्ण भी पैगम्बर हो सकते हैं ऐसा हम माननेको तैयार है पर इन पैगम्बरोंको अल्लाह माननेकी मूर्खता हिन्दुओंने की. यह अल्लाह नहीं हो सकते पैगम्बर हो सकते हैं अल्लाहके. भूमिका बांचनेके बाद मैंनें उनको एक पत्र लिखा. उसमें मैंने लिखा कि "आप जो बात कह रहे थे वह ठीक है परन्तु मुझे उसमें एक प्रॉब्लेम् है कि अल्लाहने जिस प्रकार मौहम्मद साहबको पैगम्बरके रूपमें भेजा और ईस्लाम धर्म समझाया. ठीक ऐसे ही जो पैगम्बर उस अल्लाहने हमारे लिए भेजे, चाहे वह राम हों अथवा कृष्ण हों, वे स्वयं ही कह रहे हैं कि हम भगवान् है. जिस पैगम्बरको अल्लाहने तुम्हारे लिए भेजा, हमें उसकी बात माननी कि जिन्हें हमारे लिए भेजा उनकी बात माननी! मुझे लगता है कि जो पैगम्बर आरबदेशीय लोगोंके लिये लिए भेजा उनकी बात आरब देशोंमें माननी चाहिये और जो भारतवर्षके लिये भेजे गये उनकी बात भारतवर्षमें माननी ऐसी व्यवस्था सोचें तो विरोधाभासका परिहार हो पायेगा. हमारे यहां भेजे गये पैग़म्बर कह रहे हैं कि हम स्वयं अल्लाह हैं." यह पढ़ कर उसने मुझे जवाबी पत्र लिखा. उसमें उसने लिखा कि "यह बात हम स्वीकार करनेको तैयार नहीं है. क्योंकि अल्लाहको यदि पैगम्बर भेज कर ही काम चल जाता हो तो वह स्वयं किस कारण आयेगा?" मैंने उसका उत्तर फिर लिख कर दिया. मैंने लिखा "कोई इन्डस्ट्रीयलिस्ट् अपनी कंपनी अपने मॅनेजरोंको भेज कर चलाता है और कहीं-कहीं वह स्वयं

भी मॅनेज् करता है. जो कंपनी उसे अच्छी लगती है उसे वह स्वयं ही चलाता है. आपकी व्यवस्था मॅसेन्जर् भेज कर चल जाती है, इसलिए उसने मॅसेन्जर् भेजा. हमारी व्यवस्था उसके बिना चलती ही नहीं है, इस कारण वह स्वयं आता है. उसके इस प्रकार आनेमें आपको क्या दिक्कत हो रही है!'' इसके बाद उसका जवाब ही नहीं आया. खैर, किसी प्रसंगपर ऐसा ही होता है कि हम किसी दूरके व्यक्तिको पोस्ट् द्वारा आमन्त्रित करते हैं अथवा किसी औरको भेज कर कर देते हैं पर अपने निजी रिश्तेदारोंको हमें स्वयं आमन्त्रित करने जाना पड़ता है. इसी प्रकार वह अल्लाह हमारे यहां स्वयं आ रहा है और कह रहा है कि मैं अल्लाह हूँ. तो हम तुम्हारे मॅसेन्जर्की बात क्यों माने?

शरीरेषु अशरीरिणः उन लोगोंकी समस्या यह है कि वे मानते हैं कि वह अशरीरी है, कोई शरीर धारण नहीं कर सकता और यदि कोई शरीरी है तो वह अशरीरी हो नहीं सकता. अपने यहां यह कहनेमें आया है कि शरीरमें प्रकट हुआ यह अशरीरी है. यदि ऐसा है तो उसके भगवान् होनेमें समस्या क्या हो सकती है! ऐसा तो नहीं हो सकता कि हमारी रूह तो, साधारण व्यक्ति या पैग़म्बर के रूपमें अशरीरी होनेपर भी जगत्में आ सकती है परन्तु अल्लाह आनेमें समर्थ नहीं. वह इस जगत्में मुहम्मद साहबकी परमिशन्के बिना नहीं आ सकता. यदि ऐसा किया तो तुम्हें काफिर मान लिया जाएगा. अरे! मुहम्मद साहब बड़े कि अल्लाह बड़ा? ऐसा माननेपर तो मुहम्मद साहब ही बड़े कहलायेंगे, जो कि हो नहीं सकता. हम तो ऐसा नहीं कहते कि हमारे मॅसेन्जर्की बात तुम मानो. हम तो ऐसा नहीं कह रहे कि कृष्ण जो कह रहा है वह तुम मानो. हम तो ऐसा कह रहे हैं कि तुम्हारे मुहम्मद साहब जो कह रहे हैं वह तुम मानो. हमारे मॅसेन्जर् जो हमें कह रहे हैं वह हम मानेंगे.

अपने पिताकी एक बात बताऊँ. वे अक्सर कोल्हापुरसे बम्बई टॅक्सीसे आते थे. एक बार किसी वजहसे मेरा भी उसी टॅक्सीसे आना हुआ. दोपहरके समय उस टॅक्सी ड्राइवरने मुझसे पूछा "आपको आपत्ति न हो तो थोड़ी देर गाड़ी रोक कर मैं नमाज़ पढ़ लूं." मैंने कहा "अवश्य पढ़ लो." थोड़ी देरमें नमाज पढ़ कर वह वापस आया और कहने लगा "आपके पिताजीकी वजहसे मैंने नमाज़ पढ़ना शुरु किया." मैंने पूछा "वह कैसे?" बोला "एक बार ऐसे ही वे मेरे साथ आ रहे थें. उन्होंने मेरा नाम पूछा. मैंने उन्हें नाम बताया. तो बोले "इसका मतलब तुम मुसलमान हो." मैंने कहा "हाँ" तो बोले कि "दोपहर हो गयी और मुसलमान हो कर अभी तक नमाज़ नहीं पढ़ी, जाओ पढ़ कर आओ" उस दिनसे मैं कभी नमाज़ छोड़ता नहीं. हमें तुम्हारे नमाज़ पढ़नेसे या मोहम्मद साहबका कहा माननेसे कोई समस्या नहीं है. तुम्हें हमारे ऊपर क्यों क्रोध आता है कि तुम अपने मॅसेन्जर्का कहा मत मानो, हमारे मॅसेन्जर्का मानो. हमारा मॅसेन्जर् कह रहा है कि मैं अल्लाह हूँ. वही तो हम मान रहे हैं.

शरीरेषु अशरीरिण: यह जो कॉन्सेप्ट्का लचीलापन है कि शरीरमें प्रकट होनेके उपरान्त भी वह अशरीरी है और अशरीरी होनेपर भी वह शरीर धारण कर सकता है. अब यह विरुद्धधर्माश्रयता किस प्रकार समझनी? प्रश्न यह है. एक सामान्य उदाहरणसे तुम्हें समझाऊँ. गांधीनगरमें स्वामीनारायण पंथका एक मंदिर है अक्षरधाम. वहां वे लेसरप्रोग्राम् करते हैं. वहां कोई स्क्रीन् पर प्रॉजेक्शन नहीं होता, केवल लेसर्बीमसे आकृति गढ़ी जाती है. वह अशरीरसे शरीरी बन रहा है कि नहीं! इसी प्रकार मौहम्मद साहबके यहां नहीं होता होगा पर हमारे यहां वह होता है. लेसर्के मॉडल्की तरह. कुछ भी नहीं है पर आवाज़ आकृति क्रिया भाव सभी वहां प्रकट हो रहा है. पर जैसे ही लाईट्ट् ऑन् होती है, सब गायब. अशरीरी

शरीर बन रहा है. अशरीरी शरीर नहीं धारण कर सकता यह समस्या तुम्हें हैं. वैज्ञानिकोंको जब यह समस्या नहीं है तो फिर भगवान्‌को किस प्रकार होगी?

यही बात कही जा रही है कि **यस्य अवताराः ज्ञायन्ते शरीरेषु अशरीरिणः, तैस्तैर् अतुल्यातिशयैः वीर्यैः देहिषु असंगतैः** देहीमें जो वीर्य, जो शक्ति जस्टिफाई नहीं हो पाती, वह अशरीरीने सशरीर अवतारोंमें प्रकट हो कर दिखलायी. भगवान् स्वयंकी सामर्थ्यसे प्रकट होते हैं. यहां महाप्रभुजी एक सिद्धान्त कह रहे हैं कि इन चक्षुकी सामर्थ्यसे भगवान्‌को नहीं देखा जा सकता. पर ऐसा मानना कि भगवान्‌में इतनी सामर्थ्य नहीं है कि वह अपना स्वरूप इन चक्षुओंके सामने प्रकट ही न कर सके, ये बात सर्वथा गलत है. इसका बहुत सुन्दर उदाहरण देते हैं. कोई भी वस्तु हमें इस कारण दिखलाई देती है क्योंकि प्रकाश उस पर पड़ कर, परावर्तित हो कर, हमारी आंखपर पड़ता है. वस्तुके दिखलाई देनेका यह ही सिद्धान्त है. साधारण रूपसे सभी वस्तु इस प्रकार ही दिखलाई देती है. पर एक बात सोचो कि वस्तु और आंख के बीचमें जो अवकाश/स्पेस् है उसपर लाईट् कहां परावर्तित हो रही है? पर वह स्पेस् हमें दिखलाई तो दे ही रहा है. जैसे यह दीवार आपको दिखलाई दे रही है क्योंकि प्रकाश इसपर पड़ कर, आपकी आंखपर परावर्तित हो रही है. पर दीवार और आंख के बीचकी जगह भी तो आपको दिखलाई दे रही है. उसमें यह सिद्धान्त कहां काम कर रहा है? लाईट तो किसी सरफेस्‌से ही परावर्तित होगी पर स्पेस्‌की तो कोई सरफेस् है नहीं. तो लाईट कहांसे परावर्तित होगी, पर स्पेस् दिखलाई देती ही है. वह स्पेस् हमारी आंखके अंदर भी है और बाहर भी. वह स्पेस् हमारी दृष्टिकी सामर्थ्यके एक अंगके रूपमें हमें दिया गया है. आंखके लॅन्स् और रेटीना के बीचमें यदि स्पेस् न होता तो हम बाहरकी स्पेस्‌का अंदाजा भी नहीं लगा पाते और हम

वस्तुकी दूरीका अंदाजा नहीं लगा पाते. वह स्पेस् हमें स्पेस्के माहात्म्यके कारण ही दिखलाई देता है. इसी प्रकार महाप्रभुजी कहते हैं कि ब्रह्म हमें अपने माहात्म्यके कारण ही दिखलाई देता है. भगवान् अपनी पुष्टि/कृपासे व्यक्तिकी भक्तिके द्वारा दिखलाई देते हैं. भक्ति अपनी आंख जैसी है. भगवान् पुष्टिभक्तिसे दिखलाई देते हैं. भगवान्को जब तुम्हारी भक्तिकी आंख बनानेकी इच्छा हो, तभी तुम पुष्टिभक्ति कर पा रहे हो और तभी भगवान् तुम्हें भजनीयतया दिखलाई देगा.

अब तुम यह अहंकार करो कि भगवान् पुष्टिभक्तिसे ही दिखलाई देते हैं, तो पुष्टिभक्ति हम स्वयं कर लेंगे तो क्या कंसको पुष्टिभक्ति थी? वह भगवान्को देख पाया था कि नहीं? शिशुपालको कहां पुष्टिभक्ति थी? वह तो सौ गाली दे रहा था. उसे दिखलाई दिये कि नहीं? भगवान्को जिसके सामने प्रकट होना हो वही भगवान्को देख सकता है. भगवान् जब पुष्टिभक्तिको आंख बनाना चाहे तो ही भक्तको दिखलाई देंगे. भगवान् जब द्वेषको आंख बनाना चाहे तो वह द्वेषसे दिखलाई देगें. भगवान्को यदि क्रोधको आंख बनाना चाहे तो क्रोधसे दिखलाई देगें. इसीलिये भक्तिको हम 'पुष्टिभक्ति' कहते हैं. भक्ति नहीं कहते. क्योंकि भगवान् भक्तिसे दिखलाई देते होते सभी भक्तिसाधना करके भगवान्को देखने समर्थ बन पाते, माईक्रोस्कोप या टेलिस्कोप से जैसे सूक्ष्म या दूर की वस्तु वस्तुकी अनुमतिके बिना ही देखी जा सकती है. इस कारण वह भगवान्की पुष्टि है. बैलके आगे बैलगाड़ी जोतनेवाली बात नहीं करनी चाहिये हमारी भक्तिकी गाड़ीको खींचने यदि पुष्टिरूपी बैल होने चाहिये. नकि बैलके आगे गाड़ी रखनेकी धांधल. भगवान् जिसके भी सामने प्रकट होना चाहते हैं वह किसी भी वस्तुको अपने दिखलाई देनेका उपकरण बना सकते हैं "**कामं क्रोधं भयं स्नेहम् ऐक्यं सौहृदमेव च**" (भाग.पुरा.१०।२९।१५) भगवान्को जब भक्तिके द्वारा किसीके सामने प्रकट होनेकी इच्छा होती हो तो वे भक्तिसे प्रकट हो जाते हैं

स्पेस्की तरह. इसीलिए शरीरेषु अशरीरिणःका एक अर्थ यह भी होता है कि भगवान् जिसके सामने भी प्रकट होना चाहते हैं उसके सामने अपना शरीर प्रकट कर देते हैं. क्योंकि हम अशरीरीको देख नहीं सकतें, शरीरीको ही देख सकते हैं. यह शरीर कौनसा शरीर है? तुम्हारे हृदयके भावको भगवान् अपना शरीर बनाते हैं, उस शरीरको लॅन्स्की तरह तुम्हारे सामने प्रकट कर देते हैं.

तभी तुम भगवान्को देख सकते हो. आंखसे तुम भगवान्को नहीं देख सकते पर भगवान् तुम्हारी आंखसे दिख सकते हैं. यह अपना सिद्धान्त है यस्य अवतारा: ज्ञायन्ते शरीरेषु अशरीरिणः नलकूबर-मणिग्रीव कह रहे हैं कि सर्वलोकके भव और विभव के लिए. भव और विभवका अर्थ सुबोधिनीमें देखें महाप्रभुजीने क्या समझाया है : 'भव'=उद्भव और 'विभव'=ऐश्वर्य. भगवान् आप प्रकट हुए हो. अब यहां समस्या यह है कि नारदजीने आशीर्वाद दिया. क्या इसलिए भगवान् प्रकट हुए? ऐसा समझनेपर नारदजी भगवान्से ऊपर हो गये. फिर तो भगवान्को नहीं, नारदजीको ही भजना चाहिये. भगवान् आशिषके पति हैं. इस कारण जब नारदजीने आशीर्वाद दिया कि तुम्हें भगवान्के दर्शन होंगे. उस आशीर्वादके 'पति' मानें पालन करनेवाले भगवान् है. इसलिए वे प्रकट हुए हैं.

अभी एक एस.एम.एस मुझे मिला कि "सुखी विवाहित जीवन कैसे जीयें?" उसका उत्तर भी उसीमें दिया था कि "प्रत्येक पतिको यह विचारना चाहिये कि वह सिंह है पर यह नहीं भूलना चाहिये कि पत्नी रिंग्-मास्टर् है" इसी तरह नारदजीने सिंहके जैसी आशीर्वादकी गर्जना कर सकते हैं यह बात तो सच्ची है पर रिंग्-मास्टर् तो भगवान् ही हैं. रिंगमास्टर जैसी पत्नीने कह दिया सिंहको कि "जोरसे गर्जना करो." इसी तरह भगवान्ने नारदजीको प्रेरणा दी कि दे दो आशीर्वाद नलकूबर-मणिग्रीवको. इसी कारण भगवान् प्रकट हो गये.

बस यही नलकूबर-मणिग्रीव यहां यही कहना चाह रहे हैं.

(प्रश्नोत्तर)

प्रश्न : भगवानस्तु मूलभूतइति... भक्तिमार्गप्रवर्तकम् आहतुः (सुबो.श्लो.३२) ये समझ नहीं आया.

उत्तर : एक बात समझो कि भक्तिकी एक बहुत नाटकीय नज़ाकत है. मानें नाटकके पात्रको तुम अभिनेता मान रहे हो तो कभी भी नाटकका आनन्द तुम नहीं ले पाओगे. क्योंकि यदि ऐसा विचारोगे तो तुम्हें लगेगा कि यह तो केवल नाटक है. और यदि तुमने उसे केवल पात्र ही माना तो उसमें इतने संलग्न हो जाओगे कि फिर स्क्रीन्पर ही मारा-मारी करने पहुंच जाओगे. ड्रामाकी नज़ाकत इसमें है कि तुम्हें यह हमेशा भ्रम बना रहे कि यह ॲक्टर् है कि कॅरेक्टर् है. ऐसा अनिरुद्ध मन ही ड्रामाको सफल बनाता है. आज ही मैंने अखबारमें पढ़ा : एक हिरोइन्का स्टेटमॅन्ट् कि "बचपनमें एक डरावनी फिल्म् मैंने देखी थी और उसका डर अभी तक मेरे मनमें बैठा हुआ है" यह एक हिरोइन् कह रही है. वह जानती है कि वह एक फिल्म थी. यदि फिल्म थी तो डरनेकी क्या आवश्यकता है? यदि डर रही है तो वह फिल्म नहीं हो कर, सत्य समझ रही है. पर आर्टका मजा ही इसमें है कि वह तुम्हें यह सोचनेका मौका ही न दे कि तुमने सत्य देखा कि झूठ देखा. यदि तुम्हें यह भान हो गया कि यह सच है तो तुम ड्रामाका आनन्द नहीं ले पाओगे और यदि यह भान हो जाय कि यह तो सब झूठ है तब भी तुम ड्रामाका आनन्द नहीं ले पाओगे. किसी भी ड्रामाका आनन्द लेनेकी पहली शर्त यह है कि जिसमें तुम्हारा मन यह निश्चय ही नहीं कर पाये कि यह सच है कि झूठ है. इसी तरह भगवान् जो कि अशरीरी हैं उनका छोटा बालक बनना सच है कि झूठ है, झूठ निश्चय हो गया तो भक्ति नहीं हो सकेगी और सच निश्चित हो गया तो भक्तिकी आवश्यकता ही नहीं रहेगी.

क्योंकि वह बालक ही तो है. बालकको तो प्यार किया जाता है. उसकी भक्ति थोड़े ही की जाती है! हम भक्ति तभी कर सकेंगे कि जब हम इस अनिश्चयमें सदा रहें कि यह सच है कि झूठ है! भक्तिमें एक प्रकारका ड्रामेटिक् ॲलीमॅन्ट् या रिस्पोंस् है, उसकी लीलाके समानान्तर. क्योंकि उसकी लीलाकी व्याख्या न तो सचमें हो पायेगी और न झूठमें. चाहो तो इसे 'सुरिअल्' अर्थात् सत्यका भी सत्य कह-मान सकते हो.

मेरी छोटी बेटी एक दिन पड़ौसीकी बच्चीके साथ मां-बेटी होनेका खेल खेल रही थी जो बेटी बनी वह अचानक बोली कि "माँ मुझे भूख लगी है." मम्मीने उसे खिलोनोंमें खाना दिया. वहाँ खाना कुछ भी नहीं है केवल उसकी क्रिया है. बच्ची भी खानेकी क्रिया करके बोली कि "हाँ खा लिया भूख मिट गयी" अब यह सच है कि खेल तो तभी चलेगा कि जब यह विवेक ही न हो कि यह सच है कि झूठ. यदि दोनोंमेंसे एकको भी यह निश्चित हो गया कि यह झूठ है, तब मम्मी और बेटी का खेल नहीं चलेगा. यदि लग गया कि सच है तो फिर वह सचमें खाना माँगेगी और नहीं मिला तो खेल बिगड़ ही जायगा. इस कारण भक्तिमें ड्रामेटिक् ॲलीमॅन्ट् तो होना ही चाहिये.

इसी बातको उपनिषद् अच्छी तरहसे कह रहा है "**सत्यं च अनृतं च सत्यम् अभवत्**" (तैत्ति.उप.२।६) यह भगवान्‌की लीला ऐसी है कि जिसमें सच और झूठ मिल कर एक सत्य बना है. भक्ति इसीमें ही तो है. मानो कि भगवान् भूखे हैं, तो विश्वम्भर तो हो नहीं सकते और मानो कि विश्वम्भर है तो भूखे कैसे रह पायेंगे! भगवान् यदि पालक है तो फिर तुम्हारी सेवाद्वारा उनके लालन-पालनकी क्या आवश्यकता है? मानो कि भगवान्‌को तुम्हारी सेवाकी गरज है तो वह भगवान् ही नहीं है. ऐसे स्वीट् कन्फ्यूजन्‌का

ही तो नाम भक्ति है. यह कोई साधारण कन्फ्यूज़न् नहीं है, डिवाइन् (दैविक) कन्फ्यूज़न् है. जैसे नाटक देखनेमें एक मधुर कन्फ्यूज़न् है, उसी प्रकारका यहाँ भी है. यदि हम उसमें कारण ढूँढने जाये तो हम पाखंडी कहलायेंगे. यदि तुम्हारेमें बाइ-डिफोल्ट् ऐसा कन्फ्यूज़न् है तो ही तुम भक्तिके अधिकारी हो. जब तुम्हारे भीतर यह कन्फ्यूज़्ड् हो पानेकी नेचुरल इन्क्लिनेशन हो कि भगवान् जगत्के पालक हैं और मैं उन्हें भोग धरनेकी सेवा न करूं तो वे भूखे रह जायेंगे तभी तुम भक्ति कर पाओगे. वह जगत्का पालक हैं ऐसा ज्ञान यदि तुम्हें अतीव मनोरूढ़ गया तो फिर भक्तिकी कोई आवश्यकता तुम्हें नहीं रह जायगी. फिर तो तुम ज्ञानी हो गये. तुम सेवा कर रहे हो और तुम्हें यह अनिश्चित सा लगे कि भगवान् मेरे बालक हैं कि यशोदाके? यदि यह कन्फ्यूज़न् हृदयमें है तो कृष्णकी सेवा कर पायेंगे. अनिरुद्ध मन एक प्राथमिक आवश्यकता है भक्तिकी. कहीं भी मन स्थिर हो गया तो भक्ति समाप्त. कॅरेक्टर् और ॲक्टर् के बीच मन पॅन्डुलम्की तरह डोलना चाहिये. ड्रामाका आनन्द हम तभी ले सकते हैं. अवतारकालमें तो भगवान्को यह कन्फ्यूज़न् बना रखनेके लिए योग-मायाका प्रयोग करना पड़ता था. इस समय हम भक्तिके प्रयोगसे वह कन्फ्यूज़न् बनाये रखते हैं. जब भी कृष्णकी विचित्र लीलाओंको देख कर यशोदाजीको लगता था कि यह तो कोई और शक्ति है तो भगवान्को योगमाया (वैष्णवीमाया) आच्छादित करनी पड़ती थी और फिर यशोदाजीको लगता था कि नहीं, यह तो मेरा ही बालक है. अब वही काम हमारी भक्ति करती है. ज्ञानका अज्ञानका विद्याका अविद्याका सभीका यह एक ऐसा विभाग हमारे अंदर रोपा गया है जो कि उन सारे पहलुओंका ध्यान भक्ति रखती है. जिसके द्वारा हम समझ पाते हैं कि भगवान्से कैसा व्यवहार करना चाहिये और वह व्यवहार है केवल स्वीट् कन्फ्यूजन्का. कभी भी उस कन्फ्यूज़न्की स्वीटनेस् मिटनी नहीं चाहिये अपितु उसकी वृद्धि होती रहे. वह दैविक कन्फ्यूज़न् है. बस एक ही ध्यान इसमें

रखना है कि भक्तिको कभी भी हमें अपना माद्दा, अपने द्वारा होता साधन नहीं मानना चाहिये.

हमें नींद क्यों आती है क्योंकि शरीरमें कार्बन्-डाईऑक्साइड्की मात्रा बढ़ जाती है. हमें पेशाब क्यों आता है क्योंकि हमारी किडनीमें प्रेशर् बढ़ जाता है. फिरभी अपने अहंकारके कारण हमें लगता है कि "मैं सोना चाहता हूँ". "मैं पेशाब करना चाहता हूँ." हमें भूख इसीलिए लगती है क्योंकि अपने पेटकी दीवारको अम्ल कुरेदता है. इस कारण हमको लगता है कि "मैं खाना चाहता हूँ." अरे! तुम नहीं चाह रहे हो, अंदर कोई और क्रिया हो रही है.

ऐसे ही हमें लगता है कि "मैं भक्ति कर रहा हूँ" एक बार भगवान्की दृष्टिसे विचारोगे तो पता चलेगा कि भक्ति तुम नहीं कर रहे हो, भगवान् भक्ति करवा रहा है. यह सारी लीला कन्फ्यूज़न्में हो रही है. हम भी भगवान्के मिनी मॉडल् हैं. वैज्ञानिक एक बात कहते हैं कि यदि तुम रोड क्रॉस् कर रहे हो और सामनेसे बस आ रही है, तो तुम दौड़ना शुरू कर देते हो. दरअसल वह तुम नहीं दौड़ रहे हो, तुम्हारे रक्तमें ऐसे हॉर्मोन्के सीक्रेशन् पैदा होने लगते हैं कि जिसके कारण तुम्हारे चलनेकी रफ्तार तेज हो जाती है. हम सोचते हैं कि हम बहुत बुद्धिमान् है क्योंकि बसके आनेपर हमने दौड़ कर रास्ता क्रॉस् कर लिया. हम ग्रामीण लोगोंपर हंसते हैं कि इन्हें रोड़ भी क्रॉस् करना नहीं आता! अरे, शहरमें रहनेवाले कुतेको भी रोड़ क्रॉस् करना आता है. यह बात ग्रामीण और शहरी होनेके बजाय आदतकी है.

जयपुरमें ऐसे ही हुआ. वहाँ पहले बरसातके पानीनिकासके लिए एक सूखी नदी थी. वहाँकी तत्कालीन सरकारने कहा कि यहाँ इतनी जगह बेकार पड़ी है. वहाँ नगर बसा दिया. नगर तो बस गया

पर जब भी बरसात होती है तो पानी निकल ही नहीं पाता. सारे शहरमें पानी भर जाता है. एक बार थोड़ा अधिक पानी बरस गया तो चिड़ियाघरमें पानी भरनेके कारण शेर बाहर आ गया और सी-स्कीम्के एक मकानके पोर्टिगोमें(पार्किंग्) जा कर बैठ गया. उस घरमें तो सब लोग घबरा गयें. इसमें शेर बेचारा क्या करे? उसे भी तो कोई जगह चाहिये रहनेके लिए. शेर उनसे डर गया और वे लोग शेरसे डर गयें. पता ही नहीं चल रहा था कि क्या हो रहा है! पूरा कन्फ्यूजन् था. इस कन्फ्यूजन्में ही सारी लीला होती है. जिस दिन कन्फ्यूजन् मिट गया, उस दिन लीला ही नहीं रह जायगी.

सुबोधिनी :

यस्य अवताराः इति, मत्स्यादिषु शरीरेषु क्वचिदेव मत्स्यविशेषे अलौकिकभावो दृश्यते. सच न जीवधर्मो भवति इति अशरीरिणः तव तेषु अवताराः इति ज्ञायन्ते. अशरीरिणः इति वचनात् शरीराकृतिरेव तत्र प्रकाशते नतु तच्छरीरम्, अन्यथा वृद्धिः न उपपद्यते. सामर्थ्यं परम् अधिकं भवेत्. तस्मात् शरीराकारेण भासमानं भगवद्रूपमेव इति. न तुल्यम् अतिशयो वा यस्य यस्माद् अन्यत्र तद् अतुल्यातिशयम्. कालापेक्षया न अन्यस्य वीर्यम् अस्ति. कालमर्यादां चेद् उल्लंघति तदा भगवद्वीर्यम् अतुल्यातिशयम् इति ज्ञायते. सोऽपि न एकविधः पराक्रमः, क्षणेन विश्वरूपो भवति, क्षणेन वामनो, दृश्यश्च अदृश्यश्च, बहिरन्तः परिच्छेदो व्यापकश्च; अतो ज्ञायते सर्वेष्वेव देहिषु असंगतैः कदापि असम्बद्धैः भगवानेव अयम् इति. नतु प्रत्यक्षतया भगवान् इति निश्चेतुं शक्यते इति अर्थः. तत्रापि कदाचित् चेद् अलौकिकं भवति कल्प्येतापि कथञ्चिद् जातम् इति, सर्वदा चेद् अवाङ्मनोगोचराः अनुभावाः तदा कथं न ज्ञायेत्? तद् आहतुः तैस्तैः इति. एवम् अवतारेषु भगवज्ज्ञानम् आनुमानिकं न प्रत्यक्षम् इति उक्तम्.

मत्स्यादिषु शरीरेषु क्वचिदेव मत्स्यविशेषे अलौकिकभावो दृश्यते. मत्स्यावतारमें जिस प्रकारकी मछलीका रूप भगवान्‌ने लिया वैसी तो मछली होती ही नहीं है. कच्छप अवतारमें जैसे कछुएका रूप भगवान्‌ने लिया वैसा तो कछुआ होता नहीं है. कृष्णावतार और रामावतार में जैसा भगवान्‌ने मनुष्यका रूप लिया वैसा तो सचमुच मनुष्य होता ही नहीं है. एक विशेष प्रकारका गुण जो शरीरमें उत्पन्न हो रहा है वह साधारण ना हो कर विशेष है. उसी गुणसे उनका 'भगवत्त्व' या 'भगवत्‌पना' दिखायी देता है. साधारण शरीरियोंमें वह भगवत्‌पनेका गुण ढक जाता है. अर्थात् जब मनुष्यरूपमें प्रकटे तो मनुष्य जैसे गुण तो दिखलाई देते ही हैं, साथ-साथ कुछ विशेष गुण भी दिखलाई देते हैं. इसके कारण मनुष्य होनेके साथ-साथ भगवान् हैं, यह प्रकट होता है. मछली अथवा कछुआ होनेपर भी उनके गुणोंके साथ-साथ कुछ और विशेष गुण भी वह प्रकट कर रहे हैं, इसी कारण वे वहां 'अवतार' कहे गये हैं. इसाईओंके केथलिक सम्प्रदायमें भी ईसामसीहके बारेमें 'गॉड् इन ह्युमन् फ्लेश्' होनेका सिद्धान्त है.

अपने दर्शनशास्त्रकी संगति समझनेके लिए कि अवतारके सन्दर्भमें यहां यह बात कही है वैसे गीतामें भगवान् इससे भी बड़ी एक बात कह रहे हैं "**यद् यद् विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा तत्तदेव अवगच्छ त्वं मम तेजोऽशसम्भवम्**" (भग.गीता१०।४१) किसीभी साधारण मनुष्यमें साधारण क्रिया करते हुए यदि उसमें कोई विशेष गुण तुम्हें दिखलाई देता है तो तुम समझ जाओ कि उस रूपमें 'मैं' वहां प्रकट हुआ हूं. उसकी सीमा भगवान्‌ने कहां तक बतायी है "**द्यूतं छलयताम् अस्मि तेजः तेजस्विनाम् अहं... नीतिः अस्मि जिगीषिताम्**"(भग.-गीता१०।३६-३८) छल करनेवालोंमें जुआ मेरा रूप है, क्योंकि छलका एक विशेष गुण तो प्रकट हो ही रहा है. कोई आपको छल रहा है और फिर भी आप अपने मनको सांत्वना दे रहे हो कि "मैं जुआ हार गया."

डाकू और ठग में यही भेद है. डाकू आपको बन्दूककी नौकपर लूटता है. इस कारण आपको लगता है कि आपके साथ अनर्थ हो गया. पर ठग आपको ठगे तो आप उसका आभार ही मानते हो. हम गोस्वामी आपसे मनोरथके नामपर धन एंठते हैं फिर भी आप कहते हो "महाराज कितने कृपालु हैं हमारे पैसेका विनियोग ठाकुरजीमें करा दिया" इसका नाम है 'ठग'. तुम्हारे पैसे ले भी लिए और तुम्हें खराब भी नहीं लग रहा "**द्यूतं छलयताम् अस्मि**".

इस प्रकार अवतारके समानान्तर एक विभूतिका स्वरूप भी भगवान् समझाते हैं कि "उनमें मुझे प्रकट होनेकी आवश्यकता नहीं होती. केवल अपने कुछ गुण उनमें प्रकट कर देता हूं. कभी गुणिरूपसे प्रकट होता हूं, कभी केवल अपने गुण प्रकट कर देता हूं. उस समय वह व्यक्ति साधारण हो सकता है पर उसके गुण विशेष होते हैं. जो मेरा ही स्वरूप हैं." इस प्रकार जगत्में भगवान् किस तरह व्यवहार करते हैं वह गीतामें बताया गया है. यह अपनी थियोलॉजी है. इस कारण कह रहे हैं **यस्य अवतारा: ज्ञायन्ते शरीरेषु अशरीरिण:, तै: तै: अतुल्यातिशयै: वीर्यै: देहिषु असंगतै:**. महाप्रभुजी कहते हैं "**भगवानेवहि फलं स: यथा आविर्भवेद् भुवि गुण-स्वरूप-भेदेन तथा तेषां फलं भवेत्**" (पु.प्र.म.१७) जो भी कुछ अपने पुरुषार्थ हैं, होंगे वे विषमता लिए हुए पर फल तो भगवान् ही हैं. वह फल किस प्रकारसे है; ध्यान रहे कि भगवान् प्रमाण प्रमेय साधन फल सभी कुछ हैं.

पर फलात्मक भगवान्की पहचान, कहीं स्वरूपसे प्रकट होती है तो कहीं गुणसे प्रकट होती है. "**गुण-स्वरूप-भेदेन तथा तेषां फलं भवेत्**" किसीके पुरुषार्थके फलस्वरूप वह स्वयं प्रकट नहीं होते, अपने गुण प्रकट कर देता है. और किसीके लिए स्वयं प्रकट हो जाते हैं. भगवान्का प्राकट्य दोनों प्रकारसे है. भगवान्का गुणसे प्राकट्य

विभूतियोगमें वर्णित किया गया है और **"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिः भवति भारत! अभ्युत्थानम् अधर्मस्य तदा आत्मानं सृजामि अहम्"** (भग.गीता ४।७) यों अनेक स्वरूपोंमें प्राकट्यके उदाहरण मिलते हैं. इस तरह अवतारयोग और विभूतियोग यह दो प्रकारके भगवान्के योग हैं.

एक उदाहरण दूं तो आपको ठीकसे समझ आयेगा. जब मैं बीस इक्कीस सालका था. तो मेरे मनमें एक बार विचार आया कि यह महाराजपनेका धंधा बहुत खराब है, मुझे नहीं करना यह सब. मैंने अपने दादाजीको अल्टिमेटम् दे दिया कि "मुझे मॉडर्न् पढ़ाई करके कुछ नौकरी करनी है, महाराज नहीं बनना." दादाजी मुझपर बहुत नाराज हुए पर मैं अपने निश्चय पर अटल रहा. कभी स्कूल तो गया नहीं पर पता चला कि बनारसमें कहीं प्राइवेट् कोर्स्के द्वारा सीधे इंटर्की परीक्षा दी जा सकती है. मैं तो सीधे वहां चला गया. अब तो दादाजीका क्रोध सातवें आसमानको छूने लगा. उन्होंने मुझे खर्च देना ही बंद कर दिया. मेरी बड़ी बहन मुझे कुछ पैसे भेजती थी. उसीमें खर्चा चलाना पड़ता था. पढ़ने लिए तीन-चार मील रोज पैदल चलता था. इस कारण शरीर भी थोड़ा उतर गया. कुछ दिन बाद मुम्बई आया तो दादाजी मेरी हंसी उड़ाने लगे "देख तेरा हाल क्या है!" मुझे रोना आ गया. मैंने कहा "एक तो आप पैसे नहीं देते हो पढ़नेके लिए और अब हंसी और उड़ा रहे हो!" मुझे रोता देख कर दादाजीका दिल थोड़ा पसीजा. उन्होंने इसका एक समाधान निकाला. बोले "तू मेरी इच्छाके विरुद्ध पढ़ने गया, इसलिए मैं तो तुझे पैसे नहीं दूंगा पर तुझे स्कॉलरशिप् दिलवा दूंगा." एक ट्रस्ट्को चिठ्ठी लिखी और मुझे स्कॉलरशिप् मिल गयी. लोग मुझे कहने लगे "कैसा बाप है तुम्हारा, गांठसे पैसे नहीं देता और स्कॉलरशिप् दिलवाता है!" मैं उनसे कहता कि "स्वरूपसे नहीं तो चलो गुणसे तो उन्हींका प्राकट्य है"

''गुण-स्वरूप-भेदेन तथा तेषां फलं भवेत्'' इसी प्रकार भगवान् भी किसी स्थानपर गुणसे व्यवस्था करते हैं और किसी स्थानपर स्वरूपसे व्यवस्था करते हैं. तरीके अलग-अलग हैं.

मत्स्यादिषु शरीरेषु क्वचिदेव मत्स्यविशेषे अलौकिकभावो दृश्यते. सच न जीवधर्मो भवति इति अशरीरिणः तत्र तेषु अवताराः इति ज्ञायन्ते. अशरीरिणः इति वचनात् शरीराकृतिरेव तत्र प्रकाशते ननु तच्छरीरम्, अन्यथा वृद्धिः न उपपद्यते. सामर्थ्यं परम् अधिकं भवेत्. ऐसे अवतारस्वरूपसे जब भगवान् प्रकट होते हैं तो हमको आकृति तो वैसी ही दिखायी देती है, जैसे कि मछली परन्तु शरीर मछलीका नहीं होता. वह रूप भगवान् उस प्रकार दिखा रहे होते हैं. पर सामर्थ्य उसमें कहीं अधिक होती है. **तस्मात् शरीराकारेण भासमानं भगवद्रूपमेव इति.** इसलिए चाहे वह शरीर भासमान भले ही हो पर मूलमें तो वह शरीर होता ही नहीं है, केवल वैसा आकार होता है. **न तुल्यम् अतिशयो वा यस्य यस्माद् अन्यत्र तद् अतुल्यातिशयम्.** उसमें वह अतुल्यातिशय होता है, मानें उसके बराबर कोई हो नहीं सकता और उससे अधिक कोई हो नहीं सकता. जब भगवान् अपना स्वरूप किसी आकारमें गढ़ें तो उस आकारके बराबर कोई आकार हो नहीं सकता और उस सामर्थ्यसे अधिक कोई दूसरा आकार हो नहीं सकता.

कालापेक्षया न अन्यस्य वीर्यम् अस्ति. कालमर्यादां चेद् उल्लंघति कालसे ज्यादा तो ऐश्वर्य किसीका नहीं होता पर अवतारशरीरोंमें भगवान्ने कालमर्यादाओंके उल्लंघनकी कितनी सारी लीला प्रकट की हैं.

तदा भगवद्वीर्यम् अतुल्यातिशयम् इति ज्ञायते. सोऽपि न एकविधः पराक्रमः उसका पराक्रम भी एकविध नहीं होता **क्षणेन विश्वरूपो भवति, क्षणेन वामनो, दृश्यश्च अदृश्यश्च** एक क्षणमें विश्वरूप हो जाता है,

दूसरे क्षणमें वामनरूपसे दृश्यमान होता है और अगले क्षण अदृश्य हो जाता है. **बहिरन्तः परिच्छेदो व्यापकश्च; अतो ज्ञायते सर्वेष्वेव देहिषु असंगतैः** अर्थात् बाहर और भीतर का परिच्छेद जिसको बांधता न हो उसे 'व्यापक' कहते हैं. प्रत्येक देहीमें वह असंगत है **कदापि असम्बद्धैः भगवानेव अयम् इति.** और उससे सम्बन्ध ना होनेपर भी सम्बन्ध भासित होता है **ननु प्रत्यक्षतया भगवान् इति निश्चेतुं शक्यते इति अर्थः.** उनको मानें राम अथवा कृष्ण को प्रत्यक्ष देख कर कोई यह नहीं कह सकता कि वे भगवान् हैं. यही लगता है कि वे कोई साधारण मनुष्य हैं. पर वे जैसे काम करते हैं उससे पता चलता है कि ये कोई देवपुरुष हैं. **तत्रापि कदाचित् चेद् अलौकिकं भवति कल्प्येतापि कथञ्चिद् जातम् इति, सर्वदा चेद् अवाङ्मनोगोचराः अनुभावाः तदा कथं न ज्ञायेत्?** उसका अनुभाव यदि मन वाणीसे गोचर ना होता हो तो उसका ज्ञान किस प्रकार होगा उसके समाधानार्थ कहते हैं, **तद् आहतुः तैस्तैः इति. एवम् अवतारेषु भगवज्ज्ञानम् आनुमानिकं न प्रत्यक्षम् इति उक्तम्.** अवतारोंके शरीरोंका ज्ञान तर्कसे ही सिद्ध होता है, स्पष्ट नहीं होता क्योंकि हर शरीरीमें यह संशय तो रहता ही है कि कहीं यह साधारण पुरुष तो नहीं है! जैसे यहां कृष्ण एक साधारण बालककी तरह बंधा हुआ, विपत्तिग्रस्त दीख रहा है पर उसमें शक्ति है दो पेड़ोंको उखाड़ फेंकनेकी. यही अवतारी पुरुषकी पहचान है कि वे दिखनेमें साधारण लगते हैं पर गुणोंमें या कार्योंमें असाधारण अनुभाव प्रकट करते होते हैं.

(प्रश्नोत्तर)

प्रश्न : भगवान् साधारण मनुष्यकी तरह दिखलाई दे रहे हैं, तो पता कैसे चले कि वे भगवान् हैं.

उत्तर : भगवान् अपने स्वरूपसे गुणसे विभूतिसे अंश-कलासे अथवा आवेशसे अवतीर्ण होते हैं. अपने यहां तो नहीं कहा पर रामानुज सम्प्रदायमें कहा गया है कि भगवान् अर्च्यावतारके रूपसे भी अवतीर्ण

होते हैं. अर्थात् जिस मूर्ति अथवा स्वरूप की हम सेवा अथवा पूजा कर रहे हैं उस रूपमें भी भगवान् अवतीर्ण होते हैं. महाप्रभुजी भी कहते हैं "**वस्तुविचारेण सर्वस्यापि भगवद्रूपत्वेन विशेषस्तु अयं 'एनम् उद्धरिष्यामि' इति तदा मृदादेः प्रादुर्भूतो भक्तिमार्गानुसारेणापि आह तद्रूपं तत्रच स्थितं मूर्तौ स्थितम्**" (त.दी.नि.२।२२८) अर्थात् जब सब कुछ ब्रह्मरूप हो तो भगवन्मूर्तिमें वैलक्षण्य क्या हो सकता है? हां कुछ वैलक्षण्य होता है और वह यह कि भगवन्मूर्तिमें भगवद्रूपता तो है ही साथ ही इस रूपद्वारा मुझे इस भक्त या भक्तके परिवार का उद्धार करना है ऐसी इच्छाके साथ ब्रह्म आविष्ट होता है जैसे हिरण्यकशिपु-प्रह्लादके प्रसंगमें नृसिंह भगवान् स्तम्भमें प्रकट हुवे. वह अवतार किस प्रकारका है? जब इस बातकी हम परीक्षा लेने जायें तो ऐसा लगता है कि हम अवतारका मजा लेनेके बजाय, उसकी योग्यताओंका मजा लेना चाह रहे हैं. हमारा भगवान्के प्रति जो दृष्टिकोण है वह अहेतुक न रह कर किसी हेतुपर आधारित हो गया. यह वल्लभ-वेदान्तका कहना है. भगवान् जिस किसी प्रकारसे प्रकट होते हों; उसमें अपने तर्क-कुतर्क करनेके बजाय भगवान्के स्वरूपका आनन्द लेना चाहिये. यदि परीक्षा लेनेके चक्करमें हम पड़ गये तो पता तो कुछ चलेगा नहीं और अधिक संशयमें चले जायेंगे. कृष्णकी हम परीक्षा लेना चाहेंगे तो परीक्षाका कोई भी नियम उनपर लागू नहीं होगा. एक अबोध बालक रो-रो कर घिसट रहा है. इसमें परीक्षा लेने लायक है क्या! पर वही बालक पेड़ कैसे तोड़ रहा है! नन्दरायजीके घरके गोपबालकोंने कहा कि हमने आखोंसे देखा है कि इसने ऊलूखल फंसा कर वृक्ष तोड़ा. पर नन्दरायजी यह माननेको तैयार ही नहीं, और कह रहे हैं कि हो सकता है कि वृक्ष पुराने होनेके कारण स्वयं ही टूट गये होंगे. ऐसा उन्होंने इस कारण कहा क्योंकि यह बात किसी मापदण्डपर बैठती ही नहीं है. वे किसी भी सूरतमें कृष्णको देवपुरुष माननेको तैयार नहीं हैं. वे समझ रहे हैं कि बालक है, गप्प मार रहे है. बालकके सचमें

कोई छल-कपट तो होता नहीं है पर फिर भी उनकी बात बड़े लोगोंके गले नहीं उतरती. इसी कारण भगवान्के उस बालकरूपको किसी भी मापदण्डसे आप नहीं समझ सकते.

मेरे पास एक बार दो बहनें आयीं. दोनोंकी उम्र तीस-बत्तीसके आस-पास होगी. बोलीं "महाराज शादी नहीं हो रही है आप कोई उपाय बताओ." मैंने उनसे कहा "अपने घरके बड़े लोगोंसे कहो तो वे ढूंढेंगे." वे बोलीं "घरमें तो कोई अब बड़ा रहा ही नहीं है. जो बाकी हैं वे सब गांवमें हैं." मैंने कहा "जहां काम करती हो, वहीं कोई योग्य व्यक्ति ढूंढ लो." वह बोली "पर पता कैसे चले कि वह सही व्यक्ति है कि नहीं." मैंने कहा "तो किसी शादी करानेवाली संस्था अखबार या ऍप् में अपना ज्ञापन दे दो." तो बोली "पर पता कैसे चले कि वह सही व्यक्ति है कि नहीं!" मैं समझ गया कि समस्या शादीकी नहीं अपितु अविश्वासकी है. जब-तक आत्मविश्वास न हो तब-तक सभी लोग गलत लगते हैं. किसी-न-किसी बिन्दुपर जा कर तो किसीपर विश्वास करना ही पड़ेगा. यदि आपको ऐसा लगता है कि कोई सही व्यक्ति नहीं है तो यह निश्चित है कि आपमें आत्मविश्वासकी भारी कमी है. वैसे देखा जाये तो उनकी समस्या तो सही थी कि 'पता कैसे चले!'. हमें भी तो यह समस्या है ही कि किसीके बारेमें ठीकसे पता कैसे चले! पर कहीं तो आपको किसीपर थोड़ा विश्वास तो करना ही पड़ेगा. जैसे रातकी रेल्में सीट रिजर्व् होनेपर नहीं सोना, इस डरसे कि कहीं ड्राइवर सो गया और अॅक्सीडेन्ट् हो गया तो! प्लेन्में टिकिट ले कर बैठते हैं तो पाइलट्पर तो विश्वास करना ही पड़ता है. यदि हमेशा हम यह ही सोचते रहेंगे कि ठीकसे पता होगा तभी मैं आगे कार्य करूंगा. तो हम कुछ कर ही नहीं पायेंगे. घरमें बैठे-बैठे भी तो घर गिर तो सकता ही है. कैसे पता चलेगा कि नहीं गिरेगा? यह समस्या ऐसी है कि इससे छुटकारा

है ही नहीं. इसलिए कहीं-न-कहीं पता चले अथवा ना चले पर हममें थोड़ी हिम्मत तो होनी ही चाहिये आगे बढ़नेकी.

नलकूबर-मणिग्रीव कहते हैं कि अभी तो नारदजीकी कृपासे अथवा शब्दोंसे पता चल ही गया है कि भगवान् हैं. जब भगवान् अपने आपको इस प्रकार ढंक रहे हैं तो पता चलना तो कठिन है ही. मॅकबॅथ यदि पढ़ी हो तो उसमें यही कहा है. ऐसी भविष्यवाणी थी कि जो माँके गर्भसे पैदा न हुआ हो वह तुझे मारेगा, तेरे महलके बाहर जो जंगल है वह चल कर महल तक पहुंचे तो तू मरेगा, उस समय कोई टेस्ट-ट्यूब् बेबी तो होते नहीं थे. इसलिए उसे पक्का निश्चय था कि वह मर नहीं सकता. जो कमांडर् उसके साथ लड़ने आया था वह ऑपरेशन्से पैदा हुआ था और अपनी सेनाके प्रत्येक सिपाहीके सरपर वृक्षकी टहनियां उन्हें छिपानेके लिए बांध दीं. पूरा जंगल इस तरह चलके महल तक आया और उसने मॅक्बॅथ्को मार दिया. अब पता कैसे चले कि भविष्यवाणी सही थी कि ग़लत!

मेरे साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ था. एक ज्योतिषीने भविष्यवाणी की थी कि सत्ताइसवें सालमें तुम्हें कोई बहुत बड़ी उपलब्धि हासिल होगी. मैं भी छब्बीस बरस तक सोचता था कि ‘‘होने दो सत्ताइसका, तब दुनियाको पता चलेगा कि मैं कौन हूं!’’ कुछ भी नहीं हुआ. कई वर्ष बाद हमें घर बदलना पड़ा. तब मैं अपने सर्टिफिकेट्स देख रहा था, तो पता चला कि बी.ए.की डिग्री मुझे सत्ताइस वर्षकी आयुमें मिली थी. उसके बाद मैं कॉलेजमें पढ़ाने आता था. दरवाजेपर एक दिन प्यूनने मुझे रोका और पूछा ‘‘महाराज आप यहां क्यों आते हो’’ मैंने उसे टालनेके लिए कह दिया ‘‘संस्कृत पढ़ाने आता हूं.’’ वह बोला ‘‘मैं भी संस्कृतमें एम.ए. हूं’’ मैंने तो केवल बी.ए. ही किया था. तब समझमें आया कि ‘‘बहुत बड़ी उपलब्धि’’से

ज्योतिषीका तात्पर्य क्या था! सचमें कौन महान् है और कौन साधारण पता तो नहीं ही चलता. मुझे भी नहीं चला. उस ज्योतिषीने यह भी कहा था कि तुम्हारी आयु बहत्तर वर्षकी है. पर अब तो मुझे छिहत्तरवां साल चल रहा है. अभी तक तो कुछ हुआ नहीं. हां, इतना अवश्य हुआ कि जब मैं बहत्तर वर्षका हुआ, तो यहां इस कोर्सका नया डिपार्टमेंट जो खुला उसके संयोजकने मुझे प्रवचनमालामें आमन्त्रित किया और मुझे बोलनेके लिए विषय दिया "यह मेरा आखिरी प्रवचन हो तो." ज्योतिषीकी बात तो सही साबित हुयी पर हमें पता नहीं चला. जब अपनी कथा इतनी उलझी हुयी है तो अवतारकी कथा तो होगी ही ना!

(श्लोक-७, मूलश्लोक-३५)

(भक्तिस्थापनके लिए भगवत्प्राकट्य)

अवतरणिका :

प्रकृतेतु शब्दादेव नारदकृपया वा भगवान् एतदर्थम् आगतः इति ज्ञायते इति आहतुः :

यह तो भगवान्की कृपासे और नारदजीके आशीर्वादसे नलकूबर-मणिग्रीव पहचान पायें कि ये भगवान् हैं. अन्यथा उनके रूपको देख कर तो सम्भव नहीं था.

श्लोक :

स भवान् सर्वलोकस्य भवाय विभवाय च।।
अवतीर्णो अंशभागेन साम्प्रतं पतिः आशिषाम्।।३५।।

अनुवाद :

सभी लोगोंके भव और वैभव के वास्ते।।
आशिषोंको पूर्ण करनेवाले पति आप हो और

अपने सभी अंशोंके साथ अवतीर्ण हुवे हो॥३५॥

यह कह रहे हैं कि आशिषके पति अर्थात् नारदजी जो उन्होंने वरदान दिया, उसे सत्य करनेवाले आप हैं. महाप्रभुजी सुबोधिनीमें बहुत सारी मूल समस्याएं फिलॉसॉफीकी देख रहे हैं. "**स भवान्**" मानें "वह आप" 'आप' उसे कहते हैं जो आंखके सामने हो. 'वह' उसे कहते हैं जो आंखके सामने हाजिर न हो. किसी रूपमें आंखसे दिखलाई दे रहा है और हम उसके साथ बातचीत कर सकते हैं. कोई उसका ऐसा भी रूप है जो हमें दिखलाई ही नहीं देता और जिसके साथ हम बात भी नहीं कर सकते हैं. अब दिखलाई नहीं दे रहा है तो उसका ज्ञान भी नहीं है. यह एक मूल समस्या है.

मैं पूना यूनिवर्सिटीकी सॅमिनारमें गया था. वहाँ बहुत अच्छी चर्चा चली. देहलीके कोई एक भाग लेनेवाले थे. उन्होंने डार्क-एनर्जी, डार्क-मॅटर्, व्हाईट्-ॲनर्जी, व्हाईट्-मॅटर् विसा-विस कॉन्शियसनेस् के ऊपर बहुत अद्भुत अपने विचार प्रस्तुत किये. उसने एक ही बात कही कि "मैं जो कुछ भी बात कर रहा हूँ, अनन्तके बारेमें नहीं कर रहा हूँ. क्योंकि अनन्त साइंटिफिक् नोशन् नहीं है. क्योंकि साइंस् कभी भी अनन्तके बारेमें अपने विचार दृढ़ताके साथ प्रस्तुत नहीं कर सकता है. केवल फाइनाइट्के बारेमें ही बता सकता है. उसने समझाया कि जगत्में ७०% डार्क-एनर्जी है, २०% डार्क-मॅटर् है और १०% व्हाइट्-मॅटर् है. इस १०%में भी उसने भेद किये कि ८% व्हाईट-मॅटर् है और २% व्हाईट्-एनर्जी है. यह अनुपात फाइनाइट् यूनिवर्सका अनुपात है. इन्-फाइनाइट्के बारेमें तो साइंस् अपने विचार प्रस्तुत ही नहीं कर सकता क्योंकि वह अदृश्य है. संयोगसे, जो उसकी सब्जॅक्ट्-मॅटर् थी वह मैंने भी अपने पेपरमें प्रस्तुत की थी पर उसमें इन्फिनिटीके बारेमें मैंने कुछ अपने विचार प्रस्तुत किये

थे. हमारे पेपर्की सब्जेक्ट्-मॅटर् बहुत सारी कॉमन् थी. मैंने प्रारंभ इनफिनीटीसे(अनन्त) किया था क्योंकि वह पहला वक्ता था और मेरा नम्बर उसके बाद था. इसलिए मैंने पहले उससे क्षमा माँगी और कहा कि "आपके वक्तव्यकी पुनरावृत्तिके लिए मैं आपसे क्षमा माँगता हूँ" फिर अचानक वहाँ एक पर्शियन् शायरका लिखा कुछ याद आया और मैंने वह वहाँ पढ़ा. वह कुछ इस प्रकार है. *हाज़ी बराहे काबा मन साहिबे दीदार. ऊ खाना हमी जोयद मन साहिबे-खाना. हाजी बराहे-काबा रफ्ते दारद, आशिक बमय दुसाला जब्ते दारद. मालूम न शुद कि यार मशगूल ब किस्त. हरकस खयाले खेश खब्ते दारद.*

मानें जो व्यक्ति हज करने जाते हैं वे काबाकी तरफ खूब दौड़ा-दौड़ करते हैं और प्रेमी अपनी प्रियतमाकी यादमें पुरानी शराब पी कर गुपचुप बैठा रहता है. मेरे यारको वह दौड़ा-दौड़ी पसंद आ रही है कि उसकी यादमें बैठना पसंद आ रहा है, यह तो पता नहीं चलता पर इतना मुझे पता चलता है कि जो दौड़ रहा है और जो उसकी यादमें बैठा है उन दोनोंको अपनी कुछ खब्त है." यही मैंने उसको कहा कि "आपको फाइनाइटनेस्की खब्त (पागलपन) है और मुझे इन्-फाइनाइटनेस्की खब्त है. हम दोनों ही खब्ती हैं. मैं आपको नहीं कहूँगा कि आप इनफिनिटीके खब्ती हो जाओ और कृपया आप भी मुझे फाइनाइटनेस्का खब्ती होनेको न कहें क्योंकि मैं इन्फाइनाइटनेस्का खब्ती हूँ." उस सॅमीनार्के बाद मैंने उसे कहा कि "आप एक साधारण बात समझो कि एक ही शरीर है. उसका यदि एक्स-रे करेंगे तो हड्डी दिखलाई देगी, शरीरकी क्रियाएं नहीं दिखलाई देगी. एम.आर.आई. करोगे तो हड्डी दिखनी बंद हो जायेंगी और शरीरकी चलती हुयी क्रियाएं दिखलाई देंगी. सॉनोग्राफी करोगे तो अन्दरके अंग दिखलाई देंगे. अब शरीर तो एक ही है पर कितने प्रकारके चित्र बन रहे हैं! जो भी उपकरण

है उनको यही तो खब्त है कि मुझे तो बस इतना ही देखना है, इससे अधिक नहीं देखना. अब अपने भीतर क्या है और क्या नहीं यह हम किस प्रकार कह सकते हैं. वैज्ञानिकोंको भी कुछ खब्त है और हम लोगोंको भी कुछ खब्त है. बस हम एक-दूसरेको परेशान न करें और अपनी-अपनी खब्तका आनन्द लें."

इस आधारपर यदि देखो तो एक बहुत विचारणीय विषय यहाँ खड़ा हो रहा है कि किसीको 'सः' मानें जो नहीं दिखलाई दे रहा है उसकी खब्त है. इसको हम एक उदाहरणसे ठीक प्रकारसे समझ सकते हैं. मानों कि कोई प्रेमी-प्रेमिका है. मानों कि प्रेमी कोई एक्स-रे मशीन ऑपरेटर् है, तो उसे पहला विचार आयगा कि प्रेमिका मुझसे मिलने आयी है तो चलो उसकी हड्डीयाँ कैसी है, आज देख लें. यह खब्त ही तो है. क्योंकि जिस उपकरणको वह रोज प्रयोगमें लाता है उसको अपनी प्रेमिकापर भी प्रयोग करनेका उसका मन करेगा. चाहे वह देखनेके बाद उसका आनन्द ले पाये या न ले पायें, पर उसे देखना तो अच्छा लगेगा. यदि जो एक्स्-रे ऑपरेटर् नहीं और जो लड़कीसे शादी करने जा रहा है उसे वह एक्स-रे दिखलायेंगे और कहें कि "जिससे तू शादी करने जा रहा है, उसका ढ़ांचा ऐसा है. शादी करनेसे पहले उसकी यह सच्चाई देख ले, जान ले, समझ ले." वह अचंभित हो जायगा कि क्यों उसकी होनेवाली पत्नीका एक्स-रे उसे दिखलाया जा रहा है! किसीको जो दीख रहा है उसका आनन्द लेना अच्छा लगता है. किसीको जो नहीं दी रहा उसका आनन्द लेना अच्छा लगता है.

नलकूबर-मणिग्रीवके बारेमें महाप्रभुजी कह रहे हैं कि "स भवान्" मानें जो उन्हें दीख रहा है अथवा नहीं दीख रहा उन दोनों पहलुओंको वे जान रहे हैं.

सुबोधिनी :

स भवान् इति, यः पूर्वोक्तः सर्वप्रमाणवेद्यो लौकिकैः अवेद्यो अन्तःकरणप्रत्यक्षो अवतारी चतूरूपो भवान्. अतएव सर्वस्यैव लोकस्य भवाय उद्भवाय; (विभवाय) ऐश्वर्याय च अंशेन भागेन च साम्प्रतम् अवतीर्णः, यतो भवान् आशिषां पतिः. स्वरूपतो भवान् चतूरूपो विवृतः. प्रकारेण ततोऽपि अधिकास्तु अत्र गुणाः. सर्वएव लोकाः उत्पादनीयाः. ततः तेभ्यः स्वसमानैश्वर्यादिकं च देयम्. भगवति अंशतः समागते सर्वे भगवदीयाः शुद्धसत्त्वांशेनैव आविर्भवन्ति भगवत्सेवौपयिकदासरूपांशेन वा. "सर्वे लोकाः स्वदासभावेन आविर्भवन्तु!" इति इच्छया भगवान् एकदेशभावं प्रकाशितवान्, समुदाये ग्रहणभजनाद्यनुपपत्तेः, नहि प्रलयाग्निः सेवितुं शक्यते. किञ्च भागाः कलाः, कलया अवतीर्णः. सर्वेषां सर्वकलाकौशलाय सर्वाः कलाः तदैव प्रादुर्भवन्ति, यदि मूलभूतः कलारूपेण आविर्भवति, तदैव च सर्वाः कलाः पूर्णाः भवन्ति. इदं स्वोपयोगाय उक्तं, स्वस्यापि वैष्णवरूपेण उद्भवो भक्तिकलाः च पूर्णाः भविष्यन्तीति. एताएव आशिषः अग्रे प्रार्थ्यमानत्वात्. मानुषभावेन नानाविधाः क्रीडा भक्तान् उत्पाद्य तेषु भक्तिस्थापनार्थाः इति अर्थः.

इसीलिए कहते हैं **यः पूर्वोक्तः सर्वप्रमाणवेद्यो लौकिकैः अवेद्यो** पूर्वोक्त प्रमाणोंसे वेद्य मानें शास्त्रीय प्रमाणोंसे जिसको जान सके पर लौकिक प्रमाणोंसे अवेद्य, कृष्ण ऐसा है.

अन्तःकरणप्रत्यक्षो अवतारी चतूरूपो भवान्. अतएव सर्वस्यैव लोकस्य भवाय उद्भवाय, (विभवाय) ऐश्वर्याय च अंशेन भागेन च साम्प्रतम् अवतीर्णः. अन्तःकरणमें प्रत्यक्ष चाररूपोंवाले भगवान् मानें जिसको हम अपनी बाह्य इन्द्रियोंसे देख नहीं सकते, उसको हम अपने अन्तःकरणसे समझ तो सकते ही हैं. कविताओंमें भी इसका बहुत प्रयोग होता है कि "दिनका सूरज सांझको सागरमें डूब गया" अस्त हो गया ऐसा नहीं कहते. अरे! सागरकी क्या

बिसात कि सूर्य उसमें डूबे पर आंखसे देखें तो ऐसा ही दिखलाई देता है कि जैसे वह सागरमें डूब रहा है. हम जानते हैं कि चाहे वह ऐसा दीखता हो तब भी ऐसा हो नहीं सकता. यदि पृथ्वी सूर्यका सौवा हिस्सा हो और उसका तीन चौथाई हिस्सा सागर हो तो उसमें सूर्य कैसे डूब सकता है! अन्त:करणगोचर होनेके बाद, समझ बिल्कुल साफ होने पर भी हमारा नियन्त्रण इस आंखपर नहीं चलता कि हम इस आंखसे उसे ऐसे देख सकें कि जैसा हमें समझ आ रहा है. यह सम्भव है कि जो हमें दिख रहा है वैसा हमें समझ आ जाये.

इसीलिए कहते हैं कि [१]सभी प्रमाणोंके विषय [२]लौकिक प्रत्यक्षके अविषय [३]अन्त:करणद्वारा समझे जा सकते और [४]**अन्त:करणप्रत्यक्षो अवतारी चतूरूपो भवान्**. आंखसे दिखलाई दे रहे हैं वे चारों रूप तेरे हैं. क्योंकि आंखसे तो एक लाचार बालक दीख रहा है कि जिसमें इतनी भी सामर्थ्य नहीं है कि उसकी माँने उसे जिस प्रकार बांधा है उससे अपने-आपको छुड़ा पाये. ऊलूखलसे बंधा, अपने आपको छुड़ा नहीं पा रहा है वह संसारके बंधनोसे हमें कैसे छुड़ायेगा! आंखसे देखने पर तो उसका रूप ऐसा ही दिखलाई दे रहा है. लग रहा है तो क्या हुआ पर अन्त:करणसे तो समझमें आ रहा है कि यह कौन है. वास्तविकता कुछ और है. वह वास्तविकता उन्हें समझ कैसे आ रही है इसका प्रमाण वे दे रहे हैं कि भगवान् सारे लोकके उद्भव और ऐश्वर्य के लिए, मानें सारे जगत्को तुम पैदा करते हो और इतना ही नहीं उसे गौरवान्वित करनेके लिए आप जगत्में उत्पन्न हुए हो. जैसे कि आपमेंसे किसीने कहा कि सूर्य डूबता है आकाश और समुद्र के पानीको सिंदूरी करनेके लिए. अन्यथा समुद्रके पानीमें वह सामर्थ्य नहीं है कि वह स्वयं सिंदूरी रंगमें अपने आपको रंग सके. सूर्य डूब कर उसको अपने रंगमें रंग देता है. इसी प्रकार जगत्को गौरवान्वित करनेके लिए भगवान्

जगत्‌में प्रकट हुए हैं.

इसलिए आगे कहते हैं कि आप अंशी हो कर भी अपनी समग्रताको नहीं दिखाते, केवल अपने अंशको ही हमारे सामने प्रकट करते हो. जैसे पृथ्वीकी समग्रता अन्ततः तो सूर्य ही है. क्योंकि पृथ्वी सूर्यसे ही उत्पन्न हुयी है और उसीका एक अंश है. पर सूर्य हमारे सामने वैसी समग्रता लिए हुए प्रकट नहीं होता. पर सूर्य अपनी समग्रतामें प्रकट हो जाय तो हम सब जल कर मर जायेंगे. इसीलिए पृथ्वीसे भी छोटे रूपमें सूर्य प्रकट होता है. हम कहते हैं कि इसमें कारण दूरी है. अरे! कोई भी कारण हो, पर है तो सही न! और उस दूरीके कारणका कारण अन्ततः तो सूर्य ही है. ऑस्ट्रोफिज़िक्स्‌में ऐसा कहा जाता है कि एक दिन ऐसा आयगा कि सूर्य ठंडा पड़ जायगा और उस दिन उसका गुरुत्वाकर्षण इतना बढ़ जायेगा कि वह अपने सभी ग्रहोंको निगल जायगा. उस निगलनेसे पहले वह फूटेगा और पृथ्वी तो उसके एक्सप्लोज़न्‌के एरियामें ही आ जायगी. यह भी सोचनेका विषय है कि सूर्य आज अपने फूटते हुए रूपमें प्रकट नहीं हो रहा है. जिसको हम प्रलयकारी रूप कहते हैं. सूर्य उस रूपमें भी प्रकट नहीं होता है कि जिस रूपमें उसने पृथ्वीका उद्भव किया है. वह प्रकट हो रहा है उस रूपमें कि वह पृथ्वीको गौरवान्वित कर सके. पृथ्वीका ग्लोरिफिकेशन् सूर्यके कारण ही तो हो रहा है. जिस दिन भी सूर्य नहीं उगेगा, उस दिन पृथ्वीकी सारी वनस्पति, सारा जीवन, सब नष्ट हो जाएगा. हम जब इस मॉडल्‌का सोचेंगे तो हम यह समझ पायेंगे कि भगवान् अवतारीके रूपमें जगत्‌में अवतीर्ण हुए हैं, बिल्कुल सूर्योदयकी तरह. सूर्य उगनेपर ही पृथ्वीके सारे फूल खिल उठते हैं. यह विचार तो करो कि पृथ्वीका उस सूर्यसे कितना प्रेम है! कोई घरमें अतिथि आये तो हम उसे गुलदस्ता भेंट करते हैं उसके स्वागतमें. पृथ्वी कितने सारे गुलदस्ते उस सूर्यको उसके आगमन पर प्रस्तुत करती

है! यह एक मॉडल् है इस बातको समझनेका.

यतो भवान् आशिषां पतिः. जो भी कुछ आशिष जो कोई किसीको देते हैं, उनका तू स्वामी है. आप अंश और भाग से अवतीर्ण हुए हो. अर्थात् जो भी सौभाग्यशाली है, वह तेरे कारण ही है. **स्वरूपतो भवान् चतूरूपो विवृतः. प्रकारेण ततोऽपि अधिकास्तु अत्र गुणाः.** स्वरूपसे भगवान्के चार गुण बतायें. अब प्रकारसे भी बता रहे हैं. स्वरूपसे अधिक वहां गुण है. **सर्वएव लोकाः उत्पादनीयाः.** और सारे लोक उत्पन्न करने हैं.

ततः तेभ्यः स्वसमानैश्वर्यादिकं च देयम्. जैसे सूर्य अपनी रोशनी गर्मी ऊर्जा पृथ्वीको देता है. इसी कारण तो हम जी रहे हैं. यदि गर्मी नहीं दे तो सारी व्यवस्था चौपट हो जायगी. ऐसे लोकमें भगवान्को भी अपने कुछ गुण तो वितरित करने ही पड़ेंगे. इस कारण गुण-रूपसे भी भगवान् प्रकट होते हैं. यह नहीं समझना चाहिये कि गुण अपने हैं. हममें जो भी गुण हैं वे उसके हैं. उसमें कुछ अभिमान और आत्मग्लानि करने जैसी कोई बात नहीं है. यह बात तो केवल आनन्द लेनेकी है कि यह विशेष गुण भगवान्ने मुझमें प्रकट किये है, यह लीलाका भाव है. **भगवति अंशतः समागते सर्वे भगवदीयाः शुद्धसत्त्वांशेनैव आविर्भवन्ति** क्योंकि भगवान् यदि अंशतः प्रकट होते हों तो उनके साथ भगवदीय भी शुद्ध-चेतनाके रूपमें प्रकट होते हैं. हम सब अशुद्ध-चेतना हैं. पर वही शुद्ध-चेतना, अशुद्ध-चेतनाके रूपमें प्रकट होती है. जैसे, रोमके गर्वनरने पॉन्टिअस् पिलेट्ने जीससूसे पूछा था कि “Where is kingdom of God?” तब क्राइस्ट्ने बहुत अच्छा उत्तर दिया “Kingdom of God is among you.” अर्थात् वह हमारे बीच ही प्रकट है. यह बिल्कुल वैसी ही बात है कि भगवान्का ऐश्वर्य अनीश्वरोंके बीचमें प्रकट है. इसी प्रकार भगवान्की शुद्ध-चेतना, विकृत चेतनाओंके मध्यमें प्रकट होती है. जैसे,

कमल प्रकट होता है कीचड़में ठीक उसी प्रकार. **भगवत्सेवौपयिकदासरूपांशेन वा. "सर्वे लोकाः स्वदासभावेन आविर्भवन्तु!" इति इच्छया.** भगवान् और भगवदीय जब शुद्ध चेतनाके रूपमें प्रकट होते हैं तो बाकी जीवोंको उनसे प्रेरणा मिलती है कि भगवान्की भक्ति किस प्रकार करनी चाहिये!

इति इच्छया भगवान् एकदेशभाव्यं प्रकाशितवान्, समुदाये ग्रहणभजनाद्यनुपपत्तेः भगवान् स्वयंको क्यों अंशतः प्रकट करते हैं, उसके उत्तरमें कहते हैं कि यदि वे पूर्णरूपसे अपने आपको प्रकट कर दें तो भजन ही सम्भव नहीं होगा. शेष तो सभी हो सकेगा. जब सब जगह भगवान् दीख रहे हैं, तो उनका भजन करना कहां? भजन तभी हो सकेगा जब किसी एक स्थानपर ही भगवान् दिखाई दे रहे हों.

एक बात समझो कि इन सारी लाइट्समेंसे कोई एक लाइट् जलती-बुझती हो तो तुरंत हमारा ध्यान उस ओर जाता है. यदि पूरे वातावरणमें सभी लाइटें जल-बुझ रही हों, तो हमारा ध्यान केन्द्रित कहींपर भी नहीं हो पायेगा. इसी सिद्धान्तपर साइन्-बोर्डवाले अपने बोर्ड डिजाइन् करते हैं. जहां आपका ध्यान खींचना हो उस एरियाकी लाइट् वो जलाते-बुझाते है. इससे हम समझ सकते हैं कि कब हमारी आंख उसका भजन कर पायेगी!

इसी कारणसे भगवान् पूर्णतया स्वयंको प्रकाशित नहीं करते, अंशतः प्रकाशित करते हैं. इस कारण जितने भी अंशमें वे अपने आपको प्रकाशित करते हैं उतने अंशमें हम उसका भजन कर पाते हैं. पूर्णतया प्रकाशित कर देंगे तो कुछ भी नहीं कर पायेंगे. यदि वे समुदायमें प्रकट होंगे तो आप उसे भज नहीं पाओगे.

और अधिक समझनेका प्रयास करें. **भगवान् एकदेशभावं प्रकाशितवान्** जो भगवान् सर्वव्यापी है पर उस सर्वव्यापकताको दिखा नहीं रहे हैं, उसका प्रदर्शन नहीं कर रहे हैं. दिखा रहे हैं एक अपने छोटेसे बालकरूपको. जिसको महाप्रभुजी कहते हैं **"अण्वपि ब्रह्म व्यापकं भवति, यथा कृष्णो यशोदाक्रोडे स्थितोऽपि सकलजगदाधारो भवति."** (त.दी.नि.प्र.१।५४) अणु होनेपर भी ब्रह्म व्यापक है, वही कृष्ण यशोदाकी गोदमें सो रहा है जो सकल ब्रह्माण्डका आधार है. इस अर्थमें यशोदाजी ब्रह्माण्डमें है इस कारण वह ब्रह्माण्डका आधार भी है. देखनेमें तो यही लगता है कि कृष्ण यशोदाकी गोदमें है पर यशोदा जिस पृथ्वी पर है, वह पृथ्वी जिस ब्रह्माण्डमें है और ब्रह्मांड कृष्णकी गोदमें है **"कृष्णः सकलजगदाधारो भवति"**.

इस प्रकारकी विरुद्धधर्माश्रयता कि जो अणु है फिर भी व्यापक है. व्यापकको कभी अणु नहीं कह सकते और अणु कभी व्यापक नहीं हो सकता. पर कृष्णमें किसी एक प्रकारसे उसके ब्रह्म होनेके पहलुमें ऐसी ही विरुद्धधर्माश्रयता है. जहाँ भी उसकी ब्रह्मात्मकता प्रकट होती है वहीं उसकी विरुद्धधर्माश्रयता प्रकट होती है. जब सूर्यकी ॲनेलॉजी समझेंगे तो कृष्णकी प्रत्येक बात आपको समझ आ जायगी. फुटबॉल् जितना डूबनेवाला सूर्य, पृथ्वी और उसके जैसे कई ग्रहोंका आधार भी है. बस इसी मॉडल्को यहाँ समझना है.

समुदाये ग्रहणभजनाद्यनुपपत्तेः यदि वह अपनी व्यापकता दिखायेगा तो उसे कोई भज नहीं सकेगा, जान नहीं सकेगा. एक सामान्य बात, तीन मीलकी परिधिमें जितनी पृथ्वी है, उतनी ही दिखाई दे रही है. क्या पृथ्वी तीन मीलकी ही है? यह तो चौबीस हजार मीलका एक गोला है. जो दिखलाई दे रहा है और जो नहीं दिखलाई दे रहा, उसका अनुपात कितना होगा? बस जो बात पृथ्वी पर लागू हो रही है, वही बात कृष्ण और ब्रह्म के ऊपर भी

लागू हो रही है. जो कृष्ण हमें दिखलाई दे रहा है और जो ब्रह्म हमें दिखलाई नहीं दे रहा, उसका अनुपात भी कहीं अधिक ही होगा. कम नहीं होगा क्योंकि ब्रह्म अनन्त है और अनन्तको साईंस् समझ नहीं सकता है. अब साईंस् नहीं समझ सके तो साधारण व्यक्ति कैसे समझ सकता है? एक बहुत सुंदर बात कही जाती है साईंस्के बारेमें. "साईंस् कभी भी यह दावा नहीं करता कि हमें दिव्यदृष्टि मिल गयी है और हमें यह पता चल गया है. हमारी कॉमनसेंस् सिस्टेमॅटिक् नहीं है. साईंस् उसे सिस्टेमॅटिक् रूपमें पेश कर देता है. इस कारण साईंस् कभी भी कॉमनसेंस्की परिधिके बाहर नहीं जा सकता.

मैं एक बार महेसाणा गया था. वहाँ रमेशभाई परीख मुझे लेने आये थे. उन्होंने मुझसे कहा कि वेणुगीतकी सुबोधिनीका अनुवाद करना है. मैंने कहा "आपका विचार तो अच्छा है पर मैं तो यहाँ केवल दो दिनके लिए ही आया हूँ. इतने समयमें वेणुगीत तो पढ़ा नहीं पाऊँगा. पर यदि आपको किसी बात पर संशय है तो वह मुझसे पूछ लो" वह आधा-पौना घंटा मेरे पास बैठे और कुछ प्रश्न उन्होंने मुझसे किये. मैंने अपनी समझके अनुसार उनका उत्तर भी दिया. उसके कुछ समय बाद उनका एक लेख मैंने पढ़ा. उसमें उन्होंने लिखा कि "मैं श्याम मनोहरजीके पास गया और उन्होंने मेरे माथेके ऊपर हाथ रख कर कहा कि 'जा तुझे पूरी सुबोधिनी लग जायगी.'" अरे, जो सुबोधिनी आज तक मुझे पूरी तरह नहीं समझ आ रही है, वह किसीके माथेपर हाथ धरनेसे उसे कैसे समझ आ गयी! यदि ऐसा हो तो सबसे पहले मैं अपने माथे पर हाथ रखूँगा.

साइंटिस्ट् कभी ऐसा नहीं कहते. वह तो जो उनको प्रयोगोंसे दिखलाई देता है, समझ आता है, वही बात करते है. **समुदाये ग्रहणभजनाद्यनुपत्तेः** यदि भगवान्का कोई समुदाय प्रकट हो, 'समुदाय'का

अर्थ है भगवान्‌के जितने नाम रूप कर्म यदि एक साथ प्रकट हो जायें, तो उसका भजन किस प्रकार करेंगे और उसको समझेंगे कैसे? मानो कि भगवान् किसीसे विवाह करें और हस्तमिलापके समय यदि अपने सहस्र हाथ आगे करें तो कन्या बिचारी कौनसे हाथसे हस्तमिलाप करेगी! दो हाथवालीको तो दो हाथवालेसे ही विवाह उचित लगेगा. सभी समुदाय मानें सारे रूप, सारे कर्म. सारे कर्मका अर्थ है कि उत्पन्न करनेके कर्म, पालनेके कर्म और मारनेके कर्म. अब यदि वे मारनेके कर्म प्रस्तुत करेंगे तो कौन उसे भजेगा? हम भोग धरें और भगवान् साराका सारा खा जायें तो कौन उन्हें भोग धरेगा? नहीं खा रहे, इसीलिए उसे हम भोग धरते हैं. इसलिए **समुदाये ग्रहणभजनाद्यनुपपत्तेः** यदि समुदाय प्रकट हो तो, न तो हम उसे समझ सकते हैं और न भज सकते हैं. यदि अपनी सीमामें प्रकट हो तो ही हम उसे जान सकते हैं, मान सकते हैं और भज सकते हैं. यदि सीमाके बाहर अपना रूप प्रकट करें तो न तो हम उसे देख सकते हैं, न समझ सकते हैं और भजना तो बहुत दूरकी कथा हो जायगी. यह अपनी सीमाएं हैं, उसकी नहीं.

आगे महाप्रभुजी बहुत सुन्दर कहते हैं **नहि प्रलयाग्निः सेवितुं शक्यते.** प्रलयकी अग्निकी कौन सेवा कर सकता है? दुनियाको समाप्त करनेवाली अग्नि यदि किसीके सामने प्रकट हो जाय, तो कोई उसे भज पायेगा? छोटेसे यज्ञकुंडमें प्रत्येक व्यक्ति स्वाहा-स्वाहा करता है पर जो बड़ी अग्नि है उसमें कोई स्वाहा करनेकी सामर्थ्य रख सकता है? हमें सौ प्रतिशत पता है कि यज्ञकुंडकी अग्नि, उसकी सीमाके बाहर नहीं प्रकट होगी. इसी कारण हम उसमें स्वाहा करते रहते हैं. प्रलयाग्निमें होम करने कौन जायगा? महाप्रभुजीकी यह अद्भुत व्याख्या है. दर्शनके साथ काव्यात्मिका भी है. इसमें दोनों प्रकारका सौंदर्य है. कभी-कभी यह समझना कठिन हो जाता है कि यह काव्यमें बंधा हुआ दर्शन है अथवा दार्शनिक काव्य है!

किञ्च भागाः कलाः, कलया अवतीर्णः. सर्वेषां सर्वकलाकौशलाय सर्वाः कलाः तदैव प्रादुर्भवन्ति यदि मूलभूतः कलारूपेण आविर्भवति, तदैव च सर्वाः कलाः पूर्णाः भवन्ति. भगवान् कलासे अवतीर्ण होते हैं. इसी कारण हममें भी कला प्रकट हो जाती हैं. आज भी भगवान्के कितने सारे रूप हैं, मानें क्रिश्चनोंके हिसाबसे, मुसलमानोंके हिसाबसे, शिव-गणपति-देवीके हिसाबसे, पर कृष्णका जो व्यक्तित्व है उसमें कितनी कलाकी विविधता है और उसमें वह कितना संलग्न है, यह देखनेवाली बात है. नाचनेमें देखो तो कृष्ण, गीतमें देखो तो कृष्ण, पेंटिंग्में देखो तो कृष्ण, शिल्पमें देखो तो कृष्ण, ज्ञानमें देखो तो कृष्ण, कर्ममें देखो तो कृष्ण, भक्तिमें देखो तो कृष्ण. क्योंकि वह कलया अवतीर्ण हुआ है. हमको वह उन्हीं कलाओंसे प्रोत्साहन दे रहा है. यदि वह कलासे अवतीर्ण नहीं होता तो हममें इतनी कला आती ही नहीं.

हिन्दीके प्रसिद्ध कवि हुए हैं, मैथिलीशरण गुप्त. उनकी बहुत सुन्दर एक कविता है, *राम तुम्हारा जीवन ही एक काव्य है, कोई कवि बन जाये सहज सम्भाव्य है.* हे राम! तुम्हारी कविता रचनेके लिए बहुत प्रयासकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि तुम्हारा तो जीवन ही एक काव्य है. जिसका जीवन ही कलामय हो उसकी कथा कहनेमात्रसे ही काव्यकला प्रकट हो जाती है. बस यही बात यहां कही जा रही है कि आप कलारूपसे प्रकट हुए हो, इस कारण सभी कलाओंको आप आश्रय दे रहे हो.

भगवान् क्यों छोटेसे मनुष्यके रूपमें प्रकट हुए? वह इसलिए कि मनुष्यको इतना ज्ञात होना चाहिये कि मैं यदि तेरे रूपमें प्रकट होऊँ तो तुझे अपने रूपसे मुझे भजनेमें क्या समस्या हो सकती है? ज़ॅनोफेन् नामका एक ग्रीक दार्शनिक हुआ है. उसने धर्मका उपहास करनेके लिए एक बहुत सुन्दर बात कही है. वह कहता

है कि मनुष्यको भगवान्की मूर्ति बनाना आता है, इस कारण उसने भगवान्की सारी मूर्ति अपने मनुष्यरूपकी ही बनायी. यदि घोड़ेको मूर्ति बनानी आती होती तो वह कभी मनुष्यरूपकी भगवान्की मूर्ति नहीं बनाता. क्योंकि घोड़ेको मनुष्यने हंटर् मार-मार कर अपना गुलाम बनाया है. घोड़ा मनुष्यको कभी अच्छा पशु नहीं मानता होगा. एकदम आततायी पशु मानता होगा. इस ज़ॅनोफेनूके सिद्धान्तको जान कर बहुतसे समुदाय हमारी मूर्तिपूजाका उपहास करने लगे. यहाँ तक कि नेहरूजीने भी अपनी आत्मकथामें इस विचारको एक अध्यायके रूपमें प्रस्तुत किया है. पर यदि हम अपने ऋषियोंकी बात समझें तो एकदम साफ है कि ऋषिगण ऐसा एक भी रूप नहीं मानते हैं कि जिसमें भगवान् अवतरित न हुए हो. हयग्रीव घोड़ेका अवतार है. मछलीको भी अवतार माना है. कछुवेको अवतार माना है. हंसको अवतार माना है. प्रत्येक रूपमें उसका अवतार माना है. हमें इससे कोई आपत्ति नहीं है कि यदि घोड़ेके रूपमें भगवान् प्रकट हुए हैं तो उसे भजनेमें कोई समस्या है. हमने ऐसी धारणा कभी नहीं रखी कि हम मनुष्य हैं, तो भगवान् केवल मनुष्यके रूपमें ही प्रकट हो सकता है.

अपने यहाँ तो यह मान्यता है कि भगवान् किसी भी रूपमें प्रकट हो सकते हैं और उसके किसी भी रूपको भजा जा सकता है. पर जो रूप उसका तुम्हें अच्छा लगता है, बस वहीं तुम उसे भज सकते हो. यह तुम्हारी समस्या है उसकी नहीं. 'वराह' मानें सूअर. सूअरके रूपमें भी भगवान् अवतरित हो सकते है. इससे अधिक भगवान् तुम्हें क्या दिखा सकते हैं! तुम भजनेके लिए तैयार हो, तो मैं सूअररूप ले कर भी प्रकट हो सकता हूँ. भगवान्को इसमें कोई परहेज नहीं है. "सर्वं खलु इदं ब्रह्म"

आपको शायद यह पता होगा कि गुप्तकालमें चन्द्रगुप्त करके

एक राजा हुआ था. वह दरअसल राजा नहीं, राजाका छोटा भाई था. उसके बड़े भाईका नाम धनगुप्त था. उस कालमें पठान लोगोंका वहाँ आगमन हुआ. वहाँ इस्लामको कोई जानता नहीं था और यह पठान लड़ाकू कौम थी. महाभारतमें भी इनका वर्णन मिलता है. शकुनि गांधारी यह सब पठान थे. राजा दशरथकी तीसरी पत्नी कैकयी भी उसी पठानप्रदेशकी थी. उस समयमें वहां इस्लाम नहीं था. यह सब पठान जब गुप्तकालमें आये तो उन्होंने वहाँके राजाओंको कहा कि समर्पण करो, नहीं तो मार डालेंगे. गुप्त राजाने पूछा "ठीक है समर्पण करेंगे पर शर्त क्या है?" पठान राजाने कहा कि "अपनी पत्नी हमें दे दो. हम तुम्हें मारे बिना चले जायेंगे. धनगुप्त इस बात पर तैयार हो गया. इस बातपर चन्द्रगुप्तने अपने बड़े भाईसे कहा कि "यह कैसे सम्भव है, आप अपनी धर्मपत्नीको कैसे किसीको दे सकते है?" उसने आगे कहा कि "आप भाभीको न भेज कर, मुझे वहाँ साड़ी पहना कर भेज दें." चन्द्रगुप्तको साड़ी पहना कर भेजा गया. वहाँ जा कर उसने अफगान पठान राजाके पेटमें खंजर घोंप दिया. वापिस आ कर अपने भाईको भी मारा और अपनी भाभी ध्रुवस्वामिनीके साथ उसने विवाह कर लिया. उस समयमें तो यह घोर पाप था कि भाईको मार कर उसकी पत्नीसे विवाह करना. पर वह पूरी तरह आश्वस्त था कि ऐसे देशद्रोही भाईको मारनेमें कोई पाप नहीं है. पर यह बात लोगोंके गले कैसे उतारी जाय? इस कारण उसने अपना स्वरूप वराह भगवान्का बनाया और भाभीको पृथ्वीका रूप दिया. कई जगह उन मूर्तिओंकी स्थापना अपने देशमें कर दी. उस कालकी यदि आप वराह भगवान्की मूर्ति देखेंगे तो एकसे एक आकर्षित करनेवाली प्रतिमाएं हैं. मध्यप्रदेश विदिशामें देखने लायक मूर्ति है. अन्दरकी कथा कुछ और ही थी पर लोंगोको समझानेके लिए उसे वराहके सिवाय कोई और उदाहरण समझ नहीं आया. उस कालमें भारतकी बहुत बड़ी संख्यामें प्रजा वराह भगवान्की पूजक हो गयी थी.

हमें ऐसा भ्रम कभी नहीं हुआ कि भगवान् वराहरूप नहीं धर सकते और भगवान्को केवल मनुष्यका ही रूप धरना चाहिये. इसी कारण ज़ॅनोफेन्का विचार हमें कभी भी परेशान नहीं कर सकता. जो लोग ऐसा मानते हैं कि भगवान् मनुष्यके सिवाय कोई और आकार ले ही नहीं सकता वे भ्रान्त हैं. क्योंकि वहाँ यह कहनेमें आया है कि And God made Adam after his own image. हम ऐसा नहीं कहते हैं. हम कहते हैं कि जितने भी प्राणी है वे सब भगवान्की इमेज ही हैं. सब भगवान्के लिये हुवे अनेकानेक रूप हैं. यदि कोई रूप है तो वह भगवान्का ही है और यहाँ तक कि कोई नीरूप भी है तो वह भी भगवान् ही है "**द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तञ्च अमूर्तञ्च मर्त्यञ्च अमृतं च**" (बृह.उप.२।३।१) जो मूर्त है और जो अमूर्त है वह सब कुछ ब्रह्म ही है. महाप्रभुजी इसी धारणाको ले कर चल रहे हैं.

इदं स्वोपयोगाय उक्तं, स्वस्यापि वैष्णवरूपेण उद्भवो भक्तिकलाः च पूर्णाः भविष्यन्तीति. महाप्रभुजी कहते हैं कि यह जो कला रूपी भगवान्का रूप है इसे नलकूबर-मणिग्रीव भगवान्की स्तुतिके लिए नहीं पर भगवान्की स्तुति करनेसे उन्हें क्या लाभ मिलेगा वह कह रहे हैं. "आप कलारूपसे अवतीर्ण हुए हो. इस कारण अब हम भी अपनी भक्तिकला दिखा पायेंगे".

मूलमें कलाशास्त्रमें भरतमुनिने केवल आठ रस बताये थे. शृंगार वीर्य रौद्र करुण हास्य अद्भुत भयानक बीभत्स. क्योंकि भरतको ऐसा लगता था कि इतने ही रसोंका नाटकमें उपयोग हो सकता है. पर जब बुद्ध भगवान्के ऊपर कवियोंने उनकी जीवनी लिखी. सबसे पहली जीवनी अश्वघोषने लिखी थी. उसमें लोगोंने सोचा कि इस जीवनीमें भरतद्वारा वर्णित एक भी रस नहीं है, फिर भी रस तो आ रहा है. तब यह निश्चित हुआ कि शांतरस एक स्वतन्त्र रस

है. इस तरह नौंवा रस मान्य हुआ. इसके बाद भागवतपर लोगोंका ध्यान गया. कोई सोच भी नहीं सकता था कि भक्ति भी एक रस है! भक्तिकी एक कलात्मक अभिव्यक्ति हो सकती है. भागवतने भगवान्‌का वर्णन ऐसे भक्तिकी पूर्णतासे किया कि लोगोंको लगा कि भक्ति भी एक स्वतन्त्र रस है. यह दसवां रस हुआ. उसके बाद सूरदासजी प्रकटे. उन्होंने बाललीला गायी. तब लोगोंका ध्यान इस ओर भी खिंचा कि वात्सल्य भी एक रस है. इस तरह किसी पात्रमें कोई कला प्रकट होती हो तो ही कथाकारमें रस प्रकट होता है. जैसे क्रिकेटके मैदानमें कोई खिलाड़ी अपने प्रदर्शनमें कोई कला दिखाये, तो ही कमेंन्टेटर्‌की कमेंन्ट्रीमें रस प्रकट होगा. इसी कारण आप देख सकते हैं कि रेडियोकी कमेंन्ट्रीमें अधिक रस प्रकट होता था, बजाय टी.वी.के. भगवान् कलारूपमें प्रकट हुए हैं, इस कारण सारी कलाएं प्रकट हुयी हैं. यह बात महाप्रभुजी यहां कहते हैं. **एताएव आशिषः अग्रे प्रार्थ्यमानत्वात्** अर्थात् भगवान् अपनी कला प्रकट करेंगे तो आगे चल कर हम भगवान्‌की आशिष मांग पायेंगे कि हमारेमें ऐसी सारी कला प्रकट करो कि जिनके कारण हम भगवान्‌की लीलाओंका कलात्मक अनुभाव बराबर प्रकट कर पायें.

मानुषभावेन नानाविधाः क्रीडा भक्तान् उत्पाद्य तेषु भक्तिस्थापनार्थाः इति अर्थः तुम्हें यदि यह लगता है कि मनुष्यरूपमें वह नहीं आ सकता तो तुम उसे भज नहीं सकते. भगवान् कहेंगे कि ठीक है मुझे क्या आवश्यकता है, मुझे तो मनुष्य बननेमें भी कुछ जोर नहीं पड़ रहा, तुम्हें भगवान् बननेमें तकलीफ है. यदि तुम्हें मुझे भजनेके लिए अथवा मेरा आनन्द लेनेके लिए मनुष्यका रूप चाहिये तो मैं मनुष्यका रूप धारण करनेको तैयार हूं. तुम्हें यदि मेरा यह रूप अच्छा लगता है; जैसा कि चन्द्रगुप्तको था, तो वह रूप भी धारण करनेको तैयार हूं" बात तथ्यकी यह है कि भगवान्‌का कोई भी रूप हो सकता है. प्रश्न यह नहीं है कि भगवान्‌का

रूप कैसा है. प्रश्न यह है कि तुम भगवान्को किस रूपमें भजना चाह रहे हो. यदि आपको मनुष्यके अलावा उसका और कोई रूप भजनेमें नहीं अच्छा लगता तो भगवान्को कोई समस्या नहीं है. भगवान्की मानुषी मूर्ति भी हो सकती है. भगवान्की पाशविक मूर्ति भी हो सकती है और भगवान् अमूर्त भी हो सकते हैं. तुम्हें अमूर्तमें भजन करना हो तो वे अमूर्त भी हो सकते हैं. तुम्हें निश्चय करना है कि तुम उसको किस रूपमें भजना चाहते हो. तुम्हें जिस रूपमें भजना हो उस रूपमें वे प्रकट होनेको तैयार हैं और यहाँ तक कि वे तुम्हें उस रूपमें दिखलाई भी देंगे. वह तुम्हारी कल्पना नहीं होगी कि जैसे ज़ॅनोफेन् कहता है कि यह मनुष्यकी कल्पना है, ऐसा नहीं है. वे तो आपके भावोंका आपसी आदान-प्रदान करते हैं और जब वह सत्य आपके साथ भावोंका आदान-प्रदान करता है तो वह कल्पना, कल्पना न रह कर, अनुभूतिका रूप ले लेती है. What is the difference between imagination and realization? when truth does not correspond to the imagination, it becomes illusion. When truth corresponds to your imagination then it turns into realization. जब भी सत्य हमारी कल्पनाके साथ संवाद नहीं करता तो वह भ्रम होता है. पर जब वह सीधा संवाद करता है तो भ्रम न हो कर एक अनुभूति हमें प्रदान करता है. यह एक मूलभूत भेद है जो हमको समझना चाहिये.

आजकल लोग इस बातको ले कर बहुत वाद करते हैं. पर हमें समझना चाहिये कि उनके वादके प्रतिवाद-स्वरूप यह नलकूबर-मणिग्रीवकी स्तुति हमें कैसे दिशा प्रकाशित करती है! यह हमारे हृदयको प्रकाशित कर रही हैं कि आप ऐसे तर्कोंसे घबराओ मत, निर्भय हो कर भगवान्के स्वरूपको समझो. **मानुषभावेन नानाविधाः क्रीडा भक्तान् उत्पाद्य तेषु भक्तिस्थापनार्थाः इति अर्थः**

(प्रश्नोत्तर)

प्रश्न : आपने यह भी बताया था कि जब भगवान् अंशतः प्रकट होते हैं तब भगवदीय शुद्ध-चेतनासे प्रकट होते हैं. इस बातको थोड़ा और विस्तारसे समझायें.

उत्तर : जैसा मैंने पहले भी बताया था कि भगवान् सच्चिदानन्द हैं. उनके सदंशमेंसे सत्त्वगुण प्रकट होता है, चिदंशमेंसे रजोगुण प्रकट होता है और आनन्दांशमेंसे तमोगुण प्रकट होता है. यह तीनोंगुण जब मिल कर सन्तुलित अवस्थामें रहते हैं, इस रूपको 'प्रकृति' कहा जाता है. यदि यह सन्तुलन किसी कारणवश बिगड़े तो; जैसे समुद्रमें ज्वार-भाटा आता है तो यह विकृति हुयी, तब यह 'सृष्टि' कहलाती है. पर सत्त्व जो रज-तमसे मिश्रित नहीं हुआ है उसे 'शुद्ध-सत्त्व' कहा जाता है. इसलिए जब भगवान् भूतलपर प्रकट होते हैं तो रज-तमको ले कर प्रकट नहीं होते, शुद्धसत्त्वरूपमें प्रकट होते हैं. जैसे शुद्ध सोनेसे कोई भी गहना गढ़ा नहीं जा सकता, उसमें कोई दूसरी मिलावट करनी पड़ती है. क्योंकि सोना बहुत नरम धातु है. इतना शुद्ध होनेके कारण उससे किसी आभूषणरूपी रूपका अवतार नहीं हो सकता. पर मानो कि तुमको यह आभूषण स्वयं बनाने हों तो पहले सोनेकी आवश्कता तो होगी ही. बिना सोनेके तुम आभूषण किससे सिद्ध कराओगे! सोना मिलनेके बाद आपको उसमें मिलावट करनी पड़ेगी, तभी आप अभिलषित आभूषण बन पायेगा.

दूसरा उदाहरण देता हूं. अपने भारतमें यदि पुलाव बनाना हो तो सारे मसाले पकते समय ही डाल देते हैं. यह उस शुद्ध सामग्रीका विकार हो गया. पर पश्चिमी देशोंमें मसालेको ऊपरसे भुरका जाता है. वह प्रकार शुद्ध चेतनाको उसीके रूपमें रखनेका है और गुणोंका उसपर एक आवरण मात्र है. ठीक उसी प्रकार प्रभु जब भूतलपर प्रकट होते हैं तो मिश्रित सत्त्व ले कर प्रकट नहीं होते अपितु

शुद्धसत्त्व ले कर प्रकट होते हैं. हम लोग गुणोंके मिश्रणके बिना पैदा ही नहीं हो सकते. क्योंकि जीवित रहनेके लिए पृथ्वीके गुणोंके साथ हमारे शरीरका तालमेल बैठना चाहिये. यह बिल्कुल उसी तरह है जैसे केवल घरमें बड़ा किया हुआ बालक बाहरके जगत्के थपेड़ोंको झेल नहीं सकता.

मेरे साथ भी कुछ ऐसी ही घटना हुयी थी. मैं पहली बार जब घरसे पढ़नेके लिए बनारसकी हरिचन्द्र कॉलेज्में गया. वहांके प्रधानने मुझे कहा कि "यहां आपका यह धोतीवाला वेश नहीं चलेगा." मैंने कहा "मैं तो और कुछ पहनता ही नहीं." वे बोले "आपकी सब लोग खिल्ली उड़ायेंगे." मैंने कहा "मैं मॅनेज् कर लूंगा." पहले छ महीने लोगोंने मेरी खूब खिल्ली उड़ाई पर मैं कोई प्रतिक्रिया ही नहीं देता था. थक कर वोही लोग मेरे सबसे अच्छे मित्र बन गये. उसी समयकी बात है, जब सरकारकी तरफसे एक नोटिफिकेशन् आया. जिसमें लिखा था कि इस यूनिवर्सिटीके नामके आगेसे 'हिन्दु' शब्द हटाओ. पूरा कॉलेज् इस बातके विरोधमें सड़कोंपर उतर आया, केवल हम चारको छोड़ कर. उनमें एक मैं था, एक दलित था जिसको जातिकी अवहेलनाके कारण और लोगोंसे नफरत थी. दो मुसलमान थे, जिन्हें इस शब्दसे कोई लेना-देना नहीं था. मैं वहां सबसे लम्बा था, इस कारण मेरे सहपाठी मुझे लीडर बनाना चाह रहे थे. पर मेरा अपना कुछ कारण था, वहां नहीं जानेका. वह कारण यह था कि पर्शियन् लोग सिन्धु नदीके इस तरफ रहनेवालोंको 'हिन्दु' कहते थे. वे 'स'का उच्चारण 'ह' करते थे. इस कारण सिन्धुसे हिन्दु हो गया. उनके शब्दकोषमें इस शब्दका अर्थ है 'काला चोर बेईमान' तो मैं क्यों अपने आपको यह सब सिद्ध करवाऊं? अपने पुराने ग्रन्थ उठा कर देख लो. इस शब्दका कहीं भी जिक्र नहीं है. चारों वर्णोंका है पर 'हिन्दु' जैसा कोई शब्द नहीं है. अब यह सब तो भीड़को समझाया नहीं जा सकता. इस कारण

मैंने उस विरोधमें हिस्सा नहीं लिया. चीनी यात्री 'सिन्धु'का 'शीन्तु' करते थे जो चीनमें पहुंच कर 'चीन्तु' बन गया! कलको आप कहोगे कि हम 'चीन्तु' हैं, तो क्या यह मान लेना चाहिये? ग्रीक् लोग 'सिन्धु'के बजाय 'इन्दु' कहते थे. जिससे बादमें 'इन्डस्-वॅली' बना. हम किस-किस बात पर झगड़ा करेंगे? पर तीस हजार बन्दरोंकी फौजको कौन समझाये? मुझसे उन्होंने पूछा "क्यों हिस्सा नहीं ले रहे हो, क्या हिन्दु नहीं हो." मैंने कहा 'नहीं' उन्होंने कहा "मुसलमान हो." मैंने कहा 'नहीं' "तो फिर कौन हो?" मैंने कहा "श्याम गोस्वामी." वे सब सर पीट कर रह गये. मेरी बात तो उनको समझ आयी नहीं पर सो मेरे साथ मारपीटपर उतारु हो गये परन्तु प्रिन्सिपाल झुत्सीजी मुझे अपने रूममें खींच कर ले गये और मैं बच गया.क्या करते. परन्तु अब सेक्युलर लोग हमें 'हिन्दु' कह कर इतना बदनाम करते हैं तो मुझे वह मेरी बदनामी ही लगती है.

(श्लोक-८, मूलश्लोक-३६)
(प्रार्थना)

अवतरणिका :

किञ्चित् प्रार्थयितुं नमस्कारं कुरुतो
आदिमध्यावसानेषु नमनं मनआदिभिः

कुछ प्रार्थना करनेके लिए ये दोनों भगवान्‌को नमस्कार करते हैं. प्रार्थनाका एक अर्थ होता है 'इच्छाकी अभिव्यक्ति'. दूसरा अर्थ है 'विनती'. विनती अथवा इच्छा इन दोनोंमें भेद है. एकमें दैन्य है तो दूसरेमें विनयपूर्ण अनुनय या आदेश का शेड् है. केवल टोन्‌का अन्तर है, पर जब नमस्कार करके हम प्रार्थना करते हैं तो उसमें दैन्य ही होता है. इसीलिए उन्होंने पहले नमस्कार किया, तत्पश्चात् प्रार्थना की.

नमनसे प्रारम्भ, मध्यमें नमनकी निरन्तरता और नमनद्वारा समापनकी रीति बताते हैं.

श्लोक :

नमः परमकल्याण! नमस्ते विश्वमंगल!।।
वासुदेवाय शान्ताय यदूनां पतये नमः ।।३६।

अनुवाद :

हे परमकल्याण! नमस्कार. हे विश्वमंगल! आपको **नमस्कार!।।**

यदुवंशके पति ऐसे शान्त वासुदेव आपको **नमस्कार।।३६।।**

सुबोधिनी :

नमः इति, आदौ कायिकं नमनं, तत्र फलं परमकल्याण! इति. कल्याणानां निधानरूपो भगवान्. कल्याणानि शुभफलानि पुत्रजन्मादीनि लोके प्रसिद्धानि. परमानन्दः परमकल्याणः. कायेन नमस्कृतः शरीरोपभोगाय परमकल्याणः प्रादुर्भवति. नमस्ते इति वाचनिकं, ते तुभ्यम् इति कीर्तनात्. तस्य फलं विश्वमंगल! इति, वेदादिनिर्माणाद् विश्वस्मै तत्साध्यफलरूपो मंगलं भवति. अन्ते नमनं मानसं, तदर्थं मनसि आविर्भावाय वासुदेवाय इति. शान्ताय इति ज्ञानरूपाय; केवलम् आविर्भूते नारदवद् अज्ञाते तथा पुरुषार्थो न भवतीति शान्तं लयविक्षेपशून्यं रूपम् आविर्भावो ज्ञानं च उक्तम्. फलम् आह यदूनां पतये इति, भगवान् स्वामी फलं, यथा यदूनाम्.

नलकूबर-मणिग्रीव भगवान्को नमस्कार कर रहे हैं. **नमः इति, आदौ कायिकं नमनं** नमनका प्रारम्भ होता है कायिक नमनसे. आजकल लोग नमन करते ही नहीं हैं. नमन करनेकी एक विशिष्ट रीति होती

है : **नमस्कारकी प्राचीन मुद्रा है कि पहले दोनों हाथोंको आपसमें जोड़ो और मस्तकको उस हाथ तक झुकाओ तो नमन हुवा. दण्डवत् प्रणामकी यह टोकन्रूप मुद्रा है.** 'दण्डवत् प्रणाम' मानें साष्टांग दण्डवत्. दण्डकी तरह जमीनपर लेट जाना. पुराने ज़मानेमें स्त्रियोंके लिए यह निषिद्ध था क्योंकि इसमें अभद्रता लगती थी. उनको केवल पञ्चाग प्रणाम तक ही छूट थी. नमन दोनोंके लिए होता था. क्योंकि दण्डवत् प्रणाम कई स्थानों पर सम्भव नहीं होता कायिक नमनके रूपमें अवकाशके अभाववश.

कायिक नमनसे होगा क्या? तो कहते हैं **तत्र फलं परमकल्याण! इति** उससे परम कल्याण होगा. **कल्याणानां निधानरूपो भगवान्.** क्योंकि भगवान् कल्याणके निधान हैं. **कल्याणानि शुभफलानि पुत्रजन्मादीनि लोके प्रसिद्धानि.** 'कल्याण'का अर्थ होता है कि जिसका फल शुभ हो. जैसे लोकमें पुत्र धन आदिकी प्राप्ति होना शुभ माना गया है और उसे 'कल्याण' कहा जाता है. ये सारे कल्याणके लौकिक रूप हैं. जो भी वस्तु अपनी मानसिक अशान्तिको कम करे उसकी प्राप्ति कल्याणकारी मानी गयी है. भगवान्को नमस्कारमें जो कल्याण है वह लोककल्याणकी बात नहीं है अपितु परमकल्याणकी बात है परम मानें उत्कृष्ट.

'पर'के दो अर्थ होते हैं : दूसरा और श्रेष्ठ. जैसे परजन परदेस. 'परलोक' मानें दूसरा लोक अथवा श्रेष्ठ-लोक. ''परो मीयते अस्मिन् इति परम'' मानें परका जिससे अनुभव हो वह परम. पर और परम में मूल भेद यह है. 'परम-कल्याण' मानें जिससे हमें श्रेष्ठताका अनुभव होता हो.

उसके बाद कहते हैं **परमानन्दः** 'आनन्द'के साथ 'परम' जोड़नेपर 'परमानन्द' पद बनता है. यह क्रम कैसे बना समझें.

१. पहला सुख. सुख सदा आनन्द नहीं होता, क्योंकि वह इन्द्रिय विषयक होता है. आंख नाक कान आदि जिस वस्तुकी चाहना करती हों वह मिलने पर उन्हें सुख होता है, वह न मिले या अनचाहा असह्य कुछ मिले तो दुःख होता है. 'ख' मानें इन्द्रिय. 'ख'के लिए जो 'सु' है वह सुख.

२. दूसरा सोपान आता है रसका. रसका सम्बन्ध हमारी इन्द्रियोंके साथ न हो कर, हमारी भावनाओंके साथ होता है. चाहे इन्द्रिय किसी वस्तुकी चाहना करती हों अथवा नहीं, पर यदि भावनाओंको कोई वस्तु अच्छी लग रही है तो वह रस है. जैसे मिर्च हम खायें तो आंखसे पानी बहता है, पेटमें एसिडिटी होती है. पर फिरभी हमें रस आता है क्योंकि हमारी भावनाएं उससे जुड़ी हैं. जैसे ट्रेजेडी फिल्ममें हमें रोना आता है पर जितना रोना आता है उतना करूणरसका मज़ा भी मिलता है. वह सुख नहीं पर 'रस' कहलायेगा. सुखमें सन्तोष क्षणिक होता है पर रसमें उत्कण्ठा बढ़ती जाती है. प्यास लगी, पानी पिया और सन्तोष हो गया. यह सुख है रस नहीं है. सुखके साथ समस्या यह है कि जितना अधिक सुख भोगेंगे उतना रस कम होता जाता है. रसके साथ ऐसा है कि जितनी उसकी चर्चा करेंगे, उतना वह बढ़ता जाता है.

३. उसके ऊपर आता है आनन्द. आनन्द हमारी भावनाओंसे नियन्त्रित नहीं होता, अपितु हमारी आवश्यकताओंसे नियन्त्रित होता है. आप रस और नीरस दोनोंका आनन्द ले सकते हैं.

एक उदाहरणसे आपको यह बात साफ हो जायेगी. मेरे पिताके एक परिचित थे, वह स्वयं अस्सी वर्षके थे. उनका लड़का साठ वर्षका, उसका लड़का चालीस वर्षका, उसका लड़का बीस वर्षका. चार पीढ़ी एक साथ रहती थीं. उस वृद्धका कोई रिश्तेदार ऐसा नहीं था कि जिससे वह बात करे. परिवारमें उनसे कोई बात करता होगा या नहीं पता नहीं. हर पंद्रह-बीस दिनमें मुझे फोन करके

बुला लेते थे क्योंकि वह मेरे पिताके मित्र थे. इसलिए थोड़ा मुझे भी उनपर स्नेहभाव था. मेरे जानेपर अपनी साठ वर्ष पुरानी डायरी निकाल कर, उसमेंसे मंगेतरके साथ बिताये समयके किस्से मुझे सुनाते. सच कहूं तो मुझे थोड़ा भी रस नहीं आता था पर आनन्द आता था कि कोई उनको सुनता नहीं है, तो हम ही सुन लेंनें. एक-दो घंटे बैठ कर मैं उसकी कहानी सुनता. वैसे मुझे बुलाते यह कह कर कि "श्याम बाबा आपके वचनामृत सुने बहुत समय हो गया, आओ ना" पर मैं पहुंचता उससे पहले उसकी डायरी खुल जाती. मेरे लिए वह बहुत शुष्क विषय था पर मुझे उनके साथ बैठनेमें आनन्द आता था. अब आप समझ सकते हैं कि रस और आनन्द में भेद क्या है! कई बातोंमें हमें रस नहीं आता पर आनन्द आता है क्योंकि उसका आत्माके साथ सम्बन्ध होता है.

सुख रस आनन्द तीनों अलग लॅवल्की वस्तुएं हैं. दैनिक उपयोगमें हम इन्हें मिला देते हैं, पर हैं ये तीनों अलग-अलग. एक इन्द्रियके लॅवल्का है, एक मनके लॅवल्का है और एक आस्थाके लॅवल्का है. 'परमानन्द' = किसी श्रेष्ठ आनन्दका हमें अनुभव हो. साधारण अनुभव और श्रेष्ठ अनुभव. यह श्रेष्ठ अनुभव भावनाओंके साथ अथवा आस्थाके साथ जुड़ा नहीं है, रस और आनन्द उससे जुड़े है.

कायेन नमस्कृतः शरीरोपभोगाय परमकल्याणः प्रादुर्भवति. नमस्ते इति वाचनिकं 'नमस्कार' मानें किसीके आगे झुकना. किसीके आगे झुक कर हम विशेष सन्देश देना चाहते हैं, भावना यह है कि "मेरे लिए आपकी इच्छा, मेरी इच्छासे अधिक महत्त्वपूर्ण है." यह सन्देश देनेके लिए ही हम किसीको नमस्कार करते हैं. जैसे प्रसन्नताका सन्देश देनेके लिए हम मुस्कुराते हैं. आतिथ्य प्रकट करनेके लिए हम हाथ फैलाते हैं. उसी प्रकार 'दूसरेकी इच्छा सर्वोपर' यह सन्देश देनेके लिए हम उसके आगे झुक जाते हैं. आज तो सब कुछ

चालू खाताका हो गया है. पुराने समयमें यह प्रक्रिया थी. इसलिए कहते हैं कि "आपको कायासे नमस्कार." इस कायाका आप जैसा भी उपयोग करना चाहें कर सकते हैं 'नमस्ते' संस्कृत और हिन्दी में शब्दकी छायामें थोड़ा भेद आ गया है. हिन्दीमें जब हम किसीको 'नमस्ते' कहते हैं तो उसका अर्थ होता है "आपको नमस्कार है" संस्कृतमें इसका अर्थ होता है "तेरे लिए झुक रहा हूं" 'ते' मानें तेरे लिए, न कि तुझे. "मेरे झुकनेका कारण तू है", इसका नाम 'नमस्ते'.

ते तुभ्यम् इति कीर्तनात्. कायासे नमन करनेके पश्चात् अब वचनसे झुकनेका कारण भी कह रहे हैं कि "तेरे कीर्तनके लिए." **तस्य फलं विश्वमंगल! इति.** जब भी भगवान्के लिए हम झुकते हैं तो सारे विश्वका कल्याण होता है. वह कैसे, तो कहते हैं कि **वेदादिनिर्माणाद् विश्वस्मै तत्साध्यफलरूपो मंगलं भवति.** भगवान्ने वेदादि शास्त्रोंका निर्माण किया है, जिससे सभीका कल्याण होता है. उसके लिए जो सबका कल्याण करनेके लिए प्रकटे हैं, उनके सामने नहीं झुकेंगे तो किसके सामने झुकेंगे! **अन्ते नमनं मानसं** पहले कायासे, फिर वचनसे, उसके बाद मनसे, नमन होता है.

वह किस प्रकार? **तदर्थं मनसि आविर्भावाय** मनमें भगवान् आविर्भाव हों. मानस नमन कब कहा जाता है, जब जिसे नमन कर रहे हों उसकी छबि हमारे मनमें बसानी हो तब. यह शारीरिक प्रक्रिया इस प्रकार है कि जिसको भी हमें नमन करना होता है; सबसे पहले जब वह हमें देख रहा हो, तब उसके सामने हम अपने शरीरको झुकाते हैं. उस नमनकी दिशा भी ऐसी होनी चाहिये कि हम उसे देख सकें और वह हमें देख सके. उसके बाद वचनसे हमें 'नमस्कार' बोलना चाहिये और नमन करते समय उस व्यक्तिकी अथवा देवकी छबि हमारे मनमें बस जानी चाहिये. इसका नाम

'मानस नमस्कार' है.

वासुदेवाय इति. वासुदेव भगवान्का भी नाम है और चित्त का भी. वह unconscious mind भी है जहां छबि उभरती है. जो conscious mind है उसे 'प्रद्युम्न' मानें 'बुद्धि' ='intellect' कहा जाता है. जो सभी जगह प्रकाश करता है वह प्रद्युम्न. मनको 'अनिरुद्ध' कहा गया है. वह किसीसे निरुद्ध नहीं होता=उसपर कन्ट्रोल् हमारा बस नहीं चलता. बुद्धिको हम नियन्त्रित कर सकते हैं पर मनको नहीं. मन बहुत चञ्चल है. जहां मन जाता है वहां बुद्धिको उसके पीछे भागना ही पड़ता है. 'संकर्षण' मानें self awareness and awareness of others =अहंकार. आपके शरीरके जो भी फंक्शन् हैं वे सब अहंकारकी ओर ही जाते हैं. जैसे 'मैं' देख रहा हूं, 'मैं' खा रहा हूं, 'मैं' सो रहा हूं इत्यादि. यह सब इन्द्रियां कर रही हैं पर श्रेय अहंकार ले रहा है. जो हर क्रियाको अपनी ओर आकर्षित कर ले वह संकर्षण. इसीलिए इसको 'संकर्षण' कहा है. यह अहंकार इन सारी इन्फॉर्मेशन्को अधिक समय तक रख नहीं सकता. यह आगे उसे चित्तमें सुरक्षित कर देता है, जो कि वासुदेव है. रास्तेमें चलनेमें मनकी बहुत अहम भूमिका है. बुद्धिसे विचार करते रहें तो किसी गाड़ीसे टकराये बिना रहेंगे नहीं. मन क्योंकि चञ्चल है इसलिए हर वस्तुको अटॅन्ड् करता है पर रुकता कहीं नहीं. उसका रोल ही इस प्रकारका है. ये चारों रूप भगवान्के भी हैं और mind के भी.

इसलिए मानसिक नमस्कारमें जिस स्वरूपके आपने दर्शन किये, जिसके सामने आपने नमन किया, वह जब आपके चित्तमें समा गया तब मानसिक नमस्कार पूरा हुआ. देखो, केवल नमस्कारका कितनी बारीकीसे अध्ययन किया है महाप्रभुजीने. कहीं भी ऐसा विश्लेषण सुननेमें नहीं आया है.

शान्ताय इति ज्ञानरूपाय ज्ञान सदा हमें शान्त बनाता है. काम अथवा इच्छा हमेशा हमें अशान्त बनाती है. इच्छा जितनी बढ़ेगी उतनी अशान्ति बढ़ेगी. ज्ञान जितना बढ़ेगा उतनी शान्ति बढ़ेगी. ज्ञानरूप कहनेसे शान्ति उसमें आ ही गयी.

केवलम् आविर्भूते नारदवद् अज्ञाते तथा पुरुषार्थो न भवतीति भगवान् यदि केवल आविर्भूत हों और नारदकी तरह समझ नहीं आयें, तो शान्ति नहीं होगी. इसलिए यह ज्ञान तो होना ही चाहिये कि भगवान् आविर्भूत हुए हैं, तभी शान्ति होगी. जब भी आप अपनी आन्तरिक वृत्तियोंका दमन करेंगे अथवा उसको अनावश्यकरूपसे बढ़ायेंगे तो वह शान्त नहीं होगा और ज्ञान प्राप्त नहीं होगा. इसीलिये कहा गया "**सर्वे रोगा हि जायन्ते वेगोदीरणधारणात्**" आन्तरिक आवेगोंको उकसाने या रोकने के कारण सारे रोग शरीरमें पैदा होने लगते हैं.

शान्तं लयविक्षेपशून्यं रूपम् आविर्भावो ज्ञानं च उक्तम् 'शान्त'का अर्थ है लय और विक्षेप दोनोंसे रहित मनोवृत्ति. कभी तो कोई मनोभाव अपनेमें धीमा पड़ जाता है, कभी कोई मनोभाव विचलित करनेवाला होता है. जो धीमा हो गया वह भी शान्त नहीं है क्योंकि अंदर जा कर वह कभी पीड़ा देगा. जैसे कोई मर जाय और हम रोयें नहीं तो दुःखका लय हो गया ऐसा नहीं माना जा सकता. 'विक्षेप' मानें जिस समय हम रो रहे हैं उस समय हमारे ध्यानमें कई ऐसी बातें आती हैं, जो हमें विचलित करती हैं.

इस तरह जहां लय अथवा विक्षेप है मनोवृत्तिको वहां शान्ति नहीं मिलती है. लय और विक्षेप दोनोंसे रहित जो मनोवृत्ति है वही शान्ति प्रदान करती है. जैसे बरफका टुकड़ा हाथमें पकड़ें तो

तुरन्त विक्षेप हो जाता है. थोड़ी देर हाथमें सहन करें तो विक्षेप होना बंद हो जाता है. यदि पूरा हाथ ही बरफमें डाल दिया तो संवेदनाका लय हो जायेगा. छोटा टुकड़ा हो तो संवेदनाका लय नहीं होता है, वह रहती ही है. दुनियोंमें ऐसे कई व्यवहार हैं जिनमें यह हकीकत देखी जा सकती है. जैसे मुसलमानोंके हिसाबसे हिन्दु काफिर हैं. वे काफिरोंको समाप्त(लय) करनेपर तुले रहते हैं, कर दो समाप्त पर इससे तुम्हारा कुफ्रके साथ बैर समाप्त नहीं हो जायेगा. पर काफिरको जिन्दा रखनेसे विक्षेप होगा. 'शान्त'का अर्थ है कि वह जिन्दा है पर तुम्हें फिर भी तकलीफ नहीं हो रही है.

हमें जिस व्यक्तिपर क्रोध आता है, उसका कभी हम मर्डर् कर दें तो उसका लय हो जाता है. पर लय होना उस समस्याका समाधान नहीं है. क्योंकि जो तकलीफ उसने हमें दी, उसका बैर तो हमारे मस्तिष्कमें रहता ही है. आपको शायद पता ना हो कि फुटबॉल् खेल कहांसे शुरु हुआ! दो ट्राइबूमें जब झगड़ा हो जाता था तो प्रतिद्वन्दीका सर काट कर, उसे पैरसे लात मार कर अपना क्रोध निकालते थे. व्यक्तिके लय होनेपर भी क्रोध शान्त नहीं हुआ. आपने भी देखा होगा कि जब हमें तेज गुस्सा आता है तो कोई दूसरा बोले तो हम उसपर ही अपना गुस्सा निकालने लगते हैं. झगड़नेका आवेग जब आता हो तो न झगड़नेकी सलाह देनेवालेपर उससे भी अधिक क्रोध आने लगता है, अक्सर मारामारी बन्द करवाने बीचमें आनेवाला पिट ही जाता है! क्योंकि एकदमसे जो गुस्सा आता है वह साधारण तरीकेसे शान्त होता नहीं है. पंखेका स्विच् ऑफ् भी कर दें तो वह कुछ देर तो चलता ही है.

गांधीजीके आन्दोलनको अंग्रेजोंने कुचलनेकी कोशिश की. उसकी प्रतिक्रिया बहुत भयंकर नेवीकी क्रान्तिके रूपमें उभरी. वह कहते थे

कि ‘‘हम पूरी मुम्बईको जला डालेंगे.’’ इससे अंग्रेजोंके छक्के छूट गये. असलमें गांधीजीके अनशनके कारण भारत स्वतन्त्र नहीं हुआ था. उस सत्याग्रहको तो अंग्रेजोंने दबा ही दिया था. वह दबानेके कारण अधिक जोरसे फूटा. वह बात फिर गांधीजीके हाथसे और अंग्रेजोंके हाथसे निकल गयी थी.

इससे हम समझ सकते हैं कि कभी भी लय करनेसे अथवा विक्षेप होनेसे चित्त शान्त नहीं होता है. होता भी है तो थोड़ी देरके लिए पर वह ज्वालामुखी बन कर बादमें फूटता है. लय और विक्षेप से जो शून्य है उसका नाम शान्ति है. अब जबकि हम जान गये हैं कि ज्ञानसे शान्ति आती है और कामसे अशान्ति, तो हमें यह भी समझना चाहिये कि मन हमेशा ज्ञान और काम के बीच हिचकोले लेता है. क्योंकि वह अनिरुद्ध है, एक ठिकाने बैठ नहीं सकता. उसे न ज्ञानमें निरुद्ध कर सकते हैं और न काममें.

फलम् आह. उससे फल क्या मिलेगा? जब आप मनसे वासुदेवको नमन करोगे, मानें वह जब तुम्हारे चित्तमें पैठ गया तो मन ही अपने आप उसके आधीन हो जायगा. मनकी सत्यमें स्थिति बिल्कुल कारके स्टेयरींग् जैसी होती है. यदि कभी किसी टॅक्सी ड्राइवरसे आप पूछें तो वह यही कहेंगे कि ‘‘यह शैतानका चक्का है. यदि आप इसे कंट्रोलूमें नहीं रखेंगे, तो यह आपको कंट्रोल् करने लगेगा और मार देगा’’ वह इसे ‘शैतानका चक्का’ कहते हैं.

इस प्रकार नलकूबर-मणिग्रीव भगवान्‌की चारों प्रकारसे स्तुति कर रहे हैं. यहाँ समझनेकी बात यह है कि जो भगवान् बाहर प्रकट हुए हैं, उनकी अन्दर कैसी स्थिति है! जो आँखसे बाहर दिखलाई दे रहा है वे अपने अन्दर किस भांतिसे विद्यमान हैं! वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध के रूपमें वे भीतर भी है

और बाहर भी है. इसी कारण हमें कभी भी दुविधा नहीं होती कि भगवान्‌को भीतर भजना कि बाहर भजना! दूसरे धर्मोंमें यह समस्या है. कोई कहता है कि भगवान्‌को भीतर ही भजा जा सकता है, बाहर भजना पाखंड है. कोई कहता है कि भगवान्‌को बाहर भजना ही ठीक है, भीतर भजना पाखंड है. हमारा दृष्टिकोण यह है कि दोनों ही प्रकारसे उसे भजा जा सकता है और इन दोनोंमें पाखंड भी हो सकता है. उदाहरणके लिए समझो कि मैं ध्यानकी योगमुद्रामें बैठ जाऊँ और भगवान्‌के बजाय किसी हिरोइन्‌का ध्यान धरना शुरु करूँ, तो यह पाखंड ही होगा. और मानो कि मैं बाहर भज रहा होऊँ पर मकसद धन कमानेका हो तो पाखंड ही होगा. मन क्योंकि अपना अनिरुद्ध है. वह शैतानके चक्केकी तरह तुम्हें ड्राइव् करता है पर चित्तमें यदि भगवान् बिराज गयें तो समझ लो कि धीरे-धीरे सब कुछ सुधरने लगेगा. चित्तके कारण तुम्हारा अहंकार सुधरेगा.

अहंकारके बारेमें एक मजेदार बात बताऊँ. तुमने अंग्रेजीमें एक मुहावरा पढ़ा होगा 'A to Z'. इसका अर्थ है कि सारे एल्फाबेट्स् भीतर आ जाते हैं. 'अहं'में 'अ' पहला अक्षर है और 'ह' अन्तिम अक्षर है. 'अहं' कहते ही बाराखड़ीके सारे अक्षर आ गये, क्ष त्र ज्ञ तो संयुक्ताक्षर हैं. उसके भीतर 'अहं'में सभी कुछ आ जाता है और यही उसका सौन्दर्य है. उसका 'मैं-मैं' करके दुरुपयोग भी कर सकते हैं. इसलिए 'अहंकार' कहते ही उसमें सभी कुछ आ गया, उसमें कोई खराब बात नहीं है. क्योंकि संकर्षण है.

यदूनां पतये इति भगवान् स्वामी फलं, यथा यदूनाम्. भगवान् ही सच्चे फल हैं क्योंकि वे यदुकुलके स्वामी हैं. भगवान् यदुकुलमें जन्मे इस कारण यादवकी प्रसिद्धि हुयी. यादवकुलके कारण भगवान्‌की प्रसिद्धि नहीं हुयी. इसलिए फल यदुकुल नहीं, भगवान् हैं.

मैंने कारक-हेतु और ज्ञापक-हेतु का भेद समझाया था. धुंआ आगका ज्ञापक-हेतु है और आग धुंएका कारक-हेतु है. इसी प्रकार यदुओंकी महत्ताका कारक-हेतु यदुनाथ है और यदुनाथकी महत्ताका ज्ञापक-हेतु यदुवंश है. इन हेतुओंको दुबारा समझ लें बहुतसे लोग अपने दर्शनके विरोधमें कहते हैं कि "वेद प्रमाण है क्योंकि भगवान्ने वे प्रकट किये हैं. भगवान् कैसे सिद्ध होगा, वेदके हिसाबसे" अब इन दो बातोंकी सत्यताका विचार किस प्रकार करेंगे, जबकि दोनों एक-दूसरेको ही अपने होनेका प्रमाण बता रही है! इस कारण ही हमारे यहाँ भी इस बातका प्रभेद समझाया गया है, वह यह कि वेद ज्ञापक-हेतु है जैसे धुंआ. ब्रह्म कारक-हेतु है जैसे आग. इसलिए वह एक-दूसरे पर निर्भर नहीं है. उत्पन्न करता है ब्रह्म और उसको जाना जा सकता है वेदसे. जैसे आगको जाना जाता है धुंएसे और धुंएको उत्पन्न करती है आग. एक ज्ञापक-हेतु है और दूसरा कारक-हेतु. अस्तित्वका हेतु और ज्ञानका हेतु. आग धुंआकी अस्तित्वका हेतु है और धुंआ आगके ज्ञानका हेतु है. यही बात आंख और दृश्य में हैं. कोई यहां है या नहीं यह आंखसे ज्ञापक-हेतुसे पता चलता है और कोई जो खड़ा है वह आंखमें उसके प्रतिबिम्बित होनेके कारण कारक-हेतु बनता है. इसी कारण यहाँ कह रहे हैं कि भगवान् यदुकुलमें पैदा हुए तो यदुओंकी महत्ता भगवान्का ज्ञापक-हेतु है और यदुओंकी महत्ताके कारक-हेतु भगवान्का यदुकुलमें प्रकट होना. इसे अंग्रेज़ीमें क्रमशः 'Ratio-essendai Ratio-cognisendai' कहते हैं.

(प्रश्नोत्तर)

प्रश्न : ***

उत्तर : अब भजनकी बातको समझनेके लिए पहले हमको यह समझना पड़ेगा कि हम भजनका अर्थ क्या समझते हैं. 'भजन' शब्दकी इट्मोलॉजी यदि देखें तो जैसा मैंने पहले बताया कि भक्त भगवान् और भजन, यह तीनों फॅक्टर् एक-दूसरेके कॉम्प्लीमेन्ट्री है. यदि भक्त

न हो तो भगवान् नहीं हो सकता और भगवान् है तो भक्तका होना आवश्यक है. भगवान् और भक्त के बीच भजनात्मक सम्बन्ध यदि न हो तो दोनोंका होना ही निरर्थक है. कई बार दर्शनकी दृष्टिसे यह समस्या खड़ी हो जाती है कि ऑन्टोलॉजिकली हम किसकी प्रायोरिटी मानते हैं? 'ऑन्टोलॉजी' = ऐसा तत्त्व जो कि किसी पर निर्भर नहीं है चाहे आप उसे समझ रहे हो अथवा नहीं समझ रहे हो. The truth as it is 'ontology'. कई बार ऐसा होता है जो वस्तु ऑन्टोलॉजिकी कॅटेगिरीमें आती है, उनके बारेमें कुछ ऐसी धारणा हमारी बन जाती है कि वह Apriori है और Thing as we undestand or the thing as we want to interact with, is also a type of matter. उदाहरणके लिए जैसे एक पहाड़ है. कोई उसपर चढ़ो अथवा न चढ़ो पर पहाड़की एक ऊँचाई होती है, उसका कोई कॅरेक्टर होता है. पर यदि पहाड़को चढ़ना हो तो प्रत्येक प्राणीके लिए उसकी अलग-अलग व्यवस्था है. जैसे छोटे जानवर पहाड़पर सीधी चढ़ाई कर सकते हैं. बड़े जानवर सीधे नहीं चढ़ सकते पर गोल घूम कर चढ़ सकते हैं. जिसकी कॉपी हम पहाड़ोंपर घाट बना कर करते हैं. अब पहाड़ तो हमसे नहीं कह रहा कि आप इस तरह चढ़ो पर हम पहाड़को सीधे नहीं चढ़ सकते हैं जैसे कि बंदर कुत्ता चढ़ सकते हैं. जब भी हमें पहाड़ चढ़ना है तो हमें कसारा या खण्डाला जैसे घाट बनाने पड़ते हैं, घाट न बनाने हो तो सुरंग बनानी पड़ती है. हम पहाड़की चोटीपर नहीं पहुँच सकते ऐसी बात नहीं है. चींटीको तो जैसे जमीन पर चलना वैसे ही पहाड़ चढ़ना है. उसके लिए कोई भेद नहीं है. पक्षीको चढ़ना है तो सीधा उड़ कर पहुंच जाता है. पहाड़ एक ही है पर प्रत्येक जीवका उसके साथ व्यवहार वह अकेले निश्चित नहीं कर सकता और नही हम अकेले निश्चित कर सकते हैं. वह तो आपसी व्यवहारसे ही निश्चित हो सकता है.

अब 'भजन' शब्दकी बात जो हम कर रहे थे उसपर वापस आयें. 'भजन'का अर्थ है सेवन. सेवनसे ही सेवक बना है. बोलचालकी भाषामें सेवकका अर्थ नौकर होता है. आप उस अर्थको न लें. यहाँ 'सेवक'का अर्थ है सेवन करनेवाला. जैसे हम समुद्र किनारे शुद्धवायुका सेवन करने जाते हैं तो हम उस वायुके सेवनकर्ता कहलायेंगे. शुद्धवायु अपनी सेव्य हुयी. बीमारीमें औषधिका सेवन करते हैं तो हम औषधिके सेवनकर्ता हुए और औषधि हमारी सेव्य हुयी. यह 'सेवन'का सही अर्थ है, उस सेव्यके साथ किसी प्रकारका व्यवहार करके उसे अपने अंदर उतारना.

'भज् = सेवायाम्' जब ब्रह्मका अथवा परमात्माका हम सेवन करना चाह रहे हैं तो हम उनका भजन करते हें. उसका सेवन किस प्रकार होगा? सबसे पहले यदि हम यह समझ जायेंगे कि यह जगत् ब्रह्मका लिया हुआ नाम-रूप-कर्मका विस्तार है, तो पूरे जगत्में जो भी नाम रूप कर्म है और उनका सेवन जब हम कर रहे हैं तो हम ब्रह्मका ही तो भजन कर रहे हैं. यह केवल मनुष्य तक ही सीमित नहीं रह जाता, कुत्ता-बिल्ली कीड़ा-मकोड़ा सभी कर रहे हैं. मच्छर भी यदि हमारा खून पी रहा है तो वह ब्रह्मका ही सेवन कर रहा है.

पर यदि मनुष्य इतनेसे ही सन्तुष्ट हो जाय तो फिर न तो ब्रह्मके साकाररूपको भजनेकी आवश्यकता है, नही निराकाररूपको भजनेकी आवश्यकता है, न सगुणरूपको भजनेकी आवश्यकता है और नही निर्गुणरूपको भजनेकी आवश्यकता है. क्योंकि ब्रह्मने ही सारे नाम रूप कर्म लिए हैं. इस कारण जिसका भी हम सेवन कर रहे हैं वह ब्रह्मका भजन ही तो है. उससे अधिक करनेकी आवश्यकता क्या है! उसकी आवश्यकता तभी पड़ती है कि जब हम केवल इतनेसे ही सन्तुष्ट न होते हों. उसको सेवन करनेकी हमारी भूख

शान्त नहीं होती. हमारी बुद्धि भावनाएं इन्द्रियां उस सेवनसे सन्तुष्ट नहीं हो पाती हैं. हमें उससे कुछ अधिक चाहिये. हमें प्रत्येक दिन नयी सामग्री क्यों अच्छी लगती है क्योंकि एक ही एक चीजको खाते रहनेसे हम असन्तुष्ट रहते हैं. हमें कुछ अधिक, कुछ नया चाहिये. उसी प्रकार यदि हम उस प्रकारके सेवनसे ही सन्तुष्ट हो जायें तो फिर किसी निर्गुण सगुण साकार निराकार और यहाँ तक कि धर्म की भी हमें आवश्यकता नहीं है.

अब प्रश्न यह उठता है कि हम क्यों एक साधारण भजनकी अथवा सेवनकी प्रक्रियासे असन्तुष्ट हैं? ऐसा क्यों है कि जो हमें सहजतासे उपलब्ध है उसमें हम सन्तुष्ट नहीं है? यह जो असन्तुष्टि है वह त्रिकोणीय है. समझ क्रिया और भावना हमारे व्यक्तित्वके तीन आयाम हैं, जैसे कि स्पेस्के लम्बाई चौड़ाई और ऊँचाई. हमारी चेतनाके भी तीन आयाम है : क्रियाशील चेतना, ज्ञानरूपा चेतना और भावनात्मिका चेतना. जहाँ तक ज्ञानात्मिका चेतनाका प्रश्न है तो हम अच्छी तरह किसी भी वस्तुको देख कर समझ सकते हैं कि उसका नाम रूप और उसके कर्म क्या है. जहाँ ये तीनों प्रकट नहीं होते हैं वह भी हमें ज्ञानात्मिका चेतनासे समझमें आ जाता है, जैसे मानव. अब मानवका नाम रूप और उसके कर्म हमें समझ आते हैं पर मानवता जो कि अमूर्त कॉन्सेप्ट् है और मानवसे अलग नहीं की जा सकती. उसे भी अपनी ज्ञानात्मिका चेतनासे हम समझ सकते हैं. जबकि यह भी सत्य है कि मानवतासे हम किसी प्रकारका व्यवहार नहीं कर सकते पर फिर भी आप उसे समझ तो सकते हैं. आप किसी एक वस्तुको समझ सकते हो, उसके साथ व्यवहार कर सकते हो जैसे कि यह कुर्सी आदि. आप एकत्वको समझ तो सकते हो पर उसके साथ व्यवहार नहीं कर सकते हो. आप सुन्दर व्यक्ति या सुन्दर वस्तु के साथ व्यवहार कर सकते हो पर सौन्दर्यके साथ नहीं. अमूर्त धारणाके साथ व्यवहार

नहीं किया जा सकता. वह बुद्धिके द्वारा समझा तो जा सकता है पर उसके साथ व्यवहार नहीं किया जा सकता. मेरी भावनाएं सन्तुष्ट नहीं हो पाती क्योंकि हम सौन्दर्यके साथ, मानवताके साथ, एकत्वके साथ, व्यवहार नहीं कर पाते. मुझे किसी सुन्दर व्यक्ति अथवा अच्छे मानव के साथ ही व्यवहार करना पड़ेगा, यह हमारी सीमा है. यह उन अमूर्त धारणाओंकी सीमा नहीं है, जैसे कि पहाड़की. यदि मुझे पहाड़ चढ़ना है तो मैं चींटी अथवा बंदर अथवा पक्षी की तरह नहीं चढ़ पाऊँगा.

बायोलॉजीकली और अॅन्थ्रोपोलॉजीकली एक बात कही जाती है कि जब डार्विन् मानव जातिकी उत्पत्तिकी शोध कर रहा था, उससे पहले ऐसी धारणा थी कि भगवान्ने पांच हजार वर्ष पूर्व आदम और ईव बना कर मनुष्य जातिकी उत्पत्ति की. उसके तीन लड़कोंमेंसे तीन जाति पैदा हुयीं. डार्विन्ने इस बातसे इन्कार कर दिया. उसने प्राचीन हड्डियोंके ढ़ांचोंकी जब चेइन् देखी तो उसमें इवोल्युशन्की प्रक्रिया दिखलाई दी. उस कारण डारविन्में इस धारणाने जोर पकड़ा कि विकासशृंखलामें मनुष्य अवश्य ही बन्दरकी अगली कड़ी है. बन्दरकी सारी क्रियाएं, चलना कूदना रहना सबकुछ बिल्कुल मानवसे मिलता है. अब वैज्ञानिकोंने बन्दर और मानव के बीचकी कड़ीको ढूंढना प्रारंभ किया. उन्हें जर्मनीमें तीस हजार साल पुराना एक स्केलेटन् मिला, नीएंडरथाल्का. उस समय यह शोर मच गया कि बीचकी कड़ी मिल गयी है. वह मानव उस समयके हिसाबसे बहुत आधुनिक था. और आजके मानवसे उनकी बहुत समानताएं भी थी. उसे देख कर वैज्ञानिकोंको पूर्ण सन्तोष नहीं हुआ क्योंकि नीएंडरथाल्में मानवसे बंदरकी अपेक्षा बहुत समानताएं थीं. उसे बीचकी कड़ी कहना ठीक नहीं था. उन्होंने फिर खोज शुरु की गयी. कुछ डच लोग इंडोनेशिया गये. वहाँ उन्हें एक स्केलेटन् मिला, जो कि जावा मॅन्का था. उसके सिरमें बंदरके जैसी खाली जगह थी. फिर

वही शोर हुआ कि हमें बीचकी कड़ी मिल गयी है. पर आगे चल कर उसमें भी बहुत संशय उत्पन्न हो गयें. फिर वैज्ञानिक अफ्रीका गये. वहाँ उन्हें तीस लाख साल पुराना स्केलेटन् मिला, जिसको उन्होंने 'लूसी' नाम दिया. उसमें ठीक उस प्रकारके गुण थे जो कि एक बंदर और मानव के बीच होने चाहिये. पहले उनका अनुमान था कि नीएंडर्थाल् और बंदर के बीच कोई 'होमो-इरॅक्टस्'की कड़ी होनी चाहिये. 'होमो-इरॅक्टस्' मानें जो चार पैरोंपर चलना बंद करके, दो पैरोंसे चले. खड़े हो कर बहुतसे गोरिल्लेके गुण प्रकट करते हैं. इसलिए वह उससे सन्तुष्ट नहीं थे. वह किसी 'होमो-सॅपियन्'की तलाशमें थे, जैसे कि आजका मानव है. 'लूसी'में उन्हें वह गुण मिले. उसका कारण था कि वे दो पैरोंपर चलते थें और उनके शरीरपर बंदरोकी तरह बाल थें.

अब प्रश्न यह था कि उस प्रगतिका माइल्-स्टोन् क्या था? उसका उत्तर वैज्ञानिकोंने यह दिया कि वातावरणके बदलावके कारण उन्हें पेड़पर फल मिलने बंद हो गये होंगे और लूसी-ट्राइब्को पेड़के पत्ते खाने अच्छे नहीं लगते होंगे. इस कारण वे जमीनपर आ गयें. अब जमीनपर उन्हें अपनेसे बड़े जानवरोंका भय था. इसलिए उन्होंने पहले अपने चारों ओर देखना सीखा कि कोई खतरा तो नहीं है! बस, वही पहली मानवीकरणकी प्रक्रिया थी. सीधे खड़े हो कर, चारों ओर देख कर, अपने भोजनकी तलाश करना. सीधे खड़े होनेपर उनके हाथ बिल्कुल खाली हो गये, तो उन्होंने उन हाथोंको हथियारकी तरह प्रयोग करना शुरु कर दिया. ऐसा कहा जाता है कि एक लूसी-ट्राइब्के बच्चेको एक गिद्धने उठा लिया और उस बच्चेकी माँने अनायास अपने खाली हाथका प्रयोग करके एक पत्थर उस गिद्धको मारा. उससे वह मर गया और उसने उस बच्चेको छोड़ दिया. वहाँसे लूसी-ट्राइब्को यह विचार आया कि हमें हाथोंसे पत्थरको कैसे हथियारके रूपमें प्रयोग करना है! बस, वहाँसे पूरी

प्रगति शुरु हो गयी.

कारण था असन्तुष्टि. वे पेड़के पत्ते खानेमें असन्तुष्ट थें क्योंकि फल नहीं थे. उन्हें कुछ पोषक भोजन चाहिये था. उसके बाद उन्होंने माँस खाना प्रारम्भ किया. जब भी कोई शिकारी जानवर किसीको मार देता, वे उस बचे हुए भोजनको खाने पहुंच जाते. इस प्रकार मानव जातिका विकास हुआ. विकासका मूलभूत कारण असन्तुष्टि है.

अलग-अलग प्रकारसे भजन करनेका मूलभूत कारण असन्तुष्टि ही है. कोई केवल नाम ले कर ही सन्तुष्ट हो सकता है. इसका अर्थ है कि वह ब्रह्मका किसी क्रियासे भजन करना चाहता है. कोई तत्त्वको जाननेसे सन्तुष्ट हो सकता है, वह होगा केवल ज्ञानकी असन्तुष्टिके कारण. जैसे लूसी-ट्राइब्को हुआ था कि पहले उन्हें यह जाननेकी असन्तुष्टि थी कि धरतीपर चलनेमें कोई डर तो नहीं है. इस जिज्ञासावश ही उनका विकास हुआ. प्रत्येक जीव अपने वातावरणकी परिधिमें ही निर्भय है और सन्तुष्ट है. जब थोड़ी असन्तुष्टि होती है तो वह उसके विकासका कारण बनती है. निर्भयता, जीव अपने मानसिक व्यावहारिक और भावनात्मक वातावरणमें ही अनुभव करता है. हम निर्गुण निराकारको भजनेसे सन्तुष्ट नहीं होते, हम उसे नकारते भी नहीं है. ऐसी कोई मानवीय चेतना हो सकती है जो कि केवल इस ज्ञानसे ही सन्तुष्ट हो जाय.

हम ऑन्टोलॉजिकली यह भी नहीं नकारते कि निर्गुण और निराकार हो नहीं सकता. हम यह मानते है कि अक्षरब्रह्म, निर्गुण निराकार है. हम यह भी मानते हैं कि ब्रह्मके, निराकार और साकार दोनों रूप हो सकते हैं. हम ऐसा सोचनेवाले होते कौन है? गीता और उपनिषद् भी यही कह रहे हैं. अर्जुनने भी तो यह ही प्रश्न

कृष्णसे किया था. "**एवं सततयुक्ता ये भक्ताः त्वां पर्युपासते, ये चापि अक्षरम् अव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः**" (भग.गीता १२।१) "जो तुम्हें सगुण साकारमें भजता है और जो निर्गुण निराकारको भजता है, उसमेंसे तुम्हें कौनसा पसंद है? जो तुम्हें अच्छा लगता हो उसी प्रकारसे मैं तुम्हारा भजन करूँ" भगवान्‌ने ऐसी गुगलीके रूपमें उत्तर दिया है "जो निर्गुण-निराकारको भज रहा है, वह भी मुझे भज रहा है और जो मुझे भज रहा है वह मुझे अच्छा लगता है" अब इस वाक्यसे समझना क्या? "**मयि आवेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ताः उपासते, श्रद्धया परयोपेताः ते मे युक्ततमा मताः**" "**येतु अक्षरम् अनिर्देश्यम् अव्यक्तं पर्युपासते, सर्वत्रगम् अचिन्त्यं च कूटस्थम् अचलं ध्रुवम्.**" (भग.गीता १२।२-३)

समझनेकी बात ऐसी है कि क्यों भगवान् ऐसा गुगली उत्तर दे रहे हैं? उसका कारण समझो. भगवान् ऐसा नहीं मानते हैं कि उन्हें भजनेमें उनकी कोई सीमा आड़े आयेगी पर भजन करनेवालेकी सीमा है. भगवान्‌को किसी भी रूपमें सेव्य होनेमें कोई सीमा हो, ऐसा भगवान् नहीं मानते हैं. पर भगवान् ऐसा मानते हैं कि भजन करनेवालेकी अपनी सीमाएं हैं, जगजीत सिंहकी एक बहुत प्रचलित ग़ज़ल है *"पहले तो अपने दिलकी रज़ा जान जाइये फिर जो निगाहे-यार कहे मान जाइये."* तुम पहले अपने दिलको तो पूछ कि तुम्हें क्या चाहिये! उसके बाद मुझे पूछ लेना कि मुझे क्या अच्छा लगता है. मुझे तो सबकुछ अच्छा लगता है और कुछ भी अच्छा नहीं लगता.

देखो, यदि भगवान्‌को भजनका यदि एक प्रकार अच्छा लगे और दूसरा अच्छा नहीं लगे तो भगवान् भी सीमाओंसे बंध गये. फिर भक्त और भगवान् में भेद ही कहाँ रहा! वे किसी सीमासे बंधे नहीं हैं. भगवान् अर्जुनसे यह अपेक्षा रख रहे हैं कि वह

स्वयं आत्मचिंतन करके निश्चित करे कि वह कैसे उन्हें भजना चाहता है. जब एक बार वह निश्चय कर लेगा, तब भगवान् उसे कहेंगे कि तू जैसे मुझे भजना चाहता है, मुझे वही प्रकार भजनका अच्छा लगता है. मुझको बालककी तरह भजना पसंद है, तो मुझे भी तेरे द्वारा बालस्वरूपमें सेव्य होना अच्छा लगता है. तुझे यदि मेरा अपने पिताकी तरह भजना पसंद है तो मैं भी तेरा पिता ही बन जाना चाहता हूँ. भगवान् तो यहाँ-तक कहते हैं कि तू मुझे 'जारभाव'से भजना चाहता है तो मुझे वह भी पसंद है और मैं तुझे वैसे ही अनुभाव दूँगा. तू मुझसे घृणा करना चाहता है तो वह भी कर, पर कर गंभीरतासे. मैं उसका भी अनुभाव प्रदान करूँगा. भगवान्के पहलुसे तो सारे आयाम खुले हैं. समस्या यह नहीं है कि भगवान्को किस प्रकारका भजन पसंद है, समस्या है कि हम किस प्रकार उसका भजन करना चाहते हैं! हम उसके सारे रूपोंका भजन नहीं कर सकते. उसके सारे नामोंका या सारे कर्मोंका भजन नहीं कर सकते. क्योंकि हमारी समझकी भावनाओंकी क्रियाओंकी कुछ सीमाएं हैं. इसलिए हम उसका कोई एक प्रकारसे ही भजन कर सकते हैं. इस कारण हम इस बातसे इन्कार नहीं करते कि वह निर्गुण निराकार नहीं हो सकता और उसका भजन नहीं किया जा सकता. यह प्रश्न पुष्टिमार्गमें तो हो ही नहीं सकता. प्रश्न तो यहाँ यह है कि अपने व्यवहार समझ और भावनाओं को टटोल कर देखो कि आप उसको किस रूपमें भज सकते हो. पुष्टिमार्ग आपको यह सर्टीफिकेट्र देनेको तैयार है कि "हाँ आप उसे उस रूपमें भज सकते हो."

अब प्रश्न यह उठता है कि फिर निर्गुण-निराकारका भजन पुष्टिमार्गमें किस कारण नहीं किया जाता? पुष्टिमार्गमें ऐसी धारणा क्यों है कि सगुण-साकारका ही भजन करना चाहिये?

कृष्ण सगुण-साकार है और ब्रह्म निर्गुण-निराकार है. साकारके साथ एक समस्या है कि वह किसी सीमित क्षेत्रमें, सीमित कालमें, सीमित स्थानपर, एक सीमित रूपमें ही हो सकता है. वह सीमित रूप किसी निराकारसे छोटा ही होगा. क्या यह समझा जाय कि साकार एक जरिया है निराकार तक पहुँचनेका? यदि ऐसा है तो यह तो शांकर मत हो गया. श्रीवल्लभाचार्य अपने दर्शनको इस तरह शांकरसे पृथक करते हैं कि आपको निराकारसे साकार तक पहुंचना है. इसी कारण श्रीवल्लभाचार्य कहते हैं कि यदि तुम ब्रह्मको जाने बिना कृष्णको भज रहे हो, तो तुम कृष्णको नहीं अपितु किसी पत्थर अथवा धातु को भज रहे हो. इसी कारण वे आपका ब्रह्मसम्बन्ध कराते हैं, नकि कृष्णसम्बन्ध. दीक्षा ब्रह्मसम्बन्धकी है, कृष्णसम्बन्धकी नहीं. सेवाका अधिकार भी ब्रह्मसम्बन्धसे ही मिलता है. यहाँ ब्रह्मसे कृष्ण तक पहुँचना है, कृष्णसे ब्रह्म तक नहीं. आप इसे ठीकसे समझ लें कि ब्रह्म आपके समक्ष एक डेटाके रूपमें प्रस्तुत है. प्रत्येक वस्तुमें ब्रह्म उपलब्ध है पर इस बातसे यदि सन्तुष्ट हो जाते हों तो या तो ज्ञानी हैं अथवा पशु है. यदि इस बातसे असन्तुष्टि है, तो उसी कारणसे हम कृष्णको खोज रहे हैं.

मनुष्यके अलावा और कोई भी जानवर जब-तक कोई इसे मार न रहा हो अथवा वह भूखा हो, तब-तक वह अपने प्राकृतिक वातावरणसे असन्तुष्ट नहीं है. केवल मनुष्य ही असन्तुष्ट है. नीटत्झेने बहुत सुन्दर कहा है कि पेड़पर बैठे बंदरोंको यह चिन्ता होती होगी कि मनुष्य इतना उदास क्यों है! कोई दूसरा जानवर कभी भी उदास नहीं होता. यह तो केवल मनुष्यका एकाधिकार है. मनुष्यके साथ ही यह समस्या है कि वह स्वर्गमें नरकमें पृथ्वीपर सब जगह असन्तुष्ट ही रहता है. अपनी प्रेमिकासे भी विवाह हो जाय तो फिर उससे भी असन्तुष्ट हो जाता है. अंबानी इतना भव्य मकान

बना कर भी असन्तुष्ट होगा ही. राजकुमारी डायना बकिंग्हाम् पॅलेस्से असन्तुष्ट थी. हम निर्गुण-निराकार ब्रह्मको खोजते हैं पर यह नहीं खोजते कि हम क्यों असन्तुष्ट है. यह मूल खोजका विषय होना चाहिये.

जितने भी ज्ञानी हैं वे अपने ज्ञानसे असन्तुष्ट रहते हैं. उनको यदि कोई अज्ञानका काम करनेको कहो तो वे सन्तुष्ट हो जाते हैं. जितने अज्ञानी हैं वे अज्ञानसे असन्तुष्ट रहते हैं, उन्हें ज्ञानमें अधिक आनन्द आता है. जितने भी पुलिसकर्मी है, पुलिसके रोल्से असन्तुष्ट रहते हैं. उन्हें क्राइम् करनेमें आनन्द मिलता है. जितने भी क्रिमिनल् हैं वे कानून बनानेवाले राजनेता बनना चाहते हैं. हर व्यक्ति असन्तुष्ट है.

मेरा एक जानकार मुझे बार-बार कहता कि "वजन घटाओ." मैंने एक दिन उससे पूछा कि "ठीक है, कोई उपाय बताओ" वह बोला "आप कुछ भी खाओ उसे मुंहमें कमसे कम पंद्रह मिनिट चबाओ. आप उस खानेसे ऊब जाओगे और कम खाओगे" मैं बोला "अरे! एक ही तो चीज अच्छी लगती है. आप वह भी बंद करा दोगे तो क्या मैं समंदरमें डूब जाऊँ?" वह जो मुझे हमेशा कम वजन करनेकी सलाह देता था, कई वर्ष पहले वह तो चला गया और मैं अभी तक स्वस्थ बैठा हूँ. मनुष्यकी असन्तुष्टिकी समस्या बहुत गम्भीर है. हम दुनियाभरकी समस्याओंका समाधान ढूंढ़ रहे हैं पर यह नहीं खोज पा रहे कि हम असन्तुष्ट क्यों है! ज्ञानमार्गी हमेशा यह सोचते हैं कि मैं यदि सत्यको जान लूं तो सन्तुष्ट हो जाऊँगा पर श्रीशंकराचार्य कहते हैं "**सत्यपि भेदापगमे नाथ! तव अहं न मामकीनः त्वं सामुद्रो हि तरंगः क्वचन समुद्रो तारंग इति**"-"**गोविन्दं भज मूढमते**" (श्रीशं.कृ.विष्णुषट्पदी-३),(श्रीशं.कृ.भज गोविन्दं १) वह अपनी सत्यकी समझके आधारपर

सन्तुष्ट होना चाहते हैं पर हो नहीं पाते. कर्ममार्गी जब कुछ करते हैं तो सन्तुष्ट होना चाहते हैं. यदि आप उनको कर्म करनेसे रोकोगे तो वे असन्तुष्ट जो जायेंगे कर्म द्वारा किसी देवता या गुरु समाज आदिको प्रसन्न करना चाहते रहते हैं. सी भी बालकको यदि आप कुछ पढ़ाओ अथवा भजनेको कहो और उसके साथ कुछ क्रिया जोड़ दो तो वह उसका आनन्द ले पाते हैं. पर कुछ भी उन्हें बैठ कर करनेको कहें तो वे असन्तुष्ट हो जाते हैं. क्योंकि बचपनेमें शरीरके अंग क्रियाशील होना चाहते हैं. इसी प्रकार बूढ़े लोगोंको कहें कि आप एक हजार बार 'राम-राम' लिखो तो वे परेशान हो जायेंगे क्योंकि वे क्रिया करनेसे परेशान हो जाते हैं. हाँ, दिमागी तौरपर अपनेको कहो तो असानीसे करना प्रारम्भ कर देंगे क्योंकि उनका शरीर थक चुका है. दिमाग भी थका होनेके कारण केवल जप ही कर पाते हैं. कोई दिमागी व्यायाम नहीं कर सकते. किसी-किसीको क्रियाकी परवाह नहीं होती और समझका भी आग्रह नहीं होता, पर उन्हें अपनी भावनाओंको सन्तुष्ट करनेकी चाह रहती है. जब उनकी भावनाएं सन्तुष्ट होती है तो वे भी सन्तुष्ट हो जाते हैं.

इतने सारे लोग फिल्म देखने जाते हैं. चाहे बॉलीवुडकी फिल्ममें कोई भी नया थीम नहीं आता तो भी हमारी भावनाओंकी सन्तुष्टिके लिए हम वहाँ बार-बार जाते हैं. जब अपनी कामनाओंको हम स्वयं सन्तुष्ट नहीं कर पाते तो हम उन्हें बाहर ढूँढ़ते हैं. और उसका एक जरिया फिल्म है. हीरोको कई युद्ध करनेके बाद जब हिरोईन् मिल जाती है तो हम प्रसन्न हो जाते हैं. उसमें हमें कुछ नहीं मिलता फिर भी. क्योंकि वहाँ हमारी भावनाएं सन्तुष्ट हो पा रही हैं. अपने सम्बन्धोंसे जब हम असन्तुष्ट रहते हैं तो फिल्ममें ऐसा देख कर हम सन्तुष्ट हो जाते हैं. यह सारी मानवकी समस्याएं हैं, उन्हें सन्तुष्टि चाहिये.

आपकी जानकारीके लिए, शास्त्रोंने यह पद्धति बनायी है कि चाहे कर्ममार्ग हो ज्ञानमार्ग हो अथवा भक्तिमार्ग हो; कोई भी मार्ग हो, शास्त्रोंने कभी भी ऐसा पक्षपातपूर्ण रवैया नहीं रखा है. जितने भी नये प्रवचनकार हैं वे शास्त्रका अनर्थ करते हैं. शास्त्रको यदि आप देखें, तो ज्ञानमार्गकी कोई भी साधना ऐसी नहीं कि जिसमें कुछ अंशोंमें क्रियाशीलता न बतलाई गयी हो और कुछ अंशोंमें भावनात्मक पहलु न रखे गये हों. शास्त्रके द्वारा वर्णित कोई भी कर्ममार्ग ऐसा नहीं है कि जिसमें थोड़ी समझदारीकी अपेक्षा न हो और थोड़े अंशोंमें भावनात्मक पहलु न रखे गये हों. इसी प्रकार शास्त्रद्वारा वर्णित भक्तिका कोई भी ऐसा प्रकार नहीं है कि जिसमें थोड़े अंशोंमें ज्ञान न हो और कुछ क्रियाशीलताकी आवश्यकता न हो. इन तीनों वस्तुओंका समन्वय करके उसे ब्रह्मकी दिशामें मोड़ना यह शास्त्रके तीन मार्गोंमें प्रणीत उपाय है. किसी एक मार्गको जड़तासे पकड़ कर चलना, ऐसा कमसे कम अपने शास्त्रों द्वारा वर्णित प्रकार नहीं है. जिन लोगोंको शास्त्रकी अपेक्षा, अपनी प्रसिद्धिकीके लिए थी; दूसरे शब्दोमें कहें तो वह शास्त्रसे भी असन्तुष्ट थे, वही ऐसा कहते थे कि आपको तो केवल ज्ञानकी ही आवश्यकता है. कर्म भक्ति सब बेकार हैं. भक्तिमार्गी कहते हैं कि "नहीं नहीं, कर्म और ज्ञान के मार्गोंमें क्या रखा है! हमको तो भक्ति ही करनी है" कर्ममार्गीको पकड़ेंगे तो कहेंगे "ज्ञान या भक्ति से तुझे क्या लेना-देना! बस, तू तो कर्म करता चल" शास्त्रने कभी भी यह दृष्टिकोण नहीं रखा. यह तो केवल प्रसिद्धिकी चाह रखनेवालोंका मनगढ़ंत मार्ग है. शास्त्रके अनुसार किसी भी साधनामें तीनों मार्गोंका नहीं प्रत्युत क्रिया बुद्धि और भावना तीनोंका विनियोग बतानेमें आया है. क्योंकि मानव-चेतनाके यह तीनों ही पहलु है. और तीनों पहलुओंकी सन्तुष्टि आवश्यक है. तभी वह साधना शास्त्रप्रमाणित होगी. केवल भावनात्मक साधना अथवा ज्ञानात्मक साधना अथवा कर्मात्मक साधना, कभी सच्ची साधना हो नहीं सकती. सब झगड़े अपनी सीमाओंके

कारण होते हैं. क्योंकि हर व्यक्तिकी एक सीमा होती है. वह एकको पकड़ सकता है, अधिकसे अधिक दोको. पर तीनको पकड़नेमें बहुत पुरुषार्थ करना पड़ता है जबकि वह सहज है.

हजारीप्रसाद द्विवेदी मेरे बहुत पसंदीदा लेखक हैं. उन्होंने बहुत अच्छी बात कही है कि ‘‘सीधी रेखा खींचना बहुत टेढ़ी बात है. टेढ़ी-मेढ़ी लाईन् बहुत सरल है’’ इसी प्रकार जो अपनी चेतनाकी सीधी रेखा है जहाँ तीनों फॅकल्टी आपसमें एक-दूसरेपर प्रभाव डाल रही हैं और सन्तुष्ट हो जायें पर व्यक्ति असन्तुष्ट ही रहता है. और सन्तुष्टिके लिए कुछ नया ढूंढ़नेका प्रयास करता है. फिर जो उसे जंच जाता है उसे पकड़ लेता है. आप देखें कि मनुष्यके अलावा कोई भी जानवरको एक ही प्रकारके भोजनको कई वर्षों तक खानेमें कोई समस्या नहीं है. अपने घरमें चार आईटम् भी रोज़ ब रोज़ बनें तो भी अपन् असन्तुष्ट रहते हैं. असन्तुष्टि हमारे लिए भगवान्के जैसी है. हम असन्तुष्टिकी पूजा भगवान्से अधिक करते हैं, यह एक समस्या है.

हाँ, व्यक्तिके विकासके लिए असन्तुष्टि आवश्यक है पर उसके दूसरे पहलुको भी हमें नहीं भूलना चाहिये. यह असन्तुष्टि ही सदैव हमें कुछ नया करनेके लिए प्रेरित करती रहती है. इसी कारण हमने भगवान्के कई रूप गढ़े हैं, निराकार साकार निर्गुण सगुण. निरन्तर परीक्षणोंके बाद हम कोई फॉर्मूला निकालते हैं. कुछ समय बाद उससे भी असन्तुष्ट हो जाते हैं. फिर एक नयी खोजके लिए चल पड़ते हैं. संस्कृतमें इस बातको बतानेके लिए एक बहुत सुंदर श्लोक है ‘‘नूत्नं नूत्नं विचिन्वते.’’ हर समय कुछ नयेकी तलाशमें घूमते रहना, यह एक सर्वव्यापक मन्त्र है. चाहे वह साईंस् हो, धर्म हो, आपसी रिश्ते हों, आपसी व्यवहार हो, व्यापार हो, स्थान हो कुछ भी हो. हम कुछ नयेकी तलाशमें निरन्तर भटकते रहते

हैं, कारण है कि हम असन्तुष्ट हैं.

आपने जिजीविषाके बारेमें पूछा तो वह तो हर प्राणीमें है. हर प्राणी अपनेको सुरक्षित करना चाहता है. प्राणी ही क्यों हर अणु भी अपने आपको सुरक्षित रखना चाहता है. अपने जीवित रहनेकी कामना तो प्राणी ही नहीं, अणुकी भी है. जो वस्तु जैसी है उस स्थितिमें रहनेकी इच्छा तो मूलकारण है पर असन्तुष्टि एक अनूठी कथा है, मानव प्रजातिकी जिसका कोई जोड़ नहीं है.

(श्लोक-९, मूलश्लोक-३७)

(विदा मांगनेकी प्रार्थना)

अवतरणिका :

एवं नमस्कृत्य गमनार्थं प्रार्थयेते :

इस प्रकार काया वाणी और मन से नमस्कार करनेके पश्चात् अब वहांसे विदा लेनेकी प्रार्थना करते हैं. वे अपने जानेकी इच्छा प्रकट कर रहे हैं. क्योंकि सर्वप्रथम तो उन्हें यह नहीं पता चल रहा है कि वे इस लीलाके अधिकारी हैं कि नहीं. दूसरे उन्हें यह असमंजस लगता है कि प्रभु आप अपनी इच्छासे ही बंधे हैं या किसी लाचारीके कारण! उनके लाचार होनेकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती क्योंकि आप तो 'भूमा' मानें सर्वव्यापी हो. जिससे बंधे हो उसके भीतर भी हो और बाहर भी तो आप हो तो बंध कैसे सकते हो! फिर भी बंधे हुए दिखायी तो दे रहे हो. यदि आप स्वयं ही बंधना चाह रहे हो तो आपको छुड़ानेवाले हम कौन? इसलिए आप अनुज्ञा दो तो हम अपने घर लौट जायें. यह मूड उनका भक्तिरूप है.

...**गमनार्थं प्रार्थयेते.** जैसे मैंने आपको पहले बताया कि 'प्रार्थना'

शब्दके दो अर्थ होते हैं : पहला स्तुति और दूसरा इच्छा. 'प्रार्थना' शब्द अर्थनासे बना है, जिसका मतलब है 'इच्छा'. अंग्रेजीमें भी जब हम यह पूछते हैं कि "what does it mean?" इसका मतलब होता है "आपके इस शब्द अथवा वाक्य के बोलनेके पीछे आपकी इच्छा क्या है?". हर मीनिंग्में अपनी कोई इच्छा प्रकट होती है और जो इच्छा है वह शब्दका मीनिंग् बन कर प्रकट होता है. कोई भी शब्दका मीनिंग् वक्ताकी इच्छा अथवा अभिप्राय पर निर्भर करता है.

शब्दोंके कई प्रकार होते हैं. एक प्रकार, onomatopoeia है. जैसे मेंढक जब बोलता है तो दुर्र-दुर्रकी आवाज़ आती है. संस्कृतमें इसीलिए इसका नाम है 'दुर्दुर'. हिन्दीमें उसी आवाज़को 'टर्र-टर्र' कहा जाता है. अब यह तो व्यक्तिपर निर्भर करता है कि उसे वह आवाज़ कैसी सुनाई देती है. जो आवाज़ बचपनमें हमें जैसी सुनायी दे रही थी उस आवाज़के स्रोतको onomatopoeiaसे उसी तरहसे पुकारते-पेहचानते हैं.

जैसे रेलको छुक-छुकगाड़ी कहते हैं, कुत्तेको भों-भों कहते हैं. अब आवश्यक नहीं है कि वह छुक-छुक अथवा भों-भों ही बोल रहे हों. पर जैसा हमको सुनायी देता हो हम उसे उसी तरह पहचानते हैं. कौआको हम crow कहते हैं. वह onomatopoeiaहोनेसे ही क्योंकि उसकी बोली हमें 'क्रोऽऽ-क्रोऽऽ'की तरह सुनायी देती है. इसलिए बहुतसे शब्द 'onomatopoeia' कहलाते हैं. यह शब्दका मूल उच्चारण है.

पर उसके बाद हम प्रत्येक वस्तुके लिए शब्दोंकी संरचना करते हैं. यह संरचना अधिकतर onomatopoeia से मिलती नहीं है. जैसे टेबलको हम क्यों टेबल बुलाते हैं उसका कारण समझ नहीं आता. वहां अपना विचार अथवा प्रयोजन काम करता है. जैसे रमेशका

नाम रमेश क्यों है क्योंकि यह नाम उसके माता-पिताने दिया है. उन्होंने निश्चय किया कि हमें अपने पुत्रको 'रमेश' नामसे बुलाना है. उस नामका अर्थ वह बालक हो जाता है. हम जो समझते हैं कि नाम मतलब वह व्यक्ति, पर ऐसा नहीं है. उसका अर्थ है कि 'वह व्यक्ति कि जिसकी विवक्षा=बुलानेकी इच्छावश ध्वनि निकालनेके अभिप्रायवश यह उसका नाम बन गया' मैं 'रमेश' कहूंगा तो मेरे कहनेका अर्थ वह अभिप्रेत वह व्यक्ति होगा. जब भी मैं 'टेबल्' कहूंगा तो मैं उस वस्तुके बारेमें कह रहा हूं. शब्दके अर्थमें हमारे अभिप्रायका बहुत बड़ा रोल है और जो भी नाम onomatopoeiac natureके हैं उनमें भी अन्तमें तो हमारा अभिप्राय ही छुपा हुआ है. इन सारी सम्भावनाओंमें एक बात जो समान है वह अर्थकी है, अर्थात् हमारे अभिप्रायकी है.

'प्रार्थना' शब्दमें अर्थ यही है. 'प्र' = उस अर्थनापर भार डालनेके लिए जोड़ा गया है. व्यक्तिके कहे हुए शब्दके पीछे अनेक अभिप्राय होते हैं. जब हम अभिप्रायको जताना चाहते हैं, वह 'प्रार्थना' कहलाती है. इससे हम समझ सकते हैं कि हर प्रार्थनामें कोई उसका अभिप्राय काम कर रहा है.

परन्तु बहुत बार प्रार्थनामें वक्ताका अभिप्राय, कुछ माँगनेका नहीं होता, उसकी प्रशंसा करनेका होता है. इस अर्थमें 'प्रार्थना'का अर्थ स्तुति हो जाता है. आप किसी चाहनासे प्रार्थना नहीं कर रहे हैं अपितु उसकी स्तुति कर रहे हैं. भाषा एक खेल है, उसे कितनी प्रकारसे हम खेलते हैं! उसका सौंदर्य ऐसा भी देखनेमें आता है कि ऊपरसे चाहे हम कुछ माँग नहीं रहे हैं; केवल स्तुति कर रहे हैं, पर उसके अंदरका भाव माँगनेका ही होता है. बहुत बार ऐसा भी होता है कि हम केवल माँग ही रहे होते हैं पर उसका मूड् स्तुतिका ही होता है. इस तरह अपनी इच्छाओंके कई प्रकार

होते हैं.

एक यूरोपियन् स्कॉलर् थी. वह एक बार अपने पतिके साथ ताजमहल देखने भारत आयी. देखनेके बाद उसने अपने पतिसे कहा "यदि तुम मेरे लिए ऐसा भव्य महल बनानेका वादा करो तो मैं अभी मरनेको तैयार हूं". अब यह प्रार्थना है, प्रशंसा है या कामना है? यह तो प्रशंसा ही है ताजमहलकी. भाषा मरनेकी कामनाकी हो सकती है पर भाव उसमें प्रशंसाका है. इस तरह हम इस भाषाके खेलसे विभिन्न प्रकारसे खेलते हैं.

पहले नलकूबर-मणिग्रीवने नमन किया अब प्रार्थना कर रहे हैं क्योंकि भगवान्‌को ऐसा नहीं लगना चाहिये कि ये कुछ माँग रहे हैं. किसी अधिकारके तहत अब उसी प्रार्थनाके मूड्में यह कुछ भगवान्‌से माँग रहे हैं. वे क्या माँग रहे हैं वह इस श्लोकमें देखेंगे.

श्लोक :

अनुजानीहि नौ भूमन्! तव अनुचरकिंकरौ।।
दर्शनं नौ भगवतः ऋषेर् आसीद् अनुग्रहात्।।३७।।

अनुवाद :

हे भूमन्! आप हमें अनुज्ञा प्रदान करें क्योंकि हम तो आपके अनुचरके किंकर हैं।।
वस्तुतः तो देवर्षि नारदजीके हमपर हुवे अनुग्रहके कारण हमें आपके दर्शनका लाभ मिला।।३७।।

शास्त्रमें 'ज्ञ'का अर्थ है जानना. 'संज्ञान' मानें अच्छी प्रकारका ज्ञान. पर संज्ञान हमेशा किसी नामके साथ जुड़ा होता है "आपको इस वस्तुका संज्ञान है कि नहीं?" मानें आप उस वस्तुका नाम

जानते हैं कि नहीं? इसी संज्ञानसे 'संज्ञा' शब्द बना. यदि किसी वस्तुका अनुभव आपको हो रहा है और आपको उसका नाम पता नहीं है, तो कहा जायेगा कि आपको उस वस्तुका संज्ञान नहीं है. जैसे मैं कोई बात समझाऊं फिर आपसे पूछूं कि "अब आप बताओ." आपको लग रहा है कि आपको समझ आ गया पर आप उसे समझा न पायें तो उसका अर्थ हुआ कि आपको ज्ञान तो है पर उसका संज्ञान नहीं है.

'आज्ञा'का अर्थ है कि जिससे, मुझे अच्छी तरहसे किसी बातका ज्ञान होना. किसी परिस्थितिमें हमें संशय हो जाता है कि अब आगे क्या करना चाहिये? उस समय हम किसी बड़ेकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करते हैं. उस परिस्थितिमें आज्ञाके द्वारा हमें यह ज्ञान हुआ कि हमें क्या करना चाहिये. उस समझको हम 'आज्ञा'के नामसे जानते हैं. अब आज्ञामें दो सम्भावनाएं हैं, आप उसे माननी या न माननी. भगवान्‌ने भी पूरी गीता अर्जुनको समझा कर अन्तमें कहा है कि "**विमृश्य एतद् अशेषेण यथा इच्छसि तथा कुरु**" (भग.गीता १८।६३) आज्ञा तो दी नहीं और कहा कि "तुझे जो करना हो वह कर" अर्जुनकी बड़ी विचित्र स्थिति है. वह कह रहा है कि "मुझे क्या करना चाहिये, मुझे पता नहीं चल रहा है" "**यानेव हत्वा न जिजीविषामः ते अवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः**" (भग.गीता २।६) "जिनको मारनेके बाद मुझे जीनेकी ही इच्छा न हो ऐसे-ऐसे लोग मेरे सामने लड़ने आये हैं तो मुझे लड़ना चाहिये कि नहीं, यह समझ नहीं आ रहा है" अर्जुन किंकर्तव्यविमूढ़ है और पूरी गीता समझानेके बाद कृष्ण उसे कह रहे हैं कि "मैंने तुझे बहुत कुछ समझा दिया है. अब तुझे जो करना है वह कर". जब भगवान्‌के द्वारा पूरी गीता कहनेके बाद भी अर्जुनके मुखपर असमञ्जसका भाव देखा, तब उन्हें यह कहना पड़ा "**सर्वधर्मान् परित्यज्य माम् एकं शरणं व्रज, अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि**

मा शुचः'' (भग.गीता १८।६६) यह आज्ञा है. इसके तुरंत बाद अर्जुन कह रहा है ''नष्टो मोहः स्मृतिर् लब्धा त्वत्प्रसादात् मया अच्युत! स्थितो अस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव.'' (भग.गीता १८।७३) ''अब मुझे सब समझ आ गया है. जो तू कहेगा वही मैं अब करूंगा.''

मेरे साथ भी बिल्कुल ऐसी ही परिस्थिति हो गयी थी. एक बार मेरे काकाजी रातमें कहीं गिर गये. उनके मस्तिष्कमें गहरी चोट आनेके कारण बहुत खून बह रहा था. उनके बेटेको कुछ समझ नहीं आया पर उसने उन्हें तुरंत अस्पतालमें दाखिल कर दिया. थोड़ी देर बाद वहां उनकी बुआजी आयी. उसी अस्पतालमें उनकी डिलीवरी फेल् हो गयी थी. तो आते ही उन्होंने उन्हें झाड़ लगा दी ''तुझे यही अस्पताल मिली अपने पिताके लिए?'' इस बातपर वह भी रूठ गये और घर जा कर बैठ गये कि ''अब मुझे कुछ नहीं करना'' अब बुआको तो कुछ भी निर्णय लेनेका अधिकार नहीं था. इसलिए वह भी रूठ कर घर चली गयी. दोपहर तक काकाजी बिना किसी इलाजके ऐसी स्थितिमें पड़े रहे. मुझे पता चला तो मैं दौड़ कर अस्पताल गया और वहां जा कर मेरे परिचित ब्रेइन्-स्पेशिआलिस्ट डॉक्टर् गजेन्द्रसिंहको अस्पताल आनेके लिए फोन किया. उन्होंने साफ मना कर दिया कि उस अस्पतालसे उनका सम्बन्ध नहीं है इसलिए नहीं आ पायेंगे. यदि उनसे इलाज करवाना हो तो दूसरे अस्पतालमें ले जाना पड़ेगा. मैं काकाजीके पास गया और उनसे पूछा ''काकाजी सुबहसे दोपहर हो गयी है और खून बहुत बह रहा है. यहां कोई ब्रेइन्-स्पेशिआलिस्ट डॉक्टर् नहीं है. आप आज्ञा दो तो आपको दूसरे अस्पतालमें ले जायें?'' अब मेरी समस्या यह थी कि मैं इस बारेमें निर्णय कैसे ले सकता था, जबकि उनका पुत्र ही वहांसे घर चले गये थे. पर कुछ तो करना ही था. काकाजीने एकदम भगवान् कृष्णकी ही तरह कहा ''वहां मेरा कोई सगा नहीं है और यहां मुझे कोई कांटा नहीं चुभ रहा'' अब इस बातका अर्थ क्या

लेना? मैं भी असमञ्जसमें पड़ गया कि अब क्या करना? थोड़ी देर बाद मैंने वापस डॉ.गजेन्द्रसिंहको फोन किया कि "यहांसे कोई ट्रांसफर् नहीं दे रहा है. आप कृपया यहां आ जायें." उन्होंने फिर वही बात दोहरायी और आनेसे मना कर दिया. मैं फिर काकाजीके पास गया. काकाजीने भी वही बात फिर दोहरा दी. इस बातका क्या अर्थ लेना मुझे समझ नहीं आ रहा था अर्जुनकी तरह. मैं भी बहुत परेशान था क्योंकि उनकी हालत बिगड़ती जा रही थी. आखिरमें मैं काकाजीके पास गया और बोला "काकाजी आपको मैं दूसरे अस्पतालमें ले जा रहा हूं." वह बोले "ले जाओ." मुझे तब बहुत क्रोध आया और मनमें सोचा कि यह बात आप पहले भी तो कह सकते थे. जब-तक मैं विनती कर रहा था, तब-तक ऐसा उत्तर मिल रहा था. शायद उन्हें भी लग रहा था कि कोई उन्हें आज्ञाके रूपमें बोले तो वह सही उत्तर दें.

बहुत बार ऐसा होता है कि आज्ञामें थोड़ा टेढ़ापन होता है और उसे न समझनेके कारण हमें लगता है कि क्यों आज्ञा नहीं मिल रही है और हम निर्णय नहीं ले पाते हैं. पर दूसरे अस्पताल ले जानेकी मेरी इच्छा थी और मुझे केवल उनकी स्वीकृति चाहिये थी. वह स्वीकृति 'अनुज्ञा' कहलाती है, वह आज्ञा नहीं है. अन्तर छोटा है पर बहुत बड़ा भी है.

अब समझो कि नलकूबर-मणिग्रीव आज्ञा नहीं अनुज्ञा माँग रहे हैं. अनुजानिहि "हमें ज्ञात है कि हमें जाना ही है पर उसमें आपकी अनुज्ञा चाहिये" अब आपको आज्ञा-अनुज्ञा संज्ञा का अर्थ ठीकसे समझ आ गया होगा. संस्कृतका एक और शब्द है अभिज्ञा = पहचानना. हर शब्दमें कितना स्वारस्य छुपा है यह देखा जा सकता है.

एक बहुत सूक्ष्म बात महाप्रभुजी उठा रहे हैं विवादके लिए.

वह यह है कि भगवान् यदि इतनी विचित्र स्थितिमें हों तो एक भक्तकी इच्छा उन्हें इस प्रकार छोड़ कर जानेकी कैसे हो सकती है! क्योंकि यदि कोई तकलीफमें हो तो प्रेमीको तो वहां हाजिर रहना ही चाहिये. जैसे मैं अपने काकाको नहीं छोड़ पाया. महाप्रभुजी कह रहे हैं कि यदि नलकूबर-मणिग्रीव भक्त हैं तो ऐसी स्थितिमें वे भगवान्‌को छोड़ कर जानेकी आज्ञा कैसे माँग रहे हैं? उसके उत्तरमें कहते हैं कि भगवान् यदि ऐसी विचित्र स्थितिमें हों तो यह तो पता चलना चाहिये कि उनकी क्या इच्छा है. वे अपनी इच्छासे बंधे हैं कि कोई लाचारीके कारण बंधे हैं? यह जब-तक पता ना चले और हम उस लीलामें खलल डालें तो उन्हें अच्छा लगेगा कि नहीं, यह मुद्दा तो है ही. इसीलिए वह अनुज्ञा माँग रहे हैं.

मेरे साथ भी ऐसा ही कुछ हुआ था. एक छोटी बेबी-ऑस्टिन् कारमें हम कई लोग कालोलसे महेसाणा होते हुए सिद्धपुर गये. उस समय हाइवे नहीं बने थे. बहुत तेज बारिश थी, इस कारण नदीका पानी सड़क तक आ गया था. अब छोटी गाड़ी आगे पानीमें बढ़े ही नहीं. मैंने धनेशगुरुको कहा "तुम स्टेअरिंगपर बैठो, मैं पीछेसे धक्का मारता हूं." धनेशगुरु बोला "सम्भव नहीं है आप गाड़ीको धक्का मारो और मैं गाड़ीके अंदर बैठूं". मैंने कहा "तो तुम धक्का मारो". अब इतना पतला महात्मा गांधीका अवतार कि उससे गाड़ी हिली भी नहीं. जब दोनों सम्भावनाएं नहीं रही तो मैं भी गाड़ीके अंदर आ कर बैठ गया कि चलो अब जब पानी उतरेगा तब जायेंगे. रात बारह बजे एक ट्रक आयी, उसमें बैठ कर हम छ बजे मुकामपर पहुंचे. मैंने धनेशगुरुसे कहा "तुम मेरी बात मान जाते तो हम कबके यहां पहुंच जाते." तब वह भी माना कि मैं ठीक कह रहा था. कई बार ऐसा ही होता है कि हम निर्णय नहीं कर पाते हैं कि महाराजको किस प्रकार आज्ञा

दें. ऐसे ही भगवान्‌को समझे बिना कि उनकी क्या योजना है, हम यह कहें कि "हम आपको छुड़ा दें" पर उन्होंने कुछ और ही विचार कर रखा हो तो फिर घोटाला ही होगा. और छुड़वानेकी इच्छा हो तो ऐसे छोड़ कर कैसे जा सकते हैं! यह गम्भीर समस्या है. उनको समझ नहीं आ रहा है कि यहां हो क्या रहा है! यदि भगवान्‌को हमारे यहां रहनेकी अपेक्षा होगी तो अनुज्ञा नहीं देंगे. तब हम समझ जायेंगे कि हमें यहां खड़ा रहना है. जिस बातका हमारे पास समाधान नहीं है उसका व्यर्थ प्रयास करके समाधान खोजना सही नहीं है.

इसीलिए वह भगवान्‌को कह रहे हैं कि **अनुजानीहि नौ भूमन्!** कृपया हमें अनुज्ञा दीजिये कि हम जायें. यदि आपको रोकना है तो हम रुकेंगे, अपनी समझके खोटे आधारपर नहीं पर आपकी आज्ञासे. महाप्रभुजीने इस पूरे प्रकरणमें यह समझानेका प्रयास किया है कि भगवान्‌को ऐसी स्थितिमें छोड़ कर जाना भक्तके लिए कहां-तक उचित है! उसका समाधान महाप्रभुजीने इस प्रकार खोजा है कि वे भक्त भी हैं और भगवान्‌को ऐसी विचित्र स्थितिमें छोड़ कर जा भी रहे हैं. इस कार्यमें उनका कोई अभक्तिका भाव नहीं है. पर वह ऐसा इसलिए कर रहे हैं कि उन्हें यह समझ नहीं आ रहा है कि इस परिस्थितिसे कैसे निबटा जाये.

इसी विषयको आगे बढ़ाते हुए नलकूबर-मणिग्रीव कहते हैं **अनुजानीहि नौ भूमन्! तव अनुचरकिंकरौ, दर्शनं नौ भगवत: ऋषेर् आसीद् अनुग्रहात्** अब देखो, कृष्णको यहाँ 'भूमन्' कह रहे हैं. 'भूमन्' मानें ब्रह्म. "आप हमें आज्ञा करो, अपने अनुचरके किंकरोंको" कितने सुन्दर शब्दोंका प्रयोग किया गया है. 'सेवक' शब्दके दोनों पर्याय हैं : 'अनुचर' और 'किंकर'. पर इन तीनों शब्दोंकी अर्थछाया थोड़ी अलग-अलग है. 'सेवक' वह जो सेवन करता हो मानें जो ग्रहण

करता हो. जैसे औषधि शुद्धवायु के उदाहरणसे हम समझ सकते हैं. जो सेवक है वह स्वामीका सेवन करता है. स्वामीमें रहे हुए ऐश्वर्य वीर्य ज्ञान वैराग्य आदिका वह सेवन करता है. क्योंकि वह मानता है कि जितने भी यह गुण स्वामीमें है वे मेरेमें नहीं है. उनका उपभोग करनेके लिए वह स्वामीकी सेवा करता है. जैसे राजाका नौकर राजभवनमें ही तो रहता है. राजाका सेवक न हो वह कितना भी पैसेवाला क्यों न हो, पर राजमहलमें तो नहीं रह सकता. उसी प्रकार भक्त जो भगवान्‌का सेवक बनता है वह भगवान्‌के यश श्री ज्ञान वैराग्यादि गुणोंका सेवन करता है क्योंकि वह हृदयकी गहराईसे यह सोचता है कि मेरे यश श्री ज्ञान आदि सेवनीय नहीं है. ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं हो सकता कि जिसमें यश श्री ज्ञान वैराग्यादि गुण न हों. पर जो अपने इन गुणोंसे असन्तुष्ट हो और उसे किसी औरके इन गुणोंसे सन्तुष्टि मिलती हो तो वह उस व्यक्तिका सेवन करता कहा जायगा. जब वह ऐसा करता है तब वह उसका ‘सेवक’ कहलायगा.

जैसे जो गुरुके ज्ञानका सेवन करे उसे ‘गुरुभक्त’ कहा जायगा, राष्ट्रभक्त भी वही कहा जाता है कि जो राष्ट्रके सुख-दुःख उसकी समृद्धि उसकी संस्कृतिका सेवन करे. जो ऐसा नहीं करता वह चाहे द्रोही न हो पर भक्त तो सर्वथा नहीं है. गांधीजी और रविन्द्रबाबू के बीच यही विवाद था. गांधीजी राष्ट्रभक्त थे. रविन्द्रबाबू राष्ट्रभक्त तो नहीं पर मानव-भक्त थे. उनका निरन्तर यह विवाद रहता था. रविन्द्रबाबू गांधीजीको कहते थे कि “आप अपने क्षेत्रको बहुत सीमित कर रहे हैं” जब वह भारतकी स्तुति भी करते हैं तो एक राष्ट्रके रूपमें नहीं अपितु इस रूपमें कि मुझे यह राष्ट्र इसलिए पसंद है क्योंकि यहाँ सभी जाति एक साथ रह पा रही है. गांधीजी कहते थे कि “अंग्रेजों! यहाँसे भाग जाओ.” रविन्द्रबाबू कहते थे कि “नहीं नहीं, अंग्रेज भी तो मनुष्य है.” जब गांधीजीने विदेशी वस्तुओंका

त्याग किया तो रविन्द्रबाबू उनके विरोधी हो गये. ऐसा मैं नहीं मानता कि रविन्द्रबाबू राष्ट्रद्रोही थे पर उनके मापदण्ड कुछ अलग थे. मैं ऐसा मानता हूँ कि वह एक ऐसे व्यक्ति थे जिनका एक ब्राह्मिक दृष्टिकोण था. आपको शायद मालूम न हो पर उनको सूरदासजी इतने अच्छे लगते थे कि उन्होंने बंगालीमें 'भानुदासेर पदावली' लिखी और उसमें अपनी छाप रखी 'भानुदास'. सूरदासजीका भानुदास. किसीको पता ही नहीं चला कि यह लिखी किसने है! वह पब्लिश हुयी और उसपर किसीने पी.एच.डी.की तब पता चला कि यह तो रविन्द्रबाबूकी है. उनका ऐसा ब्राह्मिक दृष्टिकोण था. गांधीजी उनसे सहमत नहीं थे पर फिर भी वह इतनी हिम्मत रखते थे और कहते थे कि "आप सही हो पर मैं राष्ट्रवादी हूँ." चर्चिल् कहता था कि "हम चले जायेंगे तो तुम पानीको भी तरस जाओगे." पर उनका कहना था कि "हम प्यासे मर जायेंगे पर तुम्हारा प्रभुत्व नहीं स्वीकारेंगे. तुम यहाँसे चले जाओ."

ज्ञान और भक्ति के बारेमें भी रविन्द्रबाबू एक बहुत सुन्दर बात कहते हैं.

> बैराग्य शाधनेर मुक्ति शे ऑमार नॉय.
> ऑशंख्य बाँधन माँझ महानन्दमॉय. लभिबॉ मुक्तिर
> श्वाद.
> एई बॉशुधार पात्र खानि भरि बारंबार.
> तोमार अमृत ढारि दिबे ऑविरतॉ.
> नाना वर्ण गंधमॉय प्रदीपेर मतॉ.
> तोमार मॉंदिर मांझ इन्द्रियेर द्वार.
> रूद्ध कॉरि जोगाशन शे नहे आमार.
> जे किछु आनंद आछे दृश्य गाँधे गाने.
> तोमार आनंद रॉबे तार माझ खाने.
> मोह मोर मुक्तिरूपे उठिबे ज्वलिया.

प्रेम मोर भक्तिरूपे रहिबे फलिया.

इस जगत्में वैराग्य ले कर जो ज्ञानी मुक्त होते हों, निर्गुण निराकारको भजनेके लिए, उन्हें वैराग्यसाधना करने दो. मुझे ऐसी मुक्ति नहीं चाहिये. मैं तो सारे सांसारिक बंधनोंमें मुक्तिका स्वाद तेरे साथ लेना चाहता हूं. दुनियाकी माटीसे बने घड़ोंमें मुझे तेरे स्वरूपानन्दके अमृतका पान करना है. दुनियाके दृश्य गन्ध और गान में जो कुछ आनन्द उपलब्ध है, उनमें तेरे आनन्दका रव खोजना है. नकि निर्गुण निराकारमें. यह जगत् तेरा मंदिर है. इसमें मैं अपनी आंख आदि इन्द्रियोंके द्वारोंको मूंद कर बैठना नहीं चाहता हूँ. जो मेरा संसारमें मोह है वह मोह न हो कर मुक्तिके रूपमें प्रज्वलित होनी चाहिये. जो मेरा विषयमें प्रेम है वही भक्तिमय बन जाना चाहिये. देखो, यह अद्भुत दृष्टिकोण है निर्गुण-निराकार और सगुण-साकारके बारेमें. रविन्द्रबाबूका व्यक्तित्व अद्भुत था. मैं तो यह कभी नहीं कहूँगा कि रविन्द्रबाबू राष्ट्रद्रोही थे. उनके पास तो हमारे राष्ट्रकी सच्ची आत्मा थी. मैं गांधीजीकी बुराई नहीं कर रहा हूँ पर शायद मेरे मनमें रविन्द्रबाबूके दर्शनके प्रति अधिक झुकाव है, गांधीजीकी अपेक्षासे.

इसमें जो मूल बात है वह यह है कि भजनका एक प्रकार सेवाका हो सकता है कि जिसमें हम स्वामीका सेवन करते हैं. भजनका एक प्रकार अनुचर भी हो सकता है. 'अनुचर' मानें जो स्वामीके पीछे-पीछे फिरता हो. इसी प्रकार सेवकका तीसरा प्रकार किंकरका है. यह एक बहुत सुन्दर शब्द है. ऐसा सेवक जो स्वामीसे सदैव आज्ञाकी अपेक्षा रखता हो वह 'किंकर' कहलाता है. जो भी मुझे निर्णय लेना है वह मैं नहीं लूंगा, तू लेगा. *किं करोमि* क्या करूँ, यह तू मुझे बता. तू जो भी आज्ञा मुझे देगा वह मैं करूंगा. ऐसा व्यक्ति 'किंकर' कहलाता है. इस प्रकार नौकरके तीन प्रकार होते हैं, सेवक अनुचर और किंकर. यहाँ नलकूबर-मणिग्रीव

कह रहे हैं कि "भगवान् हम आपके अनुचरोंके किंकर हैं. आपके अनुचर नारदने हमसे कहा था कि आप हमारा उद्धार करेंगे, हम उस अनुचरके किंकर है. अब आप आज्ञा करें कि हमें क्या करना चाहिये. भगवान्की भक्ति भी इन तीन प्रकारोंसे हो सकती है. सेवक हो कर, अनुचर हो कर और किंकर हो कर हो सकती है.

सुबोधिनी :

अनुजानीहि इति, नौ आवाम् अनुजानीहि अनुज्ञां प्रयच्छ. भूमन्! इति सम्बोधनं स्वस्य तत्र स्थातुम् अयोग्यतार्थम्. तदेव आहतुः तव अनुचरकिंकरौ इति, तव अनुचरस्य नारदस्य किंकरौ दासौ. सेवकसेवकत्वमेव उचितं ननु त्वत्सेवकत्वम् आवयोः, यतः त्वं भूमा महान्, नहि अल्पेन महतः सेवा कर्तुं शक्यते. ननु दर्शनयोग्यता यदा तदा सेवायोग्यता सिद्धैव, ततः कथम् अयोग्यौ इति चेत् तत्र आहतुः दर्शनं नौ भगवतः ऋषेः आसीद् अनुग्रहाद् इति. महाराजसेवकः स्वभृत्यं कदाचिद् महाराजस्थानं नयति न एतावता तस्य महाराजसेवायोग्यता भवति. अतः दर्शनान्यथानुपपत्त्या न सेवायोग्यता, भगवतो दर्शनम् ऋषेः अनुग्रहाद् इति ऋषेः भगवतः इति गुरुदेवतयोः ऐक्यार्थं सहनिर्देशः.

अनुजानीहि इति, नौ आवाम् अनुजानीहि अनुज्ञां प्रयच्छ. हमें अनुज्ञा दो. देखो, एक-एक शब्दमें कितना स्वारस्य है! आज्ञा भी कह सकते थे. आज्ञा नहीं माँग रहे हैं, अनुज्ञा माँग रहे हैं. इसी प्रकार, मेरी समझमें तुम्हारी समझकी स्वीकृति 'अनुज्ञा' कहलाती है.

भूमन्! इति सम्बोधनं स्वस्य तत्र स्थातुम् अयोग्यतार्थम्. 'भूमन्' = सर्वव्यापि. आप सर्वव्यापी हो, तो भी बंधे हुए दिख रहे हो. आपका यह स्वरूप हमें समझ नहीं आ रहा है. हम इसको देखनेके शायद योग्य अधिकारी भी नहीं हैं, इसलिए आप हमें जानेकी अनुज्ञा दो. इस प्रकार वे अपनी समस्या भी जता रहे हैं. विरोधाभास

भी कितना है कि जिस भगवान्‌ने उनको बन्धनमेंसे छुड़ाया, उस भगवान्‌को वे बंधे हुए छोड़ कर जाना चाहते हैं! यह एक सहज बात है कि जो उन्हें सहस्र वर्षोंके वृक्षयोनिके विकट बन्धनसे छुड़ा रहे हैं वे एक तुच्छ डोरीके बन्धनमें कैसे बंधे रह सकते हैं! यह उलझन है.

आजकल वैष्णवोंमें एक भ्रान्ति है कि महाराज दिखे नहीं कि वहीं चरणस्पर्श और भेंट, चाहे महाराज रोड़पर हों अथवा संडास जाते हों. पुराने जमानेकी एक पद्धति थी कि महाराज यदि अपने आसनपर न बैठे हों तो भेंटकी बात तो दूर रही, चरणस्पर्श भी नहीं करने चाहिये और यदि हमें सूतक है तो नमन भी करना मना था. पुराने लोग इस मामलेमें थोड़े शिष्ट होते थे. नलकूबर-मणिग्रीव उसी तरहकी शिष्टता दिखा रहे हैं भूमन्! इति सम्बोधनं स्वस्य तत्र स्थातुम् अयोग्यत्तार्थम्. 'भूमन्' इसी कारण कह रहे हैं. क्योंकि सर्वव्यापीकी महानताके आगे अपनी अयोग्यता दिखा रहे हैं.

यहाँ पैराडोक्स् देखो! इसमें आप भूमा हैं सर्वव्यापी हैं पर हम तो सर्वव्यापी नहीं है, इस कारण आप ही बताइये कि हमें कहाँ होना चाहिये. आप सब स्थानोंपर हैं. जो भी लीला कर रहे हैं वह हम देखें कि नहीं देखें, इस अधिकारका निर्णय हम नहीं कर पा रहे हैं. भूमन्‌की एक सुन्दरता और है, जैसाकि कभी अकबरने बीरबलसे पूछा था कि "तू मुझे बड़ा मानता है कि खुदाको?" बीरबलने कहा कि "आपको बड़ा मानता हूँ." अकबरने कहा "चापलूसी तो नहीं कर रहे हो न! मैं खुदासे कैसे बड़ा हो सकता हूँ?" बीरबलने कहा "जहांपनाह! चापलूसी नहीं कर रहा. खुदाके विरुद्ध कुछ बोलूँ तो वह मुझे अपनी खुदाईसे बाहर नहीं निकाल सकता. आप अपनी सल्तनत से निकाल सकते हो" भगवान्‌की भी कुछ सीमाएँ हैं. इसी प्रकार नलकूबर-मणिग्रीव कह

रहे हैं कि आप भूमन् हो. आप ही हमें बताएं कि हमें कहाँ होना चाहिये. हम तो आपके अनुचर नारदके किंकर हैं, उनकी आज्ञासे हम यहाँ जन्में हैं. वृक्षरूपमें भी जन्म लिया तो भी उन्होंने भगवान्‌को सेवा दी तोड़नेकी. भगवान्‌ने अपने अनुचरका वरदान पूरा करनेके लिए वृक्षोंकी सेवा की, उनको वृक्षसे पुनः यक्ष बनाया.

तदेव आहतुः तव अनुचरकिंकरौ इति, देखो 'तव अनुचर'. तेरे पीछे-पीछे जो विचरण करता हो वह अनुचर = नौकर. आजके जमानेके जैसे पर्सनल् सेक्रेटेरी. 'किंकर' का अर्थ भी नौकर ही है पर इनमें थोड़ा भेद है. किङ्कर अपने मनसे कुछ भी नहीं करता. मालिककी आज्ञाका पालन करता है. 'किंकर'का शाब्दिक अर्थ है 'क्या करूं! जो तू आज्ञा दे वही करना मेरे लिए उचित है.

शाहजहांके समयमें अफगानके राजाने विद्रोह किया था. शाहजहांने जयपुरके राजाको आज्ञा दी कि वह वहां जा कर उस विद्रोहको कुचल दो. जयपुरके राजा जयसिंह वहां गये और उन सबको मार कर, वहांका खजाना लूट कर ले आये. उस खजानेको विजयगढ़के किलेमें रख दिया. उसके बाद उन्होंने एक संविधान बनाया कि कोई भी मेरा उत्तराधिकारी इस खजानेको देख नहीं सकता. उस खजानेके लिए उसने एक चौकीदार भी नियुक्त किया. यह तीनसौ वर्ष पूर्वकी कथा है. इमरजेंसीमें इंदिरागांधी उसे ले गयी. तब-तक वह खजाना वहीं पर था. उससे पहले वहांके राजा यदि आज्ञा भी करें तो खजांची कहते थे ''आपको उसमेंसे जो चाहिये वह ला कर दे सकते हैं पर आपको देखनेकी अनुमति नहीं है. जो जयसिंहजी जीत कर लाये है उसका पूरा लिखान यहां है. वह आप देख सकते हो पर खजानेको नहीं''. एक बार एक तत्कालीन राजाने खजांचीकी गरदनपर तलवार रख दी. खजांची गरदन कटानेको तैयार हो गया पर उसने खजाना नहीं देखने दिया. उस हद तकका अनुचरण.

इस तरह अनुचरका एक अलग रोल् है और किंकरका एक अलग रोल् है. **नलकूबर-मणिग्रीव** कह रहे हैं कि "आपके अनुचर नारदजी हैं और हम उनके किंकर हैं." अपना सम्बन्ध किस प्रकार बता रहे हैं यह देखने लायक बात है.

तव अनुचरस्य नारदस्य किंकरौ दासौ. नारदजी भगवान्‌के पीछे-पीछे चलते हैं और वे उनकी आज्ञाका अनुसरण करते हैं. यह एक अनूठा सम्बन्ध है. **सेवकसेवकत्वमेव उचितं नतु त्वत्सेवकत्वम् आवयोः, यतः त्वं भूमा** महान्, आप भूमा हो, महान् हो और हम आपके सेवकके सेवक हैं. हम आपके सीधे अनुचर होनेके लायक ही नहीं हैं इस कारण हमें लगता है कि हमें यहां नहीं ठहरना चाहिये. इसलिए हमें अनुमति दीजिये, पर यदि आप आज्ञा देंगे तो हम रुक जायेंगे. यह किसी प्रकारकी इच्छा अथवा माँग नहीं है अपितु एक प्रकारसे वे भगवान्‌की स्तुति ही कर रहे हैं.

नहि अल्पेन महतः सेवा कर्तुं शक्यते. जो मनुष्य क्षुद्र हो वह महान्‌की सेवा नहीं कर सकता. कोई छोटा मनुष्य महानकी सेवा कैसे कर सकता है! एक बात ठीकसे समझो कि आप किसी भी शिवलिंगको अभिषेक करा सकते हो पर क्या कैलाशको करा सकोगे? मूर्तिको आलिंगन कर पाओगे पर भूमाको कैसे आलिंगन करोगे! मान लो कि किसी दिन तुम्हें इच्छा हो जाय भगवान्‌को आलिंगन करनेकी, तब क्या करोगे? भगवान्‌को इसमें कोई समस्या अथवा शर्मिंदगी नहीं है, आपको होगी.

भोपाल, राजा भोजकी नगरी है. वहाँ एक बहुत बड़ा शिवलिंग है. यदि तीन-चार आदमी भी घेरा बनाएँ तो भी उसको घेरेमें नहीं ले सकते. उसका सौंदर्य ऐलोरासे कम नहीं है. ऐलोराकी सुन्दरता यह है कि जिस पत्थरका शिवलिंग है, उसी पत्थरका नन्दी है,

उसी पत्थरका फर्श है, उसी पत्थरका तोरण है, उसी एक पत्थरमें शिवकी सम्पूर्ण लीला है. ब्रह्मकी लीला समझनी हो तो ऐलोराको कभी देखने जाना अवश्य जाना चाहिये! एक ही पत्थरके अलग-अलग नाम, अलग-अलग रूप, अलग-अलग क्रिया, प्रकट हो रही है. जिसपर चल रहे हैं वह भी वही है. जिसे पूज रहे हैं वह भी वही पत्थर है. द्वार भी उसी पत्थरका है. शिवलिंगकी पूजाके लिए शिवजीके पत्थरसे बने द्वारसे आप प्रवेश कर सकते हैं. **''सर्वं खलु इदं ब्रह्म''**. दुर्भाग्यसे भोपालका शिवलिंग भी जिस पहाड़के शिलाखण्डसे बना था, वह वहाँके होशंगशाहने तोड़ दिया. पर सात दिन प्रयासके बाद भी शिवलिंग उनसे नहीं टूट पाया. वह शासक होशंगशाह था. जिसने पूरा मन्दिर खण्डित कर दिया. तालाबके ऊपरके पहाड़पर स्थित है. ब्रह्मवाद समझना है तो वहाँ भी या एलिफेंटा जा कर भी समझा जा सकता है. हर वस्तु उसी पत्थरकी बनी है. मानें कृष्ण ब्रह्म है, उसका भक्त ब्रह्म है, उसकी सेवा भी ब्रह्म है, सब कुछ ब्रह्म है. **''ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतं ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना''**(भग.गीता ४।२४)

पर ऐलोरामें एक छोटासा गढ़ा गया शिवलिंग है, उसको ही हम पूज सकते हैं, पूरे मंदिरकी पूजा हम नहीं कर सकते. मंदिर पहाड़की ऊँचाईका है, कौन उसे पूज सकता है? पर शिव इतने छोटे हैं कि आप उससे गले मिल सकते हो.

इस कारण ठीकसे समझो कि ब्रह्मको भजा नहीं जा सकता. उसकी वास्तविकताको जाना जा सकता है पर उस वास्तविकताका आनन्द नहीं लिया जा सकता. हर बार मैं एक बात कहता हूँ कि प्रत्येक वर-वधुकी एक नर-कंकाल होनेकी वास्तविकता है पर उसका आनन्द क्या वे ले सकते हैं, हस्तमिलापके समय? कोई उनका एक्स-रे दिखाये और कहे कि यह है आपकी वास्तविकता.

क्या यह किसीको आनन्ददायक होगा? आनन्द पानेके लिए हमें उनका रूप चाहिये न कि कंकाल. इसी प्रकार समझना ब्रह्मको है पर आनन्द कृष्णका लेना है. यह बात भूलनी नहीं चाहिये. याद रहे कि यह कृष्णकी अथवा ब्रह्मकी सीमा नहीं है. यह हमारी सीमा है कि हम उस ब्रह्मका आनन्द नहीं ले सकते. और कृष्णको समझना बहुत कठिन है क्योंकि वह तूफानी है. छोटे बच्चेको समझना बहुत कठिन है पर उसकी क्रीड़ाओंका आनन्द लिया जा सकता है. ब्रह्म तो कुछ भी तूफान करता नहीं है क्योंकि जो कुछ भी हो रहा है वह ब्राह्मिक आयाममें ही हो रहा है. उसे हम जान सकते हैं.

ननु दर्शनयोग्यता यदा तदा सेवायोग्यता सिद्धैव, ततः कथम् अयोग्यौ इति चेत् तत्र आहतुः दर्शनं नौ भगवतः ऋषेः आसीद् अनुग्रहाद् इति. अब शंका होती है कि दर्शन होनेके पश्चात् सेवामें क्या आपत्ति हो सकती है? भगवान्ने दर्शन तो दे ही दिये हैं. तो सेवा करनेके लिए भी हाजिर रहना चाहिये. उसके उत्तरमें कहते हैं कि "आपने हमें दर्शन नारदजीकी कृपासे दिया है अथवा हमारे ऊपर कृपासे दिया है. इस बातका हमें निश्चय नहीं है. नारदजी आपके कृपापात्र अनुचर हैं. आपने उनपर ही प्रसन्न हो कर हमें दर्शन दिये हैं. इस कारण हमें नहीं लगता कि हमें यहां रुकना चाहिये." बहुत ही मीठे संवाद हैं.

महाराजसेवकः स्वभृत्यं कदाचिद् महाराजस्थानं नयति न एतावता तस्य महाराजसेवायोग्यता भवति. "जैसे कोई राजाका सेवक खुदके सेवकको अपने साथ राजमहलमें ले जाये तो राजाकी सेवा करनेका दुःसाहसकी उसे अनुमति नहीं मिल जाती. जब-तक स्वयं राजा उसे महलमें रहनेकी अनुमति न दे दे देता हो तब-तक. उसी प्रकार आपने हमें दर्शन दिये हम यह अर्थ नहीं निकाल सकते कि आपकी

सेवाका अधिकार भी आपने हमें दे दिया है. आप अपने मुखसे हमें आज्ञा दें तो हम वह कर सकते हैं.''

अतः दर्शनान्यथानुपपत्त्या न सेवायोग्यता, दर्शन तो आप असुरोंको भी देते हो. दर्शन दे कर मुक्ति भी दे देते हो, सेवा तो नहीं देते. आप अपनी सेवा अभी तो ऐसोंको दे रहे हो जो आपके स्वरूपको जानते ही नहीं हैं, जैसे ग्वाल. हम तो आपका स्वरूप जान गये हैं. इस कारण आप हमसे सेवा करवानेके इच्छुक हैं कि नहीं, हमें पता नहीं चल रहा.

एकबार हमें देहलीसे मथुरा टॅक्सीसे जाना पड़ा. टॅक्सीमें हम दस लोग होंगे. गर्मीकि दिन, लू चल रही थी. वहां तक पहुंचते-पहुंचते मेरा पूरा शरीर ऐंठ गया. एक वैष्णव जोकि एकदम महात्मा गांधीका अवतार दुबले-पतले बोले ''महाराज आपकी कमर दबा दूं'' मैंने कहा ''आपके हाथमें तो इतना दम नहीं है. आप मेरी पीठपर चढ़ जाओ और पैरसे दबाओ, तो थोड़ा आराम मिले'' उन्होंने वैसा ही किया. उन्हें देख कर एक मोटे-ताजे वैष्णवने आ कर कहा ''महाराज ऐसी कृपा मुझपर कब होगी?'' मैंने कहा ''आप यदि इस प्रकार यह सेवा करेंगे तो मेरी तो हड्डी ही टूट जायेगी!'' हर सेवा हर व्यक्ति तो कर नहीं सकता. बस, ऐसी ही बात नलकूबर-मणिग्रीव कह रहे हैं.

भगवतो दर्शनम् ऋषेः अनुग्रहाद् इति ऋषेः भगवतः इति गुरुदेवतयोः ऐक्यार्थं सहनिर्देशः. ''यह दर्शन जो आप प्रदान कर रहे हो वह न तो हमारे साधनोंसे शक्य है और न आपकी कृपाके कारण हुवा है. यह तो आपके अनुचरकी कृपासे हुवा है. इस कारण हमें नहीं लगता कि हमारी कोई योग्यता है आपकी सेवा करनेकी हो. इसपर भी यदि आप आज्ञा देंगे तो हम यहां रुक कर आपकी सेवा

करनेके लिए तैयार हैं''.

आज वल्लभ-संप्रदायका दुर्भाग्य है कि सब यहाँ गुरुवादी हो गये हैं. महाप्रभुजी यहाँ दूसरी ही बात कह रहे हैं. वे कहते हैं कि किसी गुरुमें यदि गुरु होनेके गुण हों और वैसा गुरु यदि आपको मिल जाय तो भगवान् तक पहुँचनेके लिए गुरुका अनुसरण करना चाहिये. पर ऐसा गुरु यदि नहीं मिल पाता तो गुरुकी आवश्यकता भगवान्के लिए है, भगवान् गुरुके लिए नहीं है. बीमारी हटानेके लिए डॉक्टर्की आवश्यकता है, कोई डॉक्टर् है इसलिए बीमार पड़ना आवश्यक नहीं है. यह बात महाप्रभुजीने एक प्रकारसे नहीं, कई प्रकारसे कही है. पर पुष्टिमार्गी इस बातसे पूर्णरूपसे असन्तुष्ट हैं. कहते है कि हमारी सन्तुष्टि भगवान्पर निर्भर नहीं, गुरुपर निर्भर है. आप महाप्रभुजीसे सन्तुष्ट नहीं हैं, उनकी वाणीसे सन्तुष्ट नहीं हैं, उनके उपदेशोसे सन्तुष्ट नहीं हैं और दावा यह करते हैं कि हम पुष्टिमार्गी हैं. पुष्टिमार्गिओंका आधुनिक कालमें यदि कोई सबसे बड़ा दुर्भाग्य है तो वह यही है कि महाप्रभुजीकी बात हमारे गले नहीं उतरती. पुष्टिमार्गसे यदि कोई सबसे अधिक असन्तुष्ट है तो वह पुष्टिमार्गीय है. मैं बहुतसे सेमिनारोंमें बाहर जाता हूँ. इतरसम्प्रदायी विद्वानोंसे चर्चा करता हूँ. वे हमारा दर्शन जान कर अर्चभित हो जाते हैं. वही बात पुष्टिमार्गीयोंको कहता हूँ तो कहते हैं ''ठीक है, सच हो सकती है पर हमारे गले नहीं उतरती'' जितने भी हम पुष्टिमार्गीय हैं वे महाप्रभुजीसे आज सन्तुष्ट नहीं है पता नहीं क्यों! *कैसी बनायी है रबने यह जोड़ी.* यहाँ महाप्रभुजी अपना दृढ़ आग्रह प्रकट करते हुए कहते हैं.

गुरुदेवतयोः ऐक्यार्थं सहनिर्देशः. गुरु और देवता का भेद नहीं करना चाहते. इसीलिए कह रहे हैं **भगवतो दर्शनम् ऋषेः अनुग्रहाद्** गुरुकी सीमा होती है पर भगवान्की कोई सीमा नहीं है. भगवान्

चाहे तब गुरु बन सकते हैं पर गुरु कभी भी भगवान् बन नहीं सकता, गुरुका भगवद्बुद्धि रख कर समादर करनेका रहस्य यही है. वह भगवद्बुद्धि रख कर समादरका पात्र गुरु तब बनता है जब वह गुरुपदकी गरिमाको निभा पाता हो. यदि ऐसा नहीं है तो वह किसी भी पूजाके लायक नहीं है. यह बात केवल पुष्टिमार्गीयोंको ही समझमें नहीं आती. शेष सबको आ जाती है. देवर्षि नारदको नलकूबर-मणिग्रीव ऋषि भगवान् क्यों कह रहे हैं समर्थ होनेके बावजूद देवर्षि नारद खुदकी उद्धारकता या भजनीयता नहीं प्रकट करके भगवान् कृष्णकी उद्धारकता वरदानद्वारा प्रस्थापित करते हैं.

महाप्रभुजी आज्ञा करते हैं कि जानेकी अनुज्ञा माँगनेमें उनकी भक्तिमें कोई बाधा अथवा उनके भावमें कोई न्यूनता नहीं है. यह इस श्लोककी मिठास है. ऊपरी तौरपर लगता है कि इसमें भक्ति नहीं बोल रही है पर इस प्रकरणमें भक्ति केवल महाप्रभुजी ही खोज सकते हैं.

(श्लोक-१०, मूलश्लोक-३८)

(जहां भी हम जायें वहां हमारी आपके प्रति भक्ति निभती रहे ऐसी प्रार्थना)

<u>अवतरणिका</u> :

एवं गमनं प्रार्थयित्वा तत्र गतयोः भक्तिं प्रार्थयेते.

कितनी सुन्दर बात नलकूबर-मणिग्रीव कहते हैं कि "आप जिस रूपमें हमें दर्शन दे रहे हो, ऐसे दर्शन छोड़ कर आप जहाँ आज्ञा करेंगे वहाँ चले तो जायेंगे पर आपकी भक्तिको छोड़ कर हम नहीं जाना चाहते. भक्तिको साथ ले कर जायेंगे. ऐसा इस कारण कि आप ब्रह्मरूपसे परमात्मारूपसे और ईश्वररूपसे, यों सभी प्रकारसे, इस ऊलूखलसे बंधे हुए स्वरूपमें ही दर्शन दे रहे हो. आपके सारे

रूप देख कर अब हम आश्वस्त हो गये हैं कि आपके चाहे पास रहें अथवा आपके इस रूपसे दूर, पर आपकी भक्तिको नहीं छोड़ सकते. आपको छोड़ सकनेका मूल कारण है कि आप हमें कभी भी छोड़ नहीं सकते. क्योंकि आप ब्रह्म हो, इसलिए हम आपके पास ही रहेंगे. आप परमात्मा हो इसलिए सदैव आप हमारे अंदर बिराजमान रहेंगे. क्योंकि आप भगवान् हो इसलिए जैसी भी भक्ति हम करेंगे, आप उसे स्वीकारोगे ही. हमारी सीमाएं हैं कि हम आपको हर स्थानपर भज नहीं सकते. पर आप तो हमारी भक्तिको कौनसे स्थानपर स्वीकार नहीं सकते! ऐसी कोई सीमामें आपको तो बांधा ही नहीं जा सकता. यह तो पुष्टिमार्गियोंकी ही सीमा है कि उन्हें भगवान् केवल हवेलियोंमें ही दिखता है. भगवान् ऐसी सीमामें बंधते नहीं. दर्शन छोड़ कर भक्ति करने जा रहे हैं, जिन्हें प्रभुने साक्षात् दर्शन दिये हैं.

श्लोक :

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायाम्।।
हस्तौ च कर्मसु मनस् तव पादयोर् नः।।
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत् प्रणामे।।
दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम्।।३८।।

अनुवाद :

तेरे गुणगानमें निरत हो वाणी दोनों कर्ण कथामें, दोनों कर कर्मोंमें तेरे, मन बन जाये मगन स्मरणमें तेरे ही चरणोंके, जगन्निवासके नमनमें अभिरत मस्तक यूंही झुका रहे, आपके विग्रहरूप सत्पुरुषोंके दर्शनमें दृष्टि लगी रहे.

अपनी प्रार्थनाका अब उपसंहार कर रहे हैं. उपसंहार सम्बन्धको

तोड़ कर अनुज्ञा लेनेका नहीं अपितु सम्बन्धको और सुदृढ़ बना कर अनुज्ञा लेनेका है. सम्बन्ध सुदृढ़ कैसे रहेगा वह कृष्णको इस श्लोकके द्वारा बता रहे हैं, **वाणी गुणानुकथने** "हमारी वाणी आपके गुणोंका सदा अनुकथन करती रहे". यहां 'अनुकथन' शब्द आया है, क्योंकि कथन तो नारदजी करेंगे. नारदजी जब कहेंगे कि "मैंने प्रभुके पीछे-पीछे फिरते हुए यह-यह बात सुनी. तब हमें सन्तोष होगा कि हमारे स्वामीने आपसे यह बात सुनी और फिर हम भी उसका मनन कर पायेंगे." **श्रवणौ कथायाम्** "तेरे गुणोंके अनुकथनमें हमारी वाणी रहे. तेरी कथाके श्रवणके लिए हमारे कान सदा उत्सुक रहें. **हस्तौ च कर्मसु** तेरी सेवामें हमारे हाथ सदा तत्पर रहें. **मनस् तव पादयोर् नः** हमारा मन तेरे चरणारविन्दोंमें लगा रहे. **स्मृत्यां शिरः तव निवासजगत् प्रणामे, दृष्टिः सतां दर्शने अस्तु भवत्तनूनाम्** तुझे प्रणाम करनेसे सदा हमारे मस्तिष्कमें केवल तेरी स्मृति बनी रहे और हमारी दृष्टि सत्पुरुष अर्थात् तेरे भक्तोंके दर्शन करती रहे. क्योंकि जो तेरे भक्त हैं, तू सदा उनके हृदयमें बिराजमान रहता है. हम तेरी सेवा नहीं भी कर पायें, पर जिस घरमें तू रहता है उस घरकी सेवा कर पानेका सौभाग्य हमें मिलता रहे. एक शेर मुझे याद आ रहा है.

हाजी बराहे काबा मन साहिबे दीदार, उ खाना हमीं जोयद मन साहिबेखाना. मक़सूदे मन अज़ काबा ओ बुतखाना तु ही तू, मक़सूद तुही काबा ओ बुतखाना बहाना हाजी = जो हज करने जाते हैं. वे तो काबाके दर्शनके लिए जाते हैं और मैं उस काबामें रहनेवाले साहिबके दर्शन करना चाहता हूं. वे तो मकानके दर्शन करने जाते हैं और मैं उस मकानमालिकके दर्शनकी लालसामें बैठा हूं. और जब मकानके मालिककी खोजका भाव हृदयमें हो तो मन्दिर या मस्जिद तो केवल बहाना रह जाते हैं. यह एक भाव है. यहां दूसरा भाव कहा जा रहा है कि मकानमालिककी सेवाकी हमारी

लायकात कहां है? पर तू जिस मकानमें रहता है उस मकानकी सारी व्यवस्थाका काम हम करनेको तैयार हैं जिससे कि तेरे अनुचर तेरी सेवा भली प्रकारसे कर पायें. यह है विनम्रताकी पराकाष्ठा!

सुबोधिनी :

वाणी इति, षडंगानि पुरुषे प्रधानानि :

वाक् श्रोत्रे च करौ चित्तं शिरः चक्षुस् तथैव च।
षड् एते भगवत्कार्ये यदि सक्ताः कृतार्थता॥
कीर्तने श्रवणे चैव गुणानां रूपदास्यके।
स्वरूपस्मरणे नत्याम् अवतीर्णस्य दर्शने॥

गुणानाम् उत्कर्षाधायकधर्माणां कीर्तने वाणी अस्तु तत्रैव सा विनियुक्ता भवतु. यथा वराय दत्ता कन्या न अन्यगामिनी भवति, नापि अन्यः प्रार्थयते, नापि पतिभयात् सा अन्यसम्बन्धिनी कथञ्चिदपि भवति, तथा वाणी भवतु. एवमेव श्रवणौ कथायां, हस्तौ उभावपि भगवतः सर्वकर्मसु आष्टयामिकेषु. चकारात् पादावपि मन्दिरगमनादिषु:. तद्व्यतिरेकेण हस्तसेवा न उपपद्यते इति उभयम् एकरूपम्. तव पादयोः स्मृत्यां नो मनो अस्तु. स्मरणे सर्वानेव भक्तान् एकीकृत्य आहतुः पादयोः इतिद्विवचनं रूपान्तरे तथाभावाय. शिरस्तु प्रणामे. चतुरंगया भक्त्या भगवतः सर्वस्थितिः सर्वान्तरत्वं च स्फुरिष्यति. अतः सम्बोधनं यतो हे निवासजगद्! इति, निवासभूतं जगद् यस्य इति. दृष्टिस्तु सतां दर्शने अस्तु. भगवद्दर्शनन्तु धाष्टर्याद् न प्रार्थितम्. ननु तेषां दर्शने किं स्यात्? तत्र आहतुः भगवत्-तनूनाम् इति, भगवतः तनूरूपाः ते. तत्र भवान् वर्ततइति तथा, अयोगोलके वह्निः यथा वा गंगायां जलम्.

षडंगानि पुरुषे प्रधानानि महाप्रभुजी कहते हैं कि मनुष्यके छ अंग बहुत प्रधान होते हैं, वाणी श्रवण हाथ मन सिर और नयन.

महाप्रभुजी श्लोकमें संक्षेपण द्वारा कहते हैं कि वाक् श्रोत्रे

च करौ चित्तं शिरः चक्षुस् तथैव च, षड् एते भगवत्कार्ये यदि सक्ताः कृतार्थता वाणी कान हाथ चित्त सिर और नयन ये छह भगवान्‌के काममें लगे रहे तो कोई भी पुष्टिजीव कृतार्थ हो जाता है. उसको और कुछ भी करना बाकी नहीं रह जाता. **कीर्तने श्रवणे चैव गुणानां रूपदास्यके स्वरूपस्मरणे नत्याम् अवतीर्णस्य दर्शने** जिस प्रकारसे भी आप प्रकट हों, उसका दर्शन हम कर पायेंगे. कभी भगवदीयके रूपमें, कभी साक्षात् रूपमें. अपनी जितनी भी इन्द्रिय है, उनकी रुझान भगवान्‌की तरफ हो जाय तो दूसरी कोई भी कृतार्थता भक्तिमार्गमें हो नहीं सकती. यह मूल संदेश है स्तुतिका.

मुझे एक और श्लोक याद आ रहा है "**अहम् इह स्थितवानपि तावकः त्वमपि तत्र वसन्नपि मामको हृदयसंगतमेव सुसंगतं न तनुसंगतमेव हि संगतम्**" मैं यहां हूं फिर भी तेरा हूं और तू वहां है फिर भी मेरा है. हृदयसे जुड़नेवाले ही सचमुचमें जुड़े हुवे होते हैं तनसे जुड़े हुओंका वस्तुतः जुड़े होना निश्चित नहीं हो पाता. जैसे दो बैल, बैलगाड़ीमें जुड़ जायें तो क्या वे हृदयसे जुड़े हुए कहलायेंगे? ये दोनों भी यही प्रार्थना कर रहे हैं कि "तू चाहे यहां रहे और हम अपने धाममें रहें पर अब हमारे हृदय सदा तेरे साथ जुड़े रहेंगे." **कीर्तने श्रवणे चैव गुणानां रूपदास्यके स्वरूपस्मरणे नत्याम् अवतीर्णस्य दर्शने** इन छ अंगोंका सम्बन्ध बताते हैं. तेरे गुणोंका संकीर्तनके साथ वाणी जुड़ी रहे, तेरी लीलाके श्रवणके साथ कान जुड़े रहें, तेरे स्वरूपके साथ दास्यभावसे तन जुड़ा रहे, तेरे स्मरणमें प्रकटे रूपके प्रति मस्तक नमनार्थ जुड़ा रहे, तेरे अवतीर्ण रूपके दर्शनके साथ नयन सदा जुड़े रहे.

गुणानाम् उत्कर्षाधायकधर्माणां कीर्तने वाणीः अस्तु भगवान्‌के जिन गुणोंसे उत्कर्ष सिद्ध होता हो, ऐसे गुणोंका कीर्तन वाणीसे करना. किसीके दुर्गुणोंका गुणगान हम करें तो उसे चाहते भी हों तो उससे

थोड़े समय बाद घृणा होने लगेगी. वाणीका स्वभाव ही ऐसा है. वह दुधारी तलवारकी तरह होती है. जब भी हम किसीके दुर्गुणोंका गान करते हैं तो उस व्यक्तिको तो हम चोट पहुंचा ही रहे होते हैं पर अज्ञानमें स्वयंको भी चोट दे रहे होते हैं. इसीलिए कह रहे हैं कि **गुणानाम् उत्कर्षाधायकधर्माणां कीर्तने वाणी:** अस्तु भगवान्के ऐसे गुण कि जिन गुणोंके कारण भगवान्का उत्कर्षका वर्णन होता हो ऐसे गुणोंका कीर्तन और श्रवण करना है. ऐसे गुण नहीं कि वे रस्सीसे बंधे हुए हैं.

कई व्यक्ति ऐसे होते हैं कि यदि कोई मनुष्य प्रसिद्धिको प्राप्त कर रहा है तो उसके विषयमें ऐसा बोलेंगे ''अरे कल तक यह गलीके चक्कर लगाता था. आज अपने आपको बड़ा कह रहा है!'' जब वह ऐसा कह रहा होता है तो केवल उस व्यक्तिको नीचे गिराना नहीं चाहता परन्तु वास्तवमें तो गुणोंसे खुदके मस्तिष्कको प्रभावित होनेसे बचाना चाहता है, मात्सर्यवश.

हमारा एक बोरीविलीमें बंगला था. मैं कई बार वहां जा कर रहता था. उसके बाजूके बंगलेमें सितारवादक रविशंकरजी, अपनी प्रारम्भिक अवस्थामें रहते थे. उस समय नये-नये सीख कर आये थे. हमारे बंगलेमें भी आते थे. वहींसे अपने कॅरियरकी शुरुआत की थी. अब आज कोई कहे कि रविशंकर बहुत बड़े सितारवादक हैं और उसपर मैं ऐसी प्रतिक्रिया दूं कि ''हां-हां जानता हूं, हमारे पड़ोसमें ही तो रहते थे हमारे घरमें चक्कर भी मारते थे'' ऐसा कह कर उनकी महत्ताको नीचे गिराना नहीं पर वैसी महत्ता मुझे नहीं मिली उस असन्तोषको छुपा कर खुदकी महत्ता दिखाना ही आन्तरिक प्रयोजन होता है. अपितु उनके यशोगुणको स्वीकार करनेको तैयार नहीं हूं. ऐसा करनेसे एक प्रकारकी नकारात्मकता मुझमें आती है, जो अन्तमें मेरे विकासमें भी हानिकारक होगी.

स्नेहकी पहली शर्त यह है कि जिसको तुम स्नेह कर रहे हो, उसके संघर्षके दिनोंके प्रकरणोंका चिन्तन-मनन मत करो. उन गुणोंका चिन्तन करो कि किसीकी क्या उपलब्धि है. जितना आप उसका चिन्तन-मनन-वर्णन करोगे उतना अधिक स्नेह आपके भीतर उभरेगा. यह साइकोलॉजिकल् ॲनेलेसिस् है. इसी कारण यहां यह कहा गया है कि **गुणानाम् उत्कर्षाधायकधर्माणां कीर्तने वाणीः अस्तु तत्रैव सा विनियुक्ता भवतु. यथा वराय दत्ता कन्या न अन्यगामिनी भवति** जैसे किसी कन्याका विवाह किया है तो वह वरके लिए ही तो है. इसी तरह कह रहे हैं कि मेरी वाणी; आपका उत्कर्ष कहनेवाले गुणोंके साथ, किसी कन्याकी तरह विवाहित हो जाये **नापि अन्यः प्रार्थयते, नापि पतिभयात् सा अन्यसम्बन्धिनी कथञ्चिदपि भवति, तथा वाणी भवतु.** ऐसी विवाहिता कन्याकी कोई चाहना नहीं करेगा, अपने पतिसे स्नेहबन्धन टूटनेके भयके कारण वह कन्या भी दूसरेकी ताकती नहीं. कहनेका अर्थ है कि हमारी वाणी आपके गुणोंके वर्णन करनेमें पति-पत्नीकी तरह जुड़ जाये **एवमेव श्रवणौ कथायां** और उसी प्रकार दोनों कान भी आपकी कथाके श्रवणमें लगे रहें **हस्तौ उभावपि भगवतः सर्वकर्मसु आष्टयामिकेषु.** दोनों हाथ भगवत्कार्यमें आठों याम=चौबीस घंटे लगे रहें. **चकारात् पादावपि मन्दिरगमनादिषुः.** पैरोंका भगवान्‌के साथ कैसे सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है तो कहते हैं कि जहां भगवान् बिराजते हों वहां जानेके लिए पैर सदा उत्सुक रहें. एक खुलासा यहां आवश्यक है.

आजके समयमें 'मन्दिर' हम देवालयको कहते हैं. पर संस्कृतमें 'मन्दिर'का अर्थ होता है घर. देवका मन्दिर हो तो देवालय. विद्यार्थिओंका मन्दिर विद्यालय. न्यायका मन्दिर हो तो न्यायालय. वेश्याके घरको पुराने जमानेमें 'जनमन्दिर' कहते थे. आज हम पुष्टिमार्गमें ग्रन्थाध्ययनके अभावमें मन्दिरका अर्थ हवेली हो गया है.

शिवाजी महाराजके दरबारमें एक कवि था. उसने बहुत अच्छा

लिखा है, *"ऊंचे घोर मन्दिरके अंदर रहनवारी, ऊंचे घोर मंदरके अंदर रहाती हैं. भूखण भनत शिवराज तेरे वीर त्रास नगन जड़ाती ते वे नगन जड़ाती हैं"* जो मुगलोंकी स्त्रियां ऊंचे-ऊंचे मन्दिरों-महलोंमें रहती थीं, वे अब शिवाजीके डरसे ऊंची-ऊंची मन्दर-गुफाओंमें रह रही हैं. जो कभी रत्नोंसे जड़ी रहती थीं, वे तेरे डरके मारे अब नग्न रहनेको बाधित होनेके कारण शरमाती है, यह भूषण कविने शिवाजीकी बहुत सुन्दर स्तुति की है.

इसलिए 'मन्दिर'का अर्थ हमें घर ही करना चाहिये. यहां कृष्णकी बात है तो इसका अर्थ है कृष्णका घर **मन्दिरगमनादिषु:. तद्व्यतिरेकेण हस्तसेवा न उपपद्यते इति उभयम् एकरूपम्.** यदि हम भगवान्‌के बिराजनेके स्थानमें अपने पैरोंसे जायेंगे नहीं तो हाथसे सेवा किस प्रकार कर सकेंगे! इस कारण हाथसे पहले पैरोंकी आवश्यकता है तब **पादयो: स्मृत्यां नो मनो अस्तु.** तेरे चरणोंकी स्मृतिमें हमारा मन लग जाये **स्मरणे सर्वानेव भक्तान् एकीकृत्य आहतु:** सारे भक्तोंका एकीकरण करते हुए कहते हैं कि **पादयो: इति द्विवचनं रूपान्तरे तथाभावाय. शिरस्तु प्रणामे.** तेरे किसी रूपान्तरमें हमारा मन न लगे, क्योंकि ऐसा हमें नहीं चाहते. तेरे जहां चरण होंगे वहां तेरे भक्त होंगे. जब भी तेरे चरणोंकी स्मृति हमें होगी तो तेरे भक्तोंकी भी स्मृति हमें होगी. इसी प्रकार जब तेरे भक्तोंकी स्मृति हमें होगी तो तेरे चरणोंकी स्मृति भी हमें होगी ही. इस कारण यदि हमारा मन कभी डोला तो हमारे पास दो विकल्प होंगे, और दोनों ही ऐच्छिक विकल्प होंगे. आप किसी एक जानवरको ऐसे पिंजरेमें रखो कि उसे हिलने-डुलनेका कदापि अवकाश ना मिले और दूसरेको ऐसेमें रखो कि जितने स्थानकी आवश्यकता है उसे उस पिंजरेमें मिल पाये तो दोनोंकी प्रसन्नतामें आपको भेद दिखलायी देगा. उसी प्रकारकी स्थिति मनकी भी है. जब भी आप मनको किसी एक स्थानपर केन्द्रित करनेका प्रयास करोगे, तो उसे घुटन महसूस होती है. वह छटकनेकी कोशिश करता

है. उसे यदि दो-चार विकल्प दे दिये जायें तो वह उन्हींमें बिना घुटनके आरामसे घूमता रहता है. इसी तरह कह रहे हैं कि कभी आपके चरणोंमें लगे और छटके तो आपके भक्तोंमें लगे. **चतुरंगया भक्त्या भगवतः सर्वस्थितिः सर्वान्तरत्वं च स्फुरिष्यति.** ऐसी चार रूपोंवाली भक्तिसे भगवान् सब स्थानपर स्थित हैं और सबके अन्तरमें बिराजमान हैं, ऐसा अनुभव होगा. **अतः सम्बोधनं यतो हे निवासजगद्! इति, निवासभूतं जगद् यस्य इति.** 'निवास-जगत्'से क्या अर्थ है वह समझो. भगवान् जगत्में निवास करते हैं और जगत् भगवान्में निवास करता है. **दृष्टिस्तु सतां दर्शने अस्तु. भगवद्दर्शनन्तु धाष्टर्याद् न प्रार्थितम्.** हमारी आंख सत् पुरुषोंके दर्शनमें लगी रहनी चाहिये. यदि ये कहें कि हमें सदा दर्शनोंका लाभ मिले तो कहनेका अर्थ तो यही होगा कि हमें आप यहीं रखो और साथमें जानेकी आज्ञा भी माँग रहे हैं. तो दोनों बातें कैसे सिद्ध होंगी? इसलिए यह न कह कर, कह रहे हैं कि हम जहां रहें वहां आपके भक्त हमें सदा दर्शन देते रहें. 'धाष्टर्यात्'का ढीठपना उद्दण्डता. अर्थात् जब जानेकी आज्ञा माँग रहे हैं तो क्या वह जहां-जहां जायें वहां-वहां भगवान्को दर्शन देने जाना! यह तो धृष्टता कहलायेगी. इसीलिए कह रहे हैं कि आपके भक्तोंका दर्शन हमें होता रहे. **ननु तेषां दर्शने किं स्यात्?** शंका करते हैं कि उनके दर्शनोंसे क्या लाभ होगा? इसके समाधानमें कहते हैं **तत्र आहतुः भगवत्-तनूनाम् इति, भगवतः तनूरूपाः ते.** जितने तेरे भक्त हैं, चाहे उनका तन भक्तका हो पर उनके भीतर भगवान् तो परमात्मतया प्रकट बिराजते होनेके कारण वे भगवान्के तनुरूप हो जाते हैं. **तत्र भवान् वर्ततइति तथा, अयोगोलके वह्निः यथा वा गंगायां जलम्.** जैसे लोहेके गोलेको यदि हम तपायें तो अग्नि बाहर न रह कर गोलेके अंदर प्रकट हो जाती है. उसी प्रकार तेरे भक्तोंमें तेरी दिव्यताका प्रकाश उनके हृदयमें विद्यमान रहता है और वह वहांसे प्रकट होता है, जैसे गंगाजीमें जल प्रकट होता है.

इस प्रकार नलकूबर-मणिग्रीवकी स्तुति यहां सम्पूर्ण हुयी. इस स्तुतिका पठन-पाठन अपने-आपमें एक उत्सव जैसा ही है. अपने पूरे पाठ्यक्रममें इससे रुचिकर कोई विषय नहीं है क्योंकि यह एक भक्त और भगवान् के बीच सीधा और बहुत निजी संवाद है.

(सर्वब्रह्मतादात्म्यवाद)

(श्रौत तर्कोपपत्तिसे भी कृष्णकी परब्रह्मता)

आज हमें कृष्ण ब्रह्म है इस बातका विचार करना है.

पहली बात जिसे पाश्चात्य तर्कशास्त्रमें Laws of Thoughts कहा जाता है उसे समझनेका प्रयास करेंगे. दूसरी और एक जो मूल बात है वह Laws of Relations की है, उसे भी समझ लेना आवश्यक है.

Laws of thoughts मानें किसी भी वस्तुके बारेमें यदि हमें कुछ विचार करना हो तो यूनानके महान् दार्शनिक ऐरिस्टोटेलने तीन मूलभूत कसौटी बतायी हैं. Laws of thoughtsके अन्तर्गत तीन सिद्धान्त आते हैं :

1.Law of Identity

Every thing is what it is; or, A is A

जब भी हमें किसी वस्तुके बारेमें विचार करना हो तो उस वस्तुका जो प्रस्तावित स्वरूप है उसी प्रकार हमें उसके बारेमें सोचना या बोलना चाहिये. यदि ऐसा नहीं करते तो कभी उस वस्तुको ऐसे लें फिर कभी वैसे लें तो उस वस्तुके बारेमें कुछ विचार ही नहीं हो पायेगा.

दूसरा नियम है :

२.Law of Non-Contradiction

A thing can not be both be and not-be; or,

A is not B and not-B.

अर्थात् जिस वस्तुको उद्देश्य बना कर जो विधान हमने किया हो उसी विधानका हम निषेध नहीं कर सकते.

३.Law of Excluded Middel

A thing is either is or is not So; or, A is either B or not-B, third possiblity can not be there.

इसे ऐसे भी कह सकते हैं कि A is B अथवा A is Not B इन दोमें से एक होना अनिवार्य है, तीसरी कोई सम्भावना दो विकल्पोंके बीच स्वीकारी नहीं जा सकती.

उदाहरणतया हमारे सामने जो है उसे या तो घोड़ा मानों; या फिर, घोड़ा मत मानों. तीसरा कुछ माना नहीं जा सकता. क्योंकि जो घोड़ा न हो उसमें सारी दुनिया आ गयी. बीचमें अब कोई तीसरी बात बचती ही नहीं.

विचारके इन तीन नियमोंकी तरह सम्बन्धोंके भी नियम होते हैं. उदाहरणतया सम्बन्ध किन्हीं दो पदार्थोंके बीच ही होता है. अतः : a b बीचमें यहाँ एक R रखनेपर aRb के रूपमें उसे दरसाया जा सकता है. यहां a को प्रतियोगी या रिफरेंट् माना जाता है. b को अनुयोगी या रिलातुम्. इन दोनोंके बीच R को रिलेशन् अर्थात् सम्बन्ध माना जाता है. मतलब वह हुवा कि सम्बन्ध किन्हीं दोके बीचमें ही होता है. साथ ही साथ सम्बन्धोंकी कोई न कोई दिशा भी निश्चित होती है. अर्थात् a→R→b यह प्रतियोगीसे शुरु हो कर अनुयोगीकी तरफ जाती है. ऐसे ही दुतरफा सम्बन्ध भी सम्भव है कि a←→R←→b

इसी तरह कोई सम्बन्ध दूसरेमें संक्रान्तिशील भी हो सकता है और नहीं भी यथा : a→R→b→R→c .

यों कोई रिलेशन् सिमेट्रिकल् या रिफ्लॅक्टिव् होता है तो कोई एसिमेट्रिकल् या नॉन-रिफ्लॅक्टिव् भी. इसी तरह ट्रांज़ीटिव् भी हो सकता है और इन्-ट्रांज़ीटिव् भी. सम्बन्ध रिफ्लॅक्टिव् हो सकता है और नॉन्-रिफ्लॅक्टिव् भी. चारको चारसे गुननेपर कुल सोलह तरहके तो सम्बन्ध कमसे कम हो ही सकते हैं.

संक्षेपमें इन्हें मूल रूपमें एक बार समझ लेना आवश्यक है.

सिमेट्रिकल् और नॉन-सिमेट्रिकल् के उदाहरण : मानो कि A B का भाई हो तो सिमेट्रिकली B उसका भाई ही होगा. परन्तु भाई-बहन होनेके सम्बन्धको सिमेट्रिकल् नहीं माना जा सकता क्योंकि एकके दूसरीके भाई होनेपर दूसरी भाई नहीं पर बहन ही रहती है. अतः इकतरफा सम्बन्ध होता है भाई-बहनका भाई-भाईकी तरह दुतरफा नहीं. ट्रांज़ीटिव् और नॉन-ट्रांज़ीटिव् सम्बन्धोंके उदाहरणतया एकदूजेके समान होनेका, एकदूजेसे बड़े होनेका या एक-दूजेके समकालीन होनेका सम्बन्ध ट्रांज़ीटिव् होता है : [(A=B).(B=c)—(A=C)] जो सम्बन्ध Aसे B की ओर जा रहा है वह मध्यपाती B से C में संक्रमित हो जाता है. परन्तु कोई एक किसी दूसरेका कर्ज़दार है और वा दूसरा पुनः तीसरे किसीका कर्ज़दार हो तो पहला तीसरेका कर्ज़दार नहीं बन जाता. क्योंकि कर्ज़दार होनेका सम्बन्ध संक्रमणशील नहीं होता.

कोई भी विचार प्रस्तुत करनेके लिए अभी ऊपर लिखे तर्कशास्त्रके नियमोंको ध्यानमें रखना होता है. Laws of Thoughts और Laws of Relations. किसी भी विचारके लिए यह मूल आधार है.

जिसके बारेमें भी हम विचार कर रहे हैं उसके बारेमें Laws of relationsको ध्यानमें लाना पड़ेगा. जब भी दो या एक वस्तुके बारेमें विचार करेंगे तो हम सम्बन्धका हि विचार करते हैं. वह कार्य-कारण, गुण-गुणी या संयोग सम्बन्धसे जुड़ा हो सकता है. वस्तुओंका आपसमें क्या रिलेशन् हो सकता है अथवा वस्तु और व्यवहार के बीच क्या रिलेशन् हो सकता है अन्तत: जो भी विचार हम करेंगे वह होगा तो रिलेशन्के मॉडल्में ही हो पायेगा.

अब Law of Identityको भारतीय तर्कशास्त्रमें 'तादात्म्य-नियम' कहा गया है. Law of Non-Contradiction 'अव्याघात-नियम' कहते हैं. Law of Excluded Middle को अपने यहाँ कहा गया 'मध्यव्यावर्ती नियम' कहा जाता है इन तीनों नियमोंसे ही हमारे सारे विचार नियन्त्रित होते हैं, ऐसी तर्कशास्त्रकी दुहाई है. गणित या कम्प्यूटर् में भी इन्हीं तीनों नियमोंके अनुसार प्रॉग्राम् गढ़ना पड़ता है. जब आर्टिफिशियल् इन्टॅलीजॅन्ट् कम्प्युटर् दैनिक उपयोगमें प्रचलनमें आयेगा तब कथा बदल जायेगी. जब भी कम्प्युटर्की प्रोग्रामिंग् की जाती है तो तब एक वस्तुको डिजिटली डिफाईन् करना पड़ता है, उसके डॉमेन्को भी डिफाईन करना पड़ता है. उसके सभी पॅरामीटर्स् एक सिम्बॉल् दिया जाता है. कम्प्युटर् उसको Laws of Identity से समझता है. ऐसा करनेके बाद उन्हीं पॅरामीटर्स्के अन्तर्गत कुछ और भी समाविष्ट होने लगे तो कम्प्युटर् उसे समझना बंद कर देगा.

यह नियम न पालें तो कम्प्युटर् विचार नहीं कर सकते हैं. हम तो इन नियमोंको तोड़ कर कविता उपन्यास लिख सकते हैं.

उदाहरणके लिए, फ्रेन्झ् काफ्का नामका एक बहुत प्रसिद्ध कथालेखक हुआ है. उसने अपने एक प्रसिद्ध 'मेटामॉर्फोसिस्' नामक लघु-उपन्यासमें लिखा है कि एक अकेला कमानेवाला व्यक्ति, जिसके परिवारमें

एक बहन और माँ थी, जिनका वह भरण-पोषण करता था, एक रात अचानक सोते समय तिलचिट्टा के शरीरमें रूपान्तरित हो गया! वह जब सुबह उठा तो वह एक जाईन्ट् तिलचट्टा कीड़ा बन चुका था. अब कोई भी व्यक्ति अजानक कीड़ा कैसे बन सकता है? आदमी, कीड़ा नहीं हो सकता. कीड़ा, आदमी नहीं हो सकता. Laws of Identity के नियमोंको तोड़ कर पूरे उपन्यासमें उसने यह बतानेका प्रयास किया है कि व्यक्तिके रिलेशन् किस प्रकार धीरे-धीरे खत्म होने लगते हैं. शुरुआतमें माँ और बहन यही कहती हैं कि "कोई बात नहीं यदि वह कीड़ा बन गया है तो उसने हमारे लिए तो वह पुत्र और भाई था सो रहेगा ही. हमें निभानेमें उसने कितने दिनरात एक किये!" पर जब लम्बे अरसे तक वह अपने मूलरूपमें पुनः लौट नहीं पाता तो धीरे-धीरे मां-बहन दोनोंको लगने लगा कि यह कोई अन्य है. यह हमारा बेटा और भाई होनेके लायक नहीं है. क्लाइमॅक्स्में वे दोनों उसे झाड़ू मार कर बाहर फेंक देती हैं. पूरी कहानीमें उसने यह बताया है कि जब भी आपकी उपयोगिता समाप्त हो जाती है तो आपके सम्बन्ध भी क्षीण होने लगते हैं और अन्ततः समाप्त हो जाते हैं. कहानी बहुत प्रभावशाली है पर तर्कशास्त्रके अनुसार किसी विचारको प्रस्तुत करनेको उपयोगी नहीं. आप कहानीमें उभरती करुणाका आनन्द ले सकते हैं पर उनपर विचार प्रस्तुत नहीं कर सकते. उसमें कोई भी बात तर्कसंगत नहीं लगती.

यदि ऐसा सचमुचमें होने लगे तो दुनियामें सारी विचारप्रक्रिया स्तब्ध हो जायेगी. क्योंकि किसीकी कुछ भी Identity ही सुनिश्चित नहीं हो पायेगी. उसी प्रकार Law of Excluded Middle का ज्ञान न हो तो हम किसी वस्तु या घटना के बारेमें कोई भी बात कर ही नहीं पायेंगे. Bऔर Not-Bके बीचमें कोई वस्तु हो नहीं सकती. बीचमें यदि कुछ सम्भव हो तो सम्भावनाओंका अन्त

ही नहीं होगा. क्योंकि आप A और B/Not-Bके बीचमें C D E F G H I J K आदि कितने सारे अक्षरोंको शक्य मान सकते हो जो Not-B हैं. जैसे शून्य और संख्या के बीचमें आप कुछ नहीं विचार कर सकते. या तो वह शून्य होगा अथवा संख्या होगी. यदि बीचमें कुछ आ जाय तो मस्तिष्क काम करना बंद कर देगा. कोई भी ऐसी वस्तु हो नहीं सकती कि जो है भी और न भी हो. इस कारण ये मुख्य नियम हैं जिनके आधारपर हमारी सारी विचार-प्रक्रिया चल रही है.

अब यह बात ध्यानसे समझो कि यह नियम सत्य है अथवा मिथ्या है इस बारेमें कोई कुछ नहीं जानता. क्योंकि इस बातका कोई भी प्रमाण नहीं है कि A=A ही होता है. A को जब हम उसकी फेस्-वॅल्युपर 'A' कहते हैं तब हम यह भूल जाते हैं कि उसके और भी कई पहलु हो सकते हैं कि जो ऊपरी तौरपर प्रकट नहीं हुए. थोड़ा भी उसका अन्दरूनी अध्ययन करें तो वे प्रकट हो जायेंगे उस समय A केवल A ही नहीं रह जायगा पर कुछ और भी हो जायगा. क्योंकि अंग्रेज़ीमें ही, डिक्शनरी उठा के आप देखें तो पायेंगे कि A अक्षरके केवल अंग्रेज़ी भाषाके ॲन्गल्से देखें तो सात प्रकार होते हैं. इन सात प्रकारोंको इस लक्षणोदाहरणसे समझा जा सकता है :

> "Ja[1]ck was a[2]bout to sha[3]re his priva[4]te ya[5]cht with his footba[6]ll couch when he recieved ca[7]ble that the engine needed repaire".

यहां अंग्रेज़ीके १-७ संख्यांकित a अक्षरके सात प्रकार दरसाये गये हैं. अन्यथा संयुक्ताक्षर 'अइ' 'अए' 'एइ' 'अउ' 'ओउ' 'औउ' या अन्यान्य भाषाओंके शब्दोंका उच्चारण जब अंग्रेज़ीकी रोमन A या ग्रीक a लिपिओंमें लिखना हो तो यह लिस्ट और भी लम्बी

हो जायेगी. कहनेका तात्पर्य यही है कि A=A केवल लोजिक या मॅथेमेटिक्स् में सच होता है न तो भाषामें जो हम बोलते हैं उसमें, और न बोलनेवाले मानवके जीवनमें; अथवा, मानवके इर्दगिर्द रहे भौतिक रसायनिक पराभौतिक अल्जेब्रा या ॲस्ट्रॉलोजी आदि ज्ञानकी विधाओंमें ही. उदाहरणके लिए उंगली एक है पर उसके हिस्से तीन हैं. तर्कके अनुसार एक तीन नहीं हो सकता और तीन एक नहीं हो सकते. Laws of Thought यह तो नहीं कहेगा कि यदि हड्डियोंके पहलुसे अथवा उनके विभागोंके पहलुसे देखें तो वह तीन = एक है. हम निश्चित तौरपर नहीं कह सकते कि जो Laws of Thought हैं जो कि गणितके, तर्कके या कम्प्यूटरोलोजीके नींवके पत्थरके जैसे हैं वे ज्ञानकी हरेक विधामें सही हैं. हाँ किसी एक अर्थमें वह सही हो सकते हैं. उदाहरणके तौरपर यदि कोई चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट् अपनी ऑडिट्रिपोर्टमें में कहे कि एक = दस हो सकता है तो वह तो किसे मान्य होगा!

अपने दैनंदिन व्यवहारकी कई सारी प्रक्रिया इस तर्कके बिना चल नहीं सकती. परन्तु ऐसा मानना कि यह एक विश्वव्यापी अपरिहार्य सिद्धान्त है, ऐसा सोच सर्वथा ठीक नहीं है. उदाहरणके लिए डार्विन्का सिद्धान्त ही लें लें जो कहता है कि अमीबासे ले कर मनुष्य तक एक टेढ़ी-मेढ़ी रेखाकी तरह प्राणिओंका विकास हुवा है. इसलिए उन्हें जैविक श्रेणीमें एक सीरीज़ ही मानना उचित है. जितने भी जीव-जन्तु हैं वह केवल उस सीरीज़के बीचकी कड़ियां हैं. हकीकतमें दुनिया इस सिद्धान्तको मानती है कि नहीं मानती समस्या यह नहीं. श्रद्धासे, परन्तु, इस नियमको मानें बिना कोई भी तर्क या गणित या विज्ञान आगे बढ़ नहीं सकता, Laws of Thoughtके बिना. क्योंकि यदि इसे नहीं मानोगे तो फिर यह भी मानना पड़ेगा कि यह तर्कसंगत विचार शक्य ही नहीं है. सारे विचार काव्यकल्पनात्मक सिद्ध होंगे.

एक मज़ेदार बात बताता हुं : 'गुलामअली'नामक पाकिस्तानका गज़लगायक है. मेरे एक मित्रको गज़लसे बहुत चिढ़ थी. एक दिन होटल ताजमें गुलाम अलीका गज़लका प्रोग्राम् था तो मैंने कहा कि "एक बार सुनो तो सही कि वह क्या-कैसे गाता है" सो मैं आग्रहपूर्वक अपने मित्रको साथ ले गया. दुर्भाग्यवश गुलामअलीने एक गज़ल गायी उसमें एक लाईन आयी "तुमने जुल्फें गिराईं तो अंधेरा छा गया" मेरा दोस्त भीड़मेंसे कमेंट करने लगा कि "अच्छा माशूकके सिरके बाल कटा कर चांद घुटवा दो तो चांदनी हो जायेगी" गज़लपर वाह-वाहके स्थानपर यह अचानक बात कहाँसे आ गयी! अब देखो यह बात तो बिलकुल सच्ची है. हम इस बातको तार्किक नियमोंके आधारपर झुठला नहीं सकते. ऐसी गज़लकी सराहनाके लिए, पर, तर्क कैसे काम आ सकता है? अपने भीतर भरी हुयी भावसौन्दर्यकी अनुभूति ही काम आ सकती है. भावसौन्दर्यको तर्कके आधारपर सराहा नहीं जा सकता. Laws of Thoughtको बाजूमें रख कर ही ठीकसे सराह सकते हैं.

यह बात हुयी Laws of Thought.की अब हम बात करें Laws of Relation की हम ध्यानसे देखें तो ये नियम भी Laws of Thoughtको स्वीकार नहीं करते हैं. जब भी हम जब भी ट्रांज़ीटिव् या रिफ्लॅक्टिव् आदि रिलेशन्स्की बात करते हैं [(P=Q,Q-R)—'(P=R)] यहां रिफ्लॅक्टिव् और ट्रांज़िटिव् रिलेशन् दिखलाया जा रहा है. अत: P केवल रिफ्लॅक्टिव् ट्रांज़िटिव् P ही नहीं है प्रत्युत Q R भी सिद्ध हो रहा है. यह तो एक बड़ी विडम्बना हो गयी न! तर्कके नियम सच्चे तो सम्बन्धके नियम खोटे और सम्बन्धके नियम सच्चे तो तर्कके नियम खोटे. यदि हम इस विस्तारको देखने जायेंगे तो सारे Laws of Thought समाप्त हो जाते हैं. क्योंकि जब हम कह रहे हैं कि P-Qतब हम P के स्थानपर Q रख सकते हैं. उस स्थितिमें A, Aनहीं रह जायेगा कुछ और भी हो जायेगा.

पर क्या हम Laws of Relationको अमान्य कर सकते हैं? दोनों ही सिद्धान्त एकदूजेसे विरोधी हैं और दोनोंको मान्य तो रखने ही पड़ेंगे. गणितमें भी ४ = २+२, पर क्या हम कह सकते हैं कि ४ और २+२ बिलकुल एकही हैं. क्योंकि ४ तो ३+१ भी हो सकता है और ५-१ भी हो सकता है. Law of Thoughtके हिसाबसे नहीं है पर Laws of Relationके हिसाबसे.

इस प्रकार Laws of Thought Laws of Relationकी परिधिमें बंधे नहीं रहते, न Laws of Relation ही Laws of Thoughtsकी परिधिमें बंधे रहते हैं. इतनी बात यदि समझ आ जाती हो तो महाप्रभुजीको समझनेमें कोई समस्या रह नहीं जाती.

Subject and Predicate

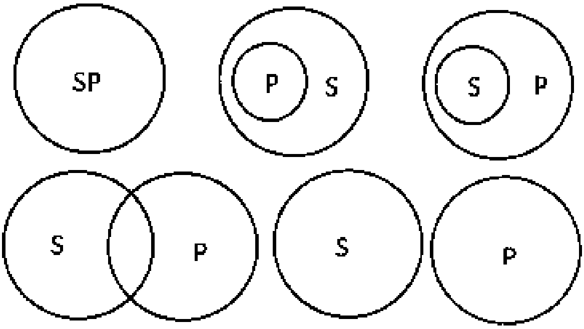

हमारे पास पांच डायाग्राम् हैं जो सारी सम्भावना दरसा रहे हैं. नलकूबर-मणिग्रीवकी स्तुतिमें हमने मूलरूप मध्यरूप जगद्रूप सृजनकर्तारूप और कृष्णरूप देखा. इस स्तुतिमें कृष्णके पांच रूपोंको दरसाया गया है.

सबसे पहले मूलरूप अवस्था. इस रेखाचित्रकी ओर देखें. इस अवस्थामें सब्जेक्ट्(उद्देश्य) और प्रेडिकेट्(विधेय)में भेद नहीं होता. यह नहीं कह सकते कि वह एक-दूसरेके बराबर हैं पर एक-दूसरेके सर्वथा समान नहीं है. दोनों बातोंमें थोड़ा फर्क है 'बराबर होना' और 'समान होना'. मूलरूप अवस्थामें ब्रह्म और उसके नाम रूप कर्म समान हैं. आप उस समय यह नहीं कह सकते कि यह पहला है और यह दूसरा. समान अथवा आइडेन्टिकल् होनेका अर्थ है एकरूपता होना. उस स्थितिमें आप उसकी किसीसे तुलना नहीं कर सकते. बराबर होनेका अर्थ है कि एक-दूसरेके काफी हद तक समान दीखने पर भी कुछ थोड़ा भेद रह जाता है. जो उनको समान होनेसे अलग करता है. मूलरूप अवस्थामें ब्रह्म केवल एकरूप ही है आप कुछ और गिन ही नहीं सकते हो ब्रह्मके अतिरिक्त. यही बात उपनिषदोंमें कही गयी है **"एकमेव अद्वितीयं ब्रह्म"**(छान्दो.उप.६।२।१) **"न इह नाना अस्ति किञ्चन"** (बृह.उप.४।४।१९) ब्रह्म एक है. किसी दूसरेके बिना उसमें कोई भी बहुरूपता हो नहीं सकती.

यह बहुरूपता आयी कहाँसे? तो वह भी उस 'एक'से ही आयी है. ब्रह्म क्या है और सृष्टि क्या है? जो भी नाम रूप कर्म है जगत्में ब्रह्मसे प्रकट हुए हैं वह ब्रह्मकी पूर्णतासे कुछ कम होंगे. हम उन्हें गिन पायेंगे कि ये ब्रह्म हैं. ब्रह्ममेंसे प्रकट हुयी ब्रह्मात्मिका दूसरी वस्तु हैं. बात यहाँ समाप्त नहीं हो जाती है क्योंकि जो भी ब्रह्मके नाम-रूप-कर्म प्रकट हुए हैं वे ब्रह्मके अंदरसे बाहर प्रकट हुए हैं. इस कारण ब्रह्म उनके भीतर प्रवेश करता है. जैसे रसमलाई दूधसे ही बनती है और जब दूधमें दुबारा डाली जाये तब दूध उसके अन्दर प्रवेश कर जाता है. उसी प्रकार जो भी नाम-रूप-कर्म ब्रह्मसे प्रकट होते हैं वे फिरसे ब्रह्मको थोड़ा सोख लेते हैं. ब्रह्म जो अन्दर है, वह अन्तर्यामीके रूपमें जाना

जाता है.

इसके बाद कुछ रूप ब्रह्मके दैविक होते हैं और कुछ अदैविक. जब भी दैविक ब्रह्मकी बात करते हैं तो कारणरूप ब्रह्म और कार्यरूप ब्रह्मके बीच एक बफर-स्टेटके जैसा अपरिभाषित क्षेत्र रहता है. और बाकी पारिभाषित क्षेत्र, जहाँ कारणरूप ब्रह्म और कार्यरूप ब्रह्म अलग दिखलाई देते हैं. क्योंकि उत्पत्तिकारणरूप ब्रह्म और उत्पन्नकार्यरूप ब्रह्ममें कुछ भेद तो है ही, उदाहरणतया नमीभरा वातावरण बद्दल और वर्षा. एकमेंसे दूसरा पैदा होते हैं पर होते तो वही है. इस कारण सभी आधिदैविक नाम-रूप-कर्मका कुछ अपरिभाषित क्षेत्र है, ब्रह्मके भीतर ही. अब यदि परिभाषित क्षेत्रकी बात करें, तो जिनमें ब्रह्म होनेके गुणधर्म नहीं है, उससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि यहाँ कुछ ऐसा है कि जो 'P' नहीं है और कुछ ऐसा 'Q' है जो 'A' नहीं और नहीं भी है. वैसे देखें तो यहाँ पांचो मॉडल् वास्तविक है. यदि उत्पत्तिकी ब्राह्मिक प्रक्रियाको देखें तो कुछ भी असत्य अथवा मिथ्या नहीं है. हालांकी यह Laws of thoughtके अनुसार नहीं है पर यह Laws of relationके अनुसार तो है ही. वही एकरूपता बहुरूपतामें प्रकट हुयी है. अब यहाँ देखें तो बहुरूपता = एकरूपता हुआ. जब यह समझमें आ जाये तो जितने भी प्रकार हैं वे हमें ब्रह्मात्मक ही लगेंगे और उनमें अनन्त सम्भावनाएं प्रकट हो जायेंगी. दार्शनिक जो कि कारणरूप ब्रह्मको और कार्यरूप सृष्टिको पृथक् मानते हैं, उनको इसे समझनेमें समस्या होती है परन्तु वल्लभाचार्यजीको इसमें कोई समस्या नहीं. क्योंकि ब्रह्मके वह पांचों पहलुओंको सम्भव मानते हैं. ऐसा इस कारण सम्भव हुआ क्योंकि उन्होंने यह जान लिया कि एक ही अनेक रूपोंमें प्रकट हुआ है. एक कुम्हार अनेक घड़ोंकी रचना कर सकता है. कोई भी घड़ा उस कुम्हारके बराबर तो नहीं हो जाता. क्योंकि तत्त्वत: वे दोनों अलग हैं. वहाँ घड़ोंकी अनेकरूपता मिट्टीके

गुणधर्म लिए हुए है न कि कुम्हारके. कुम्हारकी एकरूपता जसकी तस है. फिरभी एक कल्पना करो कि जहाँ एक अभिनेता बहुतसे रोल् करता हो, वहाँ जितने भी पात्र हैं उनका अभिनय एक ही अभिनेता करता होता है. अत: एक अभिनेता = सारे पात्र. ब्रह्म बस उसी प्रकारका है. वह पात्र एक-दूसरेके समान हों यह आवश्यक नहीं है. अब यदि इसमें Laws of relation लगाऐं कि 'P'Actor = पात्र 'Q'role-1के बराबर है और 'R'role-2पात्र भी 'P'के बराबर है. फिरभी 'Q'role-1के बराबर है और 'R'role-2नहीं माना जा सकता. वहाँ हमारे सम्बन्धनियम Law of Thought and Relations समाप्त हो जाते हैं. क्योंकि पात्र आपसमें एक-दूसरेके बराबर नहीं है. पर अभिनेताकी दृष्टिसे वे सब बराबर हैं.

यही कारण है कि हम राम और रावण के बीच ब्रह्मको एक कॉमन् फॅक्टर् मानते हैं. वही ब्रह्म, कृष्ण और कंस बना है, वही ब्रह्म हिरण्याक्ष और वराह बना है, वही एक ब्रह्म हिरण्यकशिपु और नृसिंह भी बना है. जब हम लीलाकी दृष्टिसे देखेंगे तो दोनों एक ही ब्रह्मके दो रूप है. अब जब "अहं ब्रह्म अस्मि" कह रहे हैं, तो यही मॉडल् हम बता रहे हैं. क्योंकि यदि 'अहं' ही ब्रह्म हो तो उसके बारेमें किसी और 'ब्रह्म'को कहने-माननेकी आवश्यकता कहां रही?

जैसे उदाहरणसे समझना हो तो "योगेश योगेश है" यह वाक्य निरर्थक हो जाता है. पर हम ऐसा तो कह सकते हैं कि "योगेश एक व्यक्ति है" अथवा "योगेश सांवरे रंगका है". पहला वाक्य तो निरर्थक ही है क्योंकि पहला 'योगेश' जो सब्जॅक्ट् है और दूसरा 'योगेश' जो प्रॅडिकेट् है, उनमें भेद क्या है यह समझना असम्भव है. सब्जॅक्ट् और प्रॅडिकेट् यह दो फिनोमिना होने चाहिये. उनमें कुछ समानता भी दीखनी चाहिये. तभी वाक्य अर्थवान् होगा.

यहाँ-तक कि असमानता भी उसी एकरूपसे प्रकट होती है. यह है श्रीवल्लभाचार्यका दर्शनशास्त्र. वह एकरूप ऐसा भी रूप प्रकट कर सकता है कि आप उसमें कोई भी समानता, उस एकके साथ न देख पायें. यह उस एककी विशेषता है. इस कारण ही मैं हमेशा कहता हूँ कि उस ब्रह्मको नकारनेके लिए आपको ब्रह्म ही चाहिये. चेतनाको नकारनेके लिए चेतना ही चाहिये. आप चेतनाको तभी तो नकार पायेंगे जबकि आप स्वयं चेतन हों. उस चेतनाकी अवस्थामें आपको पूर्ण स्वतन्त्रता है, अपने आपको 'चेतन' कहने-माननेकी और उसका आनन्द ले पानेकी. यहाँ-तक स्वतन्त्रता है कि आप बुद्धकी तरह उस चेतनाको नकार भी सकते हो. अधिकसे अधिक आप यह कह सकते हो कि इसमें कुछ विरोधाभास है. है तो है, होने दो विरोधाभास. किसे चिन्ता है विरोधाभासकी! क्या जगत्में कुछ भी विरोधाभास नहीं है? अनेक विरोधाभास हैं. एक ही पृथ्वी अनेक जीवोंको उत्पन्न करती है, पेड़-पौधोंको उत्पन्न करती है, कीड़े-मकोड़ोंको भी उत्पन्न करती है, उन्हें खानेवाले सर्प आदि भी उत्पन्न करती है. क्या यह विरोधाभास नहीं है? आप यह ठीकसे देख पाते हैं कि यहाँ जीवनके लिए आवश्यक प्राणवायु भी परस्पर विरोधमें उत्पन्न हो रहे है. जैसे हम पशु-पक्षी जीवोंको ऑक्सीजन् चाहिये और कार्बन्डाई-ऑक्साइड् छोड़ते हैं, उसीके ठीक विपरीत पौधे ऑक्सीजन् छोड़ते हैं और कार्बन्डाई-ऑक्साइड् ग्रहण करते हैं. यहाँ है कि नहीं जीवनके दो प्रतिरोधी रूप! यह तो केवल पृथ्वीके धरातलपर ही इतना देखनेको मिल रहा है. यह दो प्रकारका जीवन दे कौन रहा है, पृथ्वीकी एकरूपता ही तो दे रही है.

इसी कारण जब मैंने यह कहा कि इन पांचमेंसे आपको एक मॉडल् चुनना है तो आप सब उस एक सही मॉडल्की तलाशमें जुट गये. पर इस पूरे सत्रमें मैं इस बातपर जोर दे रहा था कि हर वस्तु ब्रह्म है. पर थोड़ासा आपको भटका दिया तो आप

तुरंत भटक गये. जैसे कोई जेब-कतरा जब जेब काटता है तो काटनेके बाद सामान दूसरेको दे कर, वहीं खड़े रह कर हल्ला मचाने लगता है कि जेब उसने काटी. लोग हल्ला मचा-मचा कर दूसरेके पीछे दौड़ते हैं और सही चोर आरामसे निकल जाता है. उसी प्रकार हमारा दीमाग इन Laws of Thought और Laws of Relationके बीच फंस जाता है. जब भी Law of Thoughtयह शिकायत करता है कि किसी Law of Relationने जेब काटी है, बस हमारा दीमाग उस Law of Relationके पीछे-पीछे भागता रहता है जबकि उसे भगानेवाला Law of Thought आपको कह रहा है कि 'A'is 'A' बस आप दूसरी दिशामें देखना ही बंद कर देते हैं.

हम यही देखने लग जाते हैं कि इन पांचमेंसे कौनसा रेखाचित्र सही है! क्योंकि 'A' is 'A' सारे रेखाचित्र सही नहीं, केवल एक ही सही है. उस एकरूपताको दरसानेके लिए; लेकिन ब्रह्म एक ऐसी वस्तु है जो कि एक नहीं, कई प्रकारके रेखाचित्रोंसे वर्णित किया जा सकता है. सारे रेखाचित्र उस एकका वर्णन करनेके लिए भी कम पड़ेंगे. इसी कारण भागवत और महाप्रभुजी एक बात कहते हैं कि **"कथम् अयथा भवन्ति भुवि दत्तपदानि नृणाम्"** (भाग.पुरा.१०।८४।१५) मानें आप किसी भी ओर अपना पग उछालो वह वापस धरतीपर ही पड़ेगा. इसी तरह आप कोई भी रेखाचित्र प्रस्तुत करो पर वह ब्रह्मको ही दरसाता है. ऐसा कोई भी रेखाचित्र बनाना सम्भव नहीं है कि जो दूसरी दिशामें ले जा सके. क्योंकि ब्रह्मके सिवाय दूसरा कुछ भी है ही नहीं. इसका नाम है 'सर्वब्रह्मतादात्म्यवाद'. इसी कारण दयारामभाई भी इस बातको कहते हैं कि "*सहु बराबर कृष्ण छे, नथी कृष्ण बराबर कोय, सागर छोळ्यो ने द्रष्टांते शाणा समजी जोय*" अब तर्ककी दृष्टिसे क्या ऐसा सम्भव है? Laws of Thought तो यहाँ आ कर फेल हो गया. यदि सभी कृष्णके बराबर

है तो कृष्णको भी रिफ्लेक्टिवली सबके बराबर होना चाहिये था, पर है नहीं. जैसे सागरकी लहरें सागर ही हैं पर क्या लहर सागर हो सकती है? श्रीशंकराचार्य भी तो कहते हैं "**सामुद्रो हि तरंगः क्वचन समुद्रः तारंगः इति**" (श्रीशंकराचार्यकृत विष्णुषट्पदी-३) तरंगें समुद्रकी होती हैं समुद्र तरंगोंका नहीं होता. श्रीशंकराचार्यजी भी कहते हैं "**ब्रह्माण्डानि बहूनि पंकजभवान् प्रत्यण्डम् अत्युद्भुतान्**" (श्रीशं.कृ.प्र.सु.२४२) स्टीफेन् हॉकिंग् कहता है कि एक ब्रह्माण्ड नहीं अनेक ब्रह्माण्ड हैं और उनकी एक व्याख्या नहीं, अनेक व्याख्या हो सकती हैं.

मूलमें सिद्धान्त यह है कि जो सच्चिदानन्द रूपी तत्त्व है वह एकरूप है और विभिन्न नाम-रूप-कर्म उसकी अनेकरूपता है. वह उसीकी ली हुयी अनेकरूपता है. विभिन्न नाम-रूप-कर्मोका अनेक होना उसी एककी सर्वभवनसामर्थ्यके कारण है. इसी कारण महाप्रभुजी कहते हैं कि "**सृज्यते सृजति प्रभुः, त्रायते त्राति विश्वात्मा, ह्रियते हरति ईश्वरः, आत्मैव तदिदं सर्वं ब्रह्मैव तदिदं तथा, इति श्रुत्यर्थम् आदाय साध्यं सर्वैः यथा मतिः, अयमेव ब्रह्मवादः शिष्टं मोहाय कल्पितम्**" (त.दी.नि.२।१८३-१८४) वही सृजनकर्ता और वही सृष्टिरूप भी, वही रक्षणकर्ता है और वही रक्षित हो रहा है. वही सबको समाप्त कर रहा है और वही समाप्त हो रहा है, यही है अर्थ ब्रह्मवादका. इसके अतिरिक्त जो भी अर्थ सोचे जाते हों वह हमारी मतिके भ्रम हैं. जैसे अपने रक्तमें दो प्रकारके सॅल्स् होते हैं एक रक्षण करनेवाले और दूसरे विजातीय पदार्थोंका नाश करनेवाले. अब वे एक ही रक्तमें होते हैं. इस प्रकारकी ही विरुद्धधर्माश्रयता ब्रह्ममें भी है. यह नलकूबर-मणिग्रीवकी स्तुतिका तात्पर्य है.

ब्रह्मके बारेमें सारे रेखाचित्र ठीक हैं पर कौनसा रेखाचित्र उसके किस पहलुके बारेमें है, इसका विवेक तो हमें रखना ही

पड़ेगा. प्रत्येक रेखाचित्र हर पहलुके लिए ठीक नहीं है. एक पहलुके लिए एक रेखाचित्र सच्चा है. दूसरेके लिए दूसरा. तीसरेके लिए तीसरा सच्चा है. यहाँ यह ध्यान देनेवाली बात है कि सभी रेखाचित्र एक-दूसरेके विरोधी हैं पर ब्रह्मके बारेमें सभी सच्चे हैं. यही तो ब्रह्मकी सुन्दरता है. इसी कारण महाप्रभुजी कहते हैं कि ब्रह्म विरुद्धधर्माश्रय है. वह इस अर्थमें कि उसका विवेचन प्रत्येक रेखाचित्रसे किया जा सकता है. बस ध्यान हमको यही रखना है कि ब्रह्मके किस पहलुका विवेचन हम करना चाह रहे हैं. जैसा मैंने पहले कहा कि आप कुर्सीपर बैठे हो तो ब्रह्मपर बैठे हो. इसी प्रकार कृष्णकी मूर्तिको यदि तुम भज रहे हो तो कृष्णको भज रहे हो कि ब्रह्मको भज रहे हो? किसी भी एक रेखाचित्रसे यदि तुम इस बातको उचित ठहराना चाहोगे तो बात झूठ साबित होगी. इस कारण आपको इस बातकी बहुत सावधानी रखनी पड़ेगी कि किस रेखाचित्रसे हम इस बातको समझ पायेंगे.

इस बारेमें महाप्रभुजी कहते हैं कि कृष्णमूर्तिको जब हम भज रहे हैं, तब हम उसे यह समझ कर भज रहे हैं कि वह साकार और व्यापक ब्रह्म है : **“साकारव्यापकत्वात् च”** (त.दी.नि.१।२२९) है. तो हम ब्रह्मके साकार होनेके कारण कृष्णको ही भज रहे हैं और उसके व्यापक होनेके कारण मूर्तिरूपेण विद्यमान ब्रह्मको ही भज रहे हैं. यदि हम उसे केवल साकार मानेंगे तो हम कृष्णको नहीं, केवल पत्थरकी मूर्तिको ही भजते होंगे. केवल ब्रह्म ही मानते हों तो ब्रह्म तो भजा ही नहीं जा सकता. क्योंकि उसे कहाँ भजेंगे और कौन भजेगा? क्योंकि ब्रह्म तो सर्वव्यापी और सर्वरूप है. इसी कारण कबीरने एक बात कही है *“पाथर पूजे हरि मिले तो हों पूजों पहाड़, तातें तो चाकी भली पीस खाय संसार”* यदि पत्थरके पूजनेसे हरि मिलता हो तो मैं पहाड़की पूजा क्यों नहीं करूँ. इससे तो अनाजके दाना पीसनेकी चक्की अच्छी है जो किसी

काम तो आ रही है! पत्थरकी मूर्तिपर वह उस रेखाचित्रके बारेमें बता रहे है कि जहाँ वह पत्थरमें भगवान् नहीं देख पा रहा है, वह केवल भगवान्के व्यापक रूपको ही समझ पा रहा है. वहाँ तक उसकी बात सच्ची है पर दूसरे लेवल्पर वह बात झूठी हो जाती है. सन्त कबीरकी ही एक उक्ति कही जाती है **"एक राम दशरथका बेटा दूजा घट-घट बैठा, तीजा राम सबै जग व्यापा चौथा सबसे** अनूठा", तो सबसे अनूठे रामका अनूठापन यही तो है कि वह तीनों रूप होनेपर भी तीनोंसे अनूठा है. अन्यथा न तो घट-घटमें बैठा, न सब जगत्में व्यापा, और न दशरथके घरमें ही जनमा. तब तो राम चार भी सिद्ध नहीं हो पायेगा.

बहुत लोग कहते हैं कि पत्थरकी मूर्तिको भजनेकी अपेक्षा मनमें भगवान्का ध्यान धरना उत्तम कल्प है. पूछना चाहिये कि क्या मन भगवान् है? अथवा जगत्में मनके अलावा अन्यत्र भगवान्पर प्रकट न होनेका प्रतिबन्ध है? मन हमारे दर्शनशास्त्रमें पत्थरकी तरह मन भी तो जड़ पदार्थ ही है. भगवान् सभी कुछ बने हों तो मनकी तरह धातु-पत्थर भी भगवान् ही बने हैं. आपने पत्थरकी मूर्तिमें भगवान्को नहीं देखा और उसकी मनमें कोई तस्वीर बना ली. पर एक बात बताओ कि पत्थरकी मूर्ति और मनकी छबि के बीच स्थिर रहनेकी क्षमता किसमें अधिक है? मनमें कोई भी छबि तीन मिनिटसे अधिक टिक नहीं सकती. ब्रह्मका अर्थ, यदि, शाश्वत या टिके रहना हो तो पत्थरकी मूर्तिकी अधिक वांछनीय है. धातु-पत्थरकी मूर्तिके पूजनेके कर्मकाण्डके बावजूद मनमें वह समा नहीं पाती. तो ऐसा सोचें तो मनमें बसनेके बावजूद् सर्वत्र तो भगवान्के दर्शन होना जरूरी नहीं होता. तो मानसी मूर्ति भी अन्ततः ब्रह्मात्मिका तो रह नहीं जाती. वैसे किसी कलाकारके मनमें जो मूर्ति समा जाती है तो वह धातु-पत्थर-कागज पर कहीं भी उसे उभार सकता है. भक्तिभी एक दिव्य कला है जो मनमें समायी भगवान्की मूर्तिको

कहीं भी उत्कीर्ण कर पाता है. यही बात महाप्रभुजी कहते हैं कि चित्त प्रभुमें लगना चाहिये. इसके लिए मूर्तिकी पूजा करनी चाहिये. अपने तन और धन से जब ऐसा करेंगे तो अहंकार उस भगवन्मूर्तिके साथ जुड़ पायेगा. यदि अपना धन भी उस भगवन्मूर्तिकी आराधनामें प्रयोगमें लायें तो ममता भी साथ जुड़ पाती है. यों अहन्ता और ममता दोनों भगवन्मूर्तिके साथ जुड़ गयी तो मन भी जुड़ जायेगा. वह मूर्ति साथ जुड़ पाये तो मनके भीतर समायी हुयी भी अनुभूत किया जा सकता है. उसके बाद बाहरकी छबि और अन्दरकी छबि में कोई प्रभेद नहीं रह जाता. ऐसा होनेपर महाप्रभुजी कह रहे हैं कि **"मानसी सा परा मता"** (सि.मु.१). यह हो गया तो भक्ति सिद्ध हो गयी. यह एक भक्तियोगकी सिस्टम् है जिसमें मन और मॅटर् किसीके साथ भी अन्याय नहीं किया गया है. प्रत्येकको उसके स्थानपर रखा गया है. यदि हम ऐसा करें तो मनकी छबि सत्य है और पत्थरकी झूठ है ऐसा कहनेपर तो पत्थरकी मूर्ति ठोस सत्य है मनकी छबि कल्पनामयी झूठी है, ऐसा भी कहा जा सकेगा. इसका अर्थ होगा कि ब्रह्मकी सर्वरूपता सर्वव्यापकता सर्वशक्तिमत्ता खण्डित हो जायेगी. ब्रह्मकी पूर्णब्रह्मता खण्डित करनेपर कहीं भी वह ब्रह्म नहीं रह जाता. ब्रह्म अनेकविध नाम-रूप-कर्मोंमें प्रकट हुवा हुवा है अपने-आपको खण्डित किये बिना. आवश्यकता उसे अपने मनमें बसानेकी है नकि मनके बाहर उसे अस्वीकार करनेकी. वह तो किसी पत्थर अथवा धातु की मूर्तिकी पूजासे भी क्यों शक्य नहीं. महाप्रभुजी इस प्रकार ही अपनी भक्तिकी प्रक्रियाका विस्तार करते हैं. यह बात ही नलकूबर-मणिग्रीवकी स्तुतिद्वारा महाप्रभुजी हमें समझाना चाहते हैं. मुझे लगता है कि यह बात अब समझ आ जानी चाहिये.

उद्धृतवचनानुक्रमणिका

(अ - ऐ)

अण्वपि ब्रह्म व्यापकं भवति	(त.दी.नि.प्र.१।५४)	१७,२०,३०४
अथात आदेशो 'न' इति	(बृह.उप.२।३।६)	१४६
अधिष्ठानं तथा कर्ता	(भग.गीता.१८।१४,१६)	२३७
अपरं तत्र पूर्वस्मिन् वादिनो	(सिद्धा.मुक्ता.४-५)	१२७
अपि चेत् सुदुराचारो भजते	(भग.गीता.९।३०-३१)	२८,३१
असन्नेव स भवति	(तैत्ति.उप.२।६)	१११
आत्मैव तदिदं सर्वं सृज्यते	(त.दी.नि.२।१८३-१८४)	१२६
आत्मौपम्येन सर्वत्र समं	(भग.गीता.६।३२)	१४१
इदं शरीरं कौन्तेय	(भग.गीता.१३।१)	१८६,१८९
ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे	(भग.गीता.१८।६१-६२)	१३६,१८०,१८१
एकमेव अद्वितीयं ब्रह्म	(बृह.उप.४।४।१९)	३७९
एवं सततयुक्ता ये भक्ता	(भग.गीता.१२।१)	३३३

(क - ङ)

कश्चिद् धीर प्रत्यगात्मानम्	(कठोप.२।१।१)	२०५
कदाचित् पुरुषद्वारा कदाचित् पुनर्	(त.दी.नि.१।३७)	३९
कामं क्रोधं भयं स्नेहम्	(भाग.पुरा.१०।२९।१५)	२८०
कामं दहन्ति कृतिनो ननु	(भाग.पुरा.२।७।७)	३२
काल स्वभावो नियति	(श्वेता.उप.१।२-३)	१२७
कूटस्थो 'अक्षरः' उच्यते	(भग.गीता.१५।१६)	१५०
कृत्स्न प्रज्ञानघनएव	(बृह.उप.४।३।१३)	२२१
कथम् अयथा भवन्ति	(भाग.पुरा.१०।८४।१५)	३८३
को अद्धा वेद क इह	(ऋक्.संहि.८।७।१७।६-७)	४०,४२
कौन्तेय प्रतिजानिहि	(भग.गीता.९।३१)	२६४
क्षरः सर्वाणि भूतानि	(भग.गीता.१५।१६)	१५०
क्षेत्र-क्षेत्रज्ञयोर ज्ञानं यत्	(भग.गीता.१३।२)	१८६

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि	(भग.गीता.१३।२)	२२८
गृहे स्थित्वा स्वधर्मत:	(भ.व.२)	२०५
गोप्य कामाद् भयात् कंसो	(भाग.७।१।३०)	१०२
गोविन्दं भज मूढमते	(श्रीशं.कृ.भज गोविन्दं.१)	३३६

(च-न)

चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च	(मंग.५)	४४
ज्ञानी प्रियतमो अतो मे	(भाग.पुरा.११।१९।३)	४,१३४, १३७,१३८
ज्ञानवैराग्ययो: भक्तिप्रवेशाय	(भक्तिरसामृतसिन्धु.२।२।६७-६८)	२६
तदभावे स्वयं वाऽपि मूर्तिं	(त.दी.नि.२।२२८)	१०९
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि	(केनोप.१।५)	२३८
तमेव विदित्वा अतिमृत्युम्	(श्वेता.उप.३।८)	१०,२४९,२५१
दैवी सम्पद् विमोक्षाय	(भग.गीता १६।५)	१३५
धूर्तं छलयताम् अस्मि तेज	(भग.गीता १०।३६-३८)	२८७
द्वाविमौ पुरुषौ लोके	(भग.गीता १५।१६)	१५०
द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे	(बृह.उप.२।३।१)	१४६,३१०
न अहं वसामि वैकुण्ठे	(पद्म.पुरा.उ.९२।२१)	१८५
न अहं वेदै न तपसा	(भग.गीता ११।५३-५४)	२६१
न खलु गोपिकानन्दनो भवान्	(भाग.पुरा.१०।३१।४)	४९
न मे भक्त प्रणश्यति	(भग.गीता ९।३१)	१३७
नतु मां शक्यसे द्रष्टुम्	(भग.गीता ११।८)	२६१
नष्टो मोह स्मृतिर् लब्धा	(भग.गीता १८।७३)	३४५
नहि एतस्माद् इति	(बृह.उप.२।३।६)	१४९

(प-म)

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं	(भग.गीता १०।१२-१३)	१५१
पराञ्चि खानि व्यतृणत्	(कठोप.२।१।१)	२०६

बृहत्त्वाद् बृंहणत्वाद् ब्रह्म	(द्र.वि.पु.१।१२।५५)	१०,२७३,२७४
ब्रह्मरूपं जगत् ज्ञातव्यं	(भाग.सुबो.२।१।३५)	३५
ब्रह्माण्डानि बहूनि	(श्रीशंक.कृ.प्र.सु.२४२)	३८४
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति	(त.दी.नि.१।६)	१३
ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हवि ब्रह्माग्नौ	(भग.गीता.४।२४)	६६,३५६
बैराग्य शाधनेर मुक्ति	(रविन्द्रनाथ टागोर)	३५०
भगवानेव हि फलं स यथा	(पु.प्र.म.१७)	२८८
भस्मन्येव जुहोति स	(भाग.पुरा.३।२९।२२)	६७
मनसा वचसा द्रष्ट्या	(भाग.पुरा.११।१३।२४)	११७
मन्मना भव मद्भक्तो	(भग.गीता १८।६५)	१३६
मम योनि महत् ब्रह्म	(भग.गीता १४।३)	१२०,१९२
मयि आवेश्य मनो ये	(भग.गीता १२।२)	३३३
मर्त्यञ्चैव अमृतञ्च	(बृह.उप.२।३।१)	१४६
मानसी सा परा मता	(सि.मु.१)	३८७

(य-व)

यदा यदा हि धर्मस्य	(भग.गीता.४।७)	२८९
यत् चक्षुषा न पश्यति	(केनोप.१।६)	२०४
यद् मनसा न मनुते येन	(केनोप.१।६,१।५)	२०४
यद् यद् विभूतिमत् सत्त्वं	(भग.गीता.१०।४१)	२८७
यद् वाचा अनभ्युदितं	(केनोप.१।४)	२०४,२३८
यद्-यद्धिया त उरुगाय	(भाग.पुरा.३।९।११)	२०३
यस्मात् क्षरम् अतीतो	(भग.गीता.१५।१८)	१४५,१५०, १५१,१६५,१८३
यस्य अमतं तस्य मतं	(केनोप.२।३)	१०,२५९,२६६
यानेव हत्वा न जिजीविषाम	(भग.गीता २।६)	३४४
ये यथा मां प्रपद्यन्ते	(भग.गीता ४।११)	२०३
येतु अक्षरम् अनिर्देश्यम् अव्यक्तं	(भग.गीता १२।२-३)	३३३

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं	(भग.गीता ६।३०)	१४०
वज्रादपि कठोराणि मृदुनि	(उत्त.रामच.द्वि.खं.७)	१८२
वस्तुविचारेण सर्वस्यापि	(त.दी.नि.२।२२८)	२१२
विक्षेपाद् अथवा अशक्त्या	(त.दी.नि.प्र.२।२४७)	३६
विमृश्य एतद् अशेषेण	(भग.गीता.१८।६३)	१३६,३४४
वैराग्यं सांख्ययोगौ च तपो	(त.दी.नि.१।४५)	६३

(श-ह)

स इममेव आत्मनं द्वेधा	(बृह.उप.१।४।३)	१३३
स द्वितीयम् ऐच्छत्	(बृह.उप.१।४।३)	१३३
सएव परमकाष्ठापन्न कदाचिद्	(त.दी.नि.प्र.१।१)	११०,२१९
सत्यपि भेदापगमे नाथ	(श्रीशं.कृ.विष्णुषट्पदी-३)	३३६
सच्च त्यच्च	(बृह.उप.२।३।१)	१४६
सृज्यते सृजति प्रभुः	(त.दी.नि.२।१८३)	३८४
सत्यं च अनृतं च सत्यम्	(तैत्ति.उप.२।६)	२८३
सर्वं समाप्नोषि ततो असि सर्वं	(भग.गीता ११।४०)	७,१७१, १७६
सर्वधर्मान् परित्यज्य माम्	(भग.गीता १८।६६)	३४४
सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु	(भग.गीता १८।६४)	१३६
सर्वोपनिषदो गावो	(गीतामाहा.४)	१४९
साकारव्यापकत्वात्	(त.दी.नि.२।२२९)	३८५
सामुद्रो हि तरंगः	(श्रीशंक.विष्णुषट्पदी-३)	३८४
सो अबिभेत् तस्माद्	(बृह.उप.१।४।२)	१४३